# विश्व हिंदी साहित्य 2024

विश्व हिंदी सचिवालय, मॉरीशस

# विश्व हिंदी साहित्य
# 2024


**प्रधान संपादक**
**डॉ. माधुरी रामधारी**

**संपादक**
**डॉ. शुभंकर मिश्र**



**विश्व हिंदी साहित्य**
**इंडिपेंडेंस स्ट्रीट, फ़ेनिक्स 73423**
**मॉरीशस**

World Hindi Secretariat
Independance Street, Phoenix 73423
Mauritius

info@vishwahindi.com
वेबसाइट / Website : www.vishwahindi.com
फ़ोन / Phone : 00-230-6600800

**ISSN - 1694-3465**

वरिष्ठ सहायक संपादक
**श्री प्रकाश वीर**

सहायक संपादक
**श्रीमती श्रद्धांजलि हजगैबी-बिहारी**

संपादन सहयोग
**श्री नीरज कुमार**

टंकण टीम
**श्रीमती विजया सरजू**

**निवेदन**

विश्व हिंदी साहित्य में प्रकाशित रचनाओं में व्यक्त मत रचनाकारों के हैं।
विश्व हिंदी सचिवालय और संपादक मंडल का उनके विचारों से सहमत होना आवश्यक नहीं है।

**पृष्ठ सज्जा**
आर. एस. प्रिंट्स

**कवर डिज़ाइन**
डॉ. प्रकाश झगारू

स्टार पब्लिकेशंस प्रा. लि., 4/5 बी, आसफ अली रोड,
नई दिल्ली-110002 (भारत) द्वारा प्रकाशित

# संपादकीय

## हिंदी साहित्य के प्रति अभिरुचि बढ़ाने में शिक्षकों का योगदान

आधुनिक युग में, सूचना-क्रांति के दुष्प्रभाव से जहाँ हिंदी साहित्य के प्रति नई पीढ़ी की घटती रुचि चिंतनीय है, वहीं विश्व हिंदी सचिवालय द्वारा 'हिंदी साहित्य के प्रति अभिरुचि' विषय पर लगभग दो वर्षों से नियमित रूप से आयोजित किए जा रहे आभासी कार्यक्रमों के अंतर्गत प्रबुद्ध वक्ताओं की सूचनापरक प्रस्तुतियाँ यह प्रमाणित करती हैं कि विश्व के अनेक विद्यालयों, महाविद्यायलों एवं विश्वविद्यालयों में हिंदी साहित्य के शिक्षक एवं व्याख्याता अपने शिक्षार्थियों को हिंदी साहित्य का गहन ज्ञान कराने और साहित्य की अनेक विधाओं का परिचय देने के अतिरिक्त हिंदी साहित्य के समृद्ध सागर में डूबने और उसे वैश्विक परिप्रेक्ष्य में देखने की प्रेरणा प्रदान कर रहे हैं। साहित्य के प्रति युवा पीढ़ी की अभिरुचि जगाकर उसकी वृद्धि करने में हिंदी शिक्षकों की कटिबद्धता सराहनीय है।

दुनिया के कई देशों में प्राथमिक स्तर से ही बच्चों को हिंदी साहित्य पढ़ाया जाता है। महाराजा सयाजीराव विश्वविद्यालय, बड़ौदा, भारत के कला संकाय विभाग की छात्र अधिष्ठाता डॉ. अनीता शुक्ल का विचार है –

"साहित्य के प्रति अभिरुचि होना एक संस्कार है और इस अभिरुचि को बढ़ाना एक संस्कार-प्रक्रिया है, जिसका आरंभ बचपन से ही हो जाता है।"

जीवन के प्रारंभिक काल से ही मानस-पटल पर साहित्य विद्यमान रहता है। इसीलिए जब शिक्षक महान् लेखकों के जीवन की कथा कक्षा में सुनाते हैं, तब बच्चों का कौतूहल अत्यधिक बढ़ जाता है। वे 'कब', 'क्यों', 'कैसे' जैसे प्रश्नों की बौछार करने लगते हैं। रचनाकार तथा उनके परिवेश को अच्छी तरह से समझ लेने के बाद उनकी कृतियों को बच्चे बड़े चाव से पढ़ते हैं। रशिया के रबीन्द्रनाथ ठाकुर पाठशाला की हिंदी अध्यापिका श्रीमती बेशचुक यूलिया व्लादिमिरोवन का कहना है –

"हमारे बच्चे पाँचवी कक्षा से हिंदी सीखते हैं। हम सोचते हैं कि हिंदी शिक्षण में साहित्य का स्थान बड़ा होना चाहिए। सबसे पहले बच्चे त्योहारों से संबंधित कविताएँ सीखते हैं। छठी और सातवीं कक्षाओं के बच्चे तुलसीदास के रामचरितमानस के पद्य पढ़ते हैं। 10वीं और 11वीं कक्षा में वे हरिवंशराय बच्चन, महादेवी वर्मा, सूर्यकांत त्रिपाठी निराला, जयशंकर प्रसाद, अटल बिहारी वाजपेयी आदि महान् कवियों की कविताएँ पढ़ते हैं। वे हिंदी में अनूदित रबीन्द्रनाथ ठाकुर की कविताएँ भी पढ़ते हैं। मुझे ऐसा लगता है कि हमारे बच्चों को भारतीय साहित्य और संस्कृति पसंद है।"

विश्व के जिन देशों में भारतवंशी बड़ी संख्या में प्रवास करते हैं, वहाँ अनेक अंतर्राष्ट्रीय भारतीय स्कूलों की स्थापना की गई है, जहाँ केन्द्रीय माध्यमिक शिक्षा बोर्ड (सीबीएससी) द्वारा निर्धारित पाठ्यक्रम के अनुसार बच्चों को सर्वप्रथम बाल-साहित्य से परिचित कराया जाता है और उन्हें स्कूल के पुस्तकालय में प्रचुर मात्रा में बाल-साहित्य उपलब्ध कराया जाता है। इस संदर्भ में

'इंडियन स्कूल आल वादी आल कबीर', मस्कट, ओमान के हिंदी विभागाध्यक्ष श्री अनिल बरतरे कहते हैं –

"बाल-साहित्य के बिना हम शिक्षा की कल्पना नहीं कर सकते हैं, क्योंकि बाल-साहित्य ही वह उपकरण है, जिसके माध्यम से हम बच्चों को शिक्षित कर सकते हैं।"

लगभग 25 देशों में सीबीएससी से सम्बद्ध विद्यालयों में विद्यार्थी कबीरदास, प्रेमचंद, विष्णु प्रभाकर, कमलेश्वर जैसे प्रसिद्ध साहित्यकारों की बेहतरीन रचनाएँ पढ़ते हैं। साहित्य का रस प्राप्त करने पर वे साहित्य-पठन के साथ-साथ अपने शिक्षकों के मार्गदर्शन में कविता, कहानी, निबंध आदि की मौलिक रचनाएँ करके स्कूल की हिंदी पत्रिका में प्रकाशित करवाते हैं। साहित्य-प्रेमियों और हिंदी साहित्यकारों की एक नई पीढ़ी तैयार हो रही है।

विश्वविद्यालयी स्तर पर, जिन देशों में विदेशी भाषा के रूप में विद्यार्थी हिंदी सीखते हैं, वहाँ वे प्रथम वर्ष में वर्णमाला का मौखिक अभ्यास करते हैं और देवनागरी लिपि सीखते हैं। धीरे-धीरे शब्द-रचना, वाक्य-रचना और व्याकरण सीखते हैं। जब हिंदी बोलना और लिखना जान लेते हैं, तब उन्हें हिंदी साहित्य का इतिहास बताते हुए शिक्षक चयनित रचनाओं की जानकारियाँ प्रदान करते हैं। त्रिभुवन विश्वविद्यालय, काठमांडू, नेपाल के हिंदी प्राध्यापक डॉ. विनोद कुमार विश्वकर्मा का कथन है –

"हिंदी साहित्य से विद्यार्थी परिचित हो, इस बात को ध्यान में रखते हुए मध्यकाल और आधुनिककाल की सम्पूर्ण प्रमुख प्रवृत्तियों को पाठ्यक्रम में समाविष्ट किया गया है।"

शिक्षक कठिन शब्दों का अर्थ बताकर रचना का पाठ करवाते हैं और रचना का आवश्यकतानुसार अनुवाद करते हैं, ताकि उसे आत्मसात् करने में छात्रों को कठिनाई न हो। छात्रों को भी साहित्यानुवाद करने का प्रोत्साहन दिया जाता है। लिथुआनिया के विल्नियस विश्वविद्यालय में एशियाई और ट्रांसकल्चरल संस्थान में सहायक प्रोफ़ेसर डॉ. क्रिस्टीना डोलिनीना बताती है कि उनके विद्यार्थी आलेक्ससांद्रस यंकुस ने अनामिका की कविताओं का लिथुएनियन भाषा में अनुवाद किया। इज़राइल के हिब्रू विश्वविद्यालय की प्राध्यापिका डॉ. मरीना रिमचा अपने छात्रों से हिब्रू भाषा में हिंदी कविताओं का अनुवाद करवाती हैं। केलानिया विश्वविद्यालय, श्रीलंका के हिंदी विभाग की सहायक व्याख्याता, सुश्री जननी मुदागे सिंहली भाषा में हिंदी कहानियों का अनुवाद करने का कार्य विद्यार्थियों को देती हैं। बलगारिया के सोफ़िया विश्वविद्यालय की हिंदी व्याख्याता डॉ. मौना कौशिक कहती हैं –

"हमारे विभाग में हिंदी भाषा के अध्यापन का मुख्य उद्देश्य है कि विद्यार्थी क्रमश: ऐसी भाषिक योग्यता प्राप्त कर सकें कि वे स्वयं ही हिंदी भाषा की भिन्न शैलियों की रचनाओं को न केवल पढ़ सकें, बल्कि उनका अनुवाद भी कर सकें ... बल्गारियन भाषा में मुक्तिबोध, धूमिल, सोहनलाल चतुर्वेदी, निराला, प्रसाद, महादेवी वर्मा, अमृता प्रीतम, पंकज शर्मा आदि की कविताओं का लगातार अनुवाद हो रहा है। अनुवाद संग्रह भी यहाँ प्रकाशित हो चुका है।"

लोरांड विश्वविद्यालय, बुडापेस्ट, हंगरी की प्राध्यापिका डॉ. मारिया नज्येशी जी साहित्यिक अनुवाद की कक्षा की चर्चा करती हैं –

"हम दशकों से एक अनुवाद कक्षा भी करते हैं। इसमें दो प्रोफ़ेसर बैठते हैं और भाषा की दृष्टि से छात्रों का साहित्यिक अनुवाद ठीक करते हैं। गौरव की बात है कि भीष्म साहनी और परसाई की कहानियों के अनुवाद का पूरा एक संग्रह तैयार हो गया है। हमारे लिए यह एक बहुत बड़ी सफलता है।"

हिंदी शिक्षक साहित्य के महत्त्व और प्रासंगिकता पर बल देते हुए नित्य नूतन विधियों से साहित्य पढ़ा रहे हैं। उनका प्रयास रहता है कि छात्र हिंदी साहित्य का पूरा आनंद उठाएँ। सूरीनाम हिंदी परिषद् की अध्यापिका श्रीमती कार्मेन सूयशस्वी देवी जानकी प्रवेशिका, परिचय और कोविद की कक्षाओं में कबीर के दोहों को गाकर सुनाती हैं। उनके निर्देशन में विद्यार्थी प्रेमचंद कृत 'बड़े घर की बेटी' जैसी रचनाओं का अभिनय करते हैं। अमेरिका के येल मकमिलन केंद्र में दक्षिण एशियाई अध्ययन

परिषद् की व्याख्याता डॉ. मानसी बजाज साहित्य को फ़िल्मों और विज्ञापनों से जोड़कर पढ़ाती हैं। यूक्रेन के शेव्चेंको कीव राष्ट्रीय विश्वविद्यालय के प्राध्यापक श्री यूरी बोत्वींकिन विद्यार्थियों को जीवित लेखकों का साक्षात्कार करने का प्रोत्साहन देते हैं। महात्मा गांधी संस्थान, मॉरीशस की वरिष्ठ व्याख्याता डॉ. अलका धनपत मॉरीशसीय हिंदी साहित्यकारों पर छात्रों से सामूहिक पावरपॉइंट प्रस्तुति करवाती हैं और अबू धाबी, संयुक्त अरब अमीरात के भारतीय विद्या भवन के हिंदी विभागाध्यक्ष श्री रवि शुक्ल साहित्यकार के वास्तविक जीवन और मानसिकता से साहित्य को जोड़कर पढ़ाते हैं। उनका कथन है –

"यदि आप कबीर पढ़ा रहे हैं, तो कक्षा में कबीर की प्रेम-कहानी, उनका विद्रोह और उनकी चिंता लेकर जाइए। प्रेमचंद के समय की चिंताओं के साथ प्रेमचंद को परोसिए। महादेवी वर्मा को उनके अपने जीवन की घटनाओं से जोड़िए। मैं दावे के साथ कहता हूँ कि विद्यार्थी आपके साथ जुड़ना शुरू करेंगे।"

कक्षा में रोचक ढंग से साहित्य की चर्चा करने के श्रेष्ठ परिणाम का संकेत डॉ. वेद प्रकाश इस प्रकार करते हैं –

"जब मैंने कक्षा में 'गुनाहों का देवता' की चर्चा की, तब मेरी छात्रा यूसुकी सासाकी ने कहा कि अगस्त और सितंबर में गर्मियों की छुट्टियाँ हैं, आप मुझे यह किताब दे दीजिएगा। मैं पूरी किताब पढ़ना चाहती हूँ।"

साहित्यिक कृतियों पर परिचर्चा, वाद-विवाद, संगोष्ठी, कार्यशाला, सम्मेलन, प्रतियोगिताएँ आदि अनेक पाठ्येतर कार्यक्रमों का आयोजन करके शिक्षक साहित्य के प्रति विद्यार्थियों की रुचि में वृद्धि करते हैं। इंडियन इंटरनेशनल स्कूल, बेनिन की हिंदी अध्यापिका श्रीमती ग्रीष्मा लुल्ला अपने व्यक्तिगत प्रयासों पर प्रकाश डालती हैं –

"कभी छात्रों को कक्षा से बाहर ले जाकर प्रकृति के समक्ष किसी वृक्ष के नीचे बैठकर अध्ययन कराना, छात्रों को नाटक के किरदार बताकर उनसे अभिनय करवाना। पुस्तकालय में विद्यमान नए कवियों या लेखकों के गीतों का अभ्यास करवाना, श्रवण या दृश्य सामग्री से लेखकों की पहचान करवाना, ये सभी कुछ ऐसे प्रयास हैं, जिनसे साहित्य के प्रति छात्रों की रुचि विकसित हुई है।"

विएना विश्वविद्यालय, ऑस्ट्रिया की वरिष्ठ व्याख्याता डॉ. अलका आत्रेय चूडाल धारावाहिकों के माध्यम से साहित्य में छात्रों की दिलचस्पी बढ़ाने का उदाहरण देती हैं –

"विद्यार्थियों ने मालगुडी की कहानियाँ पढ़ीं और टी.वी पर दिखाए गए धारावाहिकों में उनका अभिनय भी देखा। सत्र के अंत में विद्यार्थियों ने अपनी एक मौलिक कहानी लिखकर एक वीडियो फ़िल्म बनाई।"

उपर्युक्त विविध गतिविधियों से जुड़ने पर छात्रों का मन हिंदी साहित्य में लग जाता है और उनकी सृजनशीलता में भी वृद्धि होती है।

हिंदी साहित्य का अध्यापन वस्तुतः हिंदी के वैश्विक प्रसार से जुड़ा हुआ है। दोनों के अभिन्न संबंध को पहचानते हुए विश्व भर के हिंदी शिक्षक साहित्य के शिक्षण को सफल बनाने के अपने दायित्व का निष्ठापूर्वक निर्वाह कर रहे हैं। सूचना एवं प्रौद्योगिकी के प्रभाव से साहित्य के प्रति विलुप्त होती रुचि को पुनः जगाने की असीम शक्ति हिंदी शिक्षकों में है। इसी शक्ति के बल पर वे प्राचीनतम से लेकर नवीनतम साहित्य का गहन ज्ञान कराने और भिन्न स्तरों पर हिंदी साहित्य के अध्यापन और अध्ययन को बुलंदियों तक पहुँचाने में प्रयासरत हैं। उनके सतत प्रयासों से युवा पीढ़ी हिंदी साहित्यकारों को अच्छी तरह से पहचान रही है और साहित्य का उचित सम्मान कर रही है। हिंदी साहित्य के प्रति अभिरुचि बढ़ाने में शिक्षकों का योगदान सही अर्थों में नमनीय है।

**डॉ. माधुरी रामधारी**
**महासचिव**

# संपादकीय

## प्रवासी लेखन : शब्दों से आगे

कविवर अयोध्यासिंह उपाध्याय 'हरिऔध' की एक प्रसिद्ध कविता है - 'एक बूँद'। इस कविता की चंद पंक्तियाँ यहाँ उद्धृत हैं -

"ज्यों निकल कर बादलों की गोद से।
थी अभी एक बूँद कुछ आगे बढ़ी।।
सोचने फिर फिर यही जी में लगी।
आह क्यों घर छोड़कर मैं यों बढ़ी।।"

कविता के अंत में भ्रमणशील और कर्मशील मानव को लक्ष्य कर कवि बड़े ही सधे शब्दों में निष्कर्ष रूप में कहते हैं -

"लोग यों ही हैं झिझकते, सोचते।
जबकि उनको छोड़ना पड़ता है घर।।
किन्तु घर का छोड़ना अक्सर उन्हें।
बूँद लौं कुछ और ही देता है कर।।"

इतिहास साक्षी है कि प्रवासियों की यह नियति आज की असाधारण मानवीय प्रगति के क्रम में कई नए अध्याय जोड़ते चले गए। किसी भौगोलिक क्षेत्र के मूलवासियों का विश्व के किसी अन्य क्षेत्र में विभिन्न कारणों से अपना घर-बार छोड़कर प्रवास करना (डिस्पर्स्ड - विकीर्ण होना), प्रवासी (डायस्पोरा) कहलाता है।

साहित्य समाज का दर्पण होता है। आशय यह कि समाज में जो कुछ घट रहा है, वे सबके-सब, किसी भी जीवंत साहित्य-सृजन के लिए पौष्टिक खुराक की तरह होते हैं तथा वे उन्हें परिवेशमूलक व समसामयिक बनाने में भरसक मदद करते हैं। इस क्रम में यहाँ यह उल्लेख प्रासंगिक हो जाता है कि सामाजिक, सांस्कृतिक, राजनैतिक एवं भौगोलिक विविधताओं के बावजूद, मानव जाति की संस्कृति साझा होती है। इसमें कोई दो राय नहीं कि हमारे दुख-सुख, भाव-अभाव, भूख, गरीबी, असमानता, शोषण और संघर्ष और यहाँ तक कि प्रेम और स्नेह भी कमोबेश एक जैसे ही होते हैं। साझेपन की इस संस्कृति को जब मनुष्य अपनी रचनाधर्मिता की कूची से 'केनवस' पर उकेरता है, तब वह सृजन 'विश्व साहित्य' कहलाता है। प्रकारांतर से, प्रवासियों द्वारा सृजित साहित्यकर्म, अपनी थाती और साझी संस्कृति को लेकर शुरू से ही सजग रहा है। इस तरह के साहित्य संसार में आपको साझेपन का सरोकार और सत्व का तत्व आधिक्य के साथ दिखता है। परिणामस्वरूप, वैश्विक विश्व हिंदी साहित्य का

फलक बहुवर्णी, बहुआयामी और सर्वोपरि समग्र-संपूर्ण बन सका है।

विदित ही है कि गिरमिटिया प्रवासी मज़दूरों और उनके द्वारा येन-केन-प्रकारेण अर्जित संसार एक कठोर श्रम की बुनियाद पर निर्मित है। गिरमिटिया देशों के साहित्य में प्रायः दुर्धर्ष-संघर्ष की दारुण कहानी दर्ज है। हिंदी साहित्य का यह फलक, हमें 'राम गति देहु सुमति' का शाश्वत पाठ पढ़ाता है। गिरमिटिया साहित्य में भारतीयों के आगमन के वर्णन और उन पर हुए अत्याचार इतने लोमहर्षक हैं कि वे आम पाठकों के अंतर्मन को झकझोर कर रख देते हैं। कवि श्री आलोक श्रीवास्तव के शब्दों में :

"जो दिख रहा है सामने, वो दृश्य मात्र है,
लिखी रखी है पटकथा, मनुष्य पात्र है।
विचारशील मुग्ध हैं, कथित प्रसिद्धि पर,
विचित्र है समय, विवेक शून्यमात्र है।"

भुक्तभोगियों और सर्जकों-लेखकों के लिए इन्हें शब्दों में उतारना बेशक कठिन रहा होगा। निराशा और अवसाद के इस परिदृश्य में हौसला रखने की बात यहाँ यह थी कि प्रवासी साहित्य-संसार का यह उपन्यस्त फलक, भावी पीढ़ियों को आशा का दामन हरगिज़ नहीं छोड़ने का संदेश देता है। रामचरितमानस, गंगाजल, तुलसी, हनुमान चालीसा और सत्यार्थ प्रकाश के आध्यात्मिक संबल पर अपनी संस्कृति और अस्मिता को बचाए रखने का उनका यह मानवीय संघर्ष, हम सबको एक स्पष्ट संदेश देता है कि मुश्किलें चाहे कितनी ही बड़ी क्यों न हों, वह मानवीय जिजीविषा के सामने कदापि ठहर नहीं सकतीं। कविवर रामधारी सिंह दिनकर ने भी कहा है :

"सच है विपत्ति जब आती है, कायर को ही दहलाती है,
शूरवान नहीं विचलित होते, क्षण एक नहीं धीरज खोते,
काँटों में राह बनाते हैं, विघ्नों को गले लगाते हैं।"

गिरमिटिया साहित्य में अभिव्यक्त इन भारतवंशियों की चेतना का दस्तावेज़ीकरण सपाट-बयानी से कहीं आगे मनोवैज्ञानिक और समाज-शास्त्रीय विश्लेषण की दृष्टि से भी महत्त्वपूर्ण है। यहाँ के इतिहास के विविध प्रसंगों में, उन क्षणों को पुनर्जीवित कर उन्हें एक नए सिरे से व्याख्यायित करने का एक विशेष आग्रह है। रामायण, महाभारत आदि ग्रंथों के सात्विक संबल के साथ इन भारतीय वंशजों ने कठिन परिश्रम और जिजीविषा से पुनर्निर्माण के एक नए इतिहास की कालजयी भूमिका लिखी और बिना थके-रुके-हारे उसमें कई अभिनव आयाम जोड़े।

गिरमिटिया देशों में हिंदी लगभग दो सौ वर्षों से अपनी स्थानीय पहचान के साथ भारतीय अस्मिता की बात करती रही है। मॉरीशस की हिंदी, फ़िजी की हिंदी - फ़िजी बात, सूरीनाम और ब्रिटिश गुआना की सरनामी हिंदी, त्रिनिदाद की त्रिनी हिंदी और दक्षिण अफ़्रीका-नेटाल की नेटाली हिंदी - इन सबमें आपको ठेठ भारतीय भाषाओं का ठाठ ज़रूर दिखेगा।

गिरमिटिया साहित्य में आपको अपने सांस्कृतिक जड़ों की तलाश, नई पहचान के लिए संघर्ष, भाषाई और सांस्कृतिक समन्वय का चित्रण, प्रवास और विस्थापन का दर्द, प्रवासी जीवन का संघर्ष आदि-आदि के भाव सहज दिखेंगे। इसी प्रकार आगे की गिरमिटिया पीढ़ी के लेखकों ने आधुनिक गिरमिटिया साहित्य में परिवार और समुदाय के बीच संबंधों के चित्रण और अन्य समसामयिक मुद्दों को नई दृष्टि के साथ सृजित और संरक्षित करने का जो बीड़ा उठाया, वह भी तथैव प्रशंसनीय है। इन समेकित प्रयत्नों से हिंदी भाषा और साहित्य प्रेमी पाठक, प्रवासी जीवन की गहराई और उसकी विविधताओं को सही संदर्भों

के साथ जानने-समझने में बखूबी सफल रहे हैं।

प्रवासी भारतीय साहित्य की परिधि-विस्तार के क्रम में स्वेच्छा से गए, यहाँ उन भारतीयों का उल्लेख भी अपरिहार्य है, जो भौतिक-आर्थिक उन्नति के लिए अपनी माटी, अपना देश छोड़कर जहाँ भी गए, वे बस वहीं के होकर रह गए। साहित्य इनके द्वारा भी प्रभूत मात्रा में रचा जा रहा है। इस प्रवास के नेपथ्य में भौतिक चकाचौंध बेशक दिखाई पड़ती हो, पर इन चाकचिक्यों के अतिरिक्त, इसमें भी आपको भावनात्मक संवेदना और देश से बिछड़ने का दर्द ज़रूर दिखेगा। भारत से बाहर भारतीयों का यह वर्ग, बेशक विभिन्न भाषा-भाषी और विभिन्न प्रांतों से क्यों न हों, वे एक-दूसरे से हिंदुस्तानी या हिंदी के एकनिष्ठ सूत्र से जुड़े रहे हैं। यदि देखा जाए, तो यह हिंदी के प्रातिपदिकार्थ का एक सुखद विस्तार है, जो लोगों को भारत-भारतीयता, भाषा-संस्कृति के नाम पर एकजुट किए हुए है। इन प्रवासी भारतीयों के सृजन का संसार अपनी आगामी पीढ़ी को भारत की मुख्य धारा से जोड़ने और इस क्रम में उन्हें संस्कृति व संस्कार सीखने-सिखाने की एक उत्कंठा के साथ है। प्रवासी हिंदी साहित्य का यह परिदृश्य भी बेहद उज्ज्वल है, जो हिंदी साहित्य को निरंतर सबलित और संवर्धित कर रहा है और इसे विश्व के साहित्यिक परिदृश्य में प्रमुख स्थान दिला रहा है। इनकी रचनाएँ सामाजिक, सांस्कृतिक और व्यक्तिगत अनुभवों के स्याह-श्वेत पक्ष को मानवीय सरोकारों के साथ बखूबी उजागर करती हैं। साहित्य के पाठकों को इनसे प्रवासी जीवन के सौंदर्य और इनके ताने-बाने को जानने-समझने में मदद मिलती है। हिंदी के लिए यह बात यहाँ बेहद सुखद है कि इन दोनों ही स्तरों पर साहित्य-सृजन और हिंदी पठन-पाठन की स्थिति दिनानुदिन बेहतर होती जा रही है, जो 'भाषा गई तो संस्कृति गई' के बुनियादी मनोविज्ञान पर आधारित है।

समकालीन प्रवासी हिंदी साहित्य में कई महत्वपूर्ण प्रवृत्तियाँ दिखती हैं, जो प्रवासी जीवन के अनुभवों, संघर्षों और सांस्कृतिक विविधताओं को बखूबी उजागर करती हैं। इनमें, जहाँ एक ओर 'नॉस्टेल्जिया' और मातृभूमि का प्रेम है, वहीं दूसरी ओर आपको सांस्कृतिक द्वंद्व व पहचान की खोज तथा मातृभूमि और बचपन की यादों का प्रेमपूर्ण चित्रण भी दिखेगा, जो विदेश में रहने के दौरान इन प्रवासियों के द्वारा अक्सर महसूस किया जाता रहा है। प्रवासियों के सामाजिक और आर्थिक संघर्ष, नौकरी की असुरक्षा, भेदभाव और आर्थिक विषमताएँ, नई भाषा और सांस्कृतिक संदर्भ में संवाद की समस्याएँ, द्विभाषिकता-बहुभाषिकता, आधुनिक जीवन शैली, तकनीकी परिवर्तन और प्रवासी जीवन में उनकी भूमिका, इस साहित्य संसार के प्रायः मुख्य कथ्य रहे हैं।

समग्रता के क्रम में, यहाँ भारत के बाहर उस 'भारतीयेतर सृजनधर्मी वर्ग' की चर्चा भी अपेक्षित है, जिसने भारत की असाधारणता और विलक्षणता को अपनी शैली में पूरे औदार्य-भाव के साथ वर्णित किया है। इनमें रूस के सर्वश्री बरान्निकोव, युजीन पेत्रोविच चेलीशेव, प्रो. लिउडमिला खोख्लोवा, अनन्त सीथागूहिया, इटली की मारियो ला और तुर्बीयानी, बेल्जियम के फॉदर कामिल बुल्के, जापान के प्रो. तोमियो मिज़ोकामी, प्रो. अकीरा ताकाशाही, प्रो. फुजिई, प्रो. दोई, फ्रांस के निकोलस बलबीर, ऑस्ट्रेलिया के प्रो. जार्ज, डेनमार्क के प्रो. थीसन, चेक के डॉ. ओदोलेन स्मेकल, अमेरिका के डॉ. करीम शोमर, पोलैण्ड के बृस्की, हालैण्ड के पेशोकर, जर्मनी के लोठार लुत्से, चीन के प्रो. ची श्योन, प्रो. चिलहान, बुल्गारिया में प्रो. एमिल बोएव, श्रीमती वान्या गांचेवा, डॉ. बाल्या मारीनोना, डॉ. मिलेना ब्रातोएवा, आदि-आदि विद्वानों के नामों का स्मरण यहाँ अपरिहार्य हो जाता है। इन कलमकारों ने अपनी महनीय साहित्यिक कृतियों के माध्यम से अपने अनुभवों को बड़ी ही ईमानदारी से हम सबसे साझा किया है, जिनसे निस्संदेह हिंदी भाषा व साहित्य को एक अभिनव दृष्टिकोण, नया आयाम और एक अर्थपूर्ण गहराई मिली है।

इनके अतिरिक्त यदि देखा जाए, तो प्रवासी हिंदी साहित्य के प्रचार-प्रसार में अनुवाद की भूमिका भी कुछ कम महत्वपूर्ण

नहीं है। उल्लेखनीय है कि महात्मा गांधी की 'द स्टोरी ऑफ़ माय एक्सपेरिमेंट विद ट्रूथ- ऑटोबायोग्राफ़ी' प्रवासी लेखन में एक मील का पत्थर है, जिसका अनेक भारतीय और विदेशी भाषाओं में अनुवाद हुआ है। हम सब जानते ही हैं कि अपने प्रवास के अनुभवों को आधुनिक लेखकों द्वारा अंग्रेज़ी या अन्य भाषाओं के माध्यम से भी विभिन्न स्तरों पर अभिव्यक्त किया जाता रहा है, जो दरअसल सांस्कृतिक पहचान की खोज और विभिन्न संस्कृतियों के बीच द्वंद्व के साथ नई और पुरानी संस्कृति के बीच तालमेल बिठाने की एक खास कोशिश के साथ हमारे समक्ष उपस्थित हो रहा है। इन सृजनधर्मी प्रयासों ने भी प्रवासी भारतीय साहित्य-संसार को एक नया आयाम और एक नया क्षितिज प्रदान किया है। यह हम भाषा-प्रेमियों के लिए अत्यंत प्रसन्नता की बात है कि हिंदी साहित्य, विशेषकर प्रवासी साहित्य में विभिन्न स्तरों पर खूब बढ़-चढ़कर लिखा जा रहा है और सामाजिक सरोकारों के विभिन्न संदर्भों-प्रसंगों को पूरी संजीदगी से अपने 'केनवस' पर उकेरा जा रहा है।

हिंदी साहित्य की वैश्विक पहुँच एवं उपलब्धता को सुनिश्चित करने के क्रम में 'विश्व हिंदी साहित्य' का यह अंक आप सबके समक्ष प्रस्तुत है। इसके माध्यम से हमारा प्रयास वैश्विक स्तर पर एक-दूसरे को जानने-समझने के लिए एक मंच प्रदान करना है। निर्विवादतः इस अंक में समाविष्ट रचनाएँ, आत्म-विमर्शात्मक शैली में आप सबके वैविध्यपूर्ण अनुभवों को समेटे हुए हैं। आपकी सृजनधर्मिता न केवल साहित्य-सृजन की दृष्टि से अपितु सामाजिक तथा सांस्कृतिक दृष्टि से भी सर्वथा महनीय-श्लाघनीय है। राष्ट्रकवि रामधारी सिंह 'दिनकर' की इन पंक्तियों के साथ अपेक्षित है कि संवाद और सृजन की यह परंपरा अविरल चलती रहे :

"आगे वह लक्ष्य पुकार रहा, हाँकते हवा पर यान चलो।
सुरधनु पर धरते हुए चरण, मेघों पर गाते गान चलो।।"

मुझे आशा ही नहीं पूर्ण विश्वास है कि 'विश्व हिंदी सचिवालय' के इस प्रयास से हिंदी भाषा और साहित्य न केवल परिमाणात्मक दृष्टि से अपितु गुणात्मक दृष्टि से भी समृद्ध होगा और सुधी पाठकों को समाज के प्रति सरोकारी बनाने की दिशा में अपनी रचनात्मक भूमिका निभाएगा। साहित्य-सर्जकों और पाठकों का अभिनन्दन। अस्तु ! भवेत् शुभम्, भवेत् मंगलम् !!

शुभकामनाओं सहित,

**डॉ. शुभंकर मिश्र**
**उपमहासचिव**

# अनुक्रम

## लघुकथा


| | | | | |
|---|---|---|---|---|
| 1. | भारत | गिरगिट | शर्मिला चौहान | 1 |
| 2. | भारत | वज़न | सरिता सुराणा | 1 |
| 3. | भारत | अदृश्य योद्धा | सुधा भार्गव | 2 |
| 4. | भारत | ठग्गुलाल का ठेला | देवेन्द्रराज सुथार | 3 |
| 5. | भारत | उम्मीद | राम मूरत 'राही' | 3 |
| 6. | भारत | यक्ष प्रश्न | सपना चन्द्रा | 4 |
| 7. | भारत | अवसाद | चारुमित्रा | 4 |
| 8. | भारत | भाग्यशाली | मीरा जैन | 5 |
| 9. | भारत | दो बूँद गंगाजल | डॉ. जगदीश पन्त 'कुमुद' | 5 |
| 10. | भारत | जो भूलना चाहिए | संतोष सुपेकर | 6 |
| 11. | भारत | रुतबा | विवेक श्रीवास्तव | 6 |
| 12. | भारत | ईर्ष्या | राजेन्द्र परदेशी | 7 |
| 13. | ऑस्ट्रेलिया | कारण | हरिहर झा | 8 |
| 14. | स्पेन | अनुभूति | पूजा अनिल | 8 |
| 15. | मॉरीशस | प्रशिक्षण | डॉ. अलका धनपत | 9 |
| 16. | बहरीन | शेरू : मेरा दोस्त, मेरा रक्षक | ममता तिवारी | 10 |


## कहानी


| | | | | |
|---|---|---|---|---|
| 17. | भारत | उम्र की चादर | आशा शर्मा | 12 |
| 18. | भारत | सदा सुहागन | शोभा रानी गोयल | 16 |
| 19. | भारत | स्नेह सरिता सूख गई | डॉ. जयंती प्रसाद नौटियाल | 22 |
| 20. | भारत | एक और अहिल्या | नंदन पंडित | 37 |
| 21. | भारत | रामू मसखरा | रंगनाथ द्विवेदी | 42 |
| 22. | ऑस्ट्रेलिया | क्षमा याचना | रेखा राजवंशी | 45 |
| 23. | कनाडा | तागा | डॉ. हंसा दीप | 50 |

## कविता


| | | | | |
|---|---|---|---|---|
| 24. | भारत | मैं शस्त्र नहीं उठाऊँगा | अमित कुमार झा | 54 |
| 25. | भारत | मैं बिहार हूँ | नीरज कुमार आज़ाद | 55 |
| 26. | भारत | एक युद्ध | अरुणिमा बहादुर खरे 'वैदेही' | 56 |
| 27. | भारत | पुतला और मज़दूर | जितेंद्र कुमार | 57 |
| 28. | भारत | आस | अनिकेत गौतम | 57 |
| 29. | भारत | नेक काम है | विक्रम कुमार | 58 |
| 30. | भारत | सोच लो तुम्हें क्या चुनना है | प्रतिभा चौहान | 58 |
| 31. | भारत | तुम्हारे लिए | डॉ. विजयानन्द | 59 |
| 32. | भारत | पहाड़ उदास है | डॉ. गंगा प्रसाद शर्मा 'गुणशेखर' | 60 |
| 33. | भारत | ये वसंत बड़ा उधमी है | व्यग्र पाण्डे | 60 |
| 34. | भारत | एकांत | दिविक रमेश | 61 |
| 35. | भारत | एक दिन | डॉ. आरती रानी प्रजापति | 62 |
| 36. | भारत | गिरमिटिया वंशज | तरुण घवाना | 62 |
| 37. | मॉरीशस | दीप मेरे | गोवर्धन सिंह फ़ौदार 'सच्चिदानन्द' | 63 |
| 38. | मॉरीशस | बलात्कार | श्रीमती केशनी फ़ेकू | 64 |
| 39. | ऑस्ट्रेलिया | बोल रहे हैं वन्य प्रदेश | डॉ. कौशल किशोर श्रीवास्तव | 65 |
| 40. | शिकागो | माँ | शुभ्रा ओझा | 66 |
| 41. | बहरीन | मैं मॉरीशस हूँ | राम मणि तिवारी 'रमन' | 66 |
| 42. | सिंगापुर | स्त्री | विनोद कुमार दुबे | 67 |


## दोहा/हाइकु


| | | | | |
|---|---|---|---|---|
| 43. | भारत | रोम-रोम में हैं बसे, सौरभ मेरे राम | डॉ. सत्यवान सौरभ | 69 |
| 44. | भारत | हाइकु | डॉ. नीना छिब्बर | 70 |
| 45. | भारत | तिनके | हलीम आईना | 72 |


## गीत


| | | | | |
|---|---|---|---|---|
| 46. | भारत | विश्ववाणी | संजीव वर्मा 'सलिल' | 73 |
| 47. | सिंगापुर | नया मानव | आदिति अरोरा | 73 |

## गज़ल


| | | | | |
|---|---|---|---|---|
| 48. | भारत | घोर अंधेरा इस बस्ती में | सीमा सिकंदर | 74 |
| 49. | भारत | गज़ल | डॉ. कविता विकास | 74 |
| 50. | भारत | गज़ल | लक्ष्मीकांत मुकुल | 74 |
| 51. | भारत | गज़ल | नवीन माथुर पंचोली | 75 |
| 52. | अमेरिका | गज़ल | विनीता तिवारी | 75 |


## नाटक


| | | | | |
|---|---|---|---|---|
| 53. | भारत | कालचक्र | जय प्रकाश सिंह | 76 |
| 54. | मॉरीशस | नशा मुक्त मॉरीशस : एक नई दिशा, एक नया संकल्प | आकाश आर्यनाईक | 82 |
| 55. | नीदरलैंड | पुस्तक की आत्महत्या | डॉ. ऋतु शर्मा ननन पांडेय | 87 |
| 56. | फ़िजी | सपनों की उड़ान | सुभाषिनी एल. कुमार | 93 |


## निबंध


| | | | | |
|---|---|---|---|---|
| 57. | भारत | जीवन के अंतिम पड़ाव पर पहुँचने के बाद पलायन नहीं, सहजता श्रेयस्कर है | सीताराम गुप्ता | 100 |
| 58. | भारत | सोशल मीडिया के कारण हिंदी साहित्य का लोकतांत्रीकरण | विनोद विप्लव | 103 |
| 59. | भारत | महिलाओं के सशक्तिकरण से ही विकसित होगा भारत | नृपेन्द्र अभिषेक नृप | 106 |
| 60. | भारत | डिजिटल मानवाधिकारों का हनन है डीपफ़ेक | योगेश कुमार गोयल | 110 |
| 61. | मॉरीशस | परीक्षा या परेशानी | श्रीमती रेशमी बत्तू | 112 |


## संस्मरण


| | | | | |
|---|---|---|---|---|
| 62. | भारत | कहाँ गए वे दिन | उषा महाजन | 115 |
| 63. | अमेरिका | अतिथि देवो भव | शशि पाधा | 119 |
| 64. | अमेरिका | गुदगुदी | प्रीति गोविंदराज | 121 |

## यात्रावृत्तांत


| | | | | |
|---|---|---|---|---|
| 65. | भारत | फ़ौजी डिब्बे में मेरी रेल यात्रा | मो. आफताब आलम | 124 |
| 66. | भारत | सूरीनाम नहीं न्यूयॉर्क में दी गयी दूसरी आहुति | सुरेश कुमार श्रीचंदानी | 128 |
| 67. | भारत | भारत की बात बताती हूँ | डॉ. सुधा जगदीश गुप्त | 132 |
| 68. | भारत | मॉरीशस की साहित्यिक यात्रा और सखियों की मस्ती | डॉ. अंजना सिंह सेंगर | 136 |
| 69. | भारत | अण्डमान - दुख और गर्व से भरी एक यादगार यात्रा | डॉ. काजल पाण्डे | 138 |


## व्यंग्य


| | | | | |
|---|---|---|---|---|
| 70. | भारत | चाटुकारिता व चापलूसी | वसीम अहमद नगरामी | 141 |
| 71. | भारत | इम्तहानी रुत के मज़े | हरीश कुमार 'अमित' | 142 |
| 72. | भारत | इसका जूता उसके सर | रेखा शाह आरबी | 143 |
| 73. | कनाडा | कहते हैं मुझको हवा हवाई | धर्मपाल महेंद्र जैन | 144 |


## साक्षात्कार


| | | | | |
|---|---|---|---|---|
| 74. | भारत | हिंदी की स्थिति विदेशों में (नीदरलैंड व सूरीनाम के विशेष संदर्भ में) | डॉ. आरती पाठक | 148 |
| 75. | मॉरीशस | एक निःस्वार्थ हिंदी सेवी : श्रीमान बिसुनदयाल रामफल | डॉ. सोमदत्त काशीनाथ | 152 |
| 76. | क़तर | वरिष्ठ विज्ञान लेखक देवेंद्र मेवाड़ी जी का साक्षात्कार | शालिनी वर्मा | 154 |
| 77. | न्यूज़ीलैंड | उदयभानु हंस से बातचीत | रोहित कुमार 'हैप्पी' | 160 |


## समीक्षा


| | | | | |
|---|---|---|---|---|
| 78. | भारत | शब्द संस्कृति के मेले में – डॉ. सूर्यनारायण रणसुभे | रमा बुलबुले-नवले | 163 |
| 79. | भारत | 'मगध' की कविताओं में सत्ता प्रतिरोध का स्वर | विकास कुमार यादव | 167 |
| 80. | भारत | बाल मन और स्त्री मन को बाँचती कहानियों का संग्रह 'सीट न. 49' | नीतू कुमारी | 171 |
| 81. | भारत | खुश देश का सफ़र | डॉ. कमला नरवरिया | 173 |
| 82. | भारत | कहावतों के अद्‌भुत संसार में छिपे स्वास्थ्य के सूत्र | डॉ. कमलेश गोगिया | 175 |

# लेख


| | | | | |
|---|---|---|---|---|
| 83. | भारत | हिंदी अध्ययन-अध्यापन की संवाहक : लर्न हिंदी एंड हिंदी फ़िल्म सोंग्स | डॉ. अंजना संधीर | 177 |
| 84. | भारत | व्यंग्य का तटस्थ सर्जक : विषपायी परसाई | डॉ. किरण झा | 181 |
| 85. | भारत | भारतवर्ष में बैंकिंग का उद्देश्य – समाज-कल्याण बनाम लाभार्जन | श्री ज्योति रंजन निधि | 185 |
| 86. | भारत | पितृसत्ता और स्त्री का संघर्ष | मंजु कुमारी | 188 |

# गिरगिट

**शर्मिला चौहान**
**महाराष्ट्र, भारत**

आज मुरली को काम करते एक माह हो गया। पगार मिलेगी, तो शाम को घर चला जाएगा और एक दिन रहकर वापस आ जाएगा, घर जाने की कल्पना से मानो उसके हाथों में दुगुनी शक्ति आ गई।

तभी ढाबे वाले मालिक ने आकर सबको तनख्वाह दी। उसने पाँच सौ का नोट थमा दिया।

"मालिक, खाने का एक समय का कुछ पैसा मिलेगा ?" पंद्रह साल के बच्चे ने आशाभरी निगाहें जमा दीं।

"काहे के पैसे बे!" मालिक दहाड़ा।

"मालिक, आपने बोला था कि जो दोनों टाइम खाएगा, उसको सिर्फ़ पगार मिलेगी। जो एक जून खाएगा उसको दिन के हिसाब से दो रुपए ज्यादा पैसा मिलेगा।" मुरली एक ही साँस में कह गया, " मैंने एक ही टाइम खाया है मालिक, पूरा महीना। घर के लिए ज्यादा पैसे जमा करना था न !"

"कब बोला रे मैंने कि खाना का पैसा दूँगा। बोला था क्या? बताओ ! अब मेरा मुँह देख रहे हो !" उसने अपनी बड़ी-बड़ी आँखें चारों तरफ़ घुमाईं और बाकी कामवाले चुपचाप अपने पैसे संभालकर काम पर लग गए।

"पचास रुपए ही दे दो मालिक।" रूआँसा मुरली बोला।

"जो दिया है लेकर जा, ऐसी नौटंकी करनी हो, तो वापस मत आना। तेरे जैसे कई मिलते हैं।" कहता हुआ पान की पीक थूकता वह बाहर निकल गया।

मुरली कभी उसे, तो कभी अपने पेट पर पड़ी उन लकीरों को देख रहा था, जो महीना भर गीला कपड़ा बाँधने से पड़ गई थीं।

**sharmilachouhan.27@gmail.com**

# वज़न

**सरिता सुराणा**
**तेलंगाना, भारत**

शर्मा जी को रिटायरमेंट के बाद पेंशन ऑफ़िस के चक्कर लगाते-लगाते छः महीने बीत गए थे, लेकिन उनकी फ़ाइल आगे बढ़ने की जगह वहीं पर पड़ी धूल खा रही थी। शुगर और बीपी के मरीज़ तो वे पहले ही थे, अब हार्ट में भी तकलीफ़ रहने लगी थी। निस्संतान थे, इसलिए पति-पत्नी ही दोनों एक-दूसरे का सहारा थे। लेकिन अब धीरे-धीरे जमा पूंजी और हिम्मत दोनों ही जवाब देने लगे थे और जल्दी पेंशन मिलने की कोई आशा नज़र नहीं आ रही थी। उन्होंने ज़िंदगी भर ईमानदारी से काम किया था, कभी किसी से रिश्वत नहीं ली थी, लेकिन अब उन्हें लगने लगा था कि बिना रिश्वत दिए, उनका काम नहीं होने वाला है और उनके पास इतना पैसा है नहीं कि वे रिश्वत देकर अपना काम करवा सकें।

अचानक उन्हें बचपन में पढ़ा हुआ हरिशंकर परसाई का व्यंग्य 'भोलाराम का जीव' याद आया, जिसमें सरकारी कर्मचारी द्वारा फ़ाइल पर वज़न रखने की बात कही गई थी और नारद जी ने अपनी वीणा उस पर रख दी थी। उनकी इतनी सामर्थ्य तो थी नहीं कि भारी-भरकम वज़न रख सकें, इसलिए सोमवार के दिन जब वे पेंशन ऑफ़िस गए, तब अपनी दवाइयों का डिब्बा साथ लेकर गए। अपनी बारी आते ही उन्होंने बड़े बाबू को सलाम किया। बड़े बाबू ने उसका कोई जबाब नहीं दिया। वे उल्टा उन्हें फिर कभी आने के लिए कहकर टरकाने लगे। लेकिन आज वे भी ठानकर आए थे, तो वहीं बैठ गए। उन्हें वहाँ बैठा हुआ देखकर बड़े बाबू को और गुस्सा आने लगा। उन्हें बुलाकर फिर दो-चार बातें सुना दीं।

अब शर्मा जी का धैर्य जवाब दे चुका था, उन्होंने आखिर पूछ ही लिया, 'आप चाहते क्या हैं?'

बड़े बाबू ने कुटिल मुस्कान के साथ कहा - 'वज़न'।

शर्मा जी ने तुरंत अपने साथ लाया हुआ दवाइयों का डिब्बा उनकी टेबल पर रख दिया। बड़े बाबू तमतमाए और बोले - 'ये क्या है?'

'वज़न'

'ये मेरे किस काम की है?'

'बहुत काम की है। आप भी छः महीने बाद रिटायर होने वाले हैं, तब आपको भी मेरी तरह पेंशन के लिए ऐसे ही चक्कर लगाने पड़ेंगे। तब आपको इनकी ज़रूरत अवश्य होगी।'

अब बड़े बाबू का माथा ठनका। उन्हें अपना भविष्य अन्धकारपूर्ण नज़र आने लगा, उन्होंने अगले ही क्षण फ़ाइल पर हस्ताक्षर कर दिए।

**sarritasurana@gmail.com**

# अदृश्य योद्धा

**सुधा भार्गव**
**बैंगलोर, भारत**

भरी दोपहरी में एक औरत अमरूदों  का टोकरा लिए बैठी हुई थी। चेहरे से उदासी टपक रही थी और बदन से पसीना।

उसके पास से गुज़रती गुलब्बो हाथ नचाती मोटी आवाज़ में बोली - "अरी क्या हुआ! क्यों टप-टप आँसू बहा रही है। लगा तेरे आँसू बड़े सस्ते हैं।"

"सुबह से यहाँ बैठी हूँ। मुश्किल से तीन-चार अमरूद ही बिके। किस मुँह से घर जाऊँ! बच्चों के पिचके पेट और मुरझाए चेहरे देखे ना जाएँ।" उसकी आँखें नम थीं।

"ला मुझे दे बहना अपना टोकरा।"

गुलब्बो तीर की तरह निकल गई। निकली तो अमरूद बेचने के लिए थी, मगर एक बच्चे को रोता देख उसकी ममता पंख पसार बैठी। द्रवित हृदय से उसकी हथेली पर एक अमरूद रख दिया। अब तो वहाँ बच्चों की लाइन लग गई। कोहराम मच गया .. पहले मैं...पहले मैं। कुछ मिनटों में ही सारा टोकरा खाली हो गया। बच्चों को खाता देख उसे लगा जैसे अमरूदों के दाम वसूल हो गए हैं। मस्तानी चाल से टोकरे को हिलाते-डुलाते अमरूद वाली के पास आ पहुँची। अमरूद वाली तो खुशी से चिल्ला उठी -

"अरे इतनी जल्दी सारे अमरूद बेच दिए। कितने रुपए मिले।"

"ले अपने अमरूदों के पैसे।"

उसने अपनी अंटी से 200 रुपए निकालकर अमरूद वाली की हथेली पर रख दिए। जो दिन भर की उसकी कमाई थी। तभी गुलब्बो की हथेली पर दो बूँदें टपक पड़ीं। जिन्हें उसने अपनी मुट्ठी में कसकर भींच लिया।

बोली, "अरे  फिर से आँसू की टपकन! अब क्या हुआ!"

"तूने मेरी पीड़ा समझी, मदद की। यह सोचकर मेरा दिल भर आया। इस नेकी का बदला में कैसे चुकाऊँ!"

"नेकी का फल तो मुझे मिल गया।"

"क्या मिला?"

"तेरे कीमती आँसू! इतना प्यार करने वाला तो मुझे इस जन्म में अभी तक कोई न मिला। समाज का कोढ़ जो हूँ।"

**subharga@gmail.com**

# ठग्गुलाल का ठेला

**देवेन्द्रराज सुथार**
**राजस्थान, भारत**

गाँव में पाँच साल बाद फिर चुनावी मेला लगा। हम भी सपरिवार मेला देखने गए। मेले में तरह-तरह की दुकानें सजी थीं। लेकिन निगाह एक ठेले पर आकर ठहर गई। ठेले पर बड़े-बड़े अक्षरों में लिखा था - 'मुफ़्त की रेवड़ी।' नीचे छोटे अक्षरों में लिखा था- 'खाइए और पैसों को भूल जाइए, वह आपके प्रपौत्र के प्रपौत्र से लिए जाएँगे।' हमने इस लपलपाते ऑफ़र को हाथ से नहीं जाने दिया और दस-बारह रेवड़ियों की प्लेटें चट कर डालीं। पेट ने जवाब दिया, तो जैसे-तैसे कर उसे मना लिया और तेरहवीं-चौदहवीं प्लेट पर धावा बोला। हम जैसे ही ठेले से जाने लगे, तो ठेले वाले ने कहा - 'रुकिए, कहाँ चल दिए, पैसे तो चुकाइए।' मैंने एक लंबी डकार लेते हुए कहा - 'कैसे पैसे? साफ़-साफ़ तो ठेले पर लिखा है कि पैसे प्रपौत्र के प्रपौत्र से लिए जाएँगे। ...तो मैं क्यों दूँ?' ठेले वाला ठनकते हुए बोला - 'आपके खाने के पैसे भला कौन माँग रहा है, मैं तो आपके दादा के दादा ने जो कभी इस ठेले पर आकर 50-60 रेवड़ियों की प्लेटें उड़ाई थीं, उसके पैसे माँग रहा हूँ। उस समय भी हमारे ठेले पर यह स्कीम चालू थी। कायदे से उनके पैसे चुकाइए और चलते बनिए।' ठेले वाले को न चाहते हुए भी पैसे देने पड़े। ठेले पर लगा नेताजी ठग्गुलाल का पोस्टर कुटिल मुस्कान के साथ मुझ पर हँस रहा था।

**devendrakavi1@gmail.com**

# उम्मीद

**राम मूरत 'राही'**
**इंदौर, भारत**

शाम के समय जब भी मैं समुद्र के किनारे टहलने जाता, तब वहाँ एक सात-आठ वर्षीय बालक को अकेला बैठा रेत पर कुछ लिखते या घर बनाते देखता था।

एक बार मैंने उत्सुकतावश उससे पूछा - "बेटा, तुम यहाँ क्या कर रहे हो ?"

"खेल रहा हूँ।" उसने मेरी तरफ़ एक बार देखा और फिर खेलते हुए जवाब दिया।

"खेल रहे हो, क्या तुम्हारा कोई दोस्त नहीं है ?" मैंने उसके पास बैठते हुए पूछा।

"नहीं है।" उसने संक्षिप्त-सा उत्तर दिया।

"फिर यहाँ अकेले कैसे खेलते हो?"

"मैं अकेले कहाँ हूँ ? मेरे साथ मेरा दोस्त समुद्र भी तो है।" उसने भोलेपन से जवाब दिया।

"समुद्र तुम्हारा दोस्त! यह भला कैसे?" मैंने उत्सुकता से पूछा।

"मैंने समुद्र को अपना दोस्त बना लिया है और जब भी खेलने का मन करता है, तब इसके पास चला आता हूँ।"

"लेकिन तुम समुद्र के साथ खेलते कैसे हो?" मैंने उत्सुकतावश पूछा।

उसने मेरी तरफ़ मुखातिब होकर जवाब दिया - "मैं यहाँ रेत पर कभी अपना नाम, तो कभी इसका नाम लिख देता हूँ, तो कभी घर बना देता हूँ। तब समुद्र उन्हें लहरों से मिटाकर जीत जाता है। लेकिन मैंने भी हार नहीं मानी है। एक-न-एक दिन ऐसा भी आएगा, जब मेरा लिखा और बनाया घर समुद्र मिटा नहीं पायेगा, तब मेरी जीत होगी।"

इसी उम्मीद के साथ वह फिर रेत का घर बनाने में लग गया।

**rammooratrahi@gmail.com**

# यक्ष प्रश्न

**सपना चन्द्रा**
**बिहार, भारत**

जन्माष्टमी के अवसर पर दही हांडी प्रतियोगता का आयोजन किया जा रहा है।

जो भी प्रतिभागी भाग लेना चाहें, अपने नाम जल्द-से-जल्द लिखवा दें।

हांडी फोड़ने पर पाँच सौ रुपए का इनाम और दही-मलाई से भरी हांडी उपहार स्वरूप दी जाएगी।

बारह वर्ष का बालक रमेश बड़ी ऊहापोह में पड़ा था, 'क्यूँ न मैं भी प्रतियोगता में अपना नाम लिखवा दूँ।'

मुश्किल से घर में रोटी डूबोकर खाने के लिए दूध की चाय कभी नसीब हो जाती थी, दही-मलाई तो दूर की बात थी।

कैसी होती है ये मलाई, जो ईश्वर को भी चोरी करने को विवश कर देती थी।

मैं भी अगर स्वाद चख पाता..

सोचते हुए भी मन धिक्कारता है कि तेरी औकात है क्या?

अपने अंतर्द्वंद्व से लड़ता हुआ मैं प्रतियोगता में भाग लेकर जीतना चाहता हूँ।

तभी उसका स्वाद चखना चाहता हूँ। इसमें ग्लानि कैसी?

रमेश जा पहुँचा अपना नाम लिखाने।

आयोजक - क्या बात है?

रमेश - मुझे भाग लेना है इसमें।

आयोजक - अरे पहले अपनी ओर देख ले, तब सपने देखना..हऽऽ..। तेरे बस की बात नहीं है, जा..तू।

प्रतियोगता में हांडी फोड़ी जा रही थी और जीतने वाले को इनाम दिया जा रहा था।

रमेश अपनी तीव्र लालसा पर काबू नहीं कर पाया। चुपके से मलाई की हांडी में हाथ लगाया ही था कि किसी ने देखकर "माखन चोर, माखन चोर" हल्ला कर दिया।

बेचारा पकड़ा गया, मलाई होठों को तो नहीं छू पाई, पर अँगुली ने उसे माखन चोर बना दिया।

क्यूँ रे रमेश, चोरी करके खाना चाहता था?

नहीं, मैं तो प्रतियोगता जीतना चाहता था..पर आपने.ऽऽ

जुबान लड़ाता है..चोर कहीं का।

तुझे इसकी सज़ा मिलेगी।

रमेश - (रोते हुए) संसार के मालिक ने भी तो माखन चुराई थी, उन्हें सज़ा हुई थी क्या?

**sapnachandra854@gmail.com**

# अवसाद

**चारुमित्रा**
**रांची, भारत**

बड़ी जेठानी ममता दीदी का फ़ोन आया।

"कैसी हो? "मैंने कहा" मैं ठीक हूँ और आप?"

उनकी आवाज़ फ़ोन पर खुशी से गूँज रही थी।

"सुनो! मेरी सरकारी टीचर में बहाली हो गई है।

पहली पोस्टिंग अररिया में है। मैं अब माँ-बाबूजी को अपने साथ नहीं रख पाऊँगी। तुम्हें ही उन्हें रखना होगा। कहीं यह सुनकर तुम्हें साँप तो नहीं सूँघ गया।" उन्होंने व्यंग्य में हँसते हुए कहा।

मैं तो कहती हूँ - "तुम भी कोई नौकरी कर लो। तुम्हें भी छुटकारा मिल जाएगा। "

मैंने फ़ोन काट दिया। बगल में बैठी बेटी समाचार-पत्र में लेख पढ़ रही थी।

'माता-पिता, सास-ससुर को अपने साथ रखने से अवसाद कभी नहीं होता है।'

**charu79mitra@gmail.com**

# भाग्यशाली

**मीरा जैन**
**मध्यप्रदेश, भारत**

ड्राइवर के गेट खोलते ही प्रखर जैसे ही कार से उतरा उसे देखते ही वहाँ खड़ा नवल बोल पड़ा -

"अच्छा हुआ प्रखर! जो तुम कॉलिज आ गए। आज सर अर्थशास्त्र का बहुत ही महत्त्वपूर्ण पाठ समझाने वाले हैं।"

प्रखर बिल्कुल बेपरवाही से जवाब देते हुए बोला -

"देख नवल! मेरी पढ़ने में ज़रा भी रुचि नहीं है। वह तो डिग्री लेनी है, इसलिए कभी-कभार कॉलिज चला आता हूँ। तुझे तो पता ही है, मेरे पापा बहुत बड़े उद्योगपति और मम्मा नामी कलाकार हैं। जब से पैदा हुआ, तब से गाड़ी-घोड़े, नौकर-चाकर का हुज़ूम हर वक्त मेरी चारों ओर मौजूद रहता है। इस कॉलिज में तो क्या, इस शहर में भी कोई नहीं, जो मेरा मुकाबला कर सके। तुम बहुत भाग्यशाली हो, जो तुम्हें मुझ जैसा दोस्त नसीब हुआ।"

नवल ने गंभीर होकर जवाब दिया -

"हाँ प्रखर! मै तुमसे ज्यादा किस्मत वाला हूँ, क्योंकि मेरी परवरिश मेरी माँ के हाथों हुई है।"

**jainmeera02@gmail.com**

# दो बूँद गंगाजल

**डॉ. जगदीश पन्त 'कुमुद'**
**उत्तराखंड, भारत**

पांडे जी के पार्थिव शरीर को आँगन में रख दिया गया था। रिश्तेदारों और आस-पड़ोस के लोगों के आने का क्रम जारी था। अब अर्थी तैयार करने का कार्य भी शुरू हो गया था। तभी उसी शहर में रहने वाली उनकी विवाहिता पुत्री ने ज़ोर-ज़ोर से दहाड़ें मारकर रोते हुए, वहाँ अपनी उपस्थिति दर्ज कराई। पिता जी के शव से लिपटकर रोते हुए कहने लगी – पिता जी तुमने तो ज़रा-सा सेवा का मौका भी नहीं दिया। बोलो ना पिता जी... तुम कुछ बोल क्यूँ नहीं रहे... हमें अकेला छोड़कर कहाँ चले गए... आस-पास की महिलाओं ने बमुश्किल उसे समझा-बुझाकर शांत कराया। पांडे जी का बेटा आशीष पिता जी वाले कमरे में गुमसुम खड़ा था और खिड़की से बाहर अपनी दीदी को बिलखते हुए देख रहा था। अब शव के मुँह में गंगाजल डालने की रस्म अदायगी की जाने लगी। आशीष को भी इस कार्य के लिए बुलाया जाने लगा, लेकिन पिता जी की मौत के सदमे से जड़वत हो गए आशीष की आँखों में पिता जी के साथ बिताए हुए समय की यादें तैर रही थीं। चाहकर भी उसके कदम कमरे से बाहर की ओर नहीं बढ़ रहे थे। तभी बाहर कुछ लोग दबी ज़ुबान से कहने भी लगे – बताओ कैसा बेटा है? बाप के मुँह में दो बूँद गंगाजल डालने को भी नहीं आ रहा है और बेटी को देखो बेचारी बाप के गम में मरी जा रही है।

उधर आशीष की आँखों के आँसू भी सूख गए थे, बाहर का दृश्य देखकर उसका मन और दुखी हो गया। वह सोचने लगा कैसे-कैसे लोग हैं? पिता जी को दो बार दिल का दौरा पड़ चुका था और कई दिनों तक वे अस्पताल में भर्ती भी रहे थे, तब तो दीदी को एक बार आने का भी समय नहीं मिला था और आज ये सब ढोंग ...छि !

दूर कहीं से भजन की तेज़ आवाज़ वहाँ तक सुनाई देने लगी थी... कभी प्यासे को पानी पिलाया नहीं, बाद अमृत पिलाने से क्या फ़ायदा।

**jpkumud@gmail.com**

# जो भूलना चाहिए

**सन्तोष सुपेकर**
**मध्य प्रदेश, भारत**

"ये क्या ?" मैं उन बुज़ुर्ग दंपति के रसोईघर में प्रविष्ट हुआ, तो पूछ बैठा, "आपने किचन में बिस्तर लगा रखा है ?"

"हाँ भाई, मैं पैरों से लाचार आदमी, अब यहीं लेटता हूँ । तुम्हारी आंटी खाना बनाते-बनाते, काम करते-करते कभी गैस का बटन बंद करना भूल जाती है, तो कभी चालू करना ही भूल जाती है, "कहते हुए वे हँस पड़े "और खाना कच्चा ही रखा रह जाता है। तो मैं यहाँ लेटा-लेटा सब देखता रहता हूँ और इसे याद दिलाता रहता हूँ।"

"ओह! और आपके बच्चे?"

"हैं न, दो हैं।" कहते हुए उदास हो उठे वे, "दोनों बहुत अमीर हैं, इसी शहर में रहते हैं।" उनकी हँसी अब गायब हो चुकी थी और दर्द बाहर आने लगा था, "दोनों बेटों को याद कर ये रोती रहती है और वे हैं कि भूलकर भी यहाँ नहीं आते। रत्ना तो भुलक्कड़ है। लेकिन जो भूलना चाहिए, वह नहीं भूलती। काश, हम दोनों भूल पाते कि हमारे बच्चे भी हैं!"

**santoshsupekar29@gmail.com**

# रुतबा

**विवेक श्रीवास्तव**
**राजस्थान, भारत**

मसूरी की वादियों में कैम्पटी फ़ाल्स का खूबसूरत नज़ारा हनीमून का आनंद बढ़ा रहा था। अभी शादी को एक हफ़्ता ही हुआ था। पत्नी के रूप में पहली बार किसी लड़की का संग उसके मन में उल्लास भर रहा था।

ड्राइवर बहुत कुशल था। बैरिकेड्स पर भी सब जगह चमचमाती हुई एम्बेसडर गाड़ी को साइड मिल रही थी। शायद उसकी जानकारी हो। हरिद्वार, ऋषिकेश में भी एकदम गंगा किनारे वी.आई.पी पार्किंग मिली।

शाम को मैंने उसे हमारी यात्रा को सुगम बनाने के लिए धन्यवाद दिया। उसने पूरी शिष्टता से हाथ जोड़ दिया। बोला, "साहब आप लोगों के ऑपरेशन्स में कई बार मैं भी गया हूँ।" मुझे अजीब-सा लगा, "मेरी नौकरी के बारे में इसे कैसे पता ?" मेरे चेहरे के भाव पढ़ते हुए बोला...

"आप जब कैमरे की रील लेने उतरे थे, तब मैंने मैडम से पूछा था। तभी पता चला कि आप एन्टी करप्शन में हैं। यह जानने पर मैंने यह प्लेट लगा ली थी", **'ऑन गवर्नमेंट ड्यूटी'** की लाल प्लेट गाड़ी के आगे से उतारते हुए वह बोला, "इसीलिए हमें कहीं दिक्कत नहीं हुई।" सरकारी ड्यूटी और हनीमून साथ-साथ....

मैं शर्म से जूते के अंदर अँगूठे को गाड़े जा रहा था। उधर प्रीति पति के रुतबे को देखकर खुश हो रही थी।

**shrivastava1966@gmail.com**

# ईर्ष्या

**राजेन्द्र परदेसी**
**उत्तर प्रदेश, भारत**

रोज़ की तरह खेत से लौटते समय शाम को मंगरूवा ठाकुर भूलासिंह की हवेली की ओर चला गया। दालान में पैर रखते ही 'पाँव लागी' बोला और चिलम की आग सुलगाने लगा, जो अब बुझने लगी थी, फिर धीमी आवाज़ में बोला - 'सरकार आपने कुछ सुना?'

'क्या बात है?' ठाकुर शायद अर्द्धनिद्रा में थे। गांधी साहित्य, सिरहाने से उठाकर मेज़ पर रख दिया और आँख मलने लगे।

मंगरूवा ने तुरंत पाँव पकड़ लिया और दबाते हुए कहा - 'रतनवा बीस हज़ार की जोड़ी ले आया है, सरकार', मंगरूवा ने बात शुरू की।

'कहाँ से लाया है,' ठाकुर ने करवट बदला।

'सुन्दरवा कमाने लगा है न !'

'कहाँ ?'

'सुना है, कोलकाता में कहीं काम करता है, हर महीने बाप के पास पाँच-दस हज़ार भेजता भी है।

ठाकुर की आँख फैल गई, फिर इत्मीनान की मुद्रा में बोले - 'रतनवा ने बड़ी तकलीफ़ से बेटे को पढ़ाया, चलो, अच्छा हुआ, कम-से-कम बेटा बाप का सहारा तो बना।'

रतनवा के बेटे की प्रशंसा मंगरूवा को अच्छी न लगी। किसी का पट्टीदार आगे बढ़ जाए और उसे यह अच्छा लगे, असंभव। बोला - 'सरकार, यह तो आपकी कृपा थी, जो आपने गाहे-बेगाहे उसकी मदद की। नहीं तो, गाँव में कितने लड़के पड़े हैं। कहाँ कौन पढ़कर साहब हो गया ?'

'सो तो है?' ठाकुर ने मात्र हुंकारी भरी।

'लेकिन सरकार, एहसान मानने को रतनवा तो उल्टे आपकी पगड़ी उछालते चल रहा है।'

मंगरूवा की बात सुनकर ठाकुर चौंक पड़े, बोले - 'क्यों रे, क्या बात है?' निशाना ठीक जानकर मंगरूवा बोला - 'सरकार क्या करिएगा जानकर ? अच्छी बात हो, तो बताऊँ भी।'

ठाकुर की जिज्ञासा सच्चाई जानने के लिए बढ़ गई। ज़ोर देकर बोले – 'बोलता क्यों नहीं?'

'सरकार, आप कह रहे हैं, तो बताता हूँ। रतनवा एक दिन कह रहा था कि ठाकुर साहब की टाड़ी वाली ज़मीन लेने की सोच रहा हूँ। उसमें एक पक्का मकान बनवा लूँ। झोपड़ी गिर रही है। ठीक कराने से अच्छा है कि कहीं दो पक्के कमरे बना लिए जाएँ। उसकी बातों से बहुत गुस्सा आया कि चार पैसे क्या हो गये, सबकी ज़मीन ही खरीदने लगा। भूल गया सरकार, जब आपके यहाँ चरवाही करता था।'

ठाकुर को याद आया। चार दिन पहले ही तो रतनवा बेटे के साथ उनके पास आया था। बेटे को कैसे डाँट रहा था - 'चार अक्षर पढ़ क्या लिया, बड़े-बूढ़ों की इज्ज़त करना भूल गया। चल जल्दी बाबा के पैर छूकर प्रणाम कर।' लड़के ने तुरंत पैर छूकर प्रणाम किया और संकोच से एक किनारे खड़ा हो गया था। उन्होंने मंगरूवा को कहते सुना – 'सरकार रतनवा की बात सोच रहे है क्या ? जाने दीजिए, दूसरा कोई होता, तो उसकी ज़बान ही खिचवा लेता, आप तो देवता है, जो सुनकर भी टाल देते हैं।'

'नहीं, ऐसी बात नहीं। मैं सोच रहा हूँ कि क्यों न कल शहर जाकर टाड़ी वाली ज़मीन रतनवा के नाम रजिस्ट्री कर दूँ। बेचारा बाप-बेटा चार दिन पहले आकर कितना अनुरोध कर रहे थे। ऐसा कर कि तू ही जाकर उसे बता दे। कल सबेरे तैयार होकर मेरे पास आ जाएँ।'

ठाकुर की बात सुनकर मंगरूवा को लगा, जैसे उस पर घड़ों पानी पड़ गया हो। अपने को छुपाने के लिए अंधेरे में खो गया।

**falkon.bh@gmail.com**

# कारण

**हरिहर झा**
**मेलबर्न, ऑस्ट्रेलिया**

मौसी पूरी तरह पागल हो चुकी थी। बच्चों को देखते ही मारने दौड़ती है। कोई उसके चंगुल में फँस गया, तो खैर नहीं। वस्त्रों की सुध नहीं। मैं इतना छोटा था कि पागलपन क्या होता है, मुझे मालूम नहीं था। मैं इस बात को मानता नहीं था कि बिना कारण मौसी किसी भी बच्चे को मारती है। परंतु, ऐसा एक बार मैंने अपनी आँखों से देख लिया। फिर मुझे सभी पागलों से डर लगने लगा।

मेरी जिज्ञासा रही कि मौसी पागल कैसे और क्यों हुई? सुना है घर वालों ने मौसी के इलाज में कोई कसर नहीं छोड़ी। पूजा-पाठ और जंतर-मंतर करके भी देख लिया।

एक बार मैंने मौसी के बड़े भाई कमल कुमार से हिम्मत करके पूछ ही लिया कि मौसी पागल कैसे हुई? कारण क्या था?

"हमारे और उसके करम ही खोटे थे। अब इसे पालने के अलावा हमारे पास कोई चारा नहीं।"

तभी राम प्रसाद जी गुस्से में लाल-पीले होते हुए आए। "आज फिर मौसी ने मेरे बेटे को पीटा। देखो मिस्टर! हमारे बच्चे तुम्हारी बहन की मार खाने के लिए नहीं है।"

कमल कुमार ने अनुनय-विनय की, "अब क्या करें? वह पागल है। इसे बाँधकर तो रखा नहीं जा सकता।"

कमल कुमार जी भड़क गये, "आप को जो करना हो, करो। हमारा बच्चा मार खाने के लिए नहीं है।" फिर बोले "उस समय आपकी बुद्धि कहाँ गई थी, जब इसे कमरे में ले जाकर पीटा था और फिर बाँध दिया था। तीन दिन भूखे और बंधे हुए रहकर उसकी हालत पागल जैसी हो गई। अब भुगतो। उस बेचारी का कसूर क्या था?"

"देखिये, राम प्रसाद जी हमारे घरेलू मामलों में मत पड़िए। हम आपकी इज्ज़त करते हैं।"

"अरे, भाड़ में जाए ऐसी इज्ज़त। मौसी का गुनाह क्या था? उसने एक इंजीनियर से प्रेम किया था, यही न! आपको क्या तकलीफ़ थी? यही न कि वह नीची जाति वाला था। वह तो उसके साथ भागने वाली थी, पर एक बच्चे ने भोलेपन में बात उजागर कर दी, तो मौसी पकड़ ली गई। पर याद रखो, वह भोला बच्चा हमारा नहीं था, फिर हमारा बच्चा क्यों मार खाए?"

कमल कुमार जी नत भाव से सब सुन रहे थे। कारण हर चीज़ का होता है। पागल होने और बच्चों को मारने के कारण सामने प्रकट हो गए।

**hariharjha2007@gmail.com**

# अनुभूति

**पूजा अनिल**
**स्पेन**

ॐ फलम् समर्पयामि....ॐ गंधम् समर्पयामि...

पंडित जी जैसे-जैसे सभी वस्तुएँ माँ को तर्पण करवा रहे थे, वैसे-वैसे अमित की आँखों से आँसू गिरते जा रहे थे। उसे हर वो दिन याद आया जब माँ फ़ोन करके हिचकते हुए कहती कि बेटा आज आटा/ सब्ज़ी/ चावल समाप्त हो गया है, हो सके तो ले आना! और वह "हाँ" कहकर फ़ोन रख देता! शाम को घर लौटकर बच्चों के साथ खेलकूद में भूल जाता था कि माँ के पास खाने को कुछ नहीं होगा! ऐसा कितनी ही बार हुआ। हर बार वह भूल जाता। आज उसे मंत्रोच्चार सुनते हुए गहन अनुभूति हो रही है कि माँ के पास सब कुछ समाप्त हो गया था, पता नहीं माँ ने कैसे काम चलाया होगा?

डॉक्टर ने कहा था कि कुपोषण के कारण माँ के प्राण निकल गए! वह गहरी सोच में पड़ गया। क्या मैं ही इसका ज़िम्मेदार नहीं हूँ? मेरे अलावा माँ का था ही कौन? और मैं ही लापरवाह बना रहा? आज तर्पण में माँ की पसंद के अनुसार प्रत्येक खाद्य-पदार्थ ले आया हूँ, लेकिन जीवित रहते मैंने उन्हें

कुछ भी नहीं खिलाया! माँ कहती थीं कि जो भी खिलाना, मेरे जीते-जी खिला देना, मेरे मरने के बाद कोई कर्मकाण्ड मत करना! और मैं सब कुछ उल्टा कर रहा हूँ! मुझसे कितना बड़ा पाप हो गया! मैंने पहले क्यों नहीं सोचा यह सब? यदि भविष्य में मेरा पुत्र भी हम दोनों के साथ ऐसा ही व्यवहार करेगा, तो हम क्या करेंगे?

इतना सोचकर ही उसका दिमाग भन्ना गया। निरंतर बहती अश्रु-धार के साथ अपनी दिवंगत माँ से बार-बार माफ़ी माँगने लगा।

पंडित जी मंत्रोच्चार करते रहे। ॐ मिष्ठान्नम समर्पयामि..

**poojanil4@gmail.com**

# प्रशिक्षण

**डॉ. अलका धनपत**
**मॉरीशस**

अभी जीवन-साथी की तलाश है उसे। बचपन से आज़ाद ख्यालों वाली माहिरा के लिए माता-पिता कहाँ एक सुयोग्य वर ढूँढ पाएँगे ? वह आज़ाद है, वह आत्मनिर्भर है, वह आकर्षक है, वह आत्मविश्वासी है। चलो एक प्यारा-सा कुत्ता ही पालते हैं, मैसेंजर से सूचना डाल दी गई कि एक पप्पी चाहिए और वह मिल भी गया। अब घर में सिट-डाउन, स्टैंड-अप, कम-हियर, गो-देअर, ब्रिंग-दैट आदि वाक्य खूब सुनाई देने लगे। माहिरा चाहती थी कि उसका ब्राउनी सबसे आकर्षक, सबसे आज्ञाकारी और सबसे ज्यादा अनुशासित कुत्ता हो। इस कारण प्यार भरी ये आज्ञाएँ अब अनुशासन के नाम पर मिल्ट्री ट्रेनिंग का रूप लेने लगीं। इस कड़े अनुशासन के नाम पर उसे खाना भी सीमित दिया गया। ब्राउनी सीख तो रहा था, पर दिन-प्रतिदिन कमज़ोर भी हो रहा था और भौंकना, वह तो मानो भूल ही गया था।

आज माहिरा के दो  दोस्त आने वाले थे। माहिरा की माँ आलू के पराँठे विदेश में भी खूब स्वादिष्ट बनाती हैं, इसलिए उसके विदेशी मित्र उसके घर आना पसंद करते हैं। आज दोनों दोस्त अपने प्यारे कुत्तों को भी लाने वाले थे। पर ये कुत्ते नहीं हैं, वे कहते हैं, "इन्हें कुत्ता मत कहो, ये हमारे बच्चे हैं, इनका भी एक नाम है।" पूछो इनसे, आदमी को आदमी ही तो कहेंगे ना? तो कुत्ते को भी कुत्ता ही तो कहेंगे ना ? इसमें नाराज़ होने की क्या बात है भाई? पर सभ्यता ही ऐसी है, आपस में बिच या कुत्ता शब्द गाली के रूप में मज़े में परोसा जाता है, पर कुत्ते को कुत्ता नहीं कह सकते !

खैर, आज तीन गोदी के लाड़ले, आज्ञाकारी और इनकी शान के प्रतीक आपस में मिले। ब्राउनी जो तीनों में एक बड़ी नस्ल का कुत्ता था, दुम दबाकर एक कोने में रखे बॉक्स में छिपने का प्रयास करने लगा। बाकी दोनों तो मिलकर खेलना चाहते थे, पर ब्राउनी बिना आज्ञा के कैसे कुछ भी कर सकता था ? एक मित्र जो ब्राउनी की हालत को समझ रही थी, उस तक गई और उसे गोदी में उठाकर कुछ प्यार की बातें करने लगी। ब्राउनी थोड़ी देर बाद सामान्य हुआ। मित्र ने कुत्तों को मिलवाया, कमरे में बिखरे सामान को थोड़ा तरतीब से रखकर, उन्होंने अपने बच्चों के खेलने के लिए थोड़ी जगह बनाई। बस कुछ-ही समय के बाद तीनों बच्चे बहुत ही मस्त हो गए; ब्राउनी का भी कुत्तापन वापिस आ गया। अरे ! ब्राउनी भौंका ? वह भौंकता भी है ! मेरा ब्राउनी बात कर सकता है। यह कहते हुए माहिरा रोने लगी। आज उसने ब्राउनी को गोद में उठा लिया। ब्राउनी कौतूहल से माहिरा को देखकर कूँ-कूँ करने लगा। तुम लोग सप्ताह में एक बार यहाँ ज़रूर आना, उसे भी अपनी उम्र की संगत चाहिए और अपने मालिक का अपनापन।

**drdunputh@gmail.com**

# शेरू : मेरा दोस्त, मेरा रक्षक

**ममता तिवारी**
**बहरीन**

वह दिन कैसे भूल सकती हूँ, जब मैंने पहली बार शेरू को देखा था। तब मैं शायद कक्षा पाँचवी में पढ़ती थी। बचपन में खेल, खिलौने तथा पालतू जानवर और क्या चाहिए इसके अलावा? मैं भी एक पालतू जानवर रखना चाहती थी, लेकिन उसकी देखभाल के लिए आवश्यक व्यवस्थाओं और परेशानियों से डरती थी। खैर, बचपन तो उन्मुक्त गगन है , न तो फ़ायदे का ख्याल, न नुकसान का भय। मैंने अपने दिल की बात सुंदर चाचा से बताई, जो हमारे यहाँ बगीचे में काम करते थे। वे मुझे अपने किसी मित्र के घर लेकर गए, जिनके यहाँ कुत्ते के छोटे-छोटे बच्चे थे।

शेरू को पहली बार देखा, तो उसकी बड़ी, गोल आँखें, छोटी बटन जैसी नाक और मासूमियत-भरी चाल ने दिल को छू लिया। वह अपने भाई-बहनों के साथ खेल रहा था, लेकिन उसकी चंचलता कुछ अलग थी। शेरू को देखते ही ऐसा लगा जैसे यही वह साथी है, जो मुझे चाहिए।

मैंने उस कुत्ते का नाम "शेरू" रखा, क्योंकि उसमें शेर जैसा साहस और निडरता थी। वह छोटा-सा कुत्ता भी शेर की तरह निडर और स्वाभिमानी था। मैंने शेरू नाम देकर उसे जातिवाचक से व्यक्तिवाचक बना दिया।

शुरुआत में परिवार में थोड़ी अनिच्छा थी, लेकिन उसकी बुद्धिमत्ता और खेल-भावना ने सबका दिल जीत लिया। अब वह घर का अभिन्न सदस्य बन चुका था।

शेरू दूसरों से अलग था। वह सिर्फ़ चंचल नहीं, बल्कि एक ज़िम्मेदार साथी भी था। अक्सर वह उन छोटे-छोटे कामों को करता, जिन्हें हम कभी सोचते भी नहीं थे। जैसे - सुबह स्कूल जाने के लिए मेरा बस्ता दरवाज़े के पास रखना, अगर कोई अनजान व्यक्ति घर के पास फटकता, तो वह एक सख्त पहरेदार की तरह तुरंत सतर्क हो जाता। वह सच में घर का रखवाला ही नहीं, सच्चा शुभचिंतक भी था।

शेरू अब मेरे जीवन का एक अहम हिस्सा था। लेकिन जीवन की राह हमेशा यातायात के हरे सिग्नल की तरह ही नहीं होती। कभी-कभी लाल संकेतों का भी सामना करना पड़ता है और फिर वह दिन आया, जब हमारे और शेरू के जीवन में लाल संकेत ने दस्तक दी।

एक दिन शेरू अचानक घर से गायब हो गया। पूरा परिवार परेशान हो उठा। हम शेरू को ढूँढने के लिए हर तरफ़ भटक रहे थे-हर गली, हर मैदान और हर वह जगह जहाँ शेरू मेरे साथ आता-जाता था। एक कड़वा सच यह है कि जानवरों के लिए पुलिस में कोई एफ़आईआर नहीं होती, मानो वे किसी और ग्रह के प्राणी हों या प्राणी ही न हों।

दिल और दिमाग शंकाओं और अनहोनी की चिंताओं से भरे थे। फिर भी कहीं-न-कहीं एक सकारात्मकता कह रही थी कि मेरा शेरू आएगा और हाँ, शेरू आया पर उस हालत में जिसमें शायद अच्छा होता बेचारा कभी आता ही नहीं।

उसके जाने के चार-पाँच दिन बाद की बात है , शेरू घर की ओर दौड़ते हुए आया, लेकिन उसकी हालत देखकर हम सबके होश उड़ गए। उसकी पीठ पर गोली का गहरा जख्म था। गोली? पर क्यों?

हमने पूरी कोशिश की, डॉक्टर को दिखाया, हर संभव प्रयास किया, लेकिन शेरू को बचा नहीं सके। शेरू की आँखें आँसुओं से भरी थीं, फिर भी वह शेर की तरह मुस्कुरा रहा था। उसकी मुस्कान जैसे कह रही हो—"आखिरकार, अंतिम यात्रा मैं अपने घर से कर रहा हूँ।"

हालाँकि मैं कभी भी शेरू के समर्पण और निष्ठा की बराबरी नहीं कर सकती, फिर भी क्या मैं एक दोस्त के फ़र्ज़ को भूल सकती हूँ ! मैंने यह जानने की पूरी कोशिश की कि वह 4-5 दिनों तक कहाँ था, उसके साथ क्या हुआ था। मुझे यह पता चला कि एक दिन जब शेरू खेल के मैदान में मेरे साथ गया था तब उसे एक पुलिस वाला अपने साथ बहला-फुसलाकर पास के कैंप में ले गया। दरअसल वह उसके डीलडौल से अत्यंत प्रभावित था और उसे अपने कैंप में रखना चाहता था। पता चला कि शेरू ने खाना-पीना बिल्कुल बंद कर दिया और उनकी तरफ़ देखता भी नहीं था, मानो उसका एक सत्याग्रह और विरोध का माध्यम हो। इससे

परेशान होकर पुलिस वालों ने उसे प्रताड़ित करना शुरू कर दिया। शेरू एक जानवर था, लोभ-लालच से कोसों दूर। चौथे दिन, शेरू ने भागने का प्रयास किया, तो पुलिस ने उसका पीछा करते हुए उस पर गोली चला दी। क्या क्रूरता की इससे बड़ी मिसाल हो सकती है ?

आखिरी पल शेरू बहुत कुछ कहना चाहता था, लेकिन दर्द ने उसे चारों ओर से जकड़ लिया था। वह जीना चाहता था, बोलना चाहता था। उस दिन मुझे यह एहसास हुआ कि इंसानों को जो सबसे बड़ा विशेषाधिकार मिला है, वह है, बोलने की शक्ति। वही शक्ति, जो जानवरों से हमें अलग और कड़वी बनाती है।

शेरू ने मेरी गोद में दम तोड़ दिया। उसकी आँखों में आखिरी बार वही चमक थी, जो उसने पहली बार मुझे देखकर दिखाई थी। एक शेर का अंत हुआ, एक दोस्त का अंत हुआ, जीवन भर अंत न होने वाले सवालों के साथ।

शेरू मानो आज भी मुझसे पूछता है - मेरा क्या दोष था ? क्या जीने का अधिकार सिर्फ़ इंसानों के लिए है, हम जानवरों के लिए नहीं ?

शेरू की मौत सिर्फ़ एक जानवर की नहीं, बल्कि इंसानियत की भी मौत थी।

**mamatarm@gmail.com**
**mamtarmt1@gmail.com**

# उम्र की चादर

**आशा शर्मा**
**बीकानेर, भारत**

लंबे अंतराल के बाद हलचल दिखी, तो उत्सुकतावश घर की चारदीवारी के ऊपर से उचककर बाहर देखने लगा। देखा तो एक व्यक्ति व्हील चेयर पर किसी जीर्ण-शीर्ण काया को लेकर सामने वाले घर के भीतर प्रवेश करवा रहा था। पीछे-पीछे एक वृद्ध महिला और युवती भी चल रही थी। मैंने पहचानने की कोशिश की, तो आँखें हैरान रह गईं।उन्हें इस अवस्था में देखना मेरे लिए उतना ही अवसाददेह था, जितना हरे पेड़ को ठूँठ में बदलते या किसी पुराने राजमार्ग को क्षतिग्रस्त सड़क के रूप में देखना... या जैसे दोपहर के तपते सूर्य को मंद होकर अस्ताचल में जाते हुए।

ये राधेश्याम अंकल हैं, जो सड़क की दूसरी तरफ़ मेरे घर के सामने वाले मकान से दो घर दाएँ रहते थे।दुबला-पतला इकहरा शरीर... माथे की तरफ़ सिर के उड़े हुए बाल... काले प्लास्टिक के फ्रेम का चश्मा... पाँवों में फीते वाले सैंडल और पहनावे में कुर्ता-पजामा... और हाँ! सवारी के लिए एटलस की पुरानी साइकिल, जिसके पीछे सामान रखने के लिए लोहे का मज़बूत कैरियर लगा हुआ है।इन्हें मैं पिछले बीस वर्षों से सदा एक सरीखा ही देखता आ रहा था।पाँच साल हुए अंकल अपने बेटे के पास ऑस्ट्रेलिया चले गए थे, तब से ही यह घर मकान बना हुआ है। जब-तब इसके बिकने की अफ़वाह भी मोहल्ले में घूमती रहती है।

बीस साल पहले जब हम इनके पड़ोस में रहने आए थे, तब इनकी मूछें आधी काली हुआ करती थी। मेरी उम्र उस समय लगभग आठ वर्ष रही होगी। अंकल की एक बेटी रश्मि दीदी और एक बेटा राजेश भैया थे। दीदी की मेरी मम्मी से अच्छी पटने लगी थी। उन दिनों रिश्तों के नाम हुआ करते थे और दीदी-भैया मेरी मम्मी को भाभीजी कहते थे,इसलिए मेरा उस घर में बहुत आना-जाना रहता था।

आहा! क्या समय था वह। अंकल के घर में हर समय मेला-सा लगा रहता था। दीदी और भैया के दोस्तों और सहेलियों की मस्ती से घर हरदम गुलज़ार रहता था। ऐसे में मुझ इकलौते का अपने घर में मन भला कैसे लगता? स्कूल के बाद मेरा अधिकांश समय राधेश्याम अंकल के घर ही बीतता था।

अंकल के दोनों बच्चे बहुत होनहार थे, उन्हीं की संगत का असर रहा होगा कि मेरी भी पढ़ाई-लिखाई में रुचि बनी रही। अक्सर अपना होमवर्क मैं उनके घर ही किया करता था। पढ़ाई के दौरान आने वाली मेरी कई समस्याओं के हल वहाँ मुझे बहुत सरलता से मिल जाते थे।

राधेश्याम अंकल शिक्षा विभाग में क्लर्क थे, हालाँकि हमारे उनके पड़ोस में आने से पहले ही वे रिटायर हो चुके थे, लेकिन आज भी वे आना-जाना अधिकांश साइकिल से ही किया करते थे।अंकल की निगाहों में एटलस साइकिल का भी एक अलग ही रुतबा था। अंकल को जितना प्यार अपने बच्चों से था, उतना ही मोह अपनी साइकिल से भी था। जब तक बहुत ज़रूरी नहीं होता, वे अपने सभी बाहरी काम साइकिल के माध्यम से ही निपटाया करते थे। अब तो हालाँकि मैं कार चलाता हूँ, लेकिन वाहन चलाना सीखने की मेरी शुरुआत इसी साइकिल से हुई थी और एक बार तो इस साइकिल से मैंने अपना पाँव भी तुड़वाया था। अंकल कहा करते थे कि जब तक मेरी साँस चलेगी, यह साइकिल भी चलेगी।

अचानक मैं वर्तमान में आकर लपकता हुआ उधर ही भागता हूँ।अंकल को उनके साथ आए लोग भीतर ले जा चुके थे। मैं भी पोर्च को पार करता हुआ घर के अंदर जाने लगा। सामने ही धूल से अटी हुई अंकल की साइकिल खड़ी थी, जिस पर ताजा फिराए हुए उँगलियों के निशान स्पष्ट दिखाई दे रहे थे। अवश्य ही अंकल ने अपनी पुरानी सहचरी को लाड किया होगा।

साइकिल पर लगा हुआ ताला मुझे आशंकित कर रहा है।कौन जाने अब यह कभी खुलेगा भी या नहीं। मैं भी अंकल की उँगलियों का अनुसरण करता हुआ बरसों से उपेक्षित खड़ी उस काले रंग की साइकिल पर धीरे से हाथ फेर देता हूँ, जिसकी मैंने अपने बचपन में बहुत बार सवारी की थी। मुझे आज भी याद है, जब भी अंकल आसपास कहीं साइकिल

लेकर जाते थे, तब मैं भी उस पर लटक लेता था। साइकिल की सवारी को अंकल ने अपनी मधुमेह जैसी लाइलाज बीमारी के सामने ढाल की तरह तैनात कर रखा था।

अंकल ने अपने बच्चों को जितना वे चाहते थे, उतना पढ़ाया। पढ़ाई को लेकर उनकी सोच उस समय भी बहुत प्रगतिशील थी। रिश्तेदारों की कानाफूसी के बीच भी उन्होंने अपनी बेटी को उच्च शिक्षा दिलवाई। इसी का नतीजा यह रहा कि रश्मि दीदी सॉफ़्टवेयर इंजीनियर बनी और बहुत आकर्षक पैकेज पर ऑस्ट्रेलिया चली गई। बाद में, उन्होंने वहीं बसे हुए एक भारतीय से शादी करके, वहाँ की नागरिकता भी ले ली। ऑस्ट्रेलियन डॉलर का आकर्षण इतना प्रबल था कि कुछ समय बाद रश्मि दीदी ने वहाँ अपनी खुद की कंपनी खोल ली और एम्प्लॉय वीज़ा पर राजेश भैया को भी वहीं बुला लिया। एक बार गए, तो फिर वे भी वहीं के होकर रह गए। किसी वृक्ष की तरह बिना किसी तरह की खाद-पानी की अपेक्षा के अंकल अपनी संतानों की खुशी के लिए तमाम फल उन पर लुटाते रहे।

अंकल अपने बच्चों की तरक्की की राह में कभी भी बाधा नहीं बने, बल्कि वे तो उन्हें देखकर बहुत गर्वित हुआ करते थे।हर बच्चे को विदेशी नागरिकता मिलने की खुशी उन्होंने यहाँ हमारे पूरे मोहल्ले के साथ मिलकर मनाई थी। अपनी नीली आँखों वाली पोती की तस्वीर तो उन्होंने अपने मोबाइल की स्क्रीन पर ही लगा रखी थी। हरेक मिलने वाले को दिखाया करते थे। बहुत बार तो वे मुझे भी विदेश जाने की सलाह दिया करते थे, लेकिन मैं हँसकर टाल देता था। यह अलग बात है कि खुद उन्हें अपना देश छोड़ना कभी गवारा नहीं हुआ।

बच्चों ने बहुत आग्रह किया, लेकिन अंकल और आँटी ने अपना घर नहीं छोड़ा। जिस घर की एक- एक ईंट अपने हाथ से रखी गई हो, उससे लगाव ना हो, यह हो नहीं सकता और फिर वह पीढ़ी तो थी ही लगाव और अपनेपन वाली। जो घर कभी छोटा पड़ने के कारण बार-बार मंज़िल-दर-मंज़िल ऊपर चढ़ता गया था, आज उसमें कबूतरों का बोलना दिल को तड़पा देता है।

समय के साथ अंकल-आंटी नीचे के दो कमरों में सिमट गए थे। ऊपरी मंज़िल तो होली-दीवाली साफ़-सफ़ाई के लिए खुलती थी या फिर कभी भूले-भटके कोई मेहमान आ जाए तब। मैंने अंकल से कहा भी कि ऊपरी मंज़िल को किराए पर चढ़ा दें, लेकिन उनकी पंछियों के घोंसले में लौट आने की उम्मीद उन्हें ऐसा नहीं करने दे रही थी।

उम्र का उसूल है कि वह खाली हाथ नहीं आती। बीमारियों की पोटली अपनी पीठ पर लादकर आती है। अंकल को भी लगातार कफ़-खाँसी और सीने में जकड़न की शिकायत रहने लगी। जब-तब मिलते अंकल हर मिलने-जुलने वाले को खाँसते-खाँसते अपनी परेशानी बताते और जवाब में ढेर सारी सलाहें और थोड़ी-सी सहानुभूति पाते।इस बीच कई बार खंखारकर कफ़ थूकते अंकल को ज़िद या आग्रह करके अस्पताल ले जाने और डॉक्टर को दिखाने की पेशकश कोई नहीं करता था। हाँ! उनके खाँसने के साथ ही लोग अपने मुँह पर रुमाल रखना नहीं भूलते थे।

एक दिन मैं अपने बेटे को उनकी साइकिल पर सवारी कराने के लिए ले गया, तब पता चला कि अंकल को दो दिन से बुखार आ रहा है। अपनी समझ के अनुसार आँटी क्रोसिन दवा दे देती हैं, जिसके असर से एक बार तो बुखार उतर जाता है, लेकिन कुछ देर बाद फिर वापस आ जाता है।

मैंने ऑफ़िस से एक दिन की छुट्टी ली और उन्हें लेकर मैं एक डॉक्टर के पास गया। डॉक्टर ने छाती के एक्सरे, सिटी स्कैन, बलगम की जाँच जैसी बहुत-सी जाँचें लिखकर दीं। उन जाँचों की लंबी सूची देखकर ही मैंने बीमारी की भयावहता का अंदाज़ा लगा लिया था।

अंकल के तमाम सैंपल देने के बाद हम घर आए और मैंने राजेश भैया को फ़ोन लगाया। पूरी स्थिति जानने के बाद, तो राजेश भैया ने आने में देर नहीं की। दो दिन बाद ही वे और रश्मि दीदी देश आ गए और साथ में बनवाकर लाए थे अंकल और आँटी के ऑस्ट्रेलिया जाने के टिकट।

तब तक मैं अंकल की तमाम जाँचें करवाकर रिपोर्ट ले आया था। रिपोर्ट से पता चला कि अंकल को फेफड़े का कैंसर है।

"आगे का इलाज वहीं करवाएँगे।" राजेश भैया ने अपना निर्णय सुना दिया। हम भी आश्वस्त थे कि अंकल

को अब बेहतर चिकित्सा सुविधा के साथ-साथ अपनों का साथ भी मिलेगा, तो उनके लिए बीमारी से लड़ना थोड़ा कम तकलीफ़देह होगा। मोहल्ले में हर एक व्यक्ति अंकल की किस्मत और उनकी परवरिश की सराहना कर रहा था।

"बच्चे हों तो ऐसे।" हर ज़ुबान से यही आशीष निकल रहा था, लेकिन अंकल के मन में चल रही हलचल से किसी को भी कोई सरोकार नहीं था। जैसे-जैसे उनके ऑस्ट्रेलिया जाने के दिन पास आ रहे थे, अंकल का कलेजा टूट रहा था।हर समय चेहरे पर एक उदासी की परत दिखाई देती थी। पता नहीं यह परत मेरे अलावा किसी और को दिखाई क्यों नहीं दे रही थी या फिर सब इसे देखकर भी अनदेखा कर रहे थे। शायद उनके स्वास्थ्य के लिए यही बेहतर होगा, लेकिन मेरा आकलन था कि वे शारीरिक अस्वस्थता की अपेक्षा मानसिक रूप से अधिक अस्वस्थ महसूस कर रहे थे।

हालाँकि बिना सहारे वे अधिक देर तक खड़े नहीं हो पा रहे थे, लेकिन फिर भी घर की प्रत्येक वस्तु को छू-छूकर देख रहे थे, मानो उनके स्पर्श को आत्मसात कर लेना चाहते हों। उनकी इस स्थिति को महसूस करता मेरा मन कातर हुआ जाता था, लेकिन कई बार मीठे परिणाम हासिल करने के लिए कड़वे घूँट पीने पड़ते हैं, यही सोचकर मैं भी उनकी पीड़ा को नज़रअंदाज़ करता हुआ, उन्हें ऑस्ट्रेलिया जाने के लिए प्रोत्साहित करता रहता था।

राजेश भैया और रश्मि दीदी अंकल-आंटी को अपने साथ ले गए।घर से निकलते समय भी अंकल अपनी साइकिल को सहलाना नहीं भूले थे।मैं हर दो-तीन दिन में राजेश भैया को वाट्सएप कॉल करके उनके हालचाल ले रहा था। उन्हीं से पता चला कि अंकल को कीमो और रेडियोथेरेपी दिया गया है। हालाँकि कुछ कमज़ोर हो गए हैं, लेकिन बीमारी नियंत्रण में है और अब वे पहले से काफ़ी बेहतर महसूस कर रहे हैं। एक दिन वीडियो कॉल पर बात हुई, तो मैं अंकल की हालत देखकर पीड़ा से भर उठा। थेरेपी के कारण उनके सिर के बाल उड़ चुके थे और आँखें चेहरे के अंदर धंस गई थीं।बदन में से हड्डियाँ बाहर झाँक रही थीं। पता नहीं कमज़ोरी थी या अपने-आपसे नाराज़गी, लेकिन वे कुछ बोल नहीं रहे थे, केवल शून्य में ताक रहे थे। मैंने बात करने की कोशिश भी की, लेकिन वे चुप ही रहे।

"अंकल! अब तो आप बहुत ठीक लग रहे हो। आपकी साइकिल साफ़ करके रखी है। आ जाओ फिर चलाते हैं साथ-साथ।" मेरे इतना कहते ही उनके बुझे हुए चेहरे पर उम्मीद की एक लपक-सी उठी और उनकी आँखों की पुतलियाँ फैल गईं। बस, इतनी-सी हरकत में ही मैं उनकी पीड़ा के तट के बहुत नज़दीक पहुँच गया था। मैं राजेश भैया से कहना चाहता था कि ज़िंदगी के जितने भी दिन अब शेष हैं वे इन्हें इनके घोंसले में काटने दें। जब तक पंछियों का यह जोड़ा सलामत है, इन्हें इनके नीड़ से अलग ना करें, लेकिन ऐसा कहने वाला मैं आखिर होता कौन हूँ। कहीं "बाहर वाला" कहकर उन्होंने मेरी आब उतार दी, तो कौन-सा मुँह ले कर रह जाऊँगा...

पिछले दिनों किसी पारिवारिक कार्यक्रम में गाँव जाना हुआ। वहाँ इन्टरनेट की सीमित उपलब्धता के कारण ऑस्ट्रेलिया बात नहीं हो पा रही थी। एक-दो बार मैसेज किए, लेकिन राजेश भैया का कोई जवाब नहीं मिला। मैं बहुत कसमसा रहा था, भीतर-ही-भीतर घुट भी रहा था, लेकिन बेबस था। हर रोज़ सुबह वाट्सएप पर आए मैसेज भी धड़कते हुए दिल से खोलकर देखता था कि कहीं ऑस्ट्रेलिया से कोई अप्रिय समाचार ना आ जाए। कल वापस घर आते ही सबसे पहले राजेश भैया को फ़ोन लगाया, लेकिन उनका फ़ोन कवरेज क्षेत्र से बाहर आ रहा था।

लेकिन आज सुबह जो देखा वह मेरे नाचने के लिए पर्याप्त था। आखिर एक परिंदा कैद को तोड़कर वापस अपने घोंसले में लौट आया था। मैं नहीं जानता कि मेरी यह खुशी कितनी स्थाई है, लेकिन फिर भी मैं आज बहुत खुश हूँ। कौन जाने शायद ऐसी ही खुशी हमारे स्वतंत्रता-सेनानियों को भी महसूस हुई होगी, जब गुलामी की बेड़ियाँ तोड़कर उन्होंने आज़ाद हवा में साँस ली होगी।

आमने-सामने घर होने के कारण मेरी एक आँख हमेशा अंकल के क्रियाकलापों पर लगी रहती है। हर सुबह आँटी उन्हें लेकर बाहर बरामदे में बैठ जाती है और आने-जाने वालों से बतियाती रहती हैं। घर का राशन और दूध आदि घर पर आ जाता है तथा तमाम तरह के बिल ऑनलाइन भर जाते हैं। सब्ज़ी की व्यवस्था के लिए गली में सुबह-शाम ठेले वाला

आता ही है। आंटी की मदद करने के लिए एक सहायिका भी चौबीस घंटे उनके साथ रहती है और हर दो दिन के बाद एक नर्सिंग कर्मी अंकल की सेहत का हाल जानने के लिए आता है। यह व्यवस्था राजेश भैया ने करवाई थी। मेरा मन उन्हें भी आदर से नमन करता है।

शाम को मैं भी कुछ देर अंकल के पास बैठता हूँ।इधर-उधर की बातों में ही एक दिन आँटी ने बताया कि कैसे अपने घर आने के लिए उन्होंने अनशन कर दिया था। चार दिन तक ना तो कोई दवा ली और ना ही खाना खाया। सुनकर बचपन और बुढ़ापे के एक जैसा होने वाली युक्ति मेरे सामने चरितार्थ हो उठती। वाकई! बहुत दृढ़ इच्छा-शक्ति रही होगी अंकल की, वरना कौन है, जो डॉक्टर्स द्वारा "गोन केस" घोषित करने के बाद भी अपने जीवट से अपने प्राण यमराज के चंगुल से छुड़ाकर वापस ले आए। अंकल खुद-ही-खुद के लिए सावित्री बन गए थे।

यहाँ आकर अब अंकल की तबियत में कुछ सुधार महसूस होने लगा था। राजेश भैया लगातार मेरे संपर्क में थे। यदि मैं स्वयं को उनका जासूस, मुखबिर या भेदिया कहूँ, तब भी गलत नहीं होगा, क्योंकि मैं यहाँ बैठा अंकल की हर गतिविधि की खबर उन्हें वहाँ दूर देश पहुँचाता था। हालाँकि इस चुगली के लिए बहुत बार मेरा मन मुझे धिक्कारता भी था, लेकिन अंकल की सेहत के लिए यह आवश्यक भी था कि वे खुद को लेकर कोई लापरवाही ना करें। आंटी की तो वे सुनते नहीं थे, लेकिन राजेश भैया का एक ही वाक्य उन्हें रोक सकता था। जब वे कहते थे कि "बीमार हो गए, तो वापस ऑस्ट्रेलिया ले जाऊँगा और इस बार वापस देश नहीं भेजूँगा" तो अंकल खुद को थोड़ा संयमित कर लेते थे, लेकिन कुछ दिन बाद फिर वही ढाक के तीन पात... अंकल अपनी साइकिल को स्नेह से देखते हुए उसकी सीट पर हाथ फेरने लगते।

आज भी जब मैं सुबह मॉर्निंग वॉक के लिए घर से निकलने लगा, तब आदतन निगाह अंकल के घर की तरफ़ चली गई। देखा तो अंकल कपड़े से अपनी साइकिल की धुल झाड़ रहे थे। पास ही आंटी बेबस- सी खड़ी थी, क्योंकि वे जानती थी कि उनकी बातों का अंकल पर कोई विशेष असर नहीं होता। मुझे देखते ही उन्होंने हाथ के इशारे से अंकल की हरकत को लेकर चिंता जताई, तो मैंने भी उन्हें हाथ का इशारा करते हुए ही चिंता नहीं करने के लिए आश्वस्त किया। आज मैं वॉक के लिए नहीं गया, बल्कि वहीं खड़ा-खड़ा अंकल की निगरानी करता रहा। कुछ ही देर में अंकल अपनी साइकिल लेकर घर से बाहर सड़क पर खड़े थे। मैंने टोका, तो कहने लगे, "बस, यहीं मंदिर तक जा रहा हूँ।"

"आइए, मैं आपको छोड़ देता हूँ।" मैंने प्रस्ताव दिया।

"नहीं! जब तक हो सकता है, मैं किसी पर आश्रित नहीं होना चाहता।" कहते हुए अंकल अपना दाहिना पाँव उठाकर साइकिल पर सवार हो गए और ज़रा आगे की तरफ़ झुकते हुए पैडल पर पाँव से दबाव बनाया। सरर्र करती साइकिल आगे बढ़ गई। मैं देखता ही रह गया। हालाँकि मुझे उन्हें इस तरह दुबारा साइकिल चलाता हुआ देखकर खुशी हुई, लेकिन यह सूचना राजेश भैया तक पहुँचाना भी ज़रूरी था।

"भैया! आज अंकल अपनी साइकिल को लेकर कहीं जा रहे थे।" मैंने अंकल की फ़ोटो खींचकर राजेश भैया को वाट्सएप पर भेजी। शाम को पता चला कि भैया अंकल पर बहुत नाराज़ हो रहे थे।

"क्या ज़रूरत है आपको साइकिल चलाने की? कोई काम है, तो मुझे बताइए ना!" मैंने अंकल से आग्रह किया। अंकल ने मुझे कोई प्रत्युत्तर नहीं दिया। एकदम चुपचाप बैठे दीवार को ताकते रहे। यह उनका नाराज़गी जताने का ही एक तरीका था। मेरा बेटा अक्सर ऐसा ही करता है, जब मैं उसे उसका पसंदीदा खेल खेलने से रोकता हूँ। मैंने उनकी मासूमियत पर मुस्कुरा दिया।

भैया की डाँट का असर केवल रात भर ही रहा। अगले दिन अंकल फिर से साइकिल लेकर चल दिए। एक बार हौसला बढ़ा, तो हर रोज़ लेकर जाने लगे। पहले घर के आसपास और उसके बाद थोड़ा दूर तक भी।

एक सुबह देखा, तो आँटी उनके पाँव पर पट्टी बाँध रही थी। पूछने पर पता चला कि कल रात घर लौटते समय साइकिल एक गड्ढे में गिर गई और पाँव के अँगूठे का नाखून उखड़ गया। अंकल निर्विकार भाव से घाव पर दवा लगवा रहे थे। ना कोई दुख ना दर्द और ना ही कोई पछतावा... मैं हैरान

हूँ। क्या यह भी नाराज़गी दिखाने का कोई तरीका है? अंकल किसी की नहीं सुनते। राय पसंद ना हो, तो प्रतिकार भी नहीं करते। बस, एक चुप्पी ओढ़ लेते हैं, लेकिन करते वही हैं, जो वे करना चाहते हैं।

केवल साइकिल चलाना ही नहीं, बल्कि इन दिनों तो अंकल मिठाई भी जीभर कर खाते हैं। टोकने पर अपनी साइकिल की तरफ़ इशारा करके कहते हैं, "ये है ना मेरी शुगर का रामबाण। जब तक चलती रहेगी, मीठा भी चलता रहेगा। आंटी उनकी बात से सहमत नहीं होते हुए भी विरोध नहीं कर पाती थी।

"अब इस उम्र में क्या रोकटोक लगाएँ। इन उपायों से भी कितना और खींच लेंगे उम्र की चादर को। तो ठीक है ना! मन भर के तो जीएँ।" आंटी, अंकल का पक्ष लेते हुए कहती,लेकिन साथ ही उनकी थाली में से जलेबी का एक टुकड़ा यह कहते हुए कि "सब खाओ, लेकिन थोड़ा-थोड़ा" उठा भी लेती। अंकल के चेहरे पर बच्चों-सी मुस्कान खिल जाती। उन्हें खुश देखकर आंटी भी खुश हो जाती। उनके प्रेम का नेक्स्ट लेवल देखकर मैं भी उनकी मुस्कान का साथी बन जाता।

"कितनी सहजता से आंटी ने जीवन के यथार्थ को स्वीकार कर लिया और कितनी आसानी से जीवन का यह गूढ़ मंत्र सिखा भी दिया। जो जीना है, वह आज ही में जी लें, कल का कोई भरोसा नहीं। हे ईश्वर! इन दोनों की यह मुस्कान बनाए रखना। कौन जाने ये दोनों कब तक एक-दूसरे के साथ हैं।" मैं मन-ही-मन सोचता हुआ उनकी नोक-झोंक और चुहल में अपने बुढ़ापे के अंश देखने लगता।

**asha220672@yahoo.co.in**

# सदा सुहागन

**शोभा रानी गोयल**
**राजस्थान, भारत**

घर में चारों तरफ़ सन्नाटा पसरा हुआ था। गहन निस्तब्धता बिखरी हुई थी। आँगन में औंधी पड़ी थाली बता रही थी कि अभी-अभी यहाँ वाक् युद्ध के साथ कोई बड़ा तूफ़ान गुज़रा है। यहाँ-वहाँ बिखरे ज्वार की रोटी के टुकड़े चूहे अपना भोग बना चुके थे और तरकारी की गंध वातावरण में अपनी उपस्थिति दर्ज करवा रही थी। चूल्हे में आधी ठंडी और आधी गर्म राख हादसे की गवाह थी। मिट्टी के बर्तन तहस-नहस होकर वापस मिट्टी हो चुके थे। माहौल में आतंक घुला था। घर जैसे घर नहीं लग रहा था, बल्कि मरघट जैसा नज़र आ रहा था।

एक कोने में गठरी बनी अनारो घुटने में मुँह देकर सिसक रही थी। मन-ही-मन अपनी किस्मत को कोस रही थी। "कैसी ज़हरीली ज़िंदगी दी है। जानवरों से बदतर नरक जैसे जीवन से जाने कब तक जूझना है। हे ईश्वर, कब बुलाएगा, इस जहन्नुम से, कब मुक्ति मिलेगी? यह घर भी नरक से कम है क्या?" नरक भी इससे कहीं बेहतर होगा। कैसा नसीब है मेरा? उसने अपनी दोनों हथेलियों पर बनी रेखाओं पर गहरी नज़र टिका दी, मानो उन्हें पढ़ने का प्रयास कर रही हो, उसके हाथ में होता, तो इन लकीरों को कब का बदल दिया होता। उन हथेलियों ने जाने कब उसे वक्त के पीछे धकेल दिया।

वाराणसी की तंग गलियों से एक घर जहाँ पर एक वीरांगना मनु (रानी लक्ष्मीबाई) का जन्म हुआ था। लड़की थी, मगर माता-पिता की आँखों का तारा थी। इकलौती संतान बेटी पिता मोरोपंत के सिर का ताज थी। मनु के जन्म पर ढोल नगाड़े बजाकर आस-पड़ोस में मंगलगान गाये थे। ढोलक की थाप भी गुनगुना उठी थी। आसमाँ झूम उठा था और धरती माँ निहाल हो उठी थी।

लेकिन हर लड़की की किस्मत मनु जितनी सौभाग्यशाली तो नहीं थी। कुछ के हिस्से केवल आँसू लिखे थे और लिखी थी बहुत सी बददुआएँ...

ठीक उसी दिन वाराणसी से लगभग तीन सौ किलोमीटर दूर मंझनपुर गाँव में एक स्त्री भगवान से अपनी गुहार लगा रही थी। असहनीय प्रसव-पीड़ा से तड़पती कमली आसमान की ओर सिर उठाकर मन-ही-मन बुदबुदा रही थी- "हे राम राखा इस बार छोरा ही जन्म ले। थोड़ी मिट्टी और खर्च कीजो

प्रभु, ताकि मेरा जीवन सुधर जावे। आठ-आठ बेटियों की माँ होने का दंश सह रही हूँ। एक पूत हो जाएगा, तो बैकुंठ तक पहुँचने का मार्ग मिल जाएगा। इस बार, हे हरि, मुझे निराश न करना। अबकी बार बेटे की माँ ही बनाना। यदि बालक की मइया बनी, तो हे कृष्ण भगवान, मैं गोवर्धन पर्वत की दंडवत परिक्रमा करूँगी।" हाथ जोड़कर वह मन-ही-मन अपने इष्टदेव से प्रार्थना करने लगी।

प्रसव-वेदना से त्रस्त होकर कमली अचेत हो गई। बच्चे के रूदन ने बताया एक नन्हा जीव दुनिया में कदम रख चुका है। रक्त बूंद से सने हुए नन्हे जीव को जब नाल काटकर बाहर निकाला। दायी की पारखी नज़रों ने एक क्षण में ही भाँप लिया...उसे दुख इस बात का भी अधिक था; वह इस बार भी ज्यादा बख्शीश नहीं माँग सकती थी। उसने आसमाँ की ओर दोनों हाथों को उठाते हुए कहा-"पता नहीं प्रभु, तेरी रज़ा क्या है? तू ही सबका रखवाला है। दया करना हे प्रभु। ईश्वर जाने इस घर में अब कौन-सी कयामत आने वाली है।" वह किसी भयावह की कल्पना में सिहर उठी। मन-ही-मन कुशलता की कामना करते हुए वह बड़ी मालकिन को लड़खड़ाते शब्दों में शिशु जन्म की सूचना देकर वहाँ से तुरंत ही निकल गई।

कमली के पास भाग्य कोसने के सिवा कुछ नहीं बचा था। गिरिराज जी की परिक्रमा का दाँव भी खाली चला गया। मुक्ति का मार्ग कहीं नज़र नहीं आ रहा था। नौवीं संतान के रूप में बेटी पैदा करना उसका सबसे बड़ा अपराध था, जिसे करना वह कभी नहीं चाहती थी। जुगल ने जब सुना तब आव देखा न ताव, जचगी में ही पास पड़ा डंडा उठाकर उसे पीटने लगा। उसका गुस्सा सातवें आसमान पर था। कमली के अंग-अंग नीले रंग में तब्दील हो गए। तन पर लगे नीले रंग के घावों ने दुधमुँही बच्ची से नफ़रत करने को मजबूर कर दिया। उसका जन्म लेना पाप हो गया। इससे अच्छा होता कि वह माँस के लोथड़े में बह जाती। कमली बस मरी नहीं मगर कोई कसर बाकी नहीं रही। अंग-अंग उसके दुख की गाथा कह रहे थे।

माँ ने बीच-बचाव करते हुए कहा- "अरे निर्मोही! छोड़ उसे, मार ही डालेगा क्या? मारना ही है, तो इस नवजात को गहरे गढ्ढे में दबाकर मार दे, ताकि यह अपने पीछे भाई भेजे"....इस घर का रिवाज था, नवजात कन्या को मिट्टी में पाँच घंटे तक गाड़कर मिट्टी से दबा दो, यदि मर गई, तो चैन की साँस, न मरी, तो उसका तो ईश्वर ही मालिक होता है। अनारो को धरती माँ ने पाँच घंटे तक अपनी गोद में महफ़ूज़ रखा और तिल-तिल मरने के लिए उसी ईश्वर के हवाले कर दिया।

कमली कभी अनारो की माँ नहीं बन पायी। हमेशा ही कोसना-कूटना जारी रखा। वह हर पल उसके मरने की दुआ करती। दर्द और उपेक्षा सहती अनारो से मौत भी जैसे रूठ गई। जिन कन्याओं को हम लक्ष्मी का अवतार मानते हैं। नवरात्रों में उन्हें पूजकर खाना खाते हैं। वह लड़की परिवार के लिए बोझ मानी जाती है। उसे लड़की होने की सज़ा दी जाती है, जैसे लड़की होना उसके हाथ में था।

एक तरफ़ जहाँ मनु चार साल की थी, तब माँ का साया सिर से उठ गया। माँ की मौत के बाद मनु से वाराणसी छूट गया और वह झाँसी की सरज़मीं पर अपना बचपन जीने लगी। वह तलवारबाज़ी, घुड़सवारी के साथ-साथ शिक्षा ग्रहण कर रही थी। मनु आने वाले इतिहास के लिए तैयार हो रही थी, जिसकी नींव उसके बचपन में युद्धकला के प्रति उत्कंठा से दिख रही थी।

दूसरी छोर पर पूरे घर का काम नन्ही अनारो ने अपने कंधों पर ले लिया। माँ के पैर फिर भारी है। इस बार मंदिर-मस्जिद सब जगह की धोक लगा दी है। दादी ने अपने तरीके से पता लगा लिया कि इस बार भाई ही आएगा। अनारो को कभी किसी बात की खुशी नहीं हुई। जब जन्म देते ही माँ ने ही मुँह मोड़ लिया, तो कौन-सी चीज़ अहमियत रखती। बापू नज़र उठाकर देखते नहीं, दादी को वो फूटी आँख सुहाती नहीं, ताई-चाची उसे बेटी कम नौकरानी ज्यादा समझते। चचेरे-ममेरे भाई-बहन अपना रौब उस पर ही जमाते। वह मुफ़्त की नौकरानी थी। अनारो ये करना, अनारो वो करना की आवाज़ें हवा में छलाँग लगाती रहती। रंग भी ईश्वर ने कोयले जैसा दिया था, तब तो कौन ही उसे पसंद करता। उसके होने या ना होने से किसी को कोई फ़र्क नहीं पड़ता था। एक वह थी जो अपने होने को ज़िंदा रखे हुए थी।

अनारो के पास वाले घर में जनरल काका रहते थे। ईस्ट

इंडिया कंपनी में जनरल का पद ऊँची पहुँच वाला माना जाता था। वह अंग्रेज़ों की सेवा में था। उसका बेटा जग्गू उर्फ़ जगदीश अनारो के साथ खेला करता; उसने उसे खेल-खेल में हिंदी और अंग्रेज़ी की वर्णमाला सिखा दी। उस दौर में स्त्री तो क्या पुरुष भी शिक्षा नहीं लेते थे। गाँव में जनरल का दबदबा था। उससे सभी डरते थे। जग्गू पास के मंदिर में बने पाठशाला में पढ़ने जाया करता था। वह चौथी जमात में था।

जग्गू की माँ नहीं थी, उसे जन्म देते ही वह चल बसी। बिन माँ का बच्चा अकेलेपन से जूझ रहा था। जनरल चाहता था कि जग्गू पढ़-लिखकर उच्च पद पर आसीन हो जाए। उन्हें इस बात से कोई फ़र्क नहीं पड़ता था कि वह गोरों की सेवा करे या हिंदुस्तान के किसी राजघराने की। वह अपना स्वहित देखता था। वह इस बात से कोई मतलब नहीं रखता था कि भारत में किसका शासन रहे, बस उसका परिवार सकुशल रहे। उनका दबदबा कायम रहे।

जग्गू जाने क्यों अनारो से बात करने आ जाया करता था। उसने अनारो को अंग्रेज़ी के कुछ शब्द भी सिखा दिए। अनारो अब किताब भी पढ़ लेती थी, मगर सबसे छिपकर। एक बार उसने कोयले से 'ज' अक्षर बना दिया। तब दादी ने उसे बहुत कूटा। "कोयले से आँगन खराब करने से अच्छा होगा कि कोयला सुलगाकर जलेबी बनाना ही सीख ले। यूँ आड़ी-तिरछी रेखाओं से कुछ नहीं बदलने वाला। छोरी की किस्मत पानी की कलम से लिखी जाती है; जिसे बह जाना ही है। तुझे पराये घर जाना है, कुछ रवायतें ही सीख लेगी, तो हमारी नाक नहीं कटेगी।"

जग्गू ने अनारो को अंग्रेज़ी हुकूमत और उसके अत्याचारों के बारे में बताया था। उसके अंदर शुद्ध भारतीय खून खौलता था, मगर वह अपने पिता के डर के कारण शांत रहता था। बड़े होकर क्रांतिकारी दल में शामिल होकर वह भारत को आज़ाद कराने का सपना देखा करता था। वह फिरंगियों को दिन-रात गालियाँ देता। हिन्दुस्तान हमारा घर है, हमारा मान है और हम अपने घर में किसी बाहरी व्यक्ति को बर्दाश्त नहीं कर सकते। मेहमान बनकर आए थे; इन्होंने तो हुकूमत ही कायम कर ली। अनारो मैं उन्हें किसी भी कीमत पर माफ़ नहीं करूँगा। अनारो पर भी उसकी बात का बेहद असर पड़ता। वह जब उसकी जोश, जुनून और इंकलाबी बातें सुनती, तब उसका मन अंग्रेज़ों के प्रति रोष से भर जाता।

जग्गू के पिता जहाँ फिरंगी भक्त थे, वही बेटा फिरंगी दुश्मन। उसकी बातें सुनकर अनारो का नन्हा मन अंग्रेज़ों के विरुद्ध हो गया। उसके मन में भी देशभक्ति हिलोरें लेने लगी। वह भी देश के लिए कुछ करना चाहती थी। उसका वश चलता, तो वह अंग्रेज़ों को कब का देश निकाला दे चुकी होती।

अनारो बुद्धि की धनी थी। वह उड़ती चिड़िया के पर भी गिन लेती थी। एक बार किसी को कुछ बनाते हुए देख लेती तो वह वैसा ही बनाकर दिखलाती, चाहे कोई भी पकवान हो या कोई स्वेटर। तभी तो जग्गू की बताई हुई शिक्षा को उसने कुछ ही दिनो में सीख लिया था। जग्गू के पढ़ाए हुए सबक उसे एक बार में ही समझ आ जाते थे। वह बिना किसी शिक्षालय गए बहुत कुछ सीख चुकी थी। धीरे-धीरे गृह-कार्य में भी दक्ष हो गई। उसने जीवन में कुछ नहीं चाहा, उसे चाहने का हक भी कहाँ मिला था। घर की देहरी और जग्गू की बातें ही उसकी दुनिया थी। घर के भीतर दहशत थी, यह वह जानती थी और घर के बाहर भी दहशत विचरती है; यह उसके अपने बताते थे।

उस दिन अनारो की तबीयत ठीक नहीं थी। इस बात पर कौन तहरीर देता। उसकी खाना बनाने की बिल्कुल भी हिम्मत नहीं हो रही थी, फिर भी जैसे-तैसे उसने पूरा भोजन तैयार किया। बेख्याली में आँच तेज़ होने के कारण दूध उबलकर चूल्हे पर गिर गया। दादी ने देखा, तो उनका खून भी उबल गया। उसकी माँ को कोसते हुए उस दिन न केवल अनारो को मारा गया, बल्कि खूब भला-बुरा सुनाया भी गया। अनारो के अंदर एक चुप जमा हो गई। वह जड़वत थी। केवल यही कसूर था उसका कि वह लड़का नहीं है। इसमें उसकी क्या खता है। क्या लड़की का जन्म लेना उसके हाथ में था। दादी और माँ भी तो एक स्त्री है। एक स्त्री होकर एक स्त्री से इतनी नफ़रत! वो भी अपनी ही कोख जायी संतान से। वह घुटन महसूस करने लगी। वह खुली छत पर आ गई।

उनका मन आज बेहद उदास था। बारह वर्ष की अनारो किससे गिला करे। किसको अपने मन की सुनाए। आसपास

नज़र दौड़ाने पर उसे कोई सुनने वाला नज़र नहीं आया। भरी दुनिया में उसे अपना कहने वाला कोई नहीं था। वह फूट-फूटकर रोने लगी। सितारों से भरा आसमान भी उसे बहला नहीं सका। वह ज़बरदस्ती अपनी साँसों के क्रम को चलने दे रही थी। आखिर खुद से लड़ते हुए वह निढाल हो गई।

वह सोचने लगी, मौसम भी बदल जाते हैं, पेड़ों की प्रकृति भी बदलती है, मगर उसकी किस्मत क्यों नहीं बदलती? जाने कब तक प्रश्नों की भूल-भुलैया में घूमती रहती। यदि जग्गू आकर उसे नहीं झिंझोड़ता। वह जग्गू को देखकर फफक पड़ी- "जग्गू अब मुझमें जीने की इच्छा नहीं है। मैं मरना चाहती हूँ, रोज़-रोज़ की ज़िल्लत नहीं सही जाती। कहीं से एक फक्की ज़हर ला दो।"

जग्गू का मन द्रवित हो गया। वह उसके लिए कुछ करना चाहता था, मगर मजबूर था। वह कुछ सोचकर बोला- "अनारो ईश्वर की इस कृति पर कभी उँगली मत उठाना। जीवन से पलायन करना कोई विकल्प नहीं। तुम अपने होने की अस्वीकृति से इतना भी मत टूटना कि फिर जुड़ ना पाओ। दुनिया से भले ही हार जाना, पर खुद से कभी मत हारना। तुम्हें भगवान ने नेक कार्य के लिए इस धरती पर भेजा होगा, समय आने पर तुम्हें करना होगा।"

चौदह वर्ष के जग्गू ने बारह साल की अनारो की नन्ही हथेली पर उम्मीद की नई किरण थमा दी। "दुनिया में क्या कोई ऐसा इंसान होगा, जिसके हिस्से में गम न आया हो या जिसे कभी कोई पीड़ा न पहुँची हो? ऐसा होना नामुमकिन है, क्योंकि यह मनुष्य मात्र की नियति है। वह सुख-दुख से आबद्ध है। मगर सच यह भी है कि जो लोग भाग्यवादी बनने की बजाय कर्मवादी बनते हैं, वही बदलाव के वाहक बनते हैं। तुम कर्म करती चलो, एक दिन सबकी आँखों का तारा बन जाओगी।" अनारो का नन्हा मन कुछ समझ पाता, तब तक कुटिल ताई की नज़र उन दोनों पर पड़ गई।

जग्गू और अनारो की दोस्ती को एक नया नाम मिल गया। उस ज़माने में लड़का-लड़की का बात करना तो दूर, देखना भी गुनाह होता था। यहाँ तो दोनों दोस्त थे। अनारो को फिर से बहुत मार पड़ी। इस बार उसे मारने वालों में उसके पिता भी शामिल थे। अनारो मूर्छित होकर गिर गई। इसी अवस्था में वह फिर भी नहीं समझ पाई कि उसे किस बात का दंड मिला है। किसी से बात करना क्या इतना बड़ा गुनाह है। नन्हा मन अब किसी भी आघात को सहने के लिए तैयार नहीं था। खैर, चीख-पुकार और मार-पीट का दौर तो थम गया, पर अनारो के दिल को हमेशा के लिए दर्द दे गया। वह बहुत बुरा दिन था और बेहद स्याह रात, आसमाँ के चाँद की चाँदनी में भी उसकी सिसकी महसूस की जा सकती थी। जग्गू की आवाज़ उसके कानों में गूंज रही थी, जीवन से पलायन करना विकल्प नहीं...

बात बढ़ती देख जनरल काका ने जग्गू को दूसरे गाँव भेज दिया। अब अनारो बिल्कुल अकेली थी। कभी-कभी जब वह बहुत हताश हो जाती, तो मिट्टी में उँगली से 'क''ख''ग' बनाकर मन बहला लेती। मन तो पहले ही मिट्टी हो चुका था।

दो दिन बाद उसके पिता झाँसी में उसकी तिगुनी उम्र के आदमी से उसका रिश्ता तय कर आये। बारह साल की अनारो और बत्तीस का पूरन...दादी ने एक पल को शंका ज़ाहिर की, तो पिता बोले-

नौवीं जाई संतान है, रंग तवा सूं कालो,
लक्षण इके नेक नहीं, कुण बांधगो माँडो।

वैसे भी अंटी में एक ढेला नहीं है माई, आठ छोरियों के विवाह में सब खाली हो गया। पूरन ने कोई माँग ना रखी है। उसके बच्चों की यह माँ बन जाए, उसके लिए यही बहुत है। अब तो इसके जीवन की नैया पार लग जाएगी और हम सब भी गंगा नहा लेंगे। दादी ने एक पल को सोचा, छोरी की जात की यही नियति होती है, उसका भाग्य उसका सुख...हाँ करने में ही हम सब की भलाई है। माँ का मन भी नहीं पसीजा। जब से उसके छोटे भाई का जन्म हुआ है, तब से माँ का ध्यान दूसरी संतानों पर कभी गया ही नहीं। रुखी-सूखी खाने वाली और उतरन से तन ढकने वाली अनारो तो वैसे भी आँखों की किरकिरी थी। सो उसे घर से निकालने के लिए विवाह से बेहतर बहाना और क्या होता।

हमउम्र बच्चों की माँ बनकर अनारो झाँसी की दुनिया में आ गई। यहाँ आकर वह यह कभी समझ नहीं पाई कि उसकी पहचान क्या है? आज़ादी सिर्फ़ किताबों या किस्सों में पाई जाती है। उसे ऐसा लगा, जैसे एक कैदी को एक जेल से

निकालकर दूसरे जेल में डाल दिया हो। वहाँ माता-पिता की ज़िल्लत थी और यहाँ पर पति का शिकंजा... अंतर तो कुछ भी नहीं था। यहाँ तो हैवानियत का गज़ब मंज़र भी था, अनारो यहाँ से भाग जाना चाहती थी, मगर जाएँ कहाँ...कोई भी ऐसी जगह नहीं थी, जहाँ वह मुँह छिपा पाती।

काले रंग की भूतहा दिखने वाली अनारो के पास उसके सौतेले बच्चे कभी नहीं आए। उन्होंने उसे कभी माँ का दर्जा दिया ही नहीं। वे लोग उसे पिता की दूसरी औरत ही समझते थे। बच्चे हमेशा उसका उपहास उड़ाते। ताना देते, व्यंग्य करते। पूरन ने अनारो की कच्ची उम्र में ही अपने पुरुषत्व को जाँच लिया था। वह चीखती रही और वो पति होने का दंभ भरता रहा। सब होते हुए भी ईश्वर मूक बनकर देखता रहा, पत्थर हुए इंसानों का तो भला क्या दिल पसीजता। अनारो अब हर रोज़ नयी परीक्षा से गुज़रती। किशोर होती अनारो को समझ आ गया था कि पति के रूप में उसे हैवान मिला है। वह अपने ही खोल में सिमटती चली गई। रहे-सहे रंगीन सपने सब ध्वस्त हो गए। कुँवारी कन्या बाईस वर्षीया सौतेली माँ में तब्दील हो गई। धीरे-धीरे वह गृहस्थी में रमने लगी और धीरे-धीरे गृहस्थी के सारे गुण अपना लिए।

आज अनारो से जाने कैसे सब्ज़ी में नमक ज्यादा पड़ गया, तो पूरन ने चौके में थाली उठाकर फेंक दी। यही नहीं, जलती हुई लकड़ी से उसने जो किया, वह माफ़ी के काबिल नहीं था। चारों तरफ़ का तांडव सीने में समेटकर अनारो बिसुर रही थी। उसके आँसू पोंछने वाला उस झाँसी में कोई नहीं था। तन के ज़ख्मों से ज्यादा मन के ज़ख्म टीस देते हैं। स्नेह, ममता, प्यार, वात्सल्य क्या होता है; यह तो वह कभी जान ही नहीं पाई।

कभी-कभी खाली वक्त उसे काटने को दौड़ता था और इसी वक्त में उससे सबसे ज्यादा कोई याद आता, तो वह था 'बचपन का बाल सखा'। जग्गू को उसने दोबारा कभी नहीं देखा। कहाँ होगा, कैसा होगा, कौन जानता था? पीहर में भी किसी से पूछने की हिम्मत कभी नहीं कर पाई। एक दो बार उसने पीहर के घर से पड़ोस में झाँककर देखना चाहा, तो वहाँ सन्नाटा पसरा था। क्या कभी उसे अनारो की याद आई होगी। यह सवाल वह खुद से करती। अक्सर वह उसके लिए दुआ करती कि जग्गू जहाँ भी रहे, सदा खुश रहे, खूब नाम करे और अपने मकसद में कामयाब हो। जैसे मैं जी रही हूँ, वैसे तुम्हें ज़िंदगी कभी ना मिले।

गाय के रंभाने से अनारो की तंद्रा भंग हुई। कोई पहली बार हुआ है यह सब, रोज़ का मसला है। पूरा दिन ज़ाया कर दिया। हम स्त्रियाँ कुछ ऐसी होती हैं; किसी भी चीज़ के लिए खुद को ही गुनहगार ठहरा देती हैं। खुद को डाँट पिलाकर अनारो ने खुद के आँसू पोंछे और अपने मन को दुरुस्त किया। गाय को चारा पानी दिया। घर समेटा। औंधी थाली को उठाया। रसोई साफ़ की। आँगन बुहारा। साँझ की दिया-बाती कर भगवान को नमन किया। ड्रम से एक बाल्टी पानी निकालकर हाथ-मुँह धोये। अब उसका चित्त कुछ अच्छा हो गया।

शाम का धुंधलका गहराने लगा। पूरन अब घर नहीं आएगा। जब-जब वह घर में झगड़ा करता है। वह शाम को घर नहीं आता। चला जाता है पान बाई के घर पान खाने, पान खाने से मुँह लाल हो जाता है और दिल हरा। कुरूप अनारो को कुछ देर के लिए चैन मिल जाता है, वैसे अनारो की क्या इच्छा और क्या अनिच्छा। पूरन को इससे कोई मतलब नहीं था।

वह घर की देहरी पर बैठ गई। धीरे-धीरे आसमान में रात चढ़ रही थी। सितारे और चाँद बराबर अपनी उपस्थिति दे रहे थे। दूर कहीं कोलाहल में कुछ अस्फुट स्वर सुनाई दे रहे थे। कभी-कभी फिरंगियों के विरुद्ध नारेबाज़ी होती है या फिर उनके विरुद्ध मार्च जुलूस निकाला जाता है। कभी-कभी अनारो चुपके से इन सभाओं को सुनकर आती थी, तब उसके अन्दर देशभक्ति ज्यादा हुड़कती।

उसके दाएँ तरफ़ रहने वाली पड़ोसन मुँह छुपाए जल्दी-जल्दी चल रही थी। "क्या हुआ काकी? ज़रा दम तो ले, इतना हाँफ़ क्यों रही हो। कहाँ भागे जा रही हो?" अनारो ने अपनी पड़ोसन को टोका।

कोई नहीं बहुरानी, कुछ सुना तो मन खटक रहा है। काकी ने ज़रा-सा घूँघट उठाकर उसकी तरफ़ देखते हुए कहा।

"क्यों काकी? ऐसा क्या सुन लिया" अनारो ने हैरत से

फिर पूछा।

सुनने में आया है कि गोरों के विरुद्ध बड़ा संग्राम होने वाला है। बड़ी लड़ाई होने वाली है। राम जाने आगे क्या होगा। बड़ी मार-काट होगी। न जाने कितने ही लोगों का लहू बहेगा। अंग्रेज़ों ने झाँसी पर आधिपत्य जमाने का फरमान सुनाया है, वो मुए बोलते हैं, जो राजा निस्संतान मरेगा, उसके राज्य को अंग्रेज़ी साम्राज्य में मिला दिया जाएगा। उन्होंने झाँसी को हड़पने की ठान ही ली है।

"अरे! ऐसे कैसे?" तेज़ स्वर में अनारो बोली। जैसे उसके घर पर अंग्रेज़ों ने कब्ज़ा कर लिया हो।

"महारानी ने तो कह दिया है कि झाँसी नहीं दूँगी। चाहे आसमाँ-ज़मीं एक हो जाएँ, लेकिन झाँसी पर किसी की आँच नहीं आने दूँगी। लक्ष्मी बाई गुस्से में भरी हुई है। अगर उसकी झाँसी को कुछ भी हुआ, तो अंग्रेज़ों की ईंट-से-ईंट बजा देगी। धूर्त अंग्रेज़ झाँसी पर बुरी नज़र रखे हुए हैं। वे झाँसी को किसी भी कीमत पर नहीं छोड़ने वाले।" काकी हाथ नचाते हुए बोलती चली गई।

"यह तो बहुत बुरी खबर है काकी। मगर अपनी रानी भी कुछ कम साहसी नहीं है, बड़ी निडर है। कुछ तो करेंगी वे। यूँ हाथ-पर-हाथ धरकर बैठने वाली नहीं है। रानी की रगों में मराठी खून बहता है। वे इतनी आसानी से हार नहीं मानने वाली। साक्षात् भवानी की अवतार है।" अनारो ने रानी का गुणगान किया।

"रानी की बहादुरी धरी रह जाएगी बहुरानी, मर्दों के आगे औरत जात कहाँ टिकी है, फिर यहाँ तो पग-पग पर दगाबाज़ी बैठे हैं। एक तो मर्दों की आँखों में वैसे ही वह किरकिरी है। रानी राज सिंहासन पर क्यों विराजमान हैं? औरत जात के राज्य में इनकी तो....दूसरा उनके पुरुषत्व को चोट लगती है। ये लोग तो मौका ढूँढ रहे हैं कब रानी को राजगद्दी से बेदखल करे। सबके सब रानी से प्रतिशोध लेने को उतारू हैं। एक बात और बहुरानी, रानी की सेना में सैनिकों की संख्या भी इतनी नहीं है कि वे फिरंगियों से मुकाबला कर सके। आसपास के रजवाड़े भी शायद ही मदद करे। इसीलिए रानी ने एलान किया है-पुरुष ना सही, स्त्रियों को सेना में भर्ती करे।" काकी मुँह ढापे ही इतना कुछ बोलती चली गई।

"स्त्री भी किसी से कम नहीं होती, जब अपनी पर आ जाए, तो छठी का दूध याद दिला दे काकी। वक्त पड़े, तो काली माँ बन जाती है।" अनारो भी अपना पल्लू ठीक करते हुए बोली।

"सेना में स्त्रियों की भर्ती होना कोई हँसी-खेल नहीं है, बहुरानी। एक तो घर की औरतों में इतना जिगरा कहाँ कि वे किसी से लड़ सकें। कमज़ोर दिल और चूड़ी पहनने वाले हाथ तलवार पकड़ पाएँ, यह भी संशय है। दूसरे यह मर्द जात घर का चूल्हा भी अपनी मर्ज़ी से जलाने देते हैं, भला तलवार थामने देंगे; उसी तलवार से गला न काट दे।"

"कैसी विडम्बना है और विवशता भी। हम लोग अपने मन की कर ही नहीं पातीं। हर हाँ के लिए मुँह ताकना पड़ता है काकी।" अनारो रुआँसी होकर बोली।

"शाम हो या नदी, शेरनी हो या चिड़िया, ईश्वर ने स्त्री को पुरुष के आधीन ही रखा है बहुरानी। पता नहीं औरतों की किस्मत कब बदलेगी।"

"हाँ काकी, ईश्वर भी पुरुष है, स्त्री मन की भावनाएँ कैसे समझेगा।"

दूर गूँजता कोलाहल पास आ गया। काकी ने देखा तो फिर से घूँघट में मुँह छुपाकर वहाँ से चली गई।

अनारो इस बात को नज़रंदाज़ नहीं करना चाहती थी। मगर खुद के बचाव के लिए वह अंदर से दरांती उठा लाई। कभी-कभी इस भीड़ का फ़ायदा कुछ असामाजिक लोग उठा लेते थे। वे स्त्रियों से छेड़छाड़ करते थे। दरवाज़े पर खड़ी अनारो को देखकर वह टुकड़ी उसकी तरफ़ ही आ गई। उसकी तरफ़ मुताखिब होकर एक सज्जन व्यक्ति बोले- "रानी ने ऐलान किया है। सैनिक सेवा में जो स्त्री जाना चाहे, भर्ती होना चाहे, तो हो सकती है। तुम या तुम्हारे परिवार की कोई भी महिला सदस्य आना चाहे, तो बता दो।" अनारो की आँखें चमक उठीं।

आखिरी उसे जग्गू की बात याद आ गई, तुम्हें किसी नेक काम के लिए ही भेजा गया है। उसके मन में देशभक्ति की तरंगें उठने लगीं, जब रानी अपने राज्य के लिए लड़ सकती है, तब क्या वह अपना कुछ योगदान नहीं दे सकती, यह देह मातृभूमि पर न्यौछावर हो जाए, तो जीवन ही सार्थक हो

जाएगा।

उसने 'हाँ' बोलने के लिए जैसे ही मुँह खोलना चाहा, पीछे से एक कड़क आवाज़ सुनाई दी। "औरतें भी भला कभी सैनिक बनी है। अरे इन्हें घर का चूल्हा-चौका ही संभालने दो। अनारो सेना में भर्ती नहीं होगी, मेरे जीते जी तो कभी नहीं...."पूरन तल्ख स्वर में बोला।

सैनिक टुकड़ी के लिए यह पहला जवाब नहीं था। उन्हें तो हर घर से यही जवाब मिल रहा था और उन्हें इस घर से भी यही अपेक्षा थी। वे आगे जैसे ही जाने के लिए मुड़े थे कि अनारो ने उन लोगों को आवाज़ लगाई-"ज़रा एक मिनट ठहरें आप लोग", उसने अपने इष्ट को मन-ही-मन प्रणाम किया और पूरी हिम्मत बटोरकर दंराती से पूरन की गर्दन पर वार कर दिया। रक्त के उड़े फव्वारे ने अनारो को सदा सुहागन का आशीर्वाद दे दिया।

**goyalshobha03@gmail.com**

# स्नेह सरिता सूख गई

**डॉ. जयंती प्रसाद नौटियाल**
**उत्तराखंड, भारत**

हिमाच्छादित पर्वत शिखरों पर जब बड़े-बड़े हिमखंड सूर्य की ऊष्मा से पिघलने लगते हैं, तब उनसे जो जलधारा निकलती है, वह नदी का रूप ले लेती है, इसे ही हिमानी या हिमनद कहा जाता है। उत्तराखंड राज्य में भी ऐसे कई हिमनद हैं। कुछ हिमनद तो लंबे समय तक जलधारा प्रवाहित कराते रहते हैं, लेकिन कुछ हिमखंड अपना संपूर्ण अस्तित्व मिटाकर जलशून्य होकर समाप्त हो जाते हैं और उनकी जलधारा जो हिमानी बनकर नदी बन गई थी, वह भी सूख जाती है। यह कुछ ऐसा ही है, जैसे मनुष्य अपने जीवन में संघर्ष करते-करते कतरा-कतरा जीवन जीकर शून्य में विलीन हो जाता है।

यह कहानी एक जीवंत हिमानी की है, अर्थात् कहानी का कालखंड सात दशक पहले का है। आज से 70 साल पहले कफ़नी हिमखंड बहुत विस्तीर्ण था। यह हिमखंड गढ़वाल एवं कुमाऊँ की सीमा पर, नन्दा देवी के दक्षिणी छोर पर हिमानी का मुख्य स्रोत था। इसी हिमानी से निकली नदी के किनारे बसे समीपवर्ती गाँव के एक साधारण परिवार में एक बालिका का जन्म हुआ। जन्म के समय ही उसका संपूर्ण शरीर बहुत ही गोरा था, सुंदरता ऐसी कि वह नन्ही परी-सी लगती थी। वैसे तो प्रायः उत्तराखंड के अधिकांश निवासी गोरे रंग के होते हैं, लेकिन इस नवजात शिशु की तो बात ही कुछ और थी। ऐसा लगता था, मानो बर्फ़ की सारी सफ़ेदी इसी बालिका में समा गई हो। माता-पिता ने बड़े प्यार से इसका नाम हिमानी रखा। हिमानी माता-पिता की दूसरी संतान थी। पहला बड़ा बेटा था, जो तीन साल का था। उसका नाम हिमवंत था। हिमवंत हिमानी को बहुत प्यार करता था। पाँच साल का होते ही हिमवंत को विद्यालय में पढ़ने भेज दिया गया। हिमवंत खेलकूद में अच्छा था, लेकिन पढ़ाई में उसका मन नहीं लगता था।

हिमानी बचपन से ही बहुत ही कुशाग्र बुद्धि की थी। बच्चों के लक्षण बचपन में ही उसके भविष्य का संकेत दे देते हैं। हिमानी जब थोड़ी बड़ी हुई, तब गाँव के सरकारी प्राथमिक विद्यालय में उसे प्रवेश दिलाया गया। हिमानी की शिक्षा ग्रहण क्षमता आश्चर्यचकित कर देने वाली थी। शिक्षक उसकी बुद्धिमत्ता से बहुत प्रभावित थे। पुस्तक को एक बार पढ़ लेने पर उसे सब याद हो जाता था। कक्षा में वह प्रथम आती थी। प्राथमिक और माध्यमिक शिक्षा गाँव से पूरी करने के बाद अब कॉलिज जाने की बारी आई। कक्षा 1 से 12 तक उसने विशेष योग्यता से परीक्षाएँ उत्तीर्ण की थी, इसलिए उसे अच्छे-से-अच्छे महाविद्यालय में प्रवेश मिल सकता था। माता-पिता हिमानी से बहुत खुश थे, लेकिन अपने बेटे हिमवंत से वे दुखी थे, वे बार-बार हिमानी का उदाहरण देकर उसे लज्जित करते थे, ताकि वह भी पढ़ाई में अच्छे अंक लाए, परंतु वह बुरी संगत में पड़ गया और नशा करने लगा। दसवीं में भी वह दो साल असफल हुआ और अब बारहवीं में उसने हिमानी के साथ ही परीक्षा दी, लेकिन असफल हो गया। माता-पिता ने

उसे इस पर बुरा-भला कहा, पिताजी ने तो दो थप्पड़ भी जड़ दिए। इससे दुखी होकर वह घर से भाग गया। उसके बाद किसी को पता नहीं कि वह कहाँ है। जीवित भी है या नहीं। हिमानी को कई बार यह लगता था कि उसकी कुशाग्र बुद्धि होने के कारण ही बड़े भाई को अपमानित होकर घर छोड़ना पड़ा। इसके लिए वह खुद को ही दोषी मान बैठी थी। उसने मन-ही-मन संकल्प लिया कि अब वह ही पूरे जीवन अपने माता-पिता का सहारा बनेगी।

उस ज़माने में डॉक्टर या इंजीनियर, बड़े घरों के बच्चे ही बनने का सपना देख सकते थे, सुविधाएँ बहुत सीमित थीं। बड़े-बड़े कोर्सों के लिए खर्च भी बहुत होता था और कॉलिज भी बहुत दूर होते थे। साधारण मध्यम वर्ग के विद्यार्थी बी. ए., बी. एस-सी, बी. कॉम आदि करते थे। हिमानी भी मध्यम वर्गीय परिवार से थी, इसलिए उसने भी आगे बी. एस-सी करने की ठानी, उन दिनों देहरादून ही उच्च शिक्षा का प्रमुख केंद्र माना जाता था। हिमानी के माता-पिता ने भी देहरादून के एक प्रतिष्ठित कॉलिज में हिमानी को प्रवेश दिला दिया और कॉलिज के ही छात्रावास में उसके रहने की व्यवस्था कर दी।

गाँव की पृष्ठभूमि से आए युवक-युवतियों को नए परिवेश में स्वयं को ढालने में शुरू-शुरू में कठिनाई होती है, शहरों की चकाचौंध भरी ज़िंदगी में कुछ युवक-युवतियाँ भटक जाते हैं, लेकिन जिनका लक्ष्य पहले से निर्धारित हो, वे नहीं भटकते हैं। हिमानी भी ऐसी ही युवती थी, उसका लक्ष्य पहले से ही निर्धारित था। वह उच्च शिक्षा प्राप्त करके प्रोफ़ेसर बनना चाहती थी। उसका चिंतन यह था कि उसके जैसे प्रतिभावान युवक-युवतियों के लिए यह प्रोफ़ेशन ही उपयुक्त है। प्रतिभावान अध्यापक ही योग्य वैज्ञानिकों, योग्य प्रोफ़ेशनलों, योग्य साहित्यकारों और कलाकारों को तैयार करते हैं। सही अर्थों में अध्यापक ही राष्ट्र-निर्माण में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं। हिमानी इसी लक्ष्य को लेकर अध्ययन कर रही थी। उसने अपने अध्ययन के समय का सदुपयोग किया, जब क्लास होती थी, तब वह बड़े मनोयोग से प्राध्यापकों का व्याख्यान सुनती और नोट्स तैयार करती और जब पीरियड खाली होता, तब सीधे पुस्तकालय में जाकर अध्ययन करती। बाहर की दुनिया से अलग-थलग वह अपनी ही दुनिया में व्यस्त थी। इसी तरह लगातार अपने लक्ष्य की ओर बढ़ते हुए उसने बी. एस-सी की परीक्षा में सर्वाधिक अंक प्राप्त करके विश्वविद्यालय में सर्वोच्च अंक प्राप्त करके स्वर्ण पदक प्राप्त किया।

अब बारी थी आगे पढ़ने की ....। विश्वविद्यालय ने उसे उच्च शिक्षा के लिए छात्रवृत्ति प्रदान की और उसने उसी महाविद्यालय में एम. एस-सी (भौतिक विज्ञान) में प्रवेश ले लिया। लगभग एक महीने बाद उसकी कक्षा में एक बंगाली युवक ने प्रवेश लिया। उसके पिता राष्ट्रीयकृत बैंक में महाप्रबन्धक पद पर कार्यरत थे। उनका कोलकाता (बंगाल) से देहरादून स्थानांतरण हुआ था, बैंकों में उच्च अधिकारी वर्ग का स्थानांतरण पूरे विश्व में कहीं भी हो सकता है, इसलिए बैंक कर्मी कहीं भी बेहिचक सेवा करने को तैयार रहते हैं। उस लड़के के पिता सपरिवार देहरादून आ गए। वैसे भी बंगाली समुदाय को देहरादून बहुत पसंद है। पहले से भी सैकड़ों बंगाली परिवार देहरादून में बसे हुए थे। अतः उसके पिता भी नौकरी के अंतिम दौर में अर्थात् अवकाश-प्राप्ति के बाद यहीं बसने के इरादे से यहाँ आए थे। इस लड़के का नाम उत्पल बनर्जी था। यह जानकारी उत्पल ने कक्षा में अपने परिचय के दौरान सभी को दी थी। उसने यह भी बताया कि वह कलकत्ता विश्वविद्यालय का टॉपर है और उसने विश्वविद्यालय में सर्वाधिक अंक प्राप्त किए हैं।

पहली बार हिमानी ने किसी युवक को इतने ध्यान से देखा, सुगठित शरीर और साँवला चेहरा, मुखमंडल पर आत्मविश्वास का आभा-मंडल देदीप्यमान हो रहा था। वह उसे देखती रही और उसके परिचय को ध्यान से सुनती रही। उसे एक चिंता ने घेर लिया, वह तो भौतिकी में विश्वविद्यालय टॉप करना चाहती थी, लेकिन उसके आगे यह युवक एक चुनौती बनकर आ गया है, इसलिए वह न चाहते हुए भी उसके बारे में सोचने लगी। युवा-अवस्था, उम्र का वह दौर होती है, जब आप किसी के बारे में ज्यादा सोचने लगते हैं, तब वह स्वतः आपके मनोमस्तिष्क पर धीरे-धीरे अधिकार जमाने लगता है, कुछ इसे प्यार का नाम देते हैं और कुछ इसे सहज आकर्षण का ....। हिमानी ईर्ष्या वश उत्पल के बारे में सोचने लगी। उसे वह प्रबल प्रतिद्वंदी लगने लगा था।

कक्षा में प्रोफ़ेसर जब कोई प्रश्न पूछते, तब सबसे पहले हिमानी ही उत्तर देती थी और उसका उत्तर हमेशा सही होता था। इसलिए कई बार तो प्रोफ़ेसरों को कहना पड़ता था कि हिमानी को छोड़कर कोई अन्य इस प्रश्न का उत्तर दे। आज व्याख्यान शुरू होते ही प्रोफ़ेसर शुक्ल ने विद्यार्थियों को संबोधित करते हुए कहा कि आज हम बहुत ही महत्त्वपूर्ण विषय पर चर्चा करेंगे। इस चर्चा को शुरू करने से पहले मैं आपसे यह जानना चाहूँगा कि आप लोगों में से कोई बता सकता है कि भौतिक विज्ञान का सिद्धांत "एक ही समय में बिल्ली मरी हुई भी है और ज़िंदा भी" किसका है और यह सिद्धांत क्या बताता है? जिसे इसका उत्तर मालूम हो, वह हाथ खड़ा करे।

यह प्रश्न सुनते ही कक्षा में सन्नाटा छा गया। सभी विद्यार्थी एक-दूसरे की ओर देखने लगे। पूरी क्लास का ध्यान हिमानी की ओर था, लेकिन उसने भी हाथ खड़ा नहीं किया, तो सबको लगा कि यह सवाल शायद भौतिकी से संबंधित ही नहीं है।

प्रोफ़ेसर शुक्ल ने आखिरी बैंच के आखिरी कोने पर बैठे विद्यार्थी को हाथ खड़ा किए हुए देखा, तो उसे संबोधित करते हुए कहा कि आज पहली बार आखिरी बैंच वाले किसी विद्यार्थी ने हाथ उठाया है। उन्होंने विद्यार्थी का नाम पूछा। उसने बड़ी विनम्रता से अपना नाम बताया। शिक्षक ने उसके विनम्र स्वभाव को देखते हुए कहा "हाँ, तो उत्पल बताओ, आप इस सिद्धांत के बारे में क्या जानते हो?" उत्पल ने धाराप्रवाह बोलते हुए कहा कि सर, यह सिद्धांत ऑस्ट्रिया के भौतिकीविद इर्विन श्रोडिंगर (Erwin Shrodinger) द्वारा 1935 में प्रतिपादित 'क्वान्टम भौतिकी' का सिद्धांत है। इर्विन श्रोडिंगर को "क्वान्टम फ़िज़िक्स" का जनक माना जाता है। उनका बिल्ली वाला विरोधाभासी सिद्धांत यह दर्शाता है कि यदि किसी छोटे बक्से में बिल्ली को बंद कर दिया जाए और उसमें ऐसी व्यवस्था कर दी जाए कि थोड़ी-सी हरकत होते ही बिल्ली मर जाए। इस बक्से में बंद बिल्ली के बारे में बिना ढक्कन खोले यदि किसी से पूछा जाए कि बिल्ली अभी ज़िंदा है या मर गई? इस पर कुछ कहेंगे कि बिल्ली मर गई, क्योंकि उसको मारने की अचूक व्यवस्था बक्से में की गई है, जबकि कुछ कहेंगे कि ज़रूरी नहीं कि बिल्ली मर ही गई हो, अगर अंदर की व्यवस्था फ़ेल हो गई हो, तो बिल्ली ज़िंदा ही होगी। इस प्रकार एक ही समय में बिल्ली ज़िंदा भी है और मरी भी है।

प्रोफ़ेसर शुक्ल बहुत खुश थे। उन्होंने उत्पल की तारीफ़ करते हुए कहा कि तुम तो प्रतिभावान विद्यार्थी हो, पीछे क्यों बैठे हो ? उत्पल ने कहा कि कॉलिज में मेरा दाखिला सबसे बाद में हुआ। तब तक सब बैंचों पर सभी विद्यार्थी अपनी-अपनी जगह बना चुके थे। अंत में यही स्थान खाली था, तो मैं यहीं बैठने लगा।

आज उत्पल के उत्तर ने उसे पूरी क्लास का हीरो बना दिया था। इस घटना से हिमानी काफ़ी परेशान थी। अब तक वही पूरी क्लास में सबसे प्रतिभावान मानी जाती थी, लेकिन आज उसकी प्रतिभा को चुनौती मिल गई थी। उसे उत्पल के ज्ञान से ईर्ष्या होने लगी। उसके मन में नकारात्मक विचार आने लगे, लेकिन उसने इन विचारों को झटक दिया और सोचने लगी जो हमसे ज्यादा जानता हो, उससे कुछ सीखने में कोई बुराई नहीं। मैं कल उत्पल से पूछूँगी कि वह कैसे पढ़ाई करता है?

अगले दिन कॉलिज में चौथा पीरियड खाली था। सामान्य दिनों में तो हिमानी खाली पीरियड में पुस्तकालय चली जाती थी, वह आज उत्पल से मिलने का पक्का निश्चय करके आई थी। तीसरा पीरियड समाप्त होते ही वह सीधे ही क्लासरूम के दरवाज़े के पास चली आई, उत्पल बाहर निकल ही रहा था कि हिमानी ने उससे रुकने का अनुरोध किया।

उत्पल ने देखा एक बहुत ही सुंदर छरहरी और गोरी, लवंग लता-सी सुकोमल क्लास फ़ेलो उसे ही संबोधित कर रही थी। युवा अवस्था का आकर्षण तो वैसे भी बहुत प्रबल होता है, उस पर इतनी सुंदर अप्सरा-सी लड़की खुद उससे बात करना चाहती है, यह जानकर उसका दिल तेज़ी से धड़कने लगा। उसने उस लड़की के पास जाकर पूछा, कहिए आपको क्या कहना है। हिमानी ने साहस जुटाकर उत्पल को रोक तो दिया, लेकिन उसके पास आते ही अगले ही क्षण शर्म से उसके गोरे-गोरे गाल लाल हो गए। उसने पहली बार किसी अनजान लड़के से सीधे ही बात की थी। अब तक उसने सिर्फ़ अपनी किताबों और अपने लक्ष्य पर ही ध्यान केन्द्रित किया

था। इसलिए किसी से मिलना-जुलना उसे पसंद न था, क्योंकि इस दोस्ती में समय बहुत बर्बाद होता है। दोस्ती के लिए पूरी ज़िंदगी पड़ी है, इसलिए वह किसी से ज्यादा बात नहीं करती थी। इसलिए आज वह किसी अनजान लड़के से बात करने में खुद को असहज पा रही थी। हिमानी ने खुद को संभालते हुए कहा कि मैं आपसे पढ़ाई के बारे में कुछ बातें करना चाहती हूँ। आपके पास थोड़ा समय हो, तो कॉलिज की कैंटीन में बैठकर बातें कर सकते हैं। उत्पल ने हामी भर दी।

हिमानी उसे कैंटीन में ले गई। कॉलिज की कैंटीन काफ़ी बड़े क्षेत्र में फैली थी। चारों ओर पेड़ों की जड़ पर चबूतरे बने थे। हिमानी ने एक छतनार पेड़ के नीचे के चबूतरे पर अपनी किताबें रखते हुए उत्पल को बैठने को कहा और कैंटीन के वेटर को दो चाय लाने को कहा। उत्पल मशीन की भाँति हिमानी के हर आदेश का पालन-सा कर रहा था। वह मन-ही-मन खुश भी था और डरा हुआ भी था, वह सोच रहा था कि यह लड़की न जाने क्या पूछने उसे यहाँ लायी है।

हिमानी ने बात शुरू करते हुए कहा कि मेरा नाम हिमानी है। मैंने भी विश्वविद्यालय में सर्वोच्च अंक लेकर बी. एस-सी की है। मैं एम. एस-सी में भी टॉप करना चाहती हूँ। आपकी विषय पर पकड़ मज़बूत है। मैं आपसे पढ़ाई के गुर सीखना चाहती हूँ, आप किस प्रकार पढ़ाई करते हैं? मैं, वास्तव में, अपने विषय में प्रोफ़ेसर बनना चाहती हूँ। मेरा उद्देश्य यह नहीं कि मैं आपको हराना चाहती हूँ, बल्कि मैं तो आपसे सीखकर अपने ज्ञान में बढ़ोत्तरी करना चाहती हूँ।

उत्पल ने राहत की साँस ली। उसे इस बात का विश्वास हो चुका था कि यह लड़की सही अर्थों में ज्ञान पिपासु है। उत्पल को इतनी सुंदर लड़की के गुरु बनाने पर स्वयं पर गर्व हुआ। उसने कहा कि उसके पिता जी ने उसे ज्ञान-प्राप्ति का एक फ़ॉर्मूला बताया था, वह उसी पर चल रहा है। उसने अपने जीवन में इस फ़ॉर्मूले को हमेशा सही पाया है। हिमानी को बहुत खुशी हुई कि ज्ञान-प्राप्ति का कोई आसान फ़ॉर्मूला उपलब्ध है, उसने अनुनय करते हुए कहा कि प्लीज़ मुझे भी वह फ़ॉर्मूला बता दीजिए।

उत्पल ने शायराना अंदाज़ में कहा :

मिटा दे अपनी हस्ती को, अगर कुछ मर्तबा चाहे।
कि दाना खाक में मिलकर गुल-ओ-गुलज़ार होता है।।

उत्पल ने कहना शुरू किया कि संसार में कुछ पाने के लिए कुछ खोना पड़ता है, जिस प्रकार बीज खुद को जब मिट्टी में मिला देता है, तब ही वह फूलों से भरा उपवन बनता है। पढ़ाई में भी यही बात लागू होती है, हमारे ग्रंथों में स्पष्ट लिखा है कि विद्यार्थी को कैसा होना चाहिए। हम अपनी संस्कृति भुला बैठे हैं, इसलिए हम दिशा विहीन हैं। आपने संस्कृत के सुभाषितों में पढ़ा ही होगा :

काक चेष्टा, बको ध्यानम, स्वान निद्रा तथैव च।
अल्पहारी, सदाचारी, विद्यार्थी पंच लक्षणम् ॥

विद्यार्थी को कौवे की तरह प्रयासरत और सचेष्ट रहना चाहिए। उसके स्वभाव में फुर्तीलापन होना चाहिए, विद्यार्थी को बगुले की तरह ध्यान लगाना चाहिए। जैसे बगुला पानी में नज़र गड़ाए रहता है और जैसे ही मछली पास आती है, तुरंत उसे पकड़कर निगल जाता है, वैसा ही ध्यान अपनी पुस्तकों पर लगाए रखो और उसमें से सारे ज्ञान को आत्मसात कर लो। विद्यार्थी को गहरी नींद में नहीं सोना चाहिए, उसकी नींद कुत्ते की तरह होनी चाहिए, ज़रा-सी आहट पर जागृत हो जाना चाहिए, कई विद्यार्थी परीक्षा काल में भी ऐसे सोते हैं, मानो घोड़े बेचकर सो रहे हों। विद्यार्थी को कम भोजन करना चाहिए, ज्यादा खा लेने से एक तो नींद बहुत आती है, दूसरा आलस्य हावी हो जाता है। ये दोनों ही विद्यार्थी-जीवन के शत्रु हैं। सदाचारी होना ज्ञान-प्राप्ति में बहुत सहायक होता है। अनाचार से तो मन गलत जगह भटकता है। कुछ विद्वान यह भी मानते हैं कि सदाचारी के साथ-साथ विद्यार्थी को "गृह-त्यागी" भी होना चाहिए, पहले ज़माने में गुरुकुल व्यवस्था में विद्यार्थियों को गुरु के आश्रम में ही रहना अनिवार्य था, जैसे आजकल छात्रावास में विद्यार्थी रहते हैं। मैंने तो बस अपने जीवन में ये दोनों फ़ॉर्मूले अपनाए हैं और मुझे सफलता भी मिली है।

हिमानी मुग्ध भाव से सुनती जा रही थी। अब तक कैंटीन वाला चाय के दो कप लेकर आ गया था। चाय के साथ-साथ चर्चा चलती रही। हिमानी ने कहा कि आपने यह फ़ॉर्मूला जो बताया है, पढ़ा तो हमने भी था, लेकिन कभी अपनाकर नहीं देखा, अब आपने बताया कि आप इसे अपना चुके हैं और यह

सफल रहा है, तो मैं अवश्य इनको अपनाऊँगी। हिमानी ने उत्पल से कहा कि क्या आप पाठ्यक्रम पर ही फ़ोकस करते हैं? या अन्य सामग्री का भी अध्ययन करते हैं। उत्पल ने कहा कि पाठ्यक्रम ज्ञान को सिर्फ़ एक सीमा में बाँधता है। लेकिन हमें पाठ्यक्रम या पाठ्यपुस्तक तक ही सीमित नहीं रहना चाहिए। जितना आप अध्ययन करेंगे आपके ज्ञान में उतना ही विस्तार होगा। नई-नई खोज और नई जानकारियाँ, शैक्षणिक एवं शोध पत्रिकाओं और जर्नलों से प्राप्त करनी चाहिए। यह कहकर उत्पल चुप हो गया।

हिमानी उत्पल के ज्ञान और उसकी सोच और भारतीय संस्कृति पर आधारित चिंतन से बहुत प्रभावित हुई। उसे आश्चर्य हो रहा था कि आजकल के ज़माने में भी उत्पल जैसे युवक हैं, अन्यथा उसे तो अब तक पश्चिमी विचारधारा से रंगे, दिखावे में विश्वास करने वाले, कॉलिज में अपनी पुस्तकों पर ध्यान देने की अपेक्षा छात्राओं के रूप-रंग और अदाओं पर टिप्पणी करने वाले और छात्राओं को घूरने वाले विद्यार्थी ही ज्यादा दिखाई देते हैं। हिमानी ने अपने विचारों को विराम देते हुए उत्पल से पूछा कि वह भविष्य में क्या बनना चाहता है? उत्पल ने कहा कि वह भौतिकी का विशेषज्ञ या वैज्ञानिक बनना चाहता है। इसलिए ही वह विषय को इतनी गंभीरता से पढ़ता है।

चाय खत्म हो गई। चाय का भुगतान करने के लिए हिमानी ने अपना पर्स खोला, लेकिन उत्पल ने आग्रह किया कि इसका भुगतान वह करेगा, लेकिन हिमानी ने यह कहकर मना कर दिया कि आज उसने उसे बुलाया है, इसलिए वह ही इस बिल का भुगतान करेगी। उसने उत्पल से कहा कि किसी अच्छे अवसर पर वह उसके साथ चाय ज़रूर पिएगी, उसका भुगतान आप कर सकते हैं। हिमानी ने चाय का भुगतान किया और उत्पल को धन्यवाद देकर अपने हॉस्टल की ओर चल पड़ी, कुछ दूर चलने के बाद उसने पीछे मुड़कर देखा, उत्पल वहीं पर खड़ा होकर उसे जाते हुए देखता जा रहा था। हिमानी ने टाटा करते हुए हाथ हिलाया और तेज़ी से अपने हॉस्टल की ओर मुड़ गई।

हिमानी और उत्पल की यह पहली मुलाकात थी। यद्यपि इस मुलाकात का उद्देश्य सिर्फ़ शैक्षणिक चर्चा थी, लेकिन उत्पल के व्यवहार ने हिमानी के हृदय की अतल गहराइयों को छू लिया था। वह न चाहते हुए भी बरबस उसकी ओर खींची जा रही थी। यही स्थिति उत्पल की भी थी, आज उसने एक अप्सरा को नज़दीक से देखा था, ज्ञान की पिपासु वह अप्सरा अन्य लड़कियों से बिल्कुल अलग थी। सादगीपूर्ण व्यवहार, न कोई मेकअप, न सजना न सँवारना, सब कुछ प्राकृतिक...। उत्पल सोचने लगा कि सादगी में भी कितना सौंदर्य होता है, यह आज उसने हिमानी के साथ बिताए समय के दौरान महसूस किया था। एक अनजाना-सा भाव उसके हृदय पर बैठ गया।

अगले दिन दोनों की मुलाकात क्लास में हुई, क्लास के दो हिस्से थे, दाईं ओर लड़कियाँ बैठती थीं और बाईं ओर लड़के बैठते थे। हिमानी दाईं ओर लड़कियों के साथ बैंच पर बैठी थी। उत्पल ने एक झलक उसे देखा और उसी समय हिमानी ने भी उत्पल को देखा दोनों की नज़रें मिली, लेकिन दोनों शरमा गए मानो चोरी पकड़ी गई हो।

इसी प्रकार एक-दूसरे को देखते हुए पढ़ाई चलती रही, इन दोनों को महसूस होने लगा था कि दोनों के बीच कुछ दबा-दबा-सा प्यार जन्म ले चुका है। दोनों एक-दूसरे के लिए सम्मान और स्नेह रखते थे। पढ़ाई पूरी होने पर परीक्षाएँ शुरू हो गईं। दोनों अपनी पढ़ाई में व्यस्त हो गए। प्यार का उफ़ान चढ़ने से पहले ही परीक्षा के बोझ तले दब गया। प्यार एक ऐसा भाव है, जो हर हाल में जीवित रहता है। दबा हुआ प्यार कभी भी हिलोरें ले सकता है। भले ही हिमानी और उत्पल कभी मिलते-जुलते नहीं थे, लेकिन एक स्नेह की डोर उन्हें हमेशा एक-दूसरे से बाँधे हुई थी। एक अनजानी-सी स्नेह की सरिता उनके हृदयों में सदा प्रवाहित होती रही।

परीक्षा का अंतिम दिन था, उसके बाद सभी बिछुड़ने वाले थे। उत्पल ने साहस जुटाकर परीक्षा शुरू होने से पहले ही हिमानी से अनुनय किया कि आज कॉलिज का अंतिम दिन है, इसके बाद हम न जाने कहाँ होंगे, इसलिए आज परीक्षा के बाद दोनों कैंटीन में चाय पर मिलेंगे। हिमानी ने हामी भर दी। परीक्षा समाप्त होने के बाद उत्पल गेट के पास हिमानी का इंतज़ार कर रहा था। हिमानी गेट की ओर आ रही थी, उत्पल उसे देखकर बहुत खुश हुआ। हिमानी और उत्पल

दोनों कैंटीन की ओर चल पड़े। वे आज उसी पेड़ के नीचे चबूतरे पर बैठे, जिस पर वे पहली बार बैठे थे।

आज चाय का ऑर्डर उत्पल ने दिया। हिमानी आज के पेपर पर उत्पल से चर्चा करने लगी। चर्चा के दौरान उत्पल ने सभी प्रश्नों के उत्तर बहुत ही स्पष्ट और सही दिए। उसे लगा कि उत्पल को तो सभी प्रश्नों का उत्तर मालूम है, उसने सभी प्रश्नों के उत्तर सही लिखे होंगे। पिछले वर्ष, एम. एस-सी प्रथम वर्ष में भी उत्पल के उससे 10 अंक ज्यादा थे। हिमानी सोच रही थी कि इस बार तो उसे विश्वविद्यालय में दूसरे रैंक से ही काम चलाना पड़ेगा, क्योंकि उत्पल को हराना उसे असंभव लग रहा था। वह इसी ऊहापोह में थी कि उत्पल ने भाँप लिया कि वह अपने प्रथम रैंक के लिए चिंतित थी। उत्पल ने उससे कहा कि "हिमानी अब न जाने कब मिलना होगा, आपको विश्वविद्यालय में प्रथम रैंक के लिए अग्रिम रूप से शुभकामना।" हिमानी ने स्मित मुस्कान के साथ कहा। आपके होते हुए मैं यह सोच भी नहीं सकती हूँ, मेरे लिए दूसरा स्थान ही काफ़ी है।

उत्पल ने कहा कि पहला स्थान आपको ही मिलेगा, पिछले वर्ष आपको 10 अंक कम मिले थे, इसलिए इस साल मैंने 20 अंक का एक प्रश्न हल नहीं किया। हिमानी हतप्रभ थी, उसे विश्वास ही नहीं हो रहा था कि कोई इतना त्याग कर सकता है !

उसने पूछा आपने यह क्यों किया? उत्पल ने कहा यदि आप सच में जानना चाहती हैं, तो मैं आपको बता सकता हूँ, लेकिन एक शर्त पर कि आप मुझसे नाराज़ नहीं होंगी, इसका वचन दीजिए। हिमानी ने कहा कि बताओ मैं किसी भी बात का बुरा नहीं मानूँगी। उत्पल ने कहा कि याद कीजिए जब आप मुझसे इसी कैंटीन में 2 वर्ष पहले मिली थीं, उस वक्त आपने कहा था कि आप विश्वविद्यालय टॉप करना चाहती हैं। आपसे मिलने के बाद मुझे पता नहीं क्यों लगने लगा कि आप वही हैं, जिसकी मुझे तलाश थी।

मैं आपसे मन-ही-मन प्यार करने लगा था, लेकिन मुझे लगता था कि यदि प्यार-व्यार के चक्कर में पड़े, तो आप भी अपने लक्ष्य से भटक जाएँगी और मैं भी। इसलिए मैंने आपसे कभी मिलने की कोशिश भी नहीं की। मुझे मालूम था कि आपका लक्ष्य क्या है। मैंने एक प्रश्न छोड़कर आपका टॉप करने का रास्ता खोल दिया। इसमें मेरा तो कोई नुकसान नहीं था, क्योंकि मेरा लक्ष्य था भौतिकी का गंभीर अध्ययन करके वैज्ञानिक बनना। टॉप करने से मेरा कोई भविष्य बनने वाला नहीं था। वैज्ञानिक बनने के लिए तो लिखित परीक्षा में बेहतर अंक प्राप्त करने होते हैं, जबकि शिक्षण के क्षेत्र में टॉप रैंक को प्राथमिकता मिलती है।

हिमानी ने इस अप्रत्याशित उत्तर को सुनकर लज्जा से अपनी आँखें नीचे कर लीं, उसके गाल सुर्ख लाल हो गए, वह किंकर्तव्यविमूढ़ हो गई। आज उसने प्यार को महसूस किया था। कोई इतना बड़ा त्याग तभी करता है, जब वह सच्चे अर्थों में किसी से प्यार करता हो। उसकी नज़रों में उत्पल की इज्ज़त कई गुना बढ़ गई। उत्पल ने कहा मैंने तो आज अपने मन की बात कह दी है, अब आपकी बारी है यह बताने की कि आप भी मुझसे प्यार करती हैं? हिमानी ने बड़े संकोच के साथ 'हाँ' में सिर हिला दिया। उत्पल की खुशी का ठिकाना न था। उत्पल का साहस बढ़ गया था, उसने अगला प्रश्न किया कि क्या आप मुझसे शादी करेंगी? हिमानी ने हिम्मत जुटाकर कहा 'हाँ', लेकिन अपने परिवार की अनुमति से और मेरी नौकरी लग जाने के बाद ...।

उत्पल को तो मानो संसार की सभी खुशियाँ एक साथ मिल गई थीं। अप्सरा-सी सुंदर और सुशील तथा बुद्धिमान लड़की ने उसका प्रस्ताव स्वीकार कर लिया था। वह खुशी से बोल पड़ा मैं पूरी ज़िंदगी इंतज़ार करने के लिए तैयार हूँ। आपने मुझे अपने जीवन-साथी बनने के योग्य समझा, मेरे लिए इतना ही काफ़ी है। हिमानी ने कहा कि पूरी ज़िंदगी की बात नहीं सिर्फ़ एक-दो वर्ष ही इंतज़ार करना होगा। उत्पल ने कहा 'हाँ' बहुत अच्छा रहेगा, तब तक मेरी भी नौकरी लग जाएगी और फिर हम जीवन भर खुशी-खुशी साथ रहेंगे।

अब तक चाय आ चुकी थी। दोनों अंदर-ही-अंदर बहुत खुश थे। यौवन का पहला प्यार परवान चढ़ने लगा था, जो प्यार या दोस्ती धीरे-धीरे पनपती है, वह उतनी ही स्थाई होती है। हिमानी को आचार्य भर्तृहरि का यह श्लोक याद आ रहा था :

आरंभगुर्वी क्षयिणी क्रमेण, लघ्वी पुरा वृद्धिमती च पश्चात्।

दिनस्य पूर्वार्द्ध परार्द्ध भिन्ना, छायेव मैत्री खल सज्जनानाम्।

(अर्थ : सज्जनों की मित्रता धीरे-धीरे प्रगाढ़ होती है, जबकि दुर्जनों की मित्रता बहुत जल्दी प्रगाढ़ होती है और जल्दी ही टूट भी जाती है, जिस प्रकार पूर्वार्ध में सूर्य की किरण पड़ने से हमारी छाया बहुत बड़ी होती है और दिन चढ़ते-चढ़ते वह छोटी होती चली जाती है, लेकिन अपराह्न में हमारी छाया छोटी होती है और दिन ढलते-ढलते लंबी होती चली जाती है)।

हिमानी को लगा कि उत्पल सज्जन है, इसकी दोस्ती या प्यार स्थाई है और सच्चा है, इसलिए इतनी सहजता और स्पष्टता से अपने मन की बात कह गया। वह चाय पी चुकी थी। उत्तराखंड के निवासी उबलती-उबलती चाय भी तत्काल पी लेते हैं, लेकिन उत्पल धीरे-धीरे चाय पी रहा था, वास्तव में, वह इस बहाने अधिक-से-अधिक समय हिमानी के साथ बिताना चाहता था। आखिर चाय खत्म हो गई। हिमानी ने अपने घर का पता उत्पल को दिया और उत्पल ने अपना पता हिमानी को दे दिया। उस ज़माने में मोबाइल नहीं होते थे। अन्यथा मोबाइल का नंबर दे देते। संपर्क का माध्यम टेलीफ़ोन या चिट्ठी होती थी। दोनों ने आँखों-ही-आँखों में संपूर्ण स्नेह के साथ एक-दूसरे को अलविदा कहा।

दो महीने बाद विश्वविद्यालय का परीक्षा परिणाम घोषित हुआ। हिमानी को विश्वविद्यालय में सर्वोच्च अंक मिले और उसने यूनिवर्सिटी टॉप कर ली। उसकी पहली इच्छा पूरी हुई, परंतु उसे उत्पल की बहुत याद आई। यह रैंक उसका नहीं उत्पल का था। रिज़ल्ट में दूसरे रैंक पर उत्पल था। हिमानी को पक्का विश्वास हो गया कि उत्पल ने जानबूझकर पूरे प्रश्न हल नहीं किए, ताकि हिमानी की इच्छा पूरी हो सके। उसका मन उत्पल को धन्यवाद देने के लिए तरस रहा था, लेकिन संपर्क कैसे हो? आखिर हिमानी ने पत्र लिखकर उत्पल को धन्यवाद दिया और अपने मन के स्नेह भरे भावों को संक्षेप में व्यक्त किया। वैसे भी स्नेह एक ऐसा भाव है, जो बिना कहे भी सब कुछ समझा देता है।

उत्पल यह पत्र पाकर बहुत खुश था। उसने जो त्याग किया था वह सफल हुआ। आज हिमानी कितनी खुश थी, इसका पता इस पत्र से चल रहा था। सच्चे प्रेम करने वाले अपनी खुशी नहीं, बल्कि अपने प्रेमपत्र की खुशी से अधिक आनंदित होते हैं।

अब हिमानी के लिए अच्छे-अच्छे रिश्ते आने लगे। हिमानी के माता-पिता उस पर दबाव डालने लगे कि वह इन रिश्तों में से कोई लड़का पसंद कर ले। उनका मानना था कि विवाह की उम्र निकल जाने के बाद फिर अच्छे रिश्ते आने बंद हो जाते हैं तथा समाज उँगलियाँ उठाने लगता है। हिमानी यद्यपि अपने प्यार के बारे में अपने माता-पिता को बताना चाहती थी, लेकिन उसके संस्कार उसे रोक देते थे। उत्तराखंड में रिश्तों में अभी उतना खुलापन नहीं है। हिमानी ने अपने माता-पिता से अनुरोध किया कि अभी एक-दो साल उसकी नौकरी लगने तक की छूट उसे दे दें। नौकरी मिल जाने के कुछ समय बाद वह शादी कर लेगी।

हिमानी की योजना यह थी कि नौकरी लग जाने के बाद वह उत्पल से विवाह के लिए अपने माता-पिता को मनवा लेगी। इस प्रकार माता-पिता की चिंता भी दूर हो जाएगी और वह और उत्पल सुखी दांपत्य-जीवन जी पाएँगे।

हिमानी को 6 माह के भीतर ही उसके ही विश्वविद्यालय के अधीन सरकारी महाविद्यालय में स्थायी नौकरी मिल गई। यह महाविद्यालय उसके माता-पिता के गाँव के पास के शहर में था। हिमानी ने यहाँ किराए पर घर ले लिया था तथा अपने माता-पिता को भी अपने साथ ही रहने के लिए बुला लिया था। वे अब हिमानी के साथ खुशी-खुशी रहते थे। उधर उत्पल को भी देहरादून में ही भारत सरकार के रक्षा मंत्रालय के अधीन (डी.आर.डी.ओ) विभाग में वैज्ञानिक की नौकरी मिल गई। उत्पल भी अपने माता-पिता के साथ रहता था। सरकारी नौकरी मिल जाने के बाद उत्पल के पिता उत्पल पर दबाव डालने लगे कि अब विवाह की उम्र हो गई है, अब तो उसे हामी भर देनी चाहिए। उत्पल ने कहा अभी जल्दी क्या है, बंगाली समुदाय में पुरुषों को बड़ी उम्र तक भी अच्छे रिश्ते मिल जाते हैं, इसलिए उत्पल के माता-पिता ने भी उत्पल पर दबाव डालना कम कर दिया।

हिमानी को नौकरी मिल जाने के बाद उसके माता-पिता ने उस पर दबाव बढ़ा दिया। उनकी चिंता यह थी कि जैसे-जैसे उम्र बढ़ती जाएगी, वैसे-वैसे उसके विवाह में अड़चनें

आने लगेंगी। एक दिन रविवार को हिमानी ने अपनी माँ को उत्पल के बारे में बताया और अपना निर्णय भी सुना दिया कि यदि वह शादी करेगी, तो सिर्फ़ उत्पल से या फिर शादी ही नहीं करेगी। यह कहकर हिमानी जल्दी से अपने कमरे में चली गई। हिमानी की माँ को लगा कि उसके पैरों तले ज़मीन धँस गई हो, उसे चक्कर से आने लगे, वह सिर पकड़कर वहीं बैठ गई। थोड़ी देर में संयत होकर उसने अपने पति के पास जाकर सारी बातें बता दीं। वह ज़माना आजकल जैसा नहीं था। अपनी बिरादरी से बाहर विवाह करना कलंक के समान समझा जाता था।

हिमानी के पिता के माथे पर चिंता की लकीरें साफ़ दिखाई दे रही थीं। हिमानी का निर्णय सुनते ही उनका शरीर मानो निर्जीव-सा हो गया। मन का उत्साह न जाने कहाँ चला गया! फिर भी उन्होंने साहस जुटाकर हिमानी के कमरे में प्रवेश किया। हिमानी अपनी कक्षा के लिए तैयारी कर रही थी। माता-पिता दोनों को अपने कमरे में देखकर वह उठकर बैठ गई, उसने देखा कि उसके माता-पिता के चेहरे का रंग उतर गया था। सदैव उत्साह से भरे उसके पिता आज नितांत ऊर्जाविहीन और निर्जीव से लग रहे थे, मानो उनका सर्वस्व लूट गया हो। एक बार तो हिमानी को लगा कि माता-पिता जो संतान के लिए सर्वस्व न्योछावर कर देते हैं, आज अपनी संतान के कारण ही वे इस स्थिति में पहुँच गए हैं। एक बार तो उसे लगा कि अपने प्रेम का गला घोंट दे और अपने माता-पिता के बताए अनुसार विवाह कर ले, लेकिन दूसरे ही क्षण उसे लगा कि वह पढ़ी-लिखी है, अपने पैरों पर खड़ी है और उसकी माँग भी तो अनुचित नहीं है, जीवन तो उसे जीना है। जीवन साथी चुनने का अधिकार तो उसको मिलना ही चाहिए। उसने विनम्र भाव से कहा कि मैं उत्पल को वचन दे चुकी हूँ और उसे ही अपना जीवन साथी मान चुकी हूँ, इसलिए किसी दूसरे के साथ विवाह करने का तो प्रश्न ही नहीं उठता है। आप मेरे माता-पिता हैं, आपने मुझे जो प्यार और संस्कार दिए हैं, उनके चलते मैं बिना आपकी अनुमति कहीं नहीं जाऊँगी, उत्पल के पास भी नहीं।

हिमानी के माता-पिता निराश होकर हिमानी के कमरे से बाहर आ गए। उन्होंने सोचा कि अभी जल्दबाज़ी करना ठीक नहीं, हो सकता है कुछ दिनों में हिमानी उनकी बात मान जाए। उधर हिमानी ने सोचा कि माता-पिता अपने बच्चों के लिए इतना त्याग करते हैं, हो सकता है वे कुछ दिन बाद शांत हो जाएँ और उसे उत्पल से शादी करने की अनुमति दे दें। कुछ दिन ऐसे ही चलता रहा ...। एक माह बीत गया, परंतु हिमानी की ओर से कुछ प्रतिक्रिया न आने पर एक दिन उसके पिता ने निर्णायक लहज़े में हिमानी से कह दिया कि वह उत्पल को भूल जाए। हमने बहुत विचार किया है और हमारा यह अनुभव रहा है कि प्रेम-विवाह सफल नहीं होते हैं, विवाह के कुछ वर्ष तक तो प्रेम रहता है, उसके बाद यह रिश्ता सिर्फ़ विवाह तक सीमित हो जाता है, तब यह सिर्फ़ फ़र्ज़ निभाने तक सीमित हो जाता है, लेकिन उसके बाद ये प्रेम विवाह के रिश्ते बोझ बन जाते हैं। ज़िंदगी भर बोझ ढोने की बजाय एक ही बार में प्रेम की डोर को तोड़ डालो। हम तुम्हारा भला चाहते हैं, इसलिए हम किसी भी दशा में तुम्हें यह प्रेम विवाह करने की अनुमति नहीं देंगे। हिमानी चुपचाप सुनती रही, उसकी समझ में यह बिल्कुल नहीं आ रहा था कि माता-पिता जो रिश्ता तय करते हैं, उस लड़के के विषय में तो हम कुछ भी नहीं जानते, एक अजनबी से विवाह सफल कैसे हो सकता है, जबकि प्रेम-विवाह के मामले में हम एक-दूसरे को जानते हैं। उनसे जब मन मिल जाता है, तभी विवाह की ओर कदम बढ़ते हैं, इसलिए इसमें प्रेम तत्त्व कम कैसे हो जाता है ?

उस दिन तो पिता जी का क्रोध देखकर हिमानी चुप रही, लेकिन एक दिन उसके माता-पिता थोड़ा संयत से दिखे। दोनों साथ बैठे थे, हिमानी भी उनके पास बैठ गई, उसने अपनी सोच को अपने माता-पिता के सामने रखा और पूछा कि वे प्रेम-विवाह के इतने विरुद्ध क्यों हैं? हिमानी की माँ टुकुर-टुकुर उसकी ओर देखती रही। हिमानी के दिल की बेचैनी उसे भी बेचैन किए हुए थी। इस संसार में सिर्फ़ माँ ही होती है, जो अपने बच्चों का दुख समझ पाती है, वह हिमानी के पिता के विरुद्ध भी नहीं जा सकती थी। उसने दो-तीन बार हिमानी के पिताजी से कहा भी था कि उसे यह प्रेम-विवाह करने दो, परंतु वे टस-से-मस न हुए। आज वह चुप थी, लेकिन उसके हृदय में अपनी पुत्री की सहायता न कर

पाने की कसक साफ़ दिखाई दे रही थी।

हिमानी के पिता ने उसे प्यार से अपने पास बिठाया और उसे समझाने के लहज़े में कहा, हम समाज में रहते हैं, हर समाज की अपनी संस्कृति होती है। अलग संस्कृति में विवाह करने से पति के माता-पिता और सगे-संबंधियों से आत्मीय संबंध नहीं बन पाते हैं। आपको हर जगह लज्जित होना पड़ेगा। कई महिलाएँ तो ताना भी देंगी, क्योंकि इन विपरीत संस्कृति के संबंधों में आत्मीयता कम होती है। आप अपने पति से तो सामंजस्य बैठा सकते हैं, लेकिन अन्य परिवारजनों और सगे-संबंधियों से ताल-मेल बिठाना कठिन होता है। हम समान संस्कृति में विवाह करते हैं, तो सामंजस्य अधिक होता है, आपको सभी का सहयोग मिलता है। प्रेम-विवाह में परिवार, पति-पत्नी और बच्चों तक सीमित हो जाता है। एकाकी परिवार समाज के लिए शुभ संकेत नहीं है। मनुष्य सामाजिक प्राणी है, इसलिए वह समाज से कटकर नहीं रह सकता है। इसलिए तुम उत्पल को भूल जाओ और अपने समाज में शादी कर लो। आज हमारे पास अपने समाज के बहुत अच्छे रिश्ते आ रहे हैं, उनमें से किसी को स्वीकार कर लो। विवाह एक ऐसा संबंध है, जिसमें आपको सब कुछ अपनी इच्छा और पसंद के अनुरूप नहीं मिलता है। कहीं-न-कहीं कुछ समझौता तो करना ही पड़ता है।

हिमानी को इन तर्कों में सच्चाई नज़र नहीं आई, उसे यह लग रहा था कि यदि हम सबसे प्रेम करें, तो हमें भी प्रेम मिलेगा। सामंजस्य बिठाना तो व्यक्ति पर निर्भर होता है। यह चर्चा सुनकर हिमानी अपने कमरे में चली गई। उसे अब पूरा भरोसा था कि उसके पिता कभी उत्पल को स्वीकार नहीं करेंगे। अगले दिन उसने कॉलिज जाकर उत्पल को पत्र लिखा कि उसके पिता यह विवाह होने ही नहीं देंगे, इसलिए वह अपनी ज़िंदगी उसके लिए बर्बाद न करे और कोई अच्छा रिश्ता देखकर विवाह कर ले। उसने यह भी लिखा था कि हम इस जन्म में न मिल सके तो क्या, अगले जन्म में हम ज़रूर मिलेंगे। अब आप मुझसे संपर्क मत कीजिएगा।

इसके बाद हिमानी ने विवाह करने से ही इंकार कर दिया। धीरे-धीरे उसकी उम्र बढ़ने लगी, अब उसके लिए अपने समाज से रिश्ते आने बंद हो गए थे। हिमानी ने उत्पल से संपर्क तोड़ दिया था। वह चाहती थी कि उत्पल अपनी गृहस्थी जमा ले। एक सुखी परिवार की तरह रहे। उसकी अच्छी नौकरी थी, प्रतिभावन तो वह था ही, उसका भविष्य उज्ज्वल था। वह क्यों उसके लिए अपना जीवन बर्बाद करे? हिमानी जानती थी कि यदि वह उत्पल के संपर्क में रहेगी, तो उत्पल उसे भुला नहीं पाएगा। वह अपने पिता के निर्णय के कारण उत्पल का भविष्य नहीं बिगाड़ना चाहती थी। उसके हृदय में प्रेम की जलधारा हिमनद की भाँति सदा प्रवाहित होती रही। वह अपने प्रथम प्रेम को न भुला पाई। ऐसा कोई क्षण और दिन न था, जब वह उत्पल को याद न करती हो।

उत्पल की विवाह योग्य उम्र अब बीतने लगी थी। वह अब 45 वर्ष का हो चुका था। यद्यपि बंगाल में अच्छी नौकरी वाले पुरुषों के लिए इस उम्र में भी रिश्तों की कमी नहीं थी। उत्पल अच्छा, सज्जन और संपन्न परिवार से था, इसलिए अभी भी रिश्ते आ रहे थे। उत्पल के माता-पिता ने उत्पल पर बहुत दबाव डाला, लेकिन उसने शादी करने से पूरी तरह इंकार कर दिया। उसने अपने प्रेम प्रसंग की बात अपने माता-पिता को नहीं बताई।

समय का चक्र चलता रहा। अब हिमानी 50 वर्ष की हो गई थी। उसने पूरा जीवन अपने माता-पिता की सेवा में लगा दिया था। उसने बचपन का अनुभव किया था, जवानी बिना प्रेम और उत्साह के बीत गई और अब बुढ़ापे की यात्रा का पहला पड़ाव आ गया था। हिमानी रोज़ की तरह अपने कॉलिज गई हुई थी कि लगभग 1 बजे उसके पड़ोस का एक लड़का दौड़ता हुआ आया और हिमानी को तुरंत घर चलने को कहा। उसने बताया कि दादा जी (हिमानी के पिता को वह गाँव के रिश्ते से दादा कहता था) की तबीयत बहुत खराब हो गई है। दादी ने डॉक्टर को बुलाने के लिए कहा है। हिमानी तत्काल बाहर आई, प्राचार्य को घटना की जानकारी दी और पास के डॉक्टर को साथ लेकर घर गई। घर जाकर देखा, तो उसके पिता की साँसें बहुत तेज़ी से चल रही थीं और कभी-कभी साँस लेने में भी तकलीफ़ हो रही थी। डॉक्टर ने जाँच की और दवाई देकर कहा कि यदि कल सुबह तक वे ठीक न हों, तो कल उनको सरकारी अस्पताल में भर्ती करवा दें।

साँझ ढलने को थी, हिमानी के पिता की तबीयत फिर

बिगड़ने लगी। हिमानी ने अपनी माँ को आवाज़ दी और कहा कि वह पिताजी के पास बैठे और वह डॉक्टर को लाने जा रही है। पिताजी ने क्षीण आवाज़ में कहा – "हिमानी...हिमानी....," पिता की आवाज़ सुनकर हिमानी तेज़ी से पिता के पलंग के पास पहुँची, पिताजी की साँसें बहुत तेज़ी से धौंकनी की तरह चल रही थी, उन्होंने कहा कि डॉक्टर को बुलाने की ज़रूरत नहीं है, तुम अपनी माँ को भी बुला लो। इतने में बाहर से उनकी पत्नी भी पलंग के पास पहुँच गई। पिता ने हिमानी के सर पर हाथ फेरकर कहा – "प्यारी बिटिया, मैंने तुम्हारे साथ बहुत अन्याय किया है। तुमने अपनी पूरी ज़िंदगी हमारी सेवा में लगा दी है, परंतु बिटिया न जाने मुझे ऐसा क्यों लगता था कि तुम उत्पल के साथ सुखी नहीं रह पाओगी, इसलिए ही मैंने कठोर होकर इस रिश्ते को नहीं होने दिया, मैं इसका दोषी हूँ, अब मेरे पास समय बहुत कम है, मेरी बात मान लेना मेरी आखिरी इच्छा समझकर ....!! बिटिया अगर उत्पल तुमसे सचमुच प्यार करता है, तो उसने अब तक विवाह नहीं किया होगा। तुम पता करो और अगर उसने विवाह नहीं किया हो, तो उससे ज़रूर विवाह कर लेना, मेरे पापों का यह प्रायश्चित होगा।" यह सुनकर हिमानी फूट-फूटकर रोने लगी, पिता की अंतिम साँसों से धड़कते शरीर को देखती रही, उसके पिता ने एक लंबी साँस ली और उनका निर्जीव शरीर शांत हो गया।

पड़ोसियों और रिश्तेदारों ने अंतिम क्रियाएँ पूरी कीं। 15 दिनों तक इन संस्कारों के चलते हिमानी कुछ भी न सोच पायी। उसकी माँ का रो-रोकर बुरा हाल था। हिमानी अपनी माँ को संभालने में लग गई। धीरे-धीरे सब कुछ सामान्य होता चला गया। हिमानी के पिता की मृत्यु के शेष संस्कार भी एक महीने के बाद पूरे कर लिए गए। उतराखंड में दो परम्पराएँ हैं। कुछ लोग एक माह में ही सभी संस्कार पूरे कर लेते हैं व कुछ समुदायों में पूरे एक वर्ष तक वर्जनाएँ रहती हैं, वे एक वर्ष तक कोई भी शुभ कार्य नहीं करते हैं, वार्षिक श्राद्ध कर लेने के बाद ही शुद्धि मानी जाती है। हिमानी के पिता का देहांत हुए अब 6 माह हो चुके थे, माँ अब बहुत कमज़ोर हो गई थी और बीमार भी रहने लगी थी। हिमानी के पिता की मृत्यु के बाद तो उसकी जीने की इच्छा ही खत्म हो गई थी। बीमारी की इसी हालत में एक दिन हिमानी की माँ ने हिमानी से कहा कि "हिमानी, अब मेरा भी कोई भरोसा नहीं है, कब आँखें बंद हो जाएँ। इसलिए आज ही उत्पल का पता करने के लिए कोशिश करो, मुझे तुम्हारे पिता की आखिरी इच्छा पूरी करनी है।"

हिमानी को बहुत शर्म आ रही थी कि किस मुँह से वह उत्पल से संपर्क करे। वह तो अब तक अपनी गृहस्थी बसा चुका होगा। हिमानी ने ही उसे लिखा था कि वह उससे संपर्क न करे। अब उसे किस मुँह से बताऊँ कि उसके पिता ने उसे एक ऐसा आदेश दिया है, जिसने मेरे सामने एक अजीब-सा धर्म-संकट पैदा कर दिया है। उसने पत्र लिखना ही बेहतर समझा। उसने बहुत ही सामान्य ढंग से पत्र लिखा। इस पत्र में उसने सिर्फ़ अपने पिता जी की मृत्यु के बारे में लिखा और सामान्य रूप से उसके परिवार की कुशलता जाननी चाही।

पत्र भेजने के एक सप्ताह के भीतर ही उत्पल उसके पिता की मृत्यु पर संवेदना व्यक्त करने हिमानी के घर पहुँच गया। रविवार का दिन था। शाम के 5 बजे थे, हिमानी बाहर सुखाए हुए कपड़े अंदर लाने आँगन में आई, उत्पल उनके आँगन तक पहुँच गया। उत्पल को देखकर हिमानी पत्थर की मूर्ति-सी जड़ हो गई, उसे विश्वास नहीं था कि उत्पल उसका पत्र मिलते ही उसके घर चला आएगा। उसने हिमानी को देखा, वही रंग रूप, वैसा ही बदन, मुखमंडल पर ओज कम हो गया था, कुछ बाल सफ़ेद हो गए थे। 22-23 वर्ष की वह रमणी सौंदर्य की प्रतिमूर्ति, जिसे उसने अंतिम बार देखा था, वह कहीं खो चुकी थी, आज वह तेज विहीन-सी दिखाई दे रही थी।

उत्पल ने ही पहल की, उसने संवेदना व्यक्त करते हुए कहा जो होना था हो गया, अब दुखी होने से क्या लाभ ? हर दुख में हमें खुद को संभालना होता है। उत्पल की इन बातों ने हिमानी के दर्द को हल्का कर दिया। वह उत्पल के कंधे पर सर रखकर रोना चाहती थी, लेकिन सामाजिक वर्जनाओं के कारण वह ऐसा न कर सकी। हिमानी को किसी अजनबी से बात करते देखकर हिमानी की माँ बाहर आ गई। हिमानी ने उत्पल का परिचय माँ से कराया। उत्पल की सादगी को देखकर हिमानी की माँ को लगा कि हिमानी के पिताजी ने हिमानी के साथ बहुत अन्याय किया है। यदि वे एक बार

उत्पल से मिल लेते, तो शायद आज हिमानी यूँ ज़िंदगी भर कुँवारी न रहती। उत्पल ने हिमानी की माँ के पाँव छूए। हिमानी की माँ ने हृदय की अतल गहराइयों से उसे आशीर्वाद दिए।

माँ ने हिमानी से कहा कि मेहमान को बाहर ही खड़े रखोगी या अंदर भी ले चलोगी। हिमानी को संकोच हुआ, वास्तव में, उत्पल इतनी दुष्कर पर्वतीय यात्रा करके आया था, उसे उसने अब तक अंदर आने का आग्रह नहीं किया। उत्पल के अचानक आ जाने से वह किंकर्तव्यविमूढ़-सी हो गई थी, इसलिए वह उत्पल से घर के अंदर आने के लिए न कह सकी।

हिमानी की माँ ने ही बड़े आत्मीय भाव से उत्पल से कहा, बेटा इतनी दूर से आए हो, थकान आ गई होगी, चलो अंदर चलकर थोड़ा आराम कर लो। इतने आत्मीय व्यवहार से उत्पल अभिभूत हो गया। एक आज्ञाकारी बच्चे की तरह वह माँ के पीछे चल पड़ा, माँ ने उसे सोफ़े पर बैठाया, तब तक हिमानी भी सूखे कपड़े लेकर अंदर आ गई। माँ ने ही बात शुरू की। बेटा रास्ते में कोई परेशानी तो नहीं हुई? उत्पल ने कहा कि वह सुबह की पहली नॉन स्टॉप बस से ही आया है, इसलिए कोई परेशानी नहीं हुई। माँ ने बातों का सिलसिला आगे बढ़ाते हुए कहा कि बेटा तुम्हारे परिवार में और कौन-कौन हैं। उत्पल ने कहा कि उसका एक छोटा भाई है, जो नौकरी पर भिलाई स्टील प्लांट में अपने परिवार के साथ रहता है। उसके माता-पिता उसके साथ रहते हैं। माँ ने आगे पूछा कि तुम्हारे बच्चे साथ नहीं रहते हैं ? इस पर उत्पल ने कहा कि उसने शादी नहीं की। यह जानकर माँ को बहुत खुशी हुई, परंतु हिमानी को बहुत दुख हुआ, उसकी वजह से एक भले आदमी की ज़िंदगी बर्बाद हो गई। आज मन-ही-मन उत्पल के प्रति सम्मान और अधिक बढ़ गया।

इस दौरान हिमानी चाय-नाश्ता ले आई। हिमानी भी सामने रखी कुर्सी पर बैठ गई। उसने गौर से उत्पल को देखा, पचास की उम्र होने पर भी वह स्वस्थ दिखाई दे रहा था, बातचीत शुरू करने के उद्देश्य से हिमानी ने उत्पल से कहा कि आप में तो कोई खास परिवर्तन नहीं आया है, पहले जैसे ही हैं, सिर्फ़ शरीर थोड़ा भारी हो गया है। उत्पल थोड़ा मुस्करा कर रह गया, परंतु वह मन-ही-मन सोच रहा था, यदि हिमानी अकेली होती तो वह उर्दू के मशहूर शायर मिर्ज़ा गालिब की यह पंक्ति कहता :

उनको देखने से जो आ जाती है मुँह पर रौनक,
वो समझते हैं कि बीमार का हाल अच्छा है।

अन्य सामान्य शिष्टाचार की बातें हुई। माँ ने भी बीच-बीच में बातचीत को रोकते हुए उत्पल से कहा - "बेटा मुझे थोड़ा बाहर काम है, मैं अभी आती हूँ, यह कहकर वह तेज़ी से बाहर चली गई। हिमानी ने बात करने की अपेक्षा गंभीर निश्वास छोड़ा, उसके नेत्र कोर भीग चुके थे, उत्पल को लगा ही बस वह अब रो देगी, उसने रुँधे गले से कहा कि मैंने आपकी ज़िंदगी बर्बाद कर दी है। मैंने तो कहा भी था कि मेरा इंतज़ार मत करो, उत्पल ने उसे दिलासा दिलाते हुए कहा हिमानी आप मेरा पहला और आखिरी प्यार हो। आपकी जगह और कोई नहीं ले सकता है। प्रेम तो दूर रहकर भी किया जा सकता है, बल्कि मेरा तो यह मानना है कि मिलन हो जाने पर आकर्षण कम हो जाता है, वियोग में प्रेम नित नवीनता लिए रहता है, वह कभी कम नहीं होता है। हिमानी ने एक निरीह दृष्टि से उत्पल को देखा, ऐसा असीम प्यार करने वाला किसी को सौभाग्य से ही मिलता है, परंतु विधि का विधान ही ऐसा था कि वे मिल ही नहीं पाये। उम्र के इस मुकाम पर मिलना भी कोई मिलना है? उत्पल निरंतर हिमानी को देखता जा रहा था, मानो वह उस रूप माधुरी को आँखों में ही समा लेना चाहता हो। प्रेम में डूबे इस प्रेमी युगल ने आगे बात ही नहीं की, दोनों बस एकटक एक-दूसरे को देखे जा रहे थे, मानो आँखें ही इन बीते सालों के दर्द को बयाँ कर रही हों। काफ़ी देर हो जाने पर उत्पल ने ही बात शुरू करते हुए कहा, अब शाम बहुत हो गई है, मैं वापस देहरादून लौटना चाहूँगा। यह कहकर वह खड़ा हो गया, इतने में हिमानी की माँ अंदर आ गई। हिमानी ने माँ से कहा कि उत्पल वापस देहरादून लौटना चाहते हैं। माँ ने कहा कि अब तो कोई बस या टैक्सी नहीं मिलेगी। पर्वतीय क्षेत्रों में रात को आवागमन लगभग बंद हो जाता है। हिमानी की माँ ने आग्रह किया कि आज रात आप यहीं रुक जाएँ, कल सुबह की पहली बस से आप चले जाइएगा। हिमानी ने भी मनुहार भरे स्वर में कहा

कि आप आज बहुत थक गए होंगे, रात भर आराम कर लेंगे तो कल सुविधा से यात्रा कर सकते हैं।

यद्यपि उत्पल स्वयं भी रुकना चाहता था, लेकिन संकोच के कारण वह वापस जाने के लिए उठा था। हिमानी की माँ का आत्मीय सुझाव और हिमानी के मनुहार के कारण उसका संकोच कम हो गया और उसने कहा जैसी आपकी इच्छा। वह स्पष्ट देख पा रहा था कि उसके इस निर्णय से हिमानी के मुख-मण्डल पर वही यौवन वाली लालिमा आ गई, गोरे रंग पर लालिमा बहुत सुंदर लगती है, उम्र के पाँच दशक पार कर लेने पर भी हिमानी एक लावण्यमयी युवती लग रही थी, ऐसा लग रहा था, मानो युवा अवस्था के बाद उसकी उम्र ठहर-सी गई हो, उत्पल को एहसास ही नहीं हुआ कि वह लगातार हिमानी को देखे जा रहा था और हिमानी को भी इस बात का आभास ही नहीं हुआ कि उसकी माँ भी उसी कमरे में है। उसकी माँ ने ही बात आगे बढ़ाते हुए उत्पल से कहा कि "बेटा आज मैं अपने हाथ से गढ़वाली खाना तुम्हें खिलाऊँगी। तुम और हिमानी बातें करो, इतने वर्षों के बाद मिले हो, बहुत-सी बातें करनी होंगी।" हिमानी ने लजाते हुए कहा कि "बातें तो कुछ नहीं, मैं उत्पल के सोने का इंतज़ाम करने जा रही हूँ।" माँ की यह सोच थी कि ये दोनों साथ रहेंगे, तो शायद अब मिलन की बातें करेंगे और हिमानी के पिता की अंतिम इच्छा पूरी हो जाएगी। हिमानी दूसरे कमरे में उत्पल के लिए बिस्तर तैयार करने लगी। उत्पल के मन में उथल-पुथल मची थी। वह सोच रहा था कि हिमानी ने भी अब तक विवाह नहीं किया है। वह भी उसके प्रेम में उतनी ही निष्ठावान है, जितना कि वह है। उसे बहुत खुशी हो रही थी कि उनका प्रेम एकांगी नहीं था, बल्कि आग दोनों तरफ़ बराबर लगी हुई है ...। वह तो आज भी हिमानी से विवाह करना चाहता था, लेकिन प्रस्ताव कैसे दे ...?

इधर हिमानी की स्थिति बड़ी विचित्र थी, स्वाभाविक संकोच के कारण वह उत्पल से बात नहीं कर पा रही थी, दूसरी ओर उसे यह अपराध बोध हो रहा था कि उसने उत्पल का जीवन बर्बाद कर दिया, प्यार किया था, तो उसमें इतना साहस तो होना ही चाहिए था कि अपनी मजबूरी के कारण अपने प्रेम को पाने के लिए हर संभव प्रयास करती। उसने अपने पिता की इच्छा के लिए अपना जीवन भी बर्बाद कर दिया और उत्पल का भी ..... वह किस मुँह से उससे बात करे ? वह अंदर कमरे में बिस्तर बिछाते हुए धीरे-धीरे रो रही थी, लेकिन उसकी सिसकियाँ, बाहर बैठे उत्पल को साफ़ सुनाई दे रही थी।

उत्पल अपने स्थान से उठा और वह उस कमरे में चला आया, जहाँ हिमानी उसके सोने का इंतज़ाम कर रही थी, उत्पल के आने की आहट पाते ही उसने अपने आँचल से आँसू पोंछे और संयत होकर बोली, "ओह.....! आप अकेले बोर हो रहे होंगे, आइए यहाँ आराम कीजिए, मैं माँ के साथ खाना बनाने में उनकी मदद कर आती हूँ।" उत्पल सोच रहा था कि उत्तराखंड के लोग कितने कर्मठ और सक्षम होते हैं, हिमानी की माँ 70-72 साल की तो होगी ही, बड़ी फुर्ती-से सारे काम कर रही थी, इस उम्र में अन्य महिलाएँ उतनी सक्रिय नहीं रहती हैं, जितनी कि हिमानी की माँ थी और हिमानी भी तो 50 की उम्र में भी बहुत सुंदर और बहुत ही स्वस्थ है। बुढ़ापे का कोई चिह्न चेहरे पर नहीं, शायद पहाड़ों के संघर्षमय जीवन को जीते-जीते ये लोग भी बहुत मज़बूत और ताकतवर हो जाते हैं। एक कारण और भी है कि पहाड़ों पर प्रकृति की गोद में स्वच्छ हवा और पानी तथा प्रदूषणमुक्त वातावरण के कारण इनमें बुढ़ापा भी बहुत देर से आता है। उत्पल पलंग पर लेट गया। लेटे-लेटे खिड़की से उसे सुंदर हरे-भरे पहाड़ और नीला आकाश दिखाई दे रहा था, उत्पल को लग रहा था, मानो वह स्वर्ग में या किसी दूसरी ही दुनिया में आ गया हो। प्रकृति की गोद में यदि मनुष्य एक दिन भी बिता ले, तो उसकी आयु बढ़ती है और ऊर्जा में कई गुना वृद्धि होती है।

उत्पल इन्हीं विचारों में खोया था कि हिमानी ने कमरे में प्रवेश किया और उत्पल से कहा कि "खाना तैयार है।" उत्पल ने दिन को भी खाना नहीं खाया था, उसे पहाड़ी रास्तों से यात्रा करने का अनुभव नहीं था, उसे डर लग रहा था कि वह यदि खाना खाएगा, तो बस में उसे उल्टियाँ हो सकती हैं, इसलिए उसने भूखे ही यात्रा की। उसे बहुत भूख लगी थी। हिमानी ने उसे तौलिया दिया और बाहर आँगन में लगे नल से हाथ-मुँह धोने को कहा। उत्पल ने तत्काल तौलिया लिया और तेज़ी से

नल की ओर बढ़ गया। हाथ-मुँह धो लेने के बाद वह वापस बैठक के कमरे में आ गया। खाना हिमानी ने ही परोसा। उत्पल को आज महसूस हो रहा था, मानो वह अपने ससुराल आया हो, ससुराल में दामाद की खास मेहमान नवाज़ी की जाती है। काँसे की थाली में विभिन्न प्रकार के सादगीपूर्ण पकवान सजे थे, उत्पल ने हिमानी और उसकी माँ से आग्रह किया कि वे भी साथ खाएँ, परंतु उन दोनों ने यह कहकर माना कर दिया कि हमारी परंपरा यह है कि पहले मेहमान भोजन करते हैं, उसके बाद घर की महिलाएँ खाना खाती हैं। उत्पल को महाभारत के अक्षयपात्र की याद आ गई, उसमें भी यही प्रावधान था कि जब तक द्रोपदी भोजन नहीं करती, तब तक अक्षयपात्र खाली नहीं होता था, इसलिए गढ़वाल में भी जो महिला खाना बनाती है, वह सबसे बाद में खाती है, इस परंपरा को गढ़वाल में आज भी जीवित रखा गया है।

खाना समाप्त होने के बाद हिमानी और उसकी माँ ने खाना खाया। हिमानी जूठे बर्तन साफ़ करने लगी। उसकी माँ उत्पल के कमरे में आ गई। उसने यह सही वक्त समझा और उत्पल से हिमानी के पिता द्वारा हिमानी को दिये निर्देश के बारे में बताया। माँ ने कहा कि हिमानी के पिता को मरते समय बहुत पछतावा हुआ कि उन्होंने अपनी बेटी का जीवन ही बर्बाद कर दिया, इसलिए उन्होंने मरते वक्त अपनी अंतिम इच्छा व्यक्त की थी कि हिमानी का विवाह उत्पल से कर दिया जाए। बेटा मैं भी अब थोड़े दिन की मेहमान हूँ, न जाने कब आँखें बंद हो जाएँ। मैं अपने सामने हिमानी का घर बसा देखना चाहती हूँ, अगर तुम इस प्रस्ताव को स्वीकार कर लो, तो मैं चैन से मर सकूँगी। मुझे लगातार इसकी चिंता सताये जा रही है। बेटा मुझ पर यह उपकार कर दो।

उत्पल की तो मानो मन की मुराद पूरी हो गई। उसने कहा माता जी, हिमानी मेरी ज़िंदगी में आए इसके लिए मैंने इतना इंतज़ार किया, यह तो मेरा सौभाग्य होगा यदि हिमानी मेरी पत्नी बने। मेरी ओर से 'हाँ' है। मैं देहरादून जाते ही अपने माता-पिता से बात करके विवाह का दिन बता दूँगा। मेरा एक निवेदन है कि इस उम्र में बारात लाना, धूमधाम से विवाह करने में मुझे बहुत संकोच होगा। यदि आप सहमत हों, तो हम हरिद्वार में शांति कुंज में सनातन रीति से सादगीपूर्ण ढंग से यह विवाह संस्कार पूरा करेंगे। इसमें मेरा परिवार और आपका परिवार शामिल होंगे, 8-10 परिवारजनों की उपस्थिति में यह शुभ कार्य संपन्न हो जाएगा। मेरा एक और निवेदन है कि मेरे सामने एक बार हिमानी से भी इस बारे में पूछ लीजिए, उसकी सहमति होनी भी बहुत ज़रूरी है।

हिमानी की माँ ने आवाज़ दी... हिमानी ज़रा अंदर आओ.... माँ के बुलाने पर हिमानी अंदर आई। माँ ने बिना भूमिका बाँधे हिमानी से कहा - "तुम्हें मालूम है कि तुम्हारे पिता जी ने मरते समय अंतिम इच्छा ज़ाहिर की थी कि तुम उत्पल से विवाह कर लेना। अब उत्पल से मैंने बात कर ली है, उत्पल ने खुशी-खुशी हाँ कहा है, अब तुम बताओ तुम्हारी स्वीकृति है या नहीं ?" हिमानी ने संकोच से कहा – "माँ इस उम्र में शादी की बात थोड़ी अटपटी लगती है। माँ ने कहा उत्पल ने इसका भी हल ढूँढ लिया है। शादी धूमधाम से नहीं होगी, बल्कि शांति कुंज हरिद्वार में सिर्फ़ दोनों परिवार के 8-10 लोगों की उपस्थिति में यह कार्यक्रम हो जाएगा।" हिमानी ने हामी भर दी। हिमानी की माँ किचन से गुड़ की चार टुकड़ियाँ ले आई। उसने उत्पल से कहा ज़रा मुँह मीठा कर लो बेटा, तुमने मुझ पर बहुत बड़ा उपकार किया है। इस पर उत्पल ने कहा माँ जी आपने मेरे मन की मुराद पूरी कर दी है, इस दिन का तो मैं इंतज़ार ही कर रहा था।

माँ ने उत्पल से कहा बेटा अब आराम से सो जाओ, कल सुबह जल्दी उठना पड़ेगा, पहली बस पकड़ लेना वह बिना रुके देहरादून बहुत जल्दी पहुँचा देती है। यह कहकर माँ उत्पल के कमरे से बाहर आ गई। हिमानी एक पानी से भरा तांबे का लोटा और खाली गिलास लेकर उत्पल के कमरे में प्रविष्ट हुई। उसने उत्पल के सिरहाने लोटा और गिलास रख दिया और कहा कि किसी भी प्रकार की ज़रूरत हो, तो दरवाज़ा खटखटा देना। यह कहकर उसने बड़े आत्मीय भाव से उत्पल को देखा और कमरे से बाहर आ गई।

सुबह उठकर उत्पल ने जाने के लिए विदा लेनी चाही, इस पर हिमानी ने आग्रह किया कि कम-से-कम वह चाय पीकर जाए, खाली पेट कभी घर से नहीं निकलना चाहिए। उत्पल ने हामी भर दी, हिमानी ने पहले से चाय का पानी गरम कर लिया था, जल्दी से चाय बनाई और परोस दी। हिमानी

ने सुबह उठकर नाश्ता भी तैयार कर दिया था। उसे डिब्बे में पैक करके उत्पल को दिया और कहा कि जहाँ भी बस रास्ते में रुके वहाँ नाश्ता कर लेना। उत्पल ने हिमानी को धन्यवाद दिया और माँ के पाँव छूकर आशीर्वाद लेकर चल पड़ा। उसके कदम बड़ी तेज़ी से आगे बढ़ रहे थे, वह जल्दी-से-जल्दी घर पहुँचकर अपने माता-पिता से हिमानी से शादी की अनुमति लेना चाहता था। उसका शरीर आज स्नेह की ऊर्जा से भर गया था।

शाम को घर पहुँचकर स्नान आदि से निपटकर उसने अपने माता-पिता दोनों को बुलाया और गढ़वाल में हिमानी के घर जो हुआ, उसके बारे में बताते हुए कहा कि अब मैं विवाह करने के लिए तैयार हूँ। माता-पिता ने भी सोचा कि देर से ही सही बेटे का घर बस जाएगा। उन्होंने स्वीकृति दे दी। दूसरे हफ़्ते 16 तारीख को हरिद्वार के शांति निकेतन में शादी करने का कार्यक्रम बनाया और हिमानी के पास संदेश भेज दिया कि वह एक दो दिन पहले हरिद्वार आ जाए। शादी की व्यवस्था वह खुद कर लेगा, वैसे भी दोनों ओर से 10-10 परिवारजन आने वाले थे, इसलिए व्यवस्था करने में कोई कठिनाई नहीं थी। नियत दिन हिमानी के परिवार जन शांति कुंज विवाह स्थल पर पहुँचे। हिमानी ने साधारण-सा मेकअप किया था। इस सादगी में भी वह बहुत सुंदर लग रही थी। दूल्हे के रूप में उत्पल को देखकर हिमानी थोड़ा शर्मायी और फिर संयत होकर विवाह की परम्पराओं को निभाने लगी।

विवाह के उपरांत समय बहुत अच्छा बीत रहा था। हिमानी और उत्पल दोनों बहुत खुश थे। हिमानी की माँ वापस गढ़वाल आ गई। हिमानी ने भी अपना स्थानांतरण देहारादून के महाविद्यालय में करवा लिया था। दोनों की ज़िंदगी में सभी खुशियाँ लौट आई थीं। उत्पल के माता-पिता भी अपने बेटे बहू की खुशी देखकर खुश थे। ऐसे ही छह माह बीत गए। आज सातवाँ माह शुरू हो रहा था, प्रतिदिन की भाँति उत्पल और हिमानी अपनी-अपनी ड्यूटी पर सुबह निकल पड़े। उत्पल ने हिमानी को कॉलिज में छोड़ा और अपने कार्यालय जाने के लिए वापस आया। कॉलिज से उत्पल के कार्यालय का रास्ता 15 मिनट का ही था, क्योंकि उसका कार्यालय मुख्य हाईवे के किनारे ही था। उत्पल ने अपने कार्यालय मुड़ने के लिए जैसे ही कार घुमाई कि दूसरी ओर से आते तेज़ रफ़्तार ट्रक ने टक्कर मार दी। कार उस स्पीड से चलते ट्रक की मार से पिचककर दूर तक घिसटती चली गई। अचानक इस दुर्घटना से आसपास अफ़रा-तफ़री-सी मच गई। कार में ड्राइविंग सीट पर बैठे उत्पल का पूरा शरीर भी बुरी तरह पिचकी कार में फँसा था। यह घटना उत्पल के कार्यालय के पास हुई थी, इसलिए उसके कार्यालय में आने वाले सहकर्मियों ने पुलिस को फ़ोन किया, उत्पल को क्षतिग्रस्त कार से निकाला और अपने कार्यालय के पास वाले चिकित्सालय में ले गए। डाक्टरों ने उत्पल के शरीर को जाँचा और उसे मृत घोषित कर दिया। उत्पल के कार्यालय वालों ने उत्पल के माता-पिता को इसकी सूचना दी कि उत्पल का एक्सीडेंट हो गया है, तत्काल सिटी हॉस्पिटल पहुँचें। सूचना पाते ही उन्होंने पहले हिमानी के कॉलिज में फ़ोन किया कि उत्पल का एक्सीडेंट हो गया है, तत्काल सिटी हॉस्पिटल पहुँचो। इसके बाद उन्होंने ऑटो लिया और वे अस्पताल के लिए चल पड़े।

अस्पताल में अपने पुत्र की निष्प्राण देह देखकर वे बिलख उठे। संसार में सबसे बड़ा दुख अपनी संतान को मृत देखना ही होता है। थोड़ी देर में हिमानी भी अस्पताल पहुँच गई। उत्पल के शव को देखकर वह बेहोश हो गई। डॉक्टरों ने उसे उचित दवा दी और सांत्वना देकर कहा कि जो होना था हो गया, अब धैर्य रखना ही होगा। माता-पिता का रो-रोकर बुरा हाल था, पड़ोसियों ने ही उनके परिचितों और संबंधियों को फ़ोन किया और उत्पल के दाह संस्कार की व्यवस्था की। शाम को उत्पल के घर में दुख का माहौल था। कुछ खास सगे संबंधी रात को रुक गए थे, बाकी शाम होते-होते जा चुके थे।

दो तीन दिन में सभी रिश्तेदार भी वापस चले गए। कुछ परिचित दिन में आते और कुछ देर बैठकर सांत्वना देकर चले जाते थे। धीरे-धीरे लोगों का आना भी कम हो गया। हिमानी निष्प्राण-सी बन गई थी। एक चलती-फिरती लाश की तरह ...। अब तो उत्पल के माता-पिता का व्यवहार भी उसके प्रति बहुत बुरा हो गया था, जब तब उसकी सास उसे ताना देती और कहती कि पहले मेरे बेटे की जवानी को बर्बाद कर दिया और अब उसकी ज़िंदगी ही छीन ली। हिमानी चुप रहती, उसे

लगता था कि उन्होंने अपना बेटा खोया है, इसलिए दुख में ऐसा कह रहे हैं, लेकिन दिन-प्रतिदिन उनका व्यवहार और भी बुरा होता गया, उसे ताने सुनने पड़ते थे। वह सोच रही थी कि सबसे ज्यादा नुकसान तो उसका हुआ है, जीवन ही सूना पड़ गया, उसके दर्द को बाँटने की बजाय उसे सुनना पड़ रहा है। उत्पल का एक्सीडेंट हुआ, तो इसमें उसका क्या दोष... क्या नारी होने का दंड उसे मिल रहा है ? उसने निश्छल प्रेम किया था, उसमें उसकी क्या गलती थी? उसने तो उत्पल को साफ़ बता दिया था कि वह अपना घर बसा ले। उसका दर्द कोई नहीं समझ रहा था। उसके सास-ससुर उसे देखते ही अपना मुँह मोड़ लेते थे, उससे बातें भी नहीं करते थे। हिमानी पूरी तरह टूट चुकी थी। उसे लगने लगा कि अब उसका यहाँ रहना बहुत मुश्किल होता जा रहा है।

एक दिन उसने उत्पल के माता-पिता को कह ही दिया कि मैं जिसके सहारे आई थी, जब वह ही नहीं रहा, तो अब मेरा यहाँ क्या काम? मैं अब अकेले ही किराए के मकान में रह लूँगी। मैं इस रविवार को जा रही हूँ, उत्पल की पेंशन, ग्रेच्युटी, बीमा या अन्य कोई और जो राशि उत्पल को मिलेगा, उससे मैं अपना अधिकार त्याग रही हूँ। मुझे आपकी या उत्पल की संपत्ति में कुछ नहीं चाहिए, उसे आप ले सकते हैं। जितने दिन मैं जीवित रहूँगी, उसके लिए मेरा वेतन ही काफ़ी है। यदि 65 वर्ष से अधिक जी गई, तो मुझे पेंशन तो मिलेगी ही, इससे अधिक मुझे किसी चीज़ की ज़रूरत नहीं है।

रविवार आ गया था, हिमानी के पास ज्यादा सामान तो था नहीं, बस विवाह का एक एल्बम और पहनने के कुछ कपड़े मात्र उसने सूटकेस में पैक किए और ऑटो में रखकर उत्पल के घर को अंतिम विदा कहते हुए उसने मुँह मोड़ लिया। इस दौरान उसके नेत्र सजल हो आए, आँसू की दो बूँदें गोरे गालों पर फैल गईं।

आज नए घर में वह बहुत अकेला महसूस कर रही थी। यद्यपि ऊपर की मंज़िल पर उसके मकान मालिक रहते थे, वे बहुत ही दयालु इंसान थे, उन्होंने हिमानी को पहले ही कह दिया था कि यदि कोई भी परेशानी हो, तो उन्हें बता दें, व्यर्थ में परेशान न हों। हिमानी उनके व्यवहार से स्वयं को सुरक्षित महसूस कर रही थी, लेकिन मन के सूनेपन को किसे बताए ? उसके जीवन से स्नेह की सरिता सूख चुकी थी। सारा समाज उसे बेगाना लगने लगा। अगर हमारे मन में स्नेह हो, तो समाज भी अपना-सा लगता है, बल्कि पूरा संसार ही स्नेहमय प्रतीत होता है। हमारे मन के भाव ही हमें समाज में दिखाई देते हैं। अगले दिन वह गढ़वाल माँ के पास चली गई। उसके अकेलेपन को दूर करने के लिए माँ उसके साथ चली आई। तीन साल बीत गए धीरे- धीरे वह दुख के साथ जीना सीख गई, यादें धुँधली पड़ने लगी, समय बड़े-से-बड़े दुख को भूलने में बड़ा मददगार होता है।

सब कुछ सही चलने लगा, लेकिन एक दिन रात के समय उसकी माँ की तबीयत बहुत खराब हो गई, वह साँस नहीं ले पा रही थी, हिमानी ने माँ की हथेलियों को सहलाना शुरू किया, लेकिन एक हिचकी के साथ उसकी आँखें बंद हो गई। हिमानी जो सदैव शांत स्वभाव की थी, उसका संयम टूट गया, वह ज़ोर-ज़ोर से रोने लगी, उसके मकान मालिक रोने की आवाज़ सुनकर अपनी पत्नी सहित नीचे आए, हिमानी की माँ को मृत देखकर उनकी पत्नी ने हिमानी को सांत्वना दी। मकान मालिक ने पास-पड़ोस को भी सूचित किया। पड़ोस की महिलाएँ भी हिमानी के घर आ गईं। रात भर सब वहीं बैठे रहे। सुबह होते ही मकान मालिक ने अंतिम संस्कार की व्यवस्था की और शाम तक सब पड़ोस के लोग अंतिम संस्कार के बाद घर आ गए।

मकान मालिक की पत्नी ने हिमानी को बहुत सहारा दिया और एक माह तक वह हिमानी के साथ ही सोई, ताकि उसे डर न लगे और अकेलापन महसूस न हो। रिश्तेदार और सगे-संबंधी कुछ दिन सांत्वना देने आते रहे और फिर कोई नहीं आया। हिमानी मन-ही-मन सोच रही थी कि हमेशा अपने मकान मालिक और पड़ोसियों से अच्छे संबंध बनाए रखने चाहिए, मुसीबत में ये ही सबसे पहले आपका साथ देंगे।

हिमानी ने अपनी मकान मालकिन से कहा कि "अब मैं अकेले रह लूँगी, पूरा जीवन अकेले ही बिताना है, इसलिए आज से आप मुझे अकेला छोड़ दें, यदि मुझे कुछ परेशानी होगी, तो मैं आपको बुला लूँगी।" मकान मालकिन ने उसकी बात मान ली, लेकिन उसे आग्रहपूर्वक बोली कि उसकी जब भी ज़रूरत हो, वह हमेशा उसके साथ है। हिमानी ने उसके

प्रति कृतज्ञता ज्ञापित करते हुए धन्यवाद दिया और स्वीकृति में सिर हिलाया।

आज हिमानी नितांत अकेली थी, उसका जीवन बिल्कुल सूना था, उसके जीवन से स्नेह सरिता तो उत्पल की मृत्यु के साथ ही सूख गई थी। हिमानी महसूस कर रही थी कि नारी-जीवन में अनेक प्रकार की भावनाएँ होती हैं, समय और परिस्थितियों के साथ-साथ ये मनोभाव भी धीरे-धीर समाप्त होते रहते हैं, लेकिन नारी- जीवन में वात्सल्य और करुणा का भाव हमेशा बना रहता है, यह कभी समाप्त नहीं होता। हिमानी को पढ़ने का शौक था, उसने किताबों को ही अपना मित्र बना लिया था। एक दिन वह विदेशी लेखक द्वारा लिखी अंग्रेज़ी की पुस्तक "पैट पैरेंटिंग" (पालतू पशुओं, जैसे कुत्ते, बिल्ली आदि को अपने बच्चों की तरह पालना ) पढ़ रही थी, उसका मातृत्व जागृत हो गया, वह दूसरे दिन ही एक अच्छी नस्ल के कुत्ते का बच्चा ले आई और उसे अपने बच्चे की तरह पालने लगी, मानो उसे जीवन का लक्ष्य मिल गया हो ...!

**dr.nautiyaljp@gmail.com**

# एक और अहिल्या

**नंदन पंडित**
**उत्तर प्रदेश, भारत**

चित्रकूट एक्सप्रेस कर्वी स्टेशन पर बारह बजकर पाँच मिनट पर पहुँची। गाड़ी रुकते ही चढ़ने-उतरने वालों का रेलम-ठेल शुरू हो गया। रगड़ते-घिसड़ते प्रोफ़ेसर बद्री प्रसाद ट्रेन से नीचे उतरे। चारों ओर छाया हुआ घना कोहरा, स्टेशन की रोशनी में पड़कर, भाप बरसा रहा था। काँधे के कम्बल से पूरे शरीर को ढककर वे दस कदम आगे बढ़े, पूरे स्टेशन पर आदमियों का हुजूम पसरा था, फिर भी नए उतरे जत्थे, उसमें समा जाना चाहते थे। उन्होंने प्लेटफ़ॉर्म के एक सिरे से दूसरे सिरे तक पैदल चलकर मुआयना किया, कहीं तिल रखने भर की जगह न थी। दिसंबर का ठंड था। विगत कुछेक वर्षों से चित्रकूट की प्राकृतिक मनोरम्यता छुट्टियों एवं नया साल मनाने वालों को बहुत आकर्षित कर रही है।

बद्री प्रसाद रेलवे स्टेशन से बाहर निकल आए। तेज़ पछुआ हवाएँ शरीर पर डंक मार रही थीं।थोड़ा आगे बढ़कर वे ठहरने के लिए होटल, रिज़ॉर्ट, गेस्टहाउस आदि खोजने लगे। बाहर एक ऑटो वाला खड़ा था, बोला, "बाबू भीड़ बहुत है, यहाँ के सारे होटल तथा गेस्टहाउस भरे हुए हैं। अच्छा होगा आप यहाँ से रामघाट चले जाएँ, शायद वहाँ ठहरने की कोई जगह मिल जाए, क्योंकि स्टेशन पास होने के कारण सब यहीं रुकते हैं, तो वहाँ जगह मिल सकती है।"

ऑटो वाले की बात उनको जम गई और बीस रुपए देकर उसी के ऑटो से रामघाट पहुँच गए। वहाँ उन्होंने फिर से ठहरने के स्थान की खोजबीन शुरू कर दी। किंतु, कर्वी ही वाली हालत यहाँ भी थी।

ऑटो से उतरकर पैदल चलकर लगभग एक किलोमीटर बद्री प्रसाद ने छान मारा, परंतु कहीं कोई कमरा खाली नहीं मिला। सर्दी से हाथ-पाँव ठिठुरते जा रहे थे। वे बार-बार अपना कम्बल सही कर रहे थे।

बद्री प्रसाद बड़ी आशा से इधर-उधर चारों ओर देख रहे थे। धीरे-धीरे पाँवों ने शिथिल होकर चलने से मना कर दिया। सड़क के दाहिने मोड़ पर कोने में एक जगह बुझने से पहले अलाव छटपटा रहा था। सुस्ताने के उद्देश्य से वे वहीं आग के पास बैठकर हाथ सेंकने लगे।

थोड़ी देर में एक नारी-काया छाया से होते-होते अचानक स्त्रीरूप में उनके सामने आकर रुकी।

"परदेशी हो बाबू?" स्त्री ने बड़ी विनम्रता से पूछा।

"हूँ!" बद्री प्रसाद ने अन्यमनस्क-सा उत्तर दिया।

"घूमने आए हो?"

उन्होंने घूरकर उसको देखा। कैसी मूर्खों-सा प्रश्न कर रही है? दिमाग नाम की कोई चीज़ इसके पास है भी? प्रचंड शीतलहरी में आधी रात भला कोई स्थानीय व्यक्ति घूमेगा!

"कहीं ठहरने का स्थान नहीं मिला?"

अरे! वाह! यह तो सयानी निकली। मन की बात पढ़ लेती है। प्रसन्न होते हुए उन्होंने सिर हिलाया, "उहूँ।"

"वर्ष का आखिरी है। इस समय यहाँ होटल, गेस्टहाउस आदि की यही हालत रहती है। इस समय छुट्टियाँ मनाने के लिए लोग एक साथ टूट पड़ते हैं। सबको अलग कमरा चाहिए। तो कितने कमरे हो जाएँ!"

बद्री प्रसाद को उसकी यह सफ़ाई पसंद न आई। उनके चेहरे पर उक्ताहट की रेखाएँ खिंच आईं। स्त्री उनकी मनोस्थिति तुरंत भाँप गई, बोली, "अकेले हो?"

"नहीं बाबा, कॉलिज की पूरी पलटन है!" चिढ़कर उन्होंने कहा।

"तो चलिए मेरे साथ। आपको कमरा मिल जाएगा।" इतना कहकर वह स्त्री सामने मकान की ओर चल दी। अपने पीठ पर बैग और उसके ऊपर कम्बल लादकर बद्री प्रसाद भी उसके पीछे हो लिए।

मकान का गेट वैसे ही भिड़ाया हुआ था। फाटक खोलकर स्त्री उन्हें अंदर ले गई और एक कमरे का ताला खोलती हुई बोली, "लीजिए, यह आपका कमरा!"

बद्री प्रसाद ने झटपट पीठ से बैग उतारकर मेज़ पर रखा। ठंड से उनकी हड्डियाँ काँप रही थीं। वे तुरंत बिस्तर में समा जाना चाहते थे। उन्होंने खाली तख्त पर नज़र डाली, जिस पर धूल की मोटी परत सो रही थी। तब तक पीछे से स्त्री ने गद्दा-रजाई लाकर उस पर पटक दिया। फिर एक पुराने कपड़े से धूल झाड़कर, सलीके से स्त्री ने बिस्तर लगाया।

बद्री प्रसाद बिस्तर पर रजाई के अंदर घुस गए।

स्त्री ने विनीत स्वर में पूछा, "भोजन करना है?"

"नहीं, बस। आधी रात के बाद मैं भोजन नहीं करता। कमरा उपलब्ध कराने के लिए आपका बहुत धन्यवाद।" कहकर भीतर से उन्होंने कमरा लॉक कर लिया।

सुबह नौ बजे बद्री प्रसाद की आँख खुली। हड़बड़ाकर उन्होंने ब्रश पर टूथपेस्ट चढ़ाया और फटाफट आधे घंटे में स्नान आदि दैनिक कार्यों से निवृत्त होकर, सजकर चलने को तैयार हो गए।

"उठ गए आप?" स्त्री अचानक से सामने आकर बोली।

"हाँ, कितना किराया हुआ?" सकुचाकर पैंट से पर्स निकालने लगे वे।

"पाँच सौ।" स्त्री ने संकोच से कहा।

बद्री प्रसाद ने पर्स से सौ-सौ के पाँच नोट निकालकर उसको दिए तथा पर्स को पुनः पैंट की पिछली जेब में रख लिया।

स्त्री ने आग्रहपूर्वक कहा, "नाश्ता करके जाइए!"

"नहीं। नाश्ता आगे कर लूँगा मैं। आप परेशान मत होइए।" स्त्री की सदाशयता से वे असहज हो रहे थे।

"घबराइए मत, इसके पैसे नहीं लगेंगे।"

बद्री प्रसाद झेंपकर बोले, "प...प... पैसे की बात नहीं है।"

"फिर नाश्ता कर लीजिए। मैं लाती हूँ।"

बद्री प्रसाद कंधे से बैग उतारकर बिस्तर पर बैठ गए।

स्त्री नाश्ते की थाल सजाकर ले आई। बद्री प्रसाद नाश्ता करने लगे।

"बच्चों को पढ़ाते हैं?" स्त्री ने डरते-डरते पूछा।

बद्री प्रसाद ने ऊपर से नीचे उसे निहारा। वह सहम गई। तो मुस्कराकर कहने लगे, "हाँऽऽ बड़े बच्चों को! प्रोफ़ेसर हूँ, आई. टी. आई. में।"

"पहली बार आए हैं यहाँ?" थोड़ी देर बाद स्त्री ने पुनः प्रश्न किया।

"हाँऽऽ! यही समझो।"

"कहाँ-कहाँ घूमना है?"

"फ़िलहाल तो कामतानाथ का दर्शन करने जा रहा हूँ, बाकी किसी से.... कुछ आप जानती हैं, तो बताएँ!"

"हाँ हाँ!" वह गद्गद कंठ में बोली, "रामघाट, जानकीकुंड, फटिक शिला, सती अनुसूइया, गुप्त गोदावरी, हनुमान धारा, हनुमान पहाड़ी, कामदगिरि आदि चित्रकूट में प्रमुख दर्शनीय स्थल हैं।"

उन्होंने उससे सभी प्रमुख स्थलों का नाम पूछकर एक डायरी में नोट किया, फिर पूछा, "अब यह बताओ, पहले कहाँ जाऊँ?"

"मेरी राय में पहले आप यहाँ से थोड़ी दूर जाकर मन्दाकिनी में स्नान करके अगल-बगल के मंदिरों के दर्शन कर लें। तत्पश्चात् वहीं से चारों धाम बोलकर एक ऑटो दिन भर के लिए बुक करा लें। ऑटो वाला आपको सभी जगह घुमा देगा। चारों धाम से लौटते-लौटते आपको शाम हो जाएगी, तो रात्रि विश्राम कर कामतानाथ और कामदगिरि की

परिक्रमा अगले दिन कर लीजिएगा।"

"फिर अपना बैग यहीं छोड़ जाऊँ? आपको कोई आपत्ति तो न होगी?"

"अरे! नहीं बाबू। कैसी बात करते हैं आप?" कुछ खिसियाई, कुछ सोत्साह बोली वह।

नाश्ता करने के उपरांत बद्री प्रसाद ने सौ रुपए का एक नोट उसकी ओर बढ़ाया।

उसने विनम्रतापूर्वक मना कर दिया, "नहीं बाबू, अब मैं भोजन के पैसे नहीं लेती।"

"अब पैसे नहीं लेती...।" बद्री प्रसाद धीरे से बुदबुदाए।

"हाँ बाबू, पहले कभी यह भी होटल हुआ करता था। ठहरने और खाने की दोनों व्यवस्था थी यहाँ। बस इधर ग्राहक आना कम हो गए और उधर इसका अधिकांश हिस्सा पेट में समा गया।" उसकी आवाज़ में बला की दैन्यता घुल गई।

बद्री प्रसाद ने नज़र घुमाकर देखा, दो कमरे तथा आँगन, जो होटल होने का दम्भ भर रहे थे। उनमें उसे जानने की उत्सुकता जग गई। परंतु सोचा। विलम्ब हो रहा है, अभी चलना चाहिए, जब बैग लेने आऊँगा, तब पैसे चुकता दूँगा और उसके बारे में जान भी लूँगा। यह विचार मन में आते ही कमरे में ताला लगाकर मकान से वे बाहर निकल गए। बाहर हल्की-हल्की धुंध छाई थी। जिसे भेदकर सूर्य रश्मियाँ अग्निकांड के पश्चात् उठने वाले धूम्र-बादलों का दृश्य उत्पन्न कर रही थीं। बद्री प्रसाद रास्ते पर पहुँचकर किसी ऑटो आदि की प्रतीक्षा करने लगे।

इतने में सामने से एक ऑटो खिच-खिच-खिच-खिच करता हुआ उनके सामने आकर रुका। ऑटो वाला ऑटो में से अपनी गर्दन बाहर निकालकर उनसे बोला, "साहब, चारों धाम?"

उन्होंने नकली मुस्कराहट से मना कर दिया, "नहीं अभी तो रामघाट पहुँचकर पहले मंदाकिनी में स्नान करना है। चारों धाम वहाँ दर्शन-पूजन के बाद जाएँगे।"

"कोई बात नहीं साहब, बैठिए, वहीं छोड़ देता हूँ।"

बद्री प्रसाद ऑटो में बैठ गए। ऑटो वाले ने ऑटो को गियर में डालकर क्लच पर से अपनी उँगलियाँ हटा लीं।

"साहब, आप सामने वाले मकान से आ रहे हैं?" बड़ी देर से अपने को नियंत्रित कर रहा ऑटो वाले से रहा न गया।

"हाँऽऽ!"

"वह, जिस पर गौरी गेस्ट हाउस लिखा हुआ है?" उसने मकान की ओर इशारा करते हुए कहा।

"हाँ भाई, हाँ।" बाहर निकलते समय मकान के ऊपर उन्होंने यही नाम पढ़ा था।

"चलो अच्छा हुआ वहाँ खाना-वाना नहीं मिलता!" ऑटो वाला विचित्र भाव से बोला।

ऑटो वाले के इस वाक्य ने उनका विस्मय बढ़ा दिया। वे आश्चर्य से बोले, "क्यों? क्या हुआ?"

"अरे साहब, उसकी मालकिन गौरी एक चरित्रहीन स्त्री है। अपने कुकर्मों से उसने जवान माँ-बाप को मार डाला। साहब, वह एक कुलटा स्त्री है। उसके बाप का वहाँ पर पहले होटल चलता था। लेकिन उसके कर्मों के कारण अब वहाँ कोई नहीं जाता। समाज ने उसे त्याग दिया है। यदि कोई वहाँ जाता है, तो उसे किसी मंदिर आदि में घुसने नहीं दिया जाता।"

ऑटो रफ़्तार से बढ़ता जा रहा था। उसी रफ़्तार से वह रहस्योद्घाटन कर रहा था, "आप नहीं जानते थे, सो चले गए, पर अब कभी मत जाइएगा वहाँ। अन्यथा कोई देख लेगा, तो अनर्थ हो जाएगा।"

"किन्तु मेरा बैग वहीं है।"

ऑटो वाले ने ऑटो धीमा कर दिया, "हाय राम! यह क्या किया आपने?"

"रोको, मैं जाकर अपना बैग ले आऊँ।"

"लेकिन साहब किसी ने देख लिया तो..."

"बैग में ज़रूरी कागज़ात हैं। तू रोक मैं जाता हूँ।" घबराए हुए बद्री प्रसाद ऑटो से लगभग कूद पड़े।

'गौरी!' वह तभी इतना प्रेम बरसा रही थी। भगवान ने मर्यादा बचाई, रात में उसने कुछ उल्टा-सीधा नहीं किया। राम-राम! यह तो कहो कि वहाँ किसी ने खाते नहीं देखा। सोचते हुए तेज़ कदमों से वे उसके मकान पहुँचे। गौरी गैलरी में ही बैठी थी। उन्हें वापस आया देखकर वह घबरा गई। बद्री प्रसाद ने शीघ्रतापूर्वक ताला खोला और अपना बैग निकालकर उसके मुँह पर सौ रुपए का एक नोट मारते हुए,

जल्दी से चोरों की भाँति छिपते हुए दुबारा रास्ते पर पहुँच गए।

वह आश्चर्य से उनका मुँह देखने लगी। आदमी कितना मतलबी होता है! उसकी आँखों में आँसू आ गए। फिर किसी मुँह ने उसकी अस्मत लूट ली। किसी ने एक के दो लगाए होंगे। वह सोचने लगी। हे! कामतानाथ, उसकी मुक्ति कब होगी? गौरी का हृदय पिहँक उठा। भादो अष्टमी की उस रात ने उसके जीवन को नर्क बना दिया।

नौ वर्ष हुए। इस मकान में एक औसत होटल और गेस्ट हाउस हुआ करता था। गल्ले पर पाँव से विकलांग उसके पापा बैठते थे, जबकि ग्राहकों को भोजन आदि तथा उन्हें कमरा उसकी मम्मी दिखाती थी। दिन सामान्य रूप से सरक रहे थे।

आम दिन की तरह उस रोज़ भी दिन चढ़ रहा था। एक लड़का काफ़ी देर से होटल के सामने खड़ा था। पापा ने उसे पास बुलाया। वह सहमता हुआ उनके पास आया। उसके वस्त्र कई जगह से फटे तथा चेहरे पर उसके चोट के निशान थे। पापा ने करुणावश पूछा, "कोई समस्या? कुछ परेशान लग रहे हो?"

पापा का स्नेह पाकर वह रुआँसा हो गया। सारी घटना एक ही झटके में पापा से उसने कह दी। उसकी व्यथा सुनने मम्मी भी पास आकर खड़ी हो गई।

नासिक से लड़कों का एक दल भौगोलिक टूर पर आया हुआ था। विनोद उसी टूर में ही था। वे सब मन्दाकिनी के तट पर घूमते हुए भौगोलिक महत्त्व के चीज़ों को देखते/सहेजते जा रहे थे। विनोद का प्रकृति से अधिक लगाव था। वह बहुत खोजी प्रवृत्ति का था। नदी किनारे घूमते-घूमते वह जंगल में प्रवेश कर गया। आगे वन में उसे एक बटमार मिल गया। वह उसे एक खूबसूरत स्थल दिखाने के बहाने बीच वन में ले गया। वहाँ अकेला पाकर उसने और उसके पहले से छिपे अन्य साथियों ने उसे पीट-पीटकर अचेत कर दिया तथा उसके रुपए-पैसे, घड़ी आदि सामान को छीन लिया।

विनोद आधा दिन और पूरी रात जंगल में अचेत पड़ा रहा। उजाला होने पर अगले दिन उसकी मूरछा भंग हुई, तो वह घबराया हुआ इधर-उधर भटकने लगा। जैसे-तैसे वह वन पार कर मन्दाकिनी के उस पार आया जहाँ एक दिन पहले उसके साथी और शिक्षक भ्रमण कर रहे थे। उसने यहाँ-वहाँ देखा, कोई नहीं था। शायद साथी लोग बस में होंगे, वह भागकर बस-स्थल पर पहुँच गया। बस वहाँ नहीं थी।

वहाँ से वह रोता-बिलखता हुआ पगलाया-सा उसके होटल के सामने आकर खड़ा हो गया। विनोद की कहानी सुनकर मम्मी-पापा दोनों द्रवित हो गए। उन्होंने प्रेमपूर्वक उसे भोजन कराया तथा किराये के पैसे दिए। वह खुद्दार था। तृप्त हो जाने के बाद, उसने होटल पर काम करके पैसे चुकाकर जाने के बारे में कहा। पापा ठहरे सीधे आदमी। उनको आदमी की ज़रूरत थी, तुरंत उन्होंने उसको काम पर रख लिया।

उस समय वह बारहवीं में पढ़ती थी। विनोद आकर्षक और बड़ा शर्मीला था। आयुजन्य स्वभाव के कारण वह उस पर मोहित हो गई। आरंभ में विनोद थोड़ा डरता था। मम्मी-पापा उसकी खुद्दारी से अभिभूत थे। उनको बेटी के लिए ऐसा ही ईमानदार, मेहनती लड़का चाहिए था। उन्होंने एक प्रकार से उसे मौन छूट प्रदान कर दी। फिर तो तीन-चार दिन में ही वे दोनों घुल-मिल गए। आयु दोनों पर मेहरबान थी। वे इतना घुल-मिल गए कि मर्यादा की सीमा भी एक झटके में तोड़ गए।

इसी तरह कुछ दिन निकल गए। दसवें दिन से उसने घर जाकर अपने माता-पिता से मिल आने की इच्छा प्रकट की। सरल स्वभाव के मम्मी-पापा, उन्होंने उसकी कमाई के और थोड़ा अपने पास से भी, रुपए देकर उसको उसके घर भेज दिया।

एक बार जाने के बाद विनोद दुबारा लौटकर न आया। प्रारंभ में मम्मी-पापा ने सोचा, चलो गया तो गया, उनका कोई नुकसान नहीं कर गया। बाद में तीसरे महीने से जब उसका पेट उभरने लगा तो मम्मी-पापा के पैरों के तले से ज़मीन खिसक गई। उनकी मन्दाकिनी में सैलाब आ गया। लेकिन उसका कुछ पता ठिकाना तो था नहीं।

उन्होंने पेट गिराने को कहा, किन्तु प्रेम के भूत के वशीभूत उसने मना कर दिया। आत्मग्लानि से पापा स्वर्ग सिधार गए। साढ़े नौ महीने बाद उसने एक बच्ची को जन्म

दिया। पूरे मोहल्ले में थू-थू होने लगी। बदनामी मम्मी भी न बर्दाश्त कर पाई। लड़की डेढ़ साल की हुई, तो मम्मी भी परलोक कूच कर गई।

तब से आज तक वह अपने अपराध की सज़ा भुगत रही है! हे! रामजी, आपका वनवास तो मिट गया था, मेरा कब मिटेगा! एक लम्बी-सी उबासी लेकर गालों पर लुढ़क आए आँसुओं को पोंछकर वह उठ खड़ी हुई, चल गौरी, जंगल से लकड़ियाँ लाने। इन छः सौ रुपयों से कितने दिन कटेंगे? इन्हें हारे-गाढ़े के लिए रख।

बद्री प्रसाद ऑटो में बैठकर एक-एक कर सभी स्थलों पर सारा दिन घूमते रहे तथा राम, लक्ष्मण और सीता के परम त्याग व प्रताप का अनुभव करते रहे।

हनुमान धारा से लौटते समय कोहरा तो न था, किंतु अँधेरा मुँह छिपाने लगा था। उन्होंने गर्दन पीछे झुकाकर आँखों को ऊपर किया। आकाश की नियति साफ़ न थी। तुरंत मस्तिष्क ने निर्णय लिया, पहले कमरा ढूँढ लें, शेष जगह अगले दिन घूमेंगे! ऑटो करके वे दुबारा रामघाट आ गए।

रामघाट पहुँचकर उन्होंने लगभग सभी होटलों और गेस्ट हाउसों में पता किया, किन्तु अपेक्षा के विपरीत आज भी कोई कमरा खाली न मिला। हवाओं में तेज़ी और सर्दी बढ़ती जा रही थी। प्रसन्नचित्त मन निराश हो गया उनका। नभ में बादल घिर आए, चेहरे पर उदासी छा गई। निराशा मन को डराने लगी और बादल आकाश को।

देखते-ही-देखते गरजते-चमकते बादलों ने बूँदाबाँदी शुरू कर दी। आश्रय की तलाश में भागकर बद्री प्रसाद एक मकान के छज्जे के नीचे जा पहुँचे। सर्द हवाएँ पूरे बदन को हिम-सा जमा दे रही थीं। वे सिमटकर दीवार से सटकर खड़े हो गए। इतने में आसमानी बिजली की एक चमक ने उनको किंकर्त्तव्यविमूढ़ कर दिया। वे गौरी गेस्ट हाउस के साये में खड़े थे। इतना बड़ा संसार उनके लिए कितना छोटा हो गया था! बद्री प्रसाद के सामने घोर असमंजस उत्पन्न हो गया। बेमौसम बूँदाबाँदी ने वर्षा का रूप ले लिया था। वे वहीं चुपचाप जल्दी से बरसात के रुकने की प्रतीक्षा करने लगे।

हवाएँ दरवाज़े को बार-बार पीट रही थीं। गौरी ने दरवाज़े को खोलकर दुबारा जाँचने के लिए बाहर मुँह निकाला, तो छज्जे के तले बद्री प्रसाद सिकुड़ रहे थे। उसका मन जुगुप्सा से भर गया। उन पर तेज़ हँसने का जी हुआ उसका। किंतु उनकी दुरावस्था निहारकर उसके प्रताड़ित मन ने रोक दिया। वाणी को संयमित करके बोली, "अंदर आ जाओ! बाहर की रात बहुत भारी है।"बद्री प्रसाद ने अचरज से उसकी ओर देखा। वह उनकी मनोदशा भाँपकर कहने लगी, "एक रात और काट लो इस कुलटा के साथ। पाप तो आखिर कर ही चुके हो! क्या एक बार, क्या हज़ार बार!"

कम्बल सम्हालकर बद्री प्रसाद सिर झुकाए हुए उसके पीछे कमरे में आ गए। उसने बेटी के हाथ उनके कमरे में भोजन भिजवा दिया। भोजन करके बद्री प्रसाद बिस्तर पर लेट गए। परन्तु पूरी रात उन्हें नींद न आई। पत्नी के मरने के बाद पहली बार किसी स्त्री ने उन्हें परेशान किया था। सारी रात उन्हें गौरी का चरित्र बेचैन किए रहा। सुबह उन्होंने गौरी से पूछा, "तुम्हारा चरित्र क्या है?"गौरी ने एक बार सिर से लेकर पाँव तक उनको जाँचा फिर सारी आपबीती सुना दी।

उसकी दुख-भरी कहानी सुनकर बद्री प्रसाद का मन आत्म-ग्लानि से भर उठा। वे पश्चाताप् के स्वर में बोले, "मुझे क्षमा कर दो। मैं ऑटो वाले के कहने में आकर घबरा गया था।"

"कोई बात नहीं। मुझे इसकी आदत हो गई। यहाँ एक नहीं उससे हज़ारों सपोले हैं। इन लोगों ने मेरा घर-परिवार, धंधा सब निगल लिया। तथापि मुझे कोई चिन्ता नहीं, रामजी कहते हैं कर्म का लिखा भोगने से ही मिटता है।"

गौरी की विनम्रता के आगे बद्री प्रसाद का हृदय नतमस्तक हो गया। उनके मस्तिष्क में उथल-पुथल मच गई। देर तक मन में उठ रही भावनाओं को दबाने के बाद सहसा वे बोल पड़े, "मुझसे विवाह करोगी?"गौरी कदाचित इस प्रश्न के लिए पहले से ही तैयार खड़ी थी, सपाट स्वर में बोली, "न बाबू न! मुझपे तरस मत खाओ। रात बीत चुकी है। आसमान के बादल छँट चुके हैं। अब आप जा सकते हैं।"

बद्री प्रसाद ने कम्बल को बैग में रखा। बैग को कंधे पर टाँगा और शीश झुकाकर सोचते हुए बाहर निकल गए- इस पाषाण अहिल्या में जीवन रोपने उसके राम कब आएँगे?

**nandanpandit81@gmail.com**

# रामू मसखरा

**रंगनाथ द्विवेदी**
**जौनपुर, भारत**

रामू मसखरा प्रतिदिन शहर की विभिन्न कॉलोनियों में घूम-घूमकर अपने मसखरे के मुखौटे के साथ लोगों को खूब हँसाता,जब वह हँसाकर खाली होता, तब कॉलोनी के कुछ एक लोग उसकी मसखरी से खुश होकर दो-चार रुपए उसकी मासूम हथेली पर रख देते, जिसे वह अपनी एक फटी हुई जेब की बगल वाली जर्जर जेब में रखकर अगली कॉलोनी की तरफ़ अपने मसखरेबाज़ी के करतब दिखाने के लिए चल पड़ता।

हालाँकि 15 वर्षीय रामू कोई जन्मजात मसखरा नहीं था,लेकिन उसके घर की परिस्थितियों और हालात ने उसे पढ़ने-लिखने की उम्र में ही शहर की इस कॉलोनी से उस कॉलोनी का एक मसखरा बनाकर रख दिया। आज वह अपनी बीमार माँ की दवा और अपनी छोटी बहन का पेट अपने इसी मसखरेपन के तमाशे की वजह से ही भर पा रहा है।

कॉलोनी के लोग तो उसके इस मसखरेपन की वजह से हँस लेते हैं, लेकिन रामू खुद कभी नहीं हँस पाता, क्योंकि उसे अपनी खुद की ज़िंदगी ही किसी मसखरे की तरह मिली है। जहाँ उसके मासूम होठों पर कोई हँसी नहीं, बस आँसू है, जो अब उसकी आँखों से इसलिए नहीं बहते कि कहीं उसके मसखरेपन का किया हुआ मेकअप ना छूट जाए,जिसे देखकर लोग हँसते हैं।

वह सारा दिन इस कॉलोनी से उस कॉलोनी अपने मसखरेपन के करतब को दिखाकर जब खाली होता, तब वह इस करतब और धंधे से मिले सारे सिक्के और नोटों को निकालकर उसकी गिनती करता,उस गिनती में जब दस-बीस रुपए दवा और खाने के कम पड़ते, तब वह एकाध और कॉलोनी में बेमन से अपने इस मसखरेपन के करतब को दिखाकर उन सारे पैसों को इकट्ठा कर अपने झोपड़े की तरफ़ लौटता है, तब उसके नन्हे पैरों में एक असीम थकान और पीड़ा होती है।

एक शाम अपने मसखरेपन के इस धंधे से खाली होकर जब रामू अपनी झोपड़ी के दरवाज़े के पास पहुँचा, तब उसने देखा कि उसकी झोपड़ी के आस-पास, अगल-बगल की कुछ औरतें उसकी छोटी बहन, जो कि काफ़ी ज़ोर-ज़ोर से और हिचक-हिचककर रो रही थी,उसे चुप कराने और ढाढ़स बँधाने का प्रयास कर रही थीं। यह सब देखकर रामू चौंक गया और उसके मन में किसी अनहोनी की आशंका उत्पन्न हुई। अतः उसने बिना किसी से कुछ पूछे या अपनी बहन को देखे वह सीधे झोपड़ी के अंदर चला गया और उसने अपनी माँ को टूटी हुई चारपाई पर हमेशा की तरह लेटे हुए देखा।

लेकिन अन्य दिनों की अपेक्षा आज उसकी माँ के सोने में एक फ़र्क था। पहले जब रामू शाम को अपनी झोपड़ी में लौटता, तब उसकी माँ दो-तीन बार ज़ोर से खाँसती, फिर खुद को सामान्य कर रामू से पूछती कि तुम आ गए रामू बेटा! लेकिन आज रामू की माँ ना तो खाँसी और ना ही उसने रामू से यह पूछा कि तुम आ गए रामू बेटा।

रामू समझ गया कि आज उसकी माँ भी उसके शराबी बाप की तरह उसे और उसकी छोटी बहन को हमेशा के लिए इस दुनिया में अकेले रहने के लिए छोड़कर चली गई है। दरअसल रामू का बाप एक चर्चित शराबी था। अतः उसकी माँ जो कुछ भी कमाती थी, उसे उसका बाप अपने शराब की लत में उड़ा देता था। इतना ही नहीं कभी-कभी जब ज़रूरत से ज्यादा पीकर आता, तब वह बेतहाशा ना सिर्फ़ माँ को मारता-पीटता था, बल्कि वह उसकी माँ को ढेर सारी गंदी-गंदी माँ-बहन की गालियाँ भी देता,जिसकी वजह से रामू की माँ सारी रात रोती रहती थी।

जब रामू से अपनी माँ का रोना नहीं देखा जाता था, तब वह अपनी नन्ही-नन्ही हथेलियों से अपनी माँ के आँसू पोंछता और उसे किसी तरह चुप कराने की कोशिश करता रहता। माँ तब कभी-कभी मुझे ज़ोर से अपने सीने से लगाकर भींच लेती और थोड़ी देर रो लेने के बाद कहती कि बेटे! मैं तेरी

कितनी अभागी माँ हूँ कि मैं तुम लोगों को कोई खुशी नहीं दे सकती सिवा आँसू के, पर क्या करूँ बेटा ? मुझे शादी से पहले तेरे बापू के बारे में यह सब पता नहीं था।

फिर एक दिन रामू को पता चला कि उसका शराबी बाप शराब के नशे में घर लौट रहा था, तो एक तेज़ रफ़्तार ट्रक ने उसे बुरी तरह कुचल दिया, जिसकी वजह से उसकी वहीं पर मौत हो गई। उस दिन उसकी माँ बहुत रोई थी और रामू ने अपनी माँ को चुप कराने की कोई कोशिश नहीं की थी, बल्कि एक तरह से रामू मन-ही-मन यह सोचकर खुश था कि चलो! अब कम-से-कम उसकी माँ को उसका शराबी बाप मारेगा तो नहीं।

लेकिन माँ को अपने पति की मौत का गहरा सदमा लगा और लगता भी क्यों ना, क्योंकि उसका बापू चाहे जैसा भी था, लेकिन था तो उसकी माँ का सुहाग ही। अतः इसके बाद से उसकी माँ अक्सर बीमार रहने लगी। दो-चार दिन किसी तरह बीत गए, लेकिन माँ के बीमार होने से वह आय भी बंद हो गई, जो उसकी माँ दो-चार बड़े लोगों के यहाँ झाड़ू, बर्तन और पोंछा करके पा जाती थी। लेकिन अगर ईश्वर ने पेट दिया है, तो उसके साथ ही उसने रोटी की भूख भी दी है।

इसी भूख और रोटी के लिए रामू हफ़्तों इधर-उधर भटकता रहा और अपने लिए किसी काम की तलाश करता रहा, लेकिन कहते हैं कि बिना किसी परिचय या पहचान के यहाँ काम भी नहीं मिलता। यही हाल रामू का भी हुआ, लेकिन उसने हिम्मत नहीं हारी, फिर भी वह काम तलाशता रहा। ऐसे ही एक दिन वह चाय-नाश्ते की एक दुकान पर गया और बड़े ही कातर भाव से उसने दुकानदार से कहा कि मुझे कोई काम दे दो सेठ!

लेकिन दुकानदार ने जैसे रामू की कोई बात ही ना सुनी हो। अतः उसने एक बार फिर किसी तरह अपनी हिम्मत जुटाकर दुकानदार से कहा कि मुझे कोई काम दे दो सेठ!लेकिन इस बार शायद उस दुकानदार ने रामू की बात सुन ली हो। वह बोला कौन हो? कहाँ के रहने वाले हो? तुम्हारा यहाँ कोई अपना जान-पहचान का है? रामू बोला नहीं सेठ! तो फिर यहाँ क्या करने आए हो, चलो हटो! दुकान के सामने से, धंधे का टाइम है, खोटी मत करो, लेकिन फिर भी रामू कुछ देर और दुकान पर यह सोचकर खड़ा रहा कि शायद सेठ को उस पर दया आ जाए और वह उसे कोई काम दे दे।

लेकिन ऐसा नहीं हुआ, बल्कि उसने रामू को देखा और ज़ोर से कहा अभी गया नहीं तू! सूरज,छोटू उसने उस दुकान में काम कर रहे अपने दो हट्टे-कट्टे नौकरों को बुलाया और कहा अरे इसे जल्दी यहाँ से मार के भगा तो। पता नहीं कहाँ-कहाँ से चले आते हैं, साले! उसके दोनों नौकर तेज़ी से रामू की तरफ़ बढ़े और उसकी कमज़ोर और मासूम बाँहो को पकड़कर उसे ज़ोर से सड़क की तरफ़ ढकेल दिया।

उनके ढकेलने की वजह से उसके दोनों हाथों और पैरों के घुटने छिल गए। वह सुबकता हुआ उठा और वहीं पास में सड़क के उस तरफ़ नाली के किनारे रखे हुए एक पत्थर पर बैठ गया, अभी उस पत्थर पर रामू को बैठे बमुश्किल दस मिनट भी नहीं हुए थे कि तभी उसे लगा कि कोई उसके पास आकर खड़ा हुआ है। उसने अपना सर उठाकर देखा, तो वाकई उसके पास पचास साल का एक अधपके बालों वाला व्यक्ति लुंगी और शर्ट पहने खड़ा था, जिसने अपने कंधे पर एक बड़ा-सा तमाशा दिखाने वाला झोला भी टांग रखा था।

उसने रामू से कहा बेटा! जब तुम उस सेठ की दुकान पर काम माँग रहे थे, उस समय मैं उस दुकान पर बैठा चाय पी रहा था। मेरे तुम तक पहुँचने से पहले उसके दोनों नौकरों ने तुम्हें सड़क पर ज़ोर से धक्का दे दिया था। फिर तुम्हें सड़क के इस तरफ़ पत्थर पर यूँ उदास बैठा हुआ देखकर मैं खुद को तुमसे मिलने से नहीं रोक पाया। उसके इतना कहते ही रामू के आँसू झर-झर आँखों से बहने लगे और ना जाने किस भावना के तहत उसने अपने पास खड़े उस अजनबी से अपनी सारी मजबूरी बता दी।

फिर कुछ देर बाद उस अजनबी ने कहा, बेटे मैं तुम्हें काम दे सकता हूँ, अगर तुम करना चाहो तो। हाँ! बहुत ज़्यादा तो नहीं कमा पाओगे, लेकिन इससे तुम और तुम्हारे परिवार को दो वक्त की रोटी अवश्य मिल जाएगी। रामू ने भी आव देखा ना ताव झट उसने अपने सामने खड़े अजनबी से 'हाँ' कह दिया। फिर उसके बाद उसने कहा कि लगता है कि तुमने सुबह से लेकर अभी तक कुछ खाया नहीं है, आओ!

पहले तुम कुछ खालो। अतः उसने सामने चाय और समोसे की दुकान पर ले जाकर उसे तीन समोसे खिलाने के साथ एक कप चाय पिलाई।

फिर इससे निवृत होने के बाद उसके मददगार ने उसे बताया कि उसका नाम मुरारी है और वह शहर की कचहरी में मजमा व तमाशा दिखाकर लोगों को उनके अच्छे किस्मत की अँगूठी बेचता है। इतना बताने के बाद उसने कहा, अब कल से तुम रोज़ मुझसे ठीक नौ बजे यहीं मिलना, फिर हम दोनों साथ कचहरी चलेंगे। दूसरे दिन से मैं भी कचहरी उनके साथ जाने लगा। उसने इस बीच मुझे अपने तमाशे का जमुरा बनने की पूरी ट्रेनिंग दे दी। मेरे जमुरा बनने के बाद उनकी भी कमाई काफ़ी बढ़ गई थी।

फिर एक दिन मुरारी ने रामू से खुद कहा, बेटे! मैंने तुम्हें अपने सगे बेटे की तरह प्यार दिया है, इसलिए मैं आज तुमसे कुछ कहना चाहता हूँ। देखो बेटे! तुम्हारे पास अपनी बीमार माँ के अलावा तुम्हारी एक छोटी बहन भी है, जिसकी सारी ज़िम्मेदारी तुम्हारे कमज़ोर कंधों पर है। इसलिए मैं नहीं चाहता कि तुम मेरे साथ कचहरी में तमाशे या मजमे करो। मैं तुम्हें यह बहुत पहले ही बता देता, लेकिन मैं चाहता था कि तुम्हारे अंदर की वह सारी झिझक दूर हो जाए, जिससे तुम इस कठोर और पत्थर दुनिया का बहादुरी के साथ सामना और मुकाबला कर सको।

मेरे इस कुछ पैसे से तुम्हारा कुछ भी भला नहीं होगा। लेकिन इस बीच उनके अपनत्व और लगाव ने कब मुझे उनसे चाचा और भतीजे के रिश्ते से जोड़ दिया, इसका मुझे कुछ पता नहीं चला।मैंने कहा कि मुझे तो इस आपके मजमे और तमाशे के सिवा कुछ नहीं आता। मेरे इतना कहते ही वे खिलखिलाकर हँसते हुए बोले, "रामू जब तुमने मुझे अपना चाचा कह ही दिया है, तब तुम चिंता क्यों करते हो, मैं हूँ ना।दरअसल, मेरे बाबा के बारे में आज भी बताने वाले बताते हैं कि उनके जैसा मसखरे का तमाशा दिखाने वाला आज तक इस शहर में कोई दूसरा पैदा नहीं हुआ।उन्होंने मुझे बचपन में अपना यह हुनर सिखाया था, लेकिन मेरा मन कभी भी मसखरे के धंधे में नहीं लगा। इस धंधे की एक शर्त है कि जो भी मसखरा, मसखरे का धंधा करेगा उसे अपने खुद के दर्द को चेहरे पर कभी भी व्यक्त नहीं होने देना है। अब इस बात में कितनी सच्चाई थी मैं बता नहीं सकता रामू, क्योंकि मैंने यह धंधा कभी किया ही नहीं।लेकिन मैं इसे तुम्हें सिखाऊँगा, ताकि तुम अपनी बीमार माँ और अपनी छोटी बहन की परवरिश अच्छे से कर सको।"

मुझे एक महीने के अंदर ही चाचा ने मसखरे के धंधे की सारी खूबियाँ बहुत अच्छे से सीखा दीं। सीखने के बाद उस दिन जब मैं उन्हें छोड़कर आने लगा, तब वह मुझे अपने बेटे की तरह गले से लगाकर रो पड़े और जब मैं भी रोने लगा, तब अचानक उन्होंने मुझे अपने कंधे से झटककर एक तमाचा बड़ी ज़ोर से मेरे मासूम गाल पर मारा। मैं अवाक रह गया। कुछ देर मानो समय थम-सा गया हो।

फिर उन्होंने ही कहा,"मैं जान-बूझकर तुम्हें अपने गले से लगाकर रोने का नाटक कर रहा था। मैं यह देखना चाहता था कि तुम्हें इस मसखरे के धंधे की ट्रेनिंग देने में मुझसे कोई कमी तो नहीं रह गई। आज तुम्हारे उसी दी हुई ट्रेनिंग की परीक्षा थी और मेरी तुम्हें इस तमाचे के रूप में एक आखिरी सीख भी कि एक मसखरा चाहे जो भी हो, जैसे भी हालात हो, चाहे उसके अपने खुद का ही दर्द क्यों ना हो, पर वह कभी रो नहीं सकता।"

फिर रामू इस मसखरे के धंधे को करने लगा, हालाँकि यह धंधा इतना आसान नहीं था। इस धंधे में जाने से पहले घंटों अजीबो-गरीब मेकअप की एक मोटी पर्त चेहरे पर चढ़ानी होती है। रामू अब पूरी तरह से एक मसखरा हो चुका था। आज उसने अपने मसखरे होने की एक और परीक्षा पास कर ली थी। आज वह अपनी माँ की लाश के पास चुपचाप बिना रोए खड़ा रहा, फिर वह झोपड़ी से बाहर निकल अपनी छोटी बहन को डाँटकर चुप कराने लगा।

अगल-बगल खड़ी उन औरतों में से किसी ने कानाफूसी के लहज़े में कहा! देख तो, माँ मर गई, लेकिन जैसे मुए को कोई फ़र्क ही नहीं। कैसे कसाई की तरह अपनी मासूम बहन को डाँट रहा है। लेकिन रामू पर इन सारी बातों का कोई असर नहीं पड़ा, क्योंकि रामू तो एक मसखरा था। किसी तरह बस्ती में रहने वाले लोगों ने ही आपस में चंदा जुटाकर उसकी माँ का अंतिम संस्कार किया। कुछ दिनों के बाद फिर

सब कुछ पहले की तरह ही सामान्य हो गया।

हाँ, अब रामू भी अपने मसखरे के धंधे के लिए कॉलोनी-कॉलोनी जाने लगा था। अब रामू और उसकी छोटी बहन भी बड़ी होने लगी थी। अतः रामू ने अपनी छोटी बहन का एडमिशन शहर के एक महँगे बोर्डिंग स्कूल में करा दिया और उसकी पढ़ाई के लिए अब उसे और भी ज्यादा पैसे की आवश्यकता महसूस होने लगी। इसके लिए वह अब कभी इस शहर तो कभी उस शहर तो अपने मसखरे का करतब दिखाने लगा।

अब उसकी कमाई भी पर्याप्त होने लगी थी। इसी बीच कभी-कभार उसकी छोटी बहन भी अपने भाई से मिलने उस झोपड़ी में आ जाती थी। फिर धीरे-धीरे वक्त का पहिया घूमता रहा। इस बीच ना जाने कब रामू के आधे से अधिक बाल पक गए और आँखों पे उसके पावर का चश्मा लग गया और उसकी छोटी बहन अंजलि अब पढ़-लिखकर डॉक्टर बन चुकी थी।

एक दिन रामू जब अपने मसखरे के धंधे से खाली होकर घर लौटा, तब उसने अंजलि को एक खूबसूरत लड़के के साथ कार से उतरते हुए देखा, तो रामू अंदर-ही-अंदर चौंक गया, क्योंकि अंजलि ने सुर्ख साड़ी के साथ ही अपनी माँग में सिंदूर भी लगा रखा था। दोनों रामू के पास आए और आकर उन्होंने रामू के पैर छुए, पैर छूने के बाद अंजलि बोली –"भैया मैंने और महेश ने कोर्ट में जाकर कोर्ट मैरिज कर लिया है।"

हम दोनों एक ही कॉलिज में पढ़ते थे। ये भी मेरी तरह ही एक डॉक्टर है और हम दोनों एक साथ अपना अस्पताल खोलना चाहते हैं। इतना सुनते ही जैसे रामू के अंदर कोई चीज़ बहुत ज़ोर से टूटी हो, लेकिन उसने अपने अंदर की पीड़ा को बाहर नहीं आने दिया और आने भी कैसे देता, आखिर वह एक मसखरा था, जिसका कभी अपना कोई दर्द नहीं होता। अतः उसने उन दोनों को सदा खुश रहने का आशीर्वाद दिया।

अंजलि ने आशीर्वाद लेने के बाद यह भी नहीं सोचा कि आखिर बेशक उसका भाई एक मसखरा है, लेकिन उसके अंदर भी एक दिल है। क्या उसका यह मसखरा भाई इस काबिल भी नहीं था कि एक बार शादी करने से पहले उसकी बहन उससे यह पूछ सके कि भैया मैं महेश से शादी करना चाहती हूँ? लेकिन उसने उससे पूछा तक नहीं, बल्कि आशीर्वाद लेकर वह पुनः उसी कार में बैठकर जिस तरह आई थी, उसी तरह वह कार में महेश के साथ बैठकर चली गई।

रामू समझ गया कि यहाँ अंजलि केवल आशीर्वाद लेने के लिए ही नहीं, बल्कि अपने मसखरे भाई को यह बताने के लिए आई थी कि भैया तुम मसखरे हो, तुमने अपना खुद का जीवन तो बर्बाद कर लिया, लेकिन मैं अपने जीवन में तुम्हारे इस मसखरेपन की परछाईं भी नहीं पड़ने देना चाहती। इसलिए अगर हो सके, तो तुम अपनी इस बहन को भूल जाना।

रामू की आँखों से जब अंजलि की कार ओझल हो गई, तब रामू की इच्छा हुई कि वह खूब फूट-फूटकर रोए, लेकिन तभी रामू को लगा कि जैसे उसके उस्ताद ने एक और चाँटा खींचकर रामू की गाल पर यह कहते हुए मारा हो कि तुम्हें मैंने पहले ही बता दिया था कि चाहे कुछ भी हो जाए, पर किसी भी मसखरे को रोने का कोई अधिकार नहीं। फिर इसके कुछ ही देर बाद रामू खूब खिल-खिलाकर हँसता रहा और हँसते-हँसते अचानक वह वहीं गिरा और गिरते ही उस रामू मसखरे के प्राण-पखेरू हमेशा के लिए उड़ गए।

**rangnathdubey90@gmail.com**

# क्षमा याचना

**रेखा राजवंशी**
**ऑस्ट्रेलिया**

"योगमाया, प्रभु आ रहे हैं, सारे शहर में चर्चा है, तुमने टिकट तो बुक कर दिए हैं न?"

योगमाया ने काम करते-करते माँ की बात सुनी, "हाँ माँ, कोशिश कर रही हूँ। सारे टिकट बिक चुके हैं अब। "

माँ को जबसे पता लगा है, संन्यासी प्रभु देव ऑस्ट्रेलिया आ रहे हैं, माँ का आग्रह बढ़ गया है। मेलबर्न, सिडनी, पर्थ

और ब्रिस्बेन में उनके ध्यान कैंप लगेंगे। उनका प्रवचन भी होगा। बाकी शहरों में तो हर पाँच-छः साल में आ जाते थे, इस बार आश्चर्यजनक रूप से उनके छोटे शहर एडिलेड में उनका आगमन होगा। माँ उनके प्रवचन यू ट्यूब पर नियमित रूप से सुनती रही हैं और उनके ध्यान केंद्र के सदस्यों ने जबसे उन्हें बताया है, महामाया उनके प्रवचन में जाने को उत्सुक हो गई है। उन्हें लगता है, बेटी योगमाया शायद उन्हें गंभीरता से नहीं ले रही है। अब तक उसने टिकट नहीं खरीदा है। माना कि टिकट चार सौ डॉलर का है, सस्ता नहीं है, पर योगमाया जिसे वे प्यार से माया कहती हैं, उसके लिए टिकट न ले पाए ऐसा नहीं है। काम में इतनी व्यस्त रहती है कि उसे अपना होश नहीं रहता। एडिलेड के प्राइवेट हॉस्पिटल में डॉक्टर है, बल्कि हार्ट सर्जन है। महामाया ही उसके खाने का ठीक से ध्यान रखती है। अस्सी साल की हो रही है, पर शरीर, मन और आत्मा से सक्रिय है। अगर माया शादी कर लेती, तो और बात थी, अब उसका माँ के अलावा और है ही कौन। सप्ताह में तीन से चार बार कुक आ जाती है और अपनी देखभाल में वे खाना बनवा कर रख लेती हैं।

उन्हें याद है सत्ताईस वर्ष पूर्व जब पति की हार्ट फेल होने से मृत्यु हुई, तब योगमाया पहली फ़्लाइट लेकर घर पहुँची। वह न आती, तो शायद वे भी अस्पताल में दाखिल हो गई होतीं। महामाया इस अकस्मात विपदा से इतनी सदमे में थी कि कुछ भी समझ न पा रही थी। बसी-बसाई दुनिया, इतना बड़ा कारोबार, इतनी संपत्ति और एक ही संतान, वह भी लड़की। उनके चारों तरफ़ मंडराता स्वार्थी, लालची गिद्धों का झुंड, जो न जाने कितना पैसा कोई-न-कोई बहाना ढूँढकर उनके पति से निकलवाता रहा था। पति शाही खानदान से ताल्लुक रखते थे। वे राजा तो नहीं थे, पर अठारहवीं सदी के राजा प्रखर की बहन के वंशज थे। उनके दादा ने अंग्रेज़ों से समझौता कर लिया था और व्यापार करके अपार दौलत कमाई थी।

यही दौलत उनकी पाँचवीं पीढ़ी के वंशज को मिली थी, यानी उनके पति युवनाश्व को। उन्होंने भी उसे आगे ही बढ़ाया था। इम्पोर्ट, एक्सपोर्ट के अलावा कपड़े की मिल, इंजीनियरिंग कॉलिज, मेडिकल कॉलिज और जाने क्या-क्या। उनकी अथाह संपत्ति ने कितनों का उद्धार भी किया था। कितनी गरीब कन्याओं के विवाह करवाए थे। कितने गरीब कर्मचारियों के बच्चों को निःशुल्क शिक्षा देकर डॉक्टर, इंजीनियर और वकील बनाया था। महामाया को याद है, उनकी कलात्मक, आध्यात्मिक रुचि के चलते शहर के बीचों- बीच एक आर्ट सेंटर भी बनवा दिया था, जिसमें कला-प्रदर्शनी और साहित्यिक गोष्ठी के अलावा योग, ध्यान आदि के कोर्स चलते थे।

अब युवनाश्व इस तरह से सब कुछ उनके कंधे पर डालकर अचानक लोक छोड़कर परलोक वासी हो गए थे। तब बेटी योगमाया ने ही ऑस्ट्रेलिया से आकर सब कुछ संभाला था।

योगमाया भारत वापस आकर इन चक्करों में नहीं पड़ना चाहती थी। संपत्ति उसे किसी भी तरह आकर्षित न कर पाती थी और जबसे ऑस्ट्रेलिया गई थी, तब से धन-संपत्ति को लेकर एकदम निर्लिप्त हो गई थी। पर माँ को तो संभालना था। न चाहते हुए भी संपत्ति का भी हिसाब-किताब करना था। धीरे-धीरे योगमाया ने सब कुछ देखा, सारा हिसाब-किताब समझा। काफ़ी संपत्ति और व्यवसाय बेच दिया गया। महामाया ने बहुत चाहा कि योगमाया विवाह के बंधन में बँध जाए, कितने बड़े-बड़े घर के पढ़े-लिखे लड़के योगमाया से शादी करना चाहते थे, पर योगमाया विवाह करना तो दूर वह शादी के नाम से भड़क जाती थी। भलाई इसी में थी कि महामाया चुप रहे। अब वे अपनी एकमात्र संतान से किसी भी हालत में हाथ धोना नहीं चाहती थीं।

योगमाया उन्हें और व्यवसाय को संभालकर तीन महीने बाद वापस ऑस्ट्रेलिया चली गई। उसने वादा किया कि हर तीन महीने में वह छुट्टी लेकर भारत वापस आती रहेगी। उसके जाने के बाद महामाया के मन में जैसे शून्य पसर गया। पंद्रह कमरे का महल जैसा घर इतना खाली कभी नहीं लगा। कहने को तो दस नौकर, नौकरानियाँ उसके घर के अहाते में बने क्वार्टर्स में रहते थे, पर महामाया के हिस्से में बचा सिर्फ़ अकेलापन। जब तक युवनाश्व थे, एक पल की फ़ुर्सत न थी। देश-विदेश की यात्राओं में समय कहाँ निकल जाता था, पता ही नहीं चलता था। कभी किसी दुकान या ऑफ़िस का उद्घाटन, कभी व्यापार के सिलसिले में मीटिंग,

कभी राजनीतिज्ञों के यहाँ रात्रि-भोज, कभी कॉलिज में कार्यक्रम कुछ-न-कुछ और बहुत कुछ। इतनी गहमा-गहमी में भी योगमाया हर रोज़ अपनी एकमात्र संतान को फ़ोन अवश्य करती। यद्यपि पति युवनाश्व अपनी एकमात्र संतान के इस तरह पलायन पर बहुत वर्ष क्षुब्ध रहे और उनके साम दाम-दंड-भेद-नीति अपनाने और लाख अनुरोध के बाद भी योगमाया ने वापस आना स्वीकार नहीं किया। भारत से एम. बी. बी. एस. करके योगमाया ऑस्ट्रेलिया में ऑस्ट्रेलियन मेडिकल काउंसिल में अनुमोदित होने के बाद पोस्ट ग्रेजुएट कोर्स कर रही थी। आखिर उसकी पढ़ाई में उपलब्धियाँ देखकर युवाश्व का सिर गर्व से ऊँचा होने लगा।

योगमाया की प्रसन्नता का कोई अंत न था, जब युवनाश्व और महामाया देवी उसके ग्रेजुएशन में सिडनी पहुँचे थे। वे पंद्रह दिन जैसे महामाया के हृदय पर आज भी अंकित थे। तीनों एक परिवार के रूप में कार और ड्राइवर लेकर खूब घूमे-फिरे और वापस जाते-जाते बी. एम. डब्ल्यू. तो खरीद कर दी ही, बल्कि उसे मकान खरीद कर देने का वादा कर गए। उन्हें जैसे जीवन में एक नया उद्देश्य मिल गया। अगले तीन महीने में ब्लैक में इतने डॉलर्स भेजे कि योगमाया को मकान का डिपॉज़िट देने में कोई परेशानी नहीं हुई। शीघ्र ही, योगमाया एक उच्च वर्गीय सबर्ब रोज़ बे में व्यवस्थित हो गई, उसका मकान समुद्र-तट पर स्थित था। इंटर्नशिप के दौरान योगमाया समुद्र की लहरों की बातें सुनने लगी। उसने माँ से सुना था कि सागर के बुलबुले के समान जीवन क्षणिक है। लहरें कब शांत होती हैं, कब खिलखिलाती हैं, कब उत्तेजित होती हैं और कब उद्विग्न हो जाती हैं, उसको अपनी बालकनी की खिड़की से आती आवाज़ों से ही पता लग जाता था।

ऐसा ही जीवन था, योगमाया का। अपनी ज़िन्दगी के छब्बीस साल भारत में बिताकर, एम. बी. बी. एस. की डिग्री लेकर वह अपने ही मेडिकल कॉलिज में काम कर सकती थी। माँ बाबा ने सदा ही कहा था कि सब कुछ उसे ही संभालना था और शायद वह ऐसा कर भी लेती। पर प्रखर, उसका प्रेमी, उसके सपनों का राजकुमार अगर इस तरह विलुप्त न हो जाता, तो सब वैसा ही होता, जैसा माँ और पिताजी चाहते थे। जैसा सब उससे अपेक्षा करते थे।

योगमाया और प्रखर, मेडिकल कॉलिज में मिले। दोनों पढ़ाई में अच्छे, दोनों अच्छी पारिवारिक पृष्ठभूमि के, दोनों संस्कारी। जब उसके साथ बौद्धिक बातें शुरू होती, तब दर्शन और अध्यात्म से होती हुई लोक-परलोक तक जा पहुँचती। शरीर था, तो इच्छाएँ थीं, आकर्षण था। प्रखर लंबा-चौड़ा, गौर वर्ण का बलिष्ठ सुंदर युवक था। कौन-सी युवती उससे न आकर्षित होती। योगमाया भी किसी तरह देखने में कम न थी। आकर्षण से शुरू हुआ संपर्क, वार्तालाप तक जा पहुँचा और फिर प्रायः अनेक विषयों पर चर्चा प्रारंभ हो गई। धीरे-धीरे आकर्षण प्रेम में बदला और मेडिकल के तीसरे साल तक पहुँचते दोनों को लगने लगा कि वे एक-दूसरे के बिना नहीं रह सकते।

सब कुछ ठीक ही चल रहा था।आशा और कल्पना के गगन में उड़ने के साथ-साथ, कर्म के कटु धरातल पर चलना भी दोनों ही सीख रहे थे। पर कोर्स का अंतिम वर्ष उनके लिए एक संघर्ष लेकर आया। पढ़ाई तो ठीक थी, पर छुट्टियों के बाद, जब प्रखर वापिस आया, तब कुछ खोया-खोया लगा। पता नहीं कैसी बातें करता था। इहलोक और परलोक, आत्मा और परमात्मा, जीवन और मृत्यु, कर्म और ज्ञान, योग और शांति जाने क्या-क्या उसके दिमाग में चलता रहता। कभी ओशो की बात करने लगता। प्रेम और वासना के माध्यम से कैसे मुक्ति प्राप्त की जा सकती है, यह बात भी करता और ऐसे ही एक दिन भावावेश में आकर उसने योगमाया से शारीरिक संबंध भी बना लिया।योगमाया इस संबंध के सुख से विभोर थी, पर अगले दिन प्रखर आत्म-ग्लानि से ग्रस्त हो गया।

योगमाया ने बहुत समझाया कि यह सब स्वाभाविक रूप से हुआ है। वह उसे प्रेम करती है और जो भी हुआ है, उसमें वह भी उतनी ही ज़िम्मेदार है और अब वे विवाह के पवित्र बंधन में बँध ही जाएँगे। प्रखर कुछ ठीक हुआ और नहीं भी। उसके बाद से सारी बातें धीरे-धीरे बदलने लगीं।

मेडिकल के अंतिम सत्र की परीक्षाएँ चल रही थीं कि प्रखर अचानक कहीं गायब हो गया।

विश्वविद्यालय ने घर-परिवार सबसे संपर्क किया। पुलिस रिपोर्ट दर्ज हुई, पर प्रखर का कुछ पता न चला। उसका फ़ोन

भी बंद था।

योगमाया के जीवन में तो जैसे भूकंप आ गया। पढ़ाई समाप्त हो गई, पर जीवन का उद्देश्य हीन हो गया। प्रखर ऐसा स्वार्थी और कायर निकल जाएगा, उसने सोचा भी न था। उसे भूल भी नहीं पाती थी और क्षमा करने का तो प्रश्न ही नहीं था। घर वापस आ गई, पर कहीं मन न लगा। उदास और बीमार रहने लगी। महामाया ने अपनी इकलौती संतान का सूखता चेहरा देखा, तो बिना कहे उसकी बीमारी के बारे में जान गई। बहुत पूछने पर भी जब योगमाया ने कुछ नहीं बताया,तब उन्होंने अपने पति युवनाश्व से बात की।

"बच्ची है। ठीक हो जाएगी। थोड़े दिन के लिए उसे अपनी चचेरी बहन के पास बाहर ऑस्ट्रेलिया भेज दो। मन बदल जाएगा।"

महामाया को बात अच्छी लगी। योगमाया को बचपन से ही अपनी मौसी से लगाव था। कुछ वर्षों से पूरा परिवार ऑस्ट्रेलिया में बस गया था और ब्रिस्बेन में एक बड़ा-सा मकान खरीदकर रह रहा था। वहाँ उन्होंने दूध से पनीर, दही और लस्सी बनाने की फ़ैक्ट्री लगा ली थी और धीरे-धीरे पूरे ऑस्ट्रेलिया के अलावा आसपास के देशों में भी अपने प्रोडक्ट्स का निर्यात शुरू कर दिया था। वे हर बार फ़ोन पर उन्हें ऑस्ट्रेलिया आने का आमंत्रण देते थे। पर उनके व्यस्त जीवन में कुछ समय ही न था। अब योगमाया को देखकर वे बहुत खुश होंगे। योगमाया से पहले पूछा तो नहीं मानी, पर बाद में मौसी का आमंत्रण सुनकर तैयार हो गई।

ऑस्ट्रेलिया आई, तो यहाँ के प्राकृतिक सौंदर्य के बीच रहकर योगमाया के तन और मन को शांति मिली। भारत की व्यस्त जीवन-शैली से छुटकारा मिला। मौसी के कहने पर दस दिन के विपासना मेडिटेशन कोर्स में प्रवेश लिया। धम्म भूमि में दस दिन की इस मौन तपस्या ने उसके मन को ठहराव दिया। आगे का मार्ग प्रशस्त हुआ। निर्णय लिया कि यहीं रहकर आगे की पढ़ाई करेगी। यद्यपि पिता जी इस बात से बहुत क्षुब्ध हुए थे और माँ अकेली-सी पड़ गई थी। कुछ माह तक बेटी और पिता के बीच अबोला रहा, पर योगमाया यहाँ खुश थी। प्रखर उसका अतीत था। एक दुखदाई अतीत। विवाह न करने का फ़ैसला वह ले चुकी थी। कुछ साल सिडनी में काम करने के बाद वह स्थाई रूप से एडिलेड आ गई थी और दो मेडिकल सेंटर्स खोल अपनी सेवाएँ उपलब्ध करा रही थी। माँ और पिता जी के आग्रह पर भारत जाती रही, पर वहाँ वापस जाकर बसने में उसे कोई रुचि नहीं थी।

पिता की असमय मृत्यु के बाद वह माँ को अपने साथ ले आई थी। धीरे-धीरे सारी पैतृक संपत्ति भी समाप्त कर ही दी थी। जितना धन लाया जा सकता था, ले आई थी। जो गरीबों में बाँट सकती थी, बाँट दिया था। महलनुमा घर को बेच दिया था। जिसने खरीदा उसे फ़ाइव स्टार होटल बना दिया था। होटल में उसके और माँ के लिए आजीवन एक कक्ष आरक्षित कर दिया गया था।

माँ भी अब ऑस्ट्रेलिया की जीवन-शैली की अभ्यस्त हो चली थी। घर में कुक आती थी, क्लीनर आती थी, और फ़िज़िओथेरेपिस्ट भी आती थी। माँ के स्वास्थ्य, तन-मन का पूरा ख्याल रखा जाता था। पिता जी के बिना रहने की आदत माँ ने डाल ली थी। कभी वे मौसी के घर ब्रिस्बेन चली जाती और कभी मौसी आ जाती। उनके बेटे माँ का बहुत आदर करते थे। दो वर्ष बीतते-बीतते माँ सीनियर्स के एक ग्रुप में भी शामिल हो गई थी। उनके साथ मिलकर घूमने-फिरने चले जाना - कभी हेल्थ रिट्रीट पर, कभी योग करने और कभी कला और कुकिंग की कक्षाओं में भाग लेने।

अब जबसे माँ को पता चला था कि प्रभु देव एडिलेड आ रहे हैं, तब से वे उनके मेडिटेशन कोर्स में भाग लेने के लिए टिकट खरीदने की बात कर रही थी।योगमाया अपने मेडिकल केसेज़ में इतनी उलझी हुई थी कि इस बारे में पता करने का समय नहीं था।

महामाया को जब तक पता लगा था, सारी टिकटें बिक चुकी थीं। हॉल में पाँच हज़ार लोग बैठ सकते थे पर वह बुक हो चुका था, प्रभु देव इतने लोकप्रिय थे कि कोई भी उनके इस कोर्स से वंचित नहीं रहना चाहता था। योगमाया ने अपने मित्रों और कार्यक्रम के संयोजकों से अनुरोध किया था कि कैसे-न-कैसे एक टिकट उपलब्ध करवा दें, तो उनकी अति कृपा होगी।

उस दिन क्लीनिक से घर जाकर अपना मेल बॉक्स खोला, तो लाल रंग के लिफ़ाफे ने उसका ध्यान आकर्षित

किया। उन्हें लगा किसी की शादी का कार्ड होगा। घर के अंदर जाकर जब उन्होंने लिफ़ाफा खोला, तो चंदन की महक में लिपटे प्रभु देव मेडिटेशन कोर्स के दो वी. आई. पी. पास देखकर दंग रह गई। माँ को बताया तो प्रसन्नता के अतिरेक से उनकी आँखों से अश्रु बहने लगे। रुंधे कंठ से बोली - "आखिर भगवान ने मेरी सुन ही ली। हमारी इच्छा पूरी हुई।"

अपनी इच्छा को जब उन्होंने हमारी कहा, तब योगमाया समझ गई कि वे उसके साथ जाना चाहती हैं।

रविवार का दिन था। मेडिटेशन सेंटर के बाहर गाड़ी पार्क करके माँ का हाथ थामे योगमाया ने एक भव्य कक्ष में प्रवेश किया। मंच पर एक बड़े से सिंहासन पर प्रभु देव विराजमान थे। उनके पास उनकी गोरी अनुयायी चंवर डुला रही थीं। वी. आई. पी. पास प्रभु देव के एकदम सामने की सीट का था। यह देखकर माँ बहुत प्रसन्न थीं और माँ की खुशी में ही योगमाया की खुशी सम्मिलित थी।

जब प्रभु देव ने बोलना शुरू किया तब योगमाया को जाने क्यों लगा कि यह आवाज़ उन्होंने पहले भी कभी सुनी है। अरे हाँ, उनके प्रवचन माँ यू ट्यूब पर तो सुनती ही रहती है। पर उनको ध्यान से देखा, तो उनकी मंद मुस्कराहट में कुछ तो जाना-पहचाना लगा। उन्होंने अच्छी अंग्रेज़ी में अपना व्याख्यान देना शुरू किया, तो सब मन्त्रमुग्ध हो सुन रहे थे। ।

"सर्वे भवन्तु सुखिनः सर्वे सन्तु निरामया।

सर्वे भद्राणि पश्यन्तु मा कश्चित् दुखभाग् भवेत्।।"

वे वृहदारण्यक उपनिषद् के मन्त्र का जाप कर रहे थे और उनके साथ एडिलेड के पाँच हज़ार लोग भी स्वर मिला रहे थे।

आकाश, धरती, प्रकृति, दसों दिशाएँ सब कुछ गुंजायमान था। सब कुछ जैसे जादुई था। स्वर्ग जाने का मार्ग।

वे कह रहे थे -

"जन्म और मृत्यु मानव-जीवन के दो महत्त्वपूर्ण पक्ष हैं।

जन्म एक आत्मा को शरीर देता है, यह मनुष्य जीवन का प्रारंभ है और मृत्यु व्यक्ति के जीवन का अंत होता है। यह उसकी आत्मा की नहीं मात्र शरीर की मृत्यु होती है। मृत्यु एक प्राकृतिक प्रक्रिया है और हर जीव के लिए अनिवार्य है। आत्मा परमात्मा का अंश है, आत्मा ही सत्य है, अजर है, अमर है।

"न जायते म्रियते वा कदाचि- न्नायं भूत्वा भविता वा न भूयः ।

अजोनित्यःशाश्वतोऽयंपुराणो- न हन्यतेहन्यमानेशरीरे ॥"

प्रभु देव श्रीमद्भगवद्गीता के इस श्लोक की अंग्रेज़ी में व्याख्या कर रहे थे। वे कर्म को परिभाषित कर रहे थे। कर्म फल क्या होता है समझा रहे थे। लोग उन्हें सुन रहे थे, गुन रहे थे और अभिभूत हो रहे थे।

एक घंटे के व्याख्यान के अंत में उन्होंने मेडिटेशन की विधि न केवल बताई, बल्कि करवाई भी। लगा जैसे वे खुद समाधि में हैं। और अंत में वे अपने कक्ष में चले गए।

सब पंक्तिबद्ध हो निकलने का उपक्रम कर रहे थे कि तभी एक संयोजक योगमाया के पास आए और निवेदन किया कि प्रभु देव आपसे मिलना चाहते हैं। महामाया ने उत्सुकता से बेटी का हाथ थामा और आयोजक के पीछे चल पड़ी। आयोजक उन्हें उनके निजी कक्ष में ले गए और अंदर भेजकर दरवाज़ा बंद कर दिया। महामाया दौड़कर उनके पैरों में गिर पड़ी। प्रभु देव अपने गरिमामय स्वर में उन्हें उठाते हुए बोले –

"माँ पाप में न डालो, मुझे आपके चरण स्पर्श करने चाहिए।" कहते-कहते माँ के चरणों में झुक गए।

योगमाया समझ नहीं पा रही थी कि प्रभु देव ने इतने सारे आगंतुकों को छोड़कर उन्हें ही पहले क्यों बुलाया। महामाया ने जीवन और जगत से संबंधित प्रश्न पूछे और प्रभु देव ने धैर्यपूर्वक सबके उत्तर दिए। उनकी दृष्टि कभी-कभी योगमाया पर भी चली जाती, जो चुपचाप उन दोनों का वार्तालाप सुन रही थी। अंत में, माँ ने अपने जीवन की सबसे बड़ी समस्या उनके सामने रख ही दी –

"प्रभु यह मेरी बेटी है, योगमाया। सारी सुख-संपत्ति छोड़कर यहाँ संन्यासिनी बनी बैठी है। मेरी मृत्यु के बाद इसका क्या होगा?"

योगमाया चौंक गई, माँ पर रोष आया। इतना निजी प्रश्न कोई किसी से पूछता है क्या?

प्रभु कह रहे थे, "सबकी नियति तय है माँ। आप चिंता न करें। सब ठीक होगा। क्या मैं आपकी बेटी से एकांत में बात कर सकता हूँ?" उन्होंने पूछा।

महामाया ने प्रसन्नतापूर्वक अनुमति दी और दरवाज़े के बाहर लगी सीट पर बैठ गई।

प्रभु देव उसके समीप आए और धीरे से पूछा - "योगमाया, मुझे पहचाना।"

योगमाया ने प्रश्नसूचक निगाहों से उन्हें देखा और अचानक उसे लगा ये...ये...

"प्रखर, तुम। तो तुम इसलिए मुझे छोड़ गए थे? अकेला? बिना कोई कारण बताए? विलुप्त हो गए थे तुम? मेरे ऊपर क्या गुज़री सोचा भी नहीं।"

प्रभु देव ने धीरे से आगे बढ़के उसके कंधे पर हाथ रखा - "योगमाया! मैं मानता हूँ, जो कुछ मैंने किया, गलत था। मैं जीवन और मृत्यु के रहस्य को जानना चाहता था।"

"नहीं, मैं नहीं मानती। तुमको नाम चाहिए था। ईश्वर बनना चाहते थे तुम? या इतनी अथाह संपदा इकट्ठी करना तुम्हारा उद्देश्य रहा होगा।"

योगमाया के हृदय में बरसों से दबे अपमान के अश्रु आँखों से गिर रहे थे। उसने प्रखर का हाथ कंधे से हटाने का प्रयास किया।

प्रखर ने उसे सीने से लगा लिया, "जिस तरह तिरस्कार के दंश तुमको चुभ रहे हैं, उसी तरह मैं प्रतिदिन, प्रतिपल अपराध के विष का घूँट पी रहा हूँ।"

योगमाया ने उससे छूटने की कोशिश की, पर वे कह रहे थे

"नहीं! आज मुझे क्षमा कर दो। मेरे हृदय से लगकर शांति का अनुभव करो। सच तो यह है कि मैं तुम्हारा अपराधी हूँ। मैंने वर्षों तपस्या की, मृत्यु और जन्म के भेद को जाना। पूरे विश्व को सही मार्ग पर चलाने का प्रयास किया। पर सत्य तो यह है कि जब तक तुम क्षमा न करोगी मुझे, शांति नहीं मिलेगी। फिर मिलने का अवसर मिले-न-मिले, इसलिए आज ही तुमसे क्षमा माँगनी आवश्यक है।" योगमाया ने अपने मस्तक पर गिरते अश्रु कणों को अनुभव किया। इतने वर्षों से हृदय में दबी पीड़ा सागर के खारे जल-सी बह निकली। दोनों के अश्रुओं का संगम तपते मरुस्थल में वर्षा की पहली बूंद-सी सुखद लग रही थी।

जाने कैसे योगमाया ने अपार शांति का अनुभव किया।

महामाया ने दरवाज़ा खोलकर बाहर आती बेटी को देखा।उन्हें लगा प्रभु देव ने उसे अवश्य कोई अद्‌त आशीर्वाद दिया है।इस योगमाया और उस योगमाया में एक आश्चर्यजनक किन्तु सुखद अंतर था। उसका चेहरा किसी अद्‌त ज्योति से जगमगा रहा था। वर्षों से हृदय में बसे तिरस्कार के प्रश्न का समाधान मिल गया था। प्रखर को उसने क्षमा कर दिया था और प्रभु देव के प्रति उसके मन में आदर ने जन्म लिया था। आज योगमाया असीम शांति और संतुष्टि का अनुभव कर रही थी।

**rekha_rajvanshi@yahoo.com.au**

# तागा

**डॉ. हंसा दीप**
**कनाडा**

लेखक के रोज़नामचे में कुछ और हो न हो, किसी नेम ब्रांड प्रकाशक से कोई लिंक जुड़ जाए, यह अभिलाषा ज़रूर होती है। मैं भी इसी जुगाड़ में थी। एक बात दिमाग में बैठी हुई थी कि नामी-गिरामी प्रकाशक से पुस्तक प्रकाशित हो, तो बात ही कुछ और होती है। अपनी अंग्रेज़ी पुस्तक के लिए मुझे कनेडियन प्रकाशक की खोज थी।

आखिर खूब खोज करके कुछ जाने-माने प्रकाशकों में से एक प्रकाशक के चेयरमेन से मिलने का समय लिया था। यूँ तो कई लोगों से फ़ोन पर बात कर चुकी थी, लेकिन इस प्रकाशक के ऑफ़िस से मिलने का समय माँगा, तो तुरंत मिल गया। मैं खुश थी। अपनी प्रकाशित पुस्तकों की खेप उसे बताने के लिए साथ रख ली थी। दस बजे का समय तय था। एकाएक ख्याल आया चेयरमेन का नाम सर्च करके फ़ोटो तो देख लूँ, ताकि बात करते हुए वह इमेज मन में रहे और ऐसा न लगे कि इसका चेहरा एकदम नया है।

सर्च करने पर जो फ़ोटो पॉप अप हुआ उसे देखकर

स्तब्ध थी मैं। मेरे दिमाग ने किसी बुज़ुर्ग, अनुभवी चेयरमेन का खाका खींचा था। हुआ बिलकुल उलटा। यह एक युवा तस्वीर थी। आकर्षक तो थी ही, साथ ही,जानी-पहचानी-सी थी। ज्यादा सोचना नहीं पड़ा। यह वही युवक था, जो कभी मेरा छात्र था। मेरी कक्षाओं में मेरा कोपभाजन हुआ करता था। वही जिसने मुझे परेशान किया था। बड़बोला और उद्दंड। वह और कोई नहीं मेरा भूतपूर्व छात्र शान था। वही शान जिसने कुछ वर्ष पूर्व अपनी पढ़ाई खत्म करने के बाद मुझसे रेफ़रेंस लेटर के लिए संपर्क किया था।

वे दिन बरबस ही मेरे सामने से गुज़रने लगे। उन दिनों हम शिक्षकगण गर्मी की छुट्टियों की प्रतीक्षा कर रहे थे। इतने सारे पेपर्स चेक करके, मार्किंग करके, रिज़ल्ट बना करके, एक के बाद एक, पेपर वर्क। मानसिक और शारीरिक थकान ने निढाल कर दिया था। मन कहता, पूरे एक सप्ताह तक ईमेल को न खोलो। शांति से समय बिताओ। ई-मेल खोलते ही ढेरों संदेश मिलते और उनके जवाब देने ही पड़ते। जी करता कि अगले सेमेस्टर तक कोई काम न करना पड़े बस। दिमाग की भी अपनी क्षमता है कि नहीं!

लेकिन ऐसा संभव था, सिर्फ़ चंचल मन के लिए। उसके पीछे से झाँकते समझदार दिमाग को अपना बिंदु स्पष्ट करना ही था-"ईमेल चेक न करने पर और ज्यादा तनाव रहेगा। हो सकता है कोई ज़रूरी मैसेज हो।"आखिर लैपटॉप खुलना ही था। एक के बाद एक ईमेल संदेशों की भीड़ नज़रों से गुज़रती गईं। भगवान का शुक्र था कि कोई भारी-भरकम या तत्काल जवाब देने जैसा कोई दबाव पैदा नहीं हुआ था।

हाँ, एक छात्र को किसी कंपनी में नौकरी के आवेदन के लिए रेफ़रेंस लेटर चाहिए था। छात्रों से अक्सर ऐसे निवेदन आते थे। छात्रों की इस ज़रूरत का मेरे लिए बहुत महत्त्व था। उनके भविष्य के लिए शिक्षक अगर मदद न करेंगे, तो कौन करेगा!इस अंतिम ईमेल ने ध्यान इसलिए भी खींचा कि यह कौन-सा छात्र है, मेरी स्मृति साथ नहीं दे रही थी। कुछ तो ऐसा था इस नाम में जिसने तत्काल सारी फ़ाइलों को खँगालने के लिए मजबूर कर दिया।

इतने छात्रों की भीड़ में सारे नाम उसी सेमेस्टर में याद रहते हैं। बाद में विस्मृतियों में ढँक जाते हैं, जब तक कोई आकर उघाड़ने की कोशिश न करे। नाम स्मृति में था,लेकिन चेहरा नहीं। जब तक चेहरा सामने न हो, उसके बारे में कैसे लिखा जा सकता है!उसे पहचानने की कोशिश में पिछले चार सालों के, हर सेमेस्टर के फ़ोल्डर खोलने पड़े, तब कहीं जाकर उसका नाम खोज पाई और कोई होता, तो शायद मुझे उसका फ़ोटो मँगवाना पड़ता, ताकि मैं लिखने से पहले पक्का कर लूँ कि किसके बारे में लिखा जा रहा है।

लेकिन इस छात्र के बारे में मुझे तत्काल सब कुछ याद आ गया। शान, सबसे बदमाश छात्र दिमाग भूलता नहीं। ईमेल संदेश दोबारा पढ़ा। लिखा था- "पहले जॉब के लिए आवेदन भेजने की तैयारी कर रहा था। संदर्भ के लिए पहला ख्याल आप ही का आया। उम्मीद है इस मामले में आप मेरी मदद कर सकेंगी।"

मेरा उत्साह ठंडा पड़ चुका था। मैंने जवाब नहीं दिया। यह मेरा आलस्य नहीं था, बल्कि एक तनाव था, जो मुझे मजबूर कर रहा था, उस ईमेल की उपेक्षा करने के लिए। वजह बहुत बड़ी थी-कक्षा के उन पलों की असहज यादें। वह कामचोर था। उद्दंड था और कई बार मैंने उसे कक्षा के बाहर सिगरेट फूँकते हुए भी देखा था।

उसका रिमाइंडर आया-"मैं जानता हूँ कि आपका जवाब नहीं मिल रहा, तो कोई कारण ज़रूर होगा। क्या इसलिए कि मेरी वजह से आपको परेशानी हुई। मैंने आपको हर बार दुखी किया।"

जवाब देना चाहती थी- "जब जानते हो, तो पूछने का मतलब ही क्या।"

बिना वजह मेरा चेहरा तमतमाने लगा था। मुझे याद आया जब उसने भरी हुई कक्षा में कभी सीधे-सीधे किसी प्रश्न का उत्तर नहीं दिया था। कभी कोई सवाल भी नहीं किया। हमेशा ऐसे मुस्कुराता था, जैसे कक्षा से या पढ़ाई से उसे कोई लेना-देना ही नहीं। ज़बरदस्ती वह कक्षा में आकर मस्ती करके चला जाता हो।

एक बार गाना गाते हुए, एक बार दूसरी कक्षा का काम करते हुए, फ़ोन पर टेक्स्ट मैसेज भेजते हुए। मेरी चेतावनियों को दरकिनार करते हुए हर बार कुछ ऐसा करता, जो मुझे अच्छा नहीं लगता।चूहे की तरह इधर से उधर फुदकता रहता था। मैं मन-ही-मन उसे चूहा कहने लगी थी।

मुझ तक पहुँचती उसकी अनचाही प्रतिक्रियाओं से मुझे

बहुत चिढ़ थी। एक बार उसे यह कहते हुए भी सुन लिया था– "यह कक्षा है, जेल नहीं।"

आज उसी को मेरे सामने गिड़गिड़ाना पड़ रहा था। मेरे अहं को तुष्टि मिल रही थी। मानो पुराना हिसाब-किताब चुकता करने का समय आ गया हो। अभी मैं ईमेल पर ही थी और फिर एक ईमेल नोटिफ़िकेशन पॉप-अप हुआ।

"आप मुझे जो सज़ा देना चाहें दे दें, लेकिन रेफ़रेंस लेटर ज़रूर लिख दें। मैं जानता हूँ कि आप ही मेरी मदद कर सकती हैं।"

अब जवाब देना ज़रूरी था- "जानते हो या फिर जानने की कोशिश नहीं कर रहे कि तुमने मुझे कितना परेशान किया था।"

"माफ़ी चाहता हूँ मैम, पर बच्चे तो मस्ती करते ही हैं। मैं भी करता था। मैम, यह लेटर मेरे भविष्य के लिए बहुत ज़रूरी है।"

"यह मेरे लिए भी ज़रूरी है कि अपने छात्रों के भविष्य सँवारने में उनकी मदद करूँ। तुम्हारे लिए भी रेफ़रेंस लेटर लिख दूँगी, लेकिन मैं सच बोलूँगी। देख लो, तुम्हारा नुकसान नहीं करना चाहती। बेहतर होगा, किसी और से लिखवा लो।"

संदेश आते रहे, मैं जवाब देती रही। मानो आज किसी तरह इसे टालकर ही दम लूँगी। ईमेल के लगातार आदान-प्रदान से मैं परेशान हो गई थी। मैंने कहा- "इस नंबर पर फ़ोन करो।"

उसने तुरंत मस्ती भरी आवाज़ में फ़ोन किया। वही आलम था। उसकी आवाज़ में कहीं कोई गांभीर्य नहीं था- "मैं कहता हूँ, आप जो चाहें वही लिख दें। मैं दिल से स्वीकार करूँगा। मुझे कोई आपत्ति नहीं होगी।"

"सोच लो, सच कड़वा होता है।"

"सोच लिया। आप सच बोलिए, कोई दिक्कत नहीं, लेकिन प्लीज़ लिख दीजिए। क्योंकि जैसा मुझे आपने देखा, वही मैं इन लोगों को बताना चाहता हूँ, जो मुझे जॉब देंगे। मैं वैसा ही हूँ।"

"लेकिन तुम जानते हो कि ये सब पढ़ने के बाद वे तुम्हें जॉब नहीं देंगे।"

"न दें। मैं इसी मूड में काम कर सकता हूँ। मुझे गंभीर रहना बिल्कुल पसंद नहीं।"

"अरे भलेमानस, कहीं और जाओ। मुझे तुम्हारा भविष्य बिगाड़ने में कोई दिलचस्पी नहीं।"

"आप जो भी लिखेंगी, शायद उसी में मेरा भला होगा। प्लीज़ लिख दीजिए।"

उसकी ज़िद और मेरी ज़िद खूब टकरा रही थी। ज़िदों के इस टकराव ने मुझे अक्खड़ बना दिया था और उसे हठी बच्चा। मैं उसकी ज़िंदगी बर्बाद होने का श्राप लेना नहीं चाहती थी और झूठ लिख नहीं सकती थी। वह न जाने क्यों मुझे बीच में घसीट रहा था, जबकि जानता था कि मैं उसकी हरकतों से नाराज़ थी, गुस्सा भी थी।

याद है मुझे, उन दिनों उसी के एक साथी ने बताया था कि वह गरीब घर से है। उसे हमेशा पैसों की तंगी बनी रहती है। लेकिन फिर भी वह खूब मस्ती में रहता है। मुझे दुख हुआ था कि किस तरह माँ-बाप के पैसों को उड़ा रहा था यह लड़का।

"मैम, मैंने किसी का बुरा नहीं किया। बस मस्ती करता था। अब भी करता हूँ।अपनी माँ को हँसाता हूँ। जब वह खिलखिला पड़ती है, मुझे अच्छा लगता है।घर में पैसे नहीं हों, सुविधाएँ नहीं हों, तो क्या हँसना, मज़ाक करना छोड़ दे आदमी!"

"कम-से-कम क्लास में तो ध्यान देना चाहिए। तुम्हें पढ़ने के लिए भेजा गया था।"

"आपने जो पढ़ाया सब मुझे पता है, आप कुछ भी पूछ लीजिए।"

आखिर मेरे मन का उसके प्रति असली भाव जो था, बाहर आ ही गया- "मेरी बात सुनो ध्यान से। कंपनियों के जंगल में चूहा बनकर जाओगे, तो कुचल दिए जाओगे।"

"चूहा भी तो एक प्राणी है, उसे जीना है, तो खुद को ज़िंदा रखने की कला भी सीखनी ही पड़ेगी।"

"तुम किस तरह के इंसान हो!"

"मैम, मैं रोते-गाते नहीं जी सकता।हर हाल मेंखुश रहना चाहता हूँ।"

"ठीक है", कहकर मैंने फ़ोन रख दिया था। वह कह रहा था या फिर सफ़ाई दे रहा था, लेकिन मैं बीते दिनों को याद कर रही थी। यह वही छात्र था, जिसने कभी कम नंबर देने की शिकायत नहीं की थी। मैं जो दे देती, उसी में एक

मुस्कान देकर चला जाता। इसके विपरीत कई छात्र ऐसे थे, जो लगातार बहस करते थे। हर एक अंक का गणित जानना चाहते थे।

नेम ब्रांड शिक्षण संस्थानों की पढ़ाई का खर्च उठाना वैसे ही बहुत मुश्किल होता है। मुझे समझ नहीं आ रहा था कि इसके इस आग्रह को कैसे स्वीकार करूँ। मुझे कोई हक नहीं उसका भविष्य बिगाड़ने का। अब वह मेरी कक्षाओं में नहीं था। बाहर की दुनिया से उसका सरोकार होने वाला था। वह यह भी जानता था कि यह रेफ़रेंस लेटर सीधे जाता है। छात्र को पता भी नहीं चलता कि प्रोफ़ेसर ने क्या लिखा होगा। मैंने शान के लिए क्या लिखा उसके बारे में कोई अंदाज़ा नहीं लगा पाएगा वह।

एक और ईमेल भेजकर उसने अंतिम प्रयास किया। उसके लगातार आग्रह भरे संदेशों से मेरा पत्थर मन पिघला। हारकर मैंने वह सब कुछ लिखा, जो मैं लिखना चाहती थी। हर बात को मज़ाक में लेता है। मैंने कभी उसे गंभीर नहीं देखा। बावजूद इसके एक खास विशेषता पर गौर किया था कि वह झूठ नहीं बोलता। ईमानदारी आज की दुनिया में देखने को नहीं मिलती। वह जैसा अंदर है, वैसा ही बाहर है।

मैं खुश थी। मैंने कम-से-कम बुरा नहीं किया। बरस बीत चले थे इस बात को। नए छात्रों की नई खेप में व्यस्त रहते हुए मैं भूल चुकी थी कि उसका क्या हुआ। नौकरी मिली, नहीं मिली। कहीं-से-कहीं तक कुछ सोचा नहीं कभी।

और आज फिर से वही शान। एक बार फिर से हम दोनों आमने-सामने होंगे। उसकी और मेरी कहानी अभी खत्म नहीं हुई थी।यह लड़का बार-बार मेरे सामने क्यों आता है! कहाँ से आता है! मेरे अलावा और कोई कक्षा ली नहीं क्या!

मैं लौट आई आज में। अतीत की परतें आज तक आते-आते भूमिकाएँ बदल चुकी थीं। बरसों पहले वह याचक था, आज मैं उसके प्रकाशन से अपनी किताब प्रकाशित करवाने के लिए आतुर थी।

मेरे अहं ने एक सुझाव भी दिया कि शान से मिलकर खुद को छोटा साबित न करूँ। कोई वजह बताकर वहाँ जाना निरस्त भी कर सकती हूँ। लेकिन फिर सोचा जाकर बधाई ही दे देती हूँ। सच्चाई तो यह थी कि उस मीटिंग के समय तक मेरी बेचैनी लगातार बढ़ती रही, क्योंकि इस प्रकाशक से जुड़ने का मेरा प्रण फिर भी मज़बूत ही रहा।

मैं दिए गए समय पर उसके ऑफ़िस में पहुँची। बाहर रिसेप्शनिस्ट ने मेरा कार्ड अंदर पहुँचाया। तुरंत वह बाहर आया। झुककर मेरा अभिवादन किया। पूरी तरह बदला हुआ था। बिज़नेस सूट में दुबला-पतला छरहरा लड़का।

"आप फ़ोन ही कर देतीं मैम। ऐसे मौसम में आने का कष्ट क्यों किया।"

और वह बोलता चला गया। कैसे यहाँ तक पहुँचा। "कंपनी का चूहा" जैसे शब्दों ने उसके जीवन में मंत्र का काम किया था।मैं मन-ही-मन सोच रही थी,कंपनी का चूहा शेर बनकर बैठा है। ऐसा शेर जिसका काम चूहों के बगैर बिल्कुल नहीं चलता।

आज मैं उसकी वाकपटुता से बेहद प्रभावित हो रही थी। मेरा अपना स्वार्थ था या फिर अपने छात्र की उन्नति, जो भी था मुझे उसकी प्रगति देखकर दिली खुशी हो रही थी। फिर भी उसके प्रतिष्ठित पद और शानदार ऑफ़िस के बावजूद मेरे मुँह से सच ही निकला- "मुझे तो लगा था कि जहाँ भी तुम जाओगे एक बवंडर खड़ा करोगे।"

"बवंडर में जीता था। अब बाहर निकल कर भी खुश हूँ। यह अपना रचा हुआ संसार है।"

एक बड़बोला छात्र और मैं। दोनों के बीच ऐसे शब्दों का नाता,जिनमें लगातार उलझाव रहा। कभी व्याकरण, कभी वर्तनी, तो कभी उच्चारण दोष। कक्षा में भी, कक्षा के बाहर भी। बावजूद इसके, हम आज तक शब्दों से बँधे रहे। एक नाज़ुक-सा रेशमी तागा, जिसके दो सिरे, दो अलहदा छोरों पर अलग-अलग हाथों में थे।

आज मैं उसकी जगह खड़ी थी। मेरे कागज़ के टुकड़ों में छुपा अथक परिश्रम बेताब था। उससे बात करने के लिए शब्दों की चकरघिन्नी में फँसी थी मैं। मेरी व्याकुलता को समझते हुए वह बोला- "आपकी पांडुलिपि हम पढ़ चुके हैं। आपकी पुस्तक शीघ्र छप रही है।"

आश्वस्त होने के लिए मैंने उसकी आँखों में झाँका। उसकी आँखों की पुतलियों में मेरी छवि एक सख्त शिक्षक जैसी थी, जो अपने विद्यार्थी को हर बार बड़ी चुनौती देती थी।

आज एक और चुनौती को उसने स्वीकार कर लिया था।

**hansadeep8@gmail.com**

# मैं शस्त्र नहीं उठाऊँगा

**अमित कुमार झा**
**पंजाब, भारत**

मैं शस्त्र नहीं उठाऊँगा
मैं धनुष नहीं चलाऊँगा,
जो भी परिणाम हो माधव
मैं अब पीछे ना हट पाऊँगा।

क्या माधव यह धन-संपदा
गुरुजन परिजन से बढ़कर है,
मैं शस्त्र नहीं उठाऊँगा
मैं धनुष नहीं चलाऊँगा।

हाँ माधव!
यह धन-संपदा मेरे किस काम की है?
गुरुजन-प्रियजन के ना रहने पर
यह फिर किस काम की है?
मैं शस्त्र नहीं उठाऊँगा
मैं धनुष नहीं चलाऊँगा।

क्या मैं अपने परिजन को
मार कर जी पाऊँगा?
खाद्य-पदार्थ और संपदा
का उपभोग मैं कर पाऊँगा?

ना माधव! यह होगा ना
भले वह मुझ को मार गिराए,
पर मैं शस्त्र नहीं उठाऊँगा
मैं धनुष नहीं चलाऊँगा।

सुनो पार्थ! क्या हुआ तुम्हें?
वीरों के मुख यह शोभा देता,
इतिहास तुम्हें कायर कहेगा,
हास्यप्रद और खलनायक कहेगा।
निमित मात्र तुम बन जाओ।

चलो उठो! शस्त्र तुम उठाओ
अपने तरकस को लहराओ,
वीर वही कहलाते हैं,
जो युद्धभूमि में
वीरगति को पाते हैं।

तुम लड़ो-ना-लड़ो
फिर भी यह होगा,
विधि ने जो लिखा
वह प्रखर होगा
निमित मात्र अमित तुम बन जाओ।

हे धनंजय! तुम शस्त्र को उठाओ
वे वीर नहीं कायर होते
जो युद्ध भूमि से बाहर होते,
जो तुम नहीं तो मैं मारूँगा
धर्म को विस्तारूँगा
सिर्फ़ तुम खड़े रहो
अमित अपने कर्मों में अड़े रहो।

माधव,अब मैं जान गया
अपनी गलती को मान गया,
कहो माधव,अब क्या करना है
इस गांडीव का
संधान कहाँ पर करना है।

पार्थ निमित मात्र तुम बन जाओ
सिर्फ़ अपने कर्म को तुम निभाओ,
फल की चिंता मुझ पर छोड़ो
बस तरकस को तुम लहराओ।

**amitkumarjha1@unionbankofindia.bank**

# मैं बिहार हूँ

**नीरज कुमार आज़ाद**
**बिहार, भारत**

मैं ही बिहार हूँ
बुद्ध, नानक और महावीर का निवास हूँ,
जो दिखाए विश्व को शांति की राह, मैं वह प्रकाश हूँ।
मैं ही बिहार हूँ।।

देश-विदेश से लोग आते हैं यहाँ,
यहाँ के सिवा और शांति मिलेगी कहाँ।
मैं वह शांति का आखिरी मुकाम हूँ,
मैं ही बिहार हूँ।।

चाहे युद्ध-स्थल हो या स्थल हो शांति का,
पहल किया है मैंने सद्भावना और क्रांति का ।
मैं सम्राट चक्रवर्ती अशोक कुमार हूँ,
मैं ही बिहार हूँ।।

मैं प्रथम लोकतंत्र की माता हूँ,
अपनी ही नहीं संपूर्ण जगत का भाग्य-विधाता हूँ।
जो दिखाए आँख मुझे, उसके लिए मैं धनुष-टंकार हूँ,
मैं ही बिहार हूँ।।
आए हैं यहाँ राम, सीता और लक्ष्मण
आत्माओं को मिलता है मोक्ष, प्रत्येक क्षण, प्रत्येक क्षण, प्रत्येक क्षण।
जो भी आए दर पे मेरे, उसके लिए मैं मुक्ति धाम हूँ,
मैं ही बिहार हूँ।।

शास्त्रों ने भी माना है, बिहार शांति का खज़ाना है,
ईद, होली और दीपावाली, सद्भावना का पैमाना है।
जो चलाये तलवार मुझ पर, उसके लिए मैं ढाल हूँ,
मैं ही बिहार हूँ।।

अंतरिक्ष में आर्यभट्ट ,गणित में रामानुजाचार्य हूँ,
खगोल विद्या में वराहमिहिर तो आई आई टीमें आनंद कुमार हूँ,
मैं ही बिहार हूँ।।

रघुनंदन ने वध किया बक्सर में ताड़कासुर का,
नंद-नंदन ने पग धरा है सीने पे गयासुर का।
अन्याय के खिलाफ़ लड़ने वाला, मैं एक न्याय हूँ,
मैं ही बिहार हूँ।।

आए हैं यहाँ ह्वेन सांग और फ़ाहियान,
उनकी कृतियों से मिला है हमें कुछ तो ज्ञान।
शिक्षा के क्षेत्र का ओदंतपुरी और नालंदा बिहार हूँ,
मैं ही बिहार हूँ।।

वेदों में ऋग्वेद, ग्रंथों में गीता हूँ,
पुरुषों में राम, माताओं में सीता हूँ।
भ्राता में भरत, पुत्रों में श्रवण कुमार हूँ,
मैं ही बिहार हूँ।।

भक्तों में वीर हनुमान, मित्रों में कृष्ण हूँ,
शिष्यों मेंआरुणि, कर्ण जैसा दानवीर हूँ।
मैं ही बिहार हूँ।।

तीर्थों में उत्तराखंड, सत्यों में राजा हरिश्चंद्र हूँ
किताबों में संविधान, गलतों के लिए प्राण दंड हूँ।
जो दिखाए हुकूमत मुझे, उसके लिए वज्र प्रहार हूँ।
मैं ही बिहार हूँ।।

खुशियों में गूँजने वाली शहनाई हूँ,
नदियों में गंगा माई हूँ।
युद्धों में कलिंग, धनुर्धारी में अर्जुन कुमार हूँ,
मैं ही बिहार हूँ।।

राजाओं में दशरथ, योद्धाओं में भीम हूँ,
वृक्षों में पीपल, औषधियों में नीम हूँ।
शांति के क्षेत्र का मैं बुद्ध और महावीर हूँ,
मैं ही बिहार हूँ।।

दूरदर्शन की आवाज़ हूँ,
राजनीति का आगाज़ हूँ।
राष्ट्रपतियों में राजेंद्र प्रसाद हूँ,
मैं ही बिहार हूँ।।

ऋषियों का शृंगार हूँ,
अतिथियों का सत्कार हूँ।
धरा पर मैं सत्य का अवतार हूँ।।।
मैं ही बिहार हूँ।।

**nkazad07@gmail.com**

## एक युद्ध

**अरुणिमा बहादुर खरे 'वैदेही'**
**उत्तर प्रदेश, भारत**

हर दिन एक युद्ध है,
क्या कोई विशुद्ध है,
बैर अंतस में छिपा,
भला कैसे कोई शुद्ध है।

भाव संवेदनाएँ सो गईं,
करुणा लुप्त हो गई,
झर-झर नीर बह चले,
वेदनाएँ विलुप्त हो गईं।

कोई नहीं यहाँ पर तेरा,
जो तूने स्वयं का साथ छोड़ा,
दोस्त बना स्वयं को तू,
हर विजय पथ भी तेरा।

लाख खंजर धोखे के,
कैसे तुझे हराएँगे।
जीवन का तू बादशाह,
सब हार तुझसे जाएँगे।

अनगिनत किले फ़तेह हुए,
अनगिनत ही ढह गए।
जीतने का जो जुनून तुझे,
नव किले पुनः बने।

**arunima2611@gmai.com**

# पुतला और मज़दूर

**जितेंद्र कुमार**
**दिल्ली, भारत**

पुतले कितने अजीब होते हैं
बेजान, बेज़ुबान!
उनकी हर एक हरकत दूसरों की उंगलियों में होती है
हँसते हैं, रोते हैं, मायूस होते हैं
पता है उन्हें नहीं मिलना ये सब करके भी कुछ
मिलना उसे है जिसकी उंगलियों पर
वह थिरक रहा है,
हँस रहा है, हँसा रहा है
उनकी हँसी उनकी नहीं है!
उनका रोना उनका नहीं है!
उनका मायूस होना उनका नहीं है।
एक कंपनी, एक कारखाने का मज़दूर भी कुछ
पुतले जैसा ही होता है!
दिन-रात खट रहा है।
भरी गर्मी में सड़क को दो फाँक कर रहा है।
निर्मित कर रहा है
लोगों के लिए एक आरामदायक दुनिया।
पता है? जब वह निर्मित कर देगा एक सड़क
एक राजा का आलीशान महल।
एक मल्टीप्लेक्स मॉल।
तब हटा दिया जाएगा उसका झोपड़ा।
रोक दिया जाएगा उसे
किसी महल, किसी मॉल में घुसने से।
उसे उसकी ही निर्मिती नकार देगी
कि अब कोई ज़रूरत नहीं है तुम्हारी!

यही है एक पुतला!
एक मज़दूर!

**jitenderdsc0@gmail.com**

# आस

**अनिकेत गौतम**
**तेलंगाना, भारत**

पहनती चूड़ी हूँ मैं हाथों में,
पर भाला भी फेंकने की ताकत है मेरे हाथों में,
काजल लगाती हूँ अपनी आँखों में
पर तेरा काल भी बन सकती हूँ मैं।
मैं स्त्री नहीं हूँ, मैं पुरुष भी नहीं हूँ...!
हाँ...हाँ...मैं वही हूँ, जो अभी-अभी,
तेरे ज़हन में उभरी हूँ मैं !

आवाज़ में मेरी मर्दानगी है,
तो क्या.....???
मन मेरा भी युवती-सा कोमल है,
जानती हूँ तू किस नाम
से बुलाता है मुझे, तो क्या !
तू फिर भी तो पाना चाहता है, मुझे।

चाहती हूँ मैं भी एक साथी का साथ
पर जानती हूँ मैं, तू आज भी
नहीं बिठाता है अपने पास...
मैं तो आज तक जीती आई हूँ बस,
लेकर एक 'आस'...
पर जान गई हूँ मैं कि दिल नहीं है
आज भी तेरे पास...!

**aniketgautam807@gmail.com**

# नेक काम है

**विक्रम कुमार**
**बिहार, भारत**

अच्छाइयों की धारा बनना नेक काम है,
करतार का इशारा बनना नेक काम है,
काम नेक अनगिनत जहान में हैं, लेकिन
दिव्यांगों का सहारा बनना नेक काम है।

जिनकी दृष्टि क्षीण उनके नैन हम बनें,
उनके हम ही दिन व रैन बनें,
श्रवणबाध्य जन के हम कान भी बनें,
आत्मबल हम दें उन्हें और मान भी बनें।

तूफ़ान में किनारा बनना नेक काम है,
दिव्यांगों का सहारा बनना नेक काम है।

हाथों से जो वंचित हैं, उनके हाथ बनें हम,
जो पैर से अक्षम हैं, उनके साथ बनें हम,
उनके लिए उनकी ही परवाज़ हम बनें,
जो बोलते नहीं उनकी आवाज़ हम बनें।
ज़मीन से उठ सितारा बनना नेक काम है,
दिव्यांगों का सहारा बनना नेक काम है।

यह बात कही न महज़ उपदेश के लिए,
ऐसा करना अच्छा होगा देश के लिए,
मजलूमों के लिए यह ढाल रखी जाएगी,
संसार में ज़िंदा मिसाल रखी जाएगी।

इंकलाबी नारा बनना नेक काम है,
दिव्यांगों का सहारा बनना नेक काम है।

**vikrammanora@gmail.com**

# सोच लो तुम्हें क्या चुनना है

**प्रतिभा चौहान**
**बिहार, भारत**

गहन उद्वेलन और उदासी में भी
तुमसे पूछे जाएँगे सवाल

जब तुम होगे अपने दुख के गहनतम बिंदु
और उसके तात्त्विक कारण खोजते हुए उलझे हुए से

तब भी पूछे जाएँगे सवाल
कोई बेकार-सा विशेषण देते हुए

वे रखेंगे तुम्हारे हाथों में धर्म की किताबें
करेंगे मजबूर कसमें खाने के लिए
और ठीक उसी वक्त
तुम्हें गलत शपथ लेने के लिए देंगे दंड

फिर भी करेंगे प्रश्न, जिसमें तुम्हारा दोष ढूँढे जाने तक
बताएँगे सज़ाओं के प्रकार

तुम्हारे मौन और शांति की शक्ति भाँपते हुए
लगाएँगे तुम पर क्रोधित होने के तमाम आरोप

आकाश को कहेंगे धरती
और धरती को आकाश

इस तरह वे तुम्हें विरोध करने के गुर सिखाएँगे
करेंगे प्रताड़ित गहन प्रशिक्षण के बहाने

तुम्हें रखेंगे युद्ध की सबसे पहली कतार पर
मरने पर करेंगे घोषित किसी बाहरी आक्रांता का जासूस

तुम्हें सीढ़ियाँ बनाकर चढ़ेंगे आखिरी माले तक
और लगाएँगे बुलंदी के नारे

पताका फहराएँगे विजेता बनकर
पहले चिंगारी, फिर आग और फिर ज्वालामुखी कहेंगे
फिर कर देंगे राख घोषित

और अंततः हटा देंगे
दर्पण पर पड़ी धूल की तरह

सोच लो
तुम्हें क्या चुनना है।

**cjpratibha.singh@gmail.com**

# तुम्हारे लिए

**डॉ. विजयानन्द**
**उत्तर प्रदेश, भारत**

मैं यहाँ पर खड़ा हूँ, तुम्हारे लिए,
दीप-सा मैं जला हूँ, तुम्हारे लिए।
इस तरह देखकर न नज़र फेर लो,
मैं यहाँ पर अड़ा हूँ, तुम्हारे लिए।।

तुम तो तन-मन हृदय में समाए हुए,
मन के हर रंग में हो रंगाए हुए।
आँख के इस समंदर में आकर बसो,
मैं किनारे पड़ा हूँ, तुम्हारे लिए।।

बालपन तो गया, आ गया कालपन,
काल-कवलित हुआ जा रहा मेरा मन।
तुम कुछ तो करो, आ समा लूँ तुम्हें,
दृढ़ किए मन खड़ा हूँ, तुम्हारे लिए।।

बह रही है हवा है, यह शीतल पवन,
पर हृदय में दहकती हुई आग है।
बादलों-सा उमड़कर बरसो यहाँ,
प्रेम-पथ पर  टिका हूँ, तुम्हारे लिए।।

तुम अगर साथ हो तो डगर है सहज,
है सहज ज़िंदगी का यह कोरा सपन,
धड़कनें हैं धड़कती बहुत तीव्रतर,
कर रहा मैं जतन हूँ, तुम्हारे लिए।।

भुजाओं में आकर सँभालो मुझे,
आत्मा का अमर हो ही जाए मिलन।
देखते-देखते एक हो जाएँ हम,
आँख खोल रहा हूँ, तुम्हारे लिए।।

मैं यहाँ पर.....।

**33vijayanand@gmail.com**

# पहाड़ उदास है

**डॉ. गंगा प्रसाद शर्मा 'गुणशेखर'**
**गुजरात, भारत**

जब से
काट लिए गए हैं
चोरी-चोरी
हरे-भरे
पेड़-पौधों वाले
उसके हाथ-पाँव
पहाड़
बहुत डरा-डरा रहता है।
लुप्त हो गया है
उसके भीतर का
गीत-संगीत।
उड़ गए हैं उसके
सारे रागों के पक्षी
उदास-उदास रहता है
इन दिनों
किसको दिखाए कि
हो गया है
पूरा अपंग अचल
कि अब नहीं
सहा जाता कुल्हाड़ी के
हल्के-से वार का भी दर्द
सुबह-सुबह
जैसे ही नींद टूटती है
ओस से नहाई
देह से
कनेर के फूल-सा
पीला-पीला चेहरा लिए
अपने नेत्रों के
निर्झर से
चढ़ाने लगता है जल
सूर्य देवता को।
बीच-बीच में उभरे
पत्थरों के अधरों के
मध्य के विवरों के
फूटते मंत्रोच्चारों के साथ
करता रहता है प्रार्थनाएँ कि
'हे प्रभु!
अब और अधिक लुटने का
सामर्थ्य नहीं है मुझमें
अब और न लूटे कोई
मेरी नदियों के कलकल-छलछल
और
पंछियों के कलरव भरे स्वर।'

**dr.gunshekhar@gmail.com**

# ये वसंत बड़ा उधमी है

**व्यग्र पाण्डे**
**राजस्थान, भारत**

यह वसंत बड़ा उधमी है
मन को बहकाता है
होठों पर गीत बन के
कुछ भी गुनगुनाता है ।
रंगो में पीत वरण
इसको सुहाता है
सरसों के फूल बनकर
यह मुझे लुभाता है।

इसको नादान कहूँ
या फिर शैतान कहूँ
पहले भटकाता है
फिर राह बताता है।

इसकी मोहकता में
हर कोई फँस जाता
ऋतुओं में है न्यारा
'ऋतुराज' कहलाता है।

इसकी मादकता का
कुछ नशा इस तरह का
बिन पिए हर कोई
क्या, लड़खड़ाता है।

फूलों की शक्ल में ये
प्यारा मुस्कराता है
लताएँ बन करके
आलिंगन कर जाता है।

जब आता फाग यहाँ
वह गाता राग मधुर
होली के रंगों में
वसंत घुलमिल जाता है।

कवि पर भी रंग चढ़ा
इसकी कारस्तानी का
ले हाथ कलम-कागज़
कविता लिख जाता है।

कवि व्यग्र कहे सबसे
रख प्रफुल्ल मन-बगिया
जिसे भूले थे महीनों
वह याद आ जाता है।

**vishwambharvyagra@gmail.Com**

## एकांत

**दिविक रमेश**
**नोएडा, भारत**

गाँव था
थे दादा जी भी
माहिर थे परोसने में
लहलहाती फ़सलों के संगीत-सा एकांत।
कहते थे
होना ही चाहिए भजन और भोजन
एकांत में।

देख रहे होंगे दादा जी
अगर होंगे कहीं
और देख सकते होंगे
कि अब ना ही रहा भोजन एकांत का
और ना ही रहा भजन भी।

देख मैं भी रहा हूँ
शोरों के बोझ तले दबे
कुचले
मगर चलते कुछ आदमियों को
खोजते हुए
कोई एकांत अपना।

बचाए रखना है मुझे
अपना एकांत
हर हाल
जहाँ मैं जाग सकता हूँ और रो सकता हूँ।

एकांत ही है जहाँ से
मैं लौट सकता हूँ,
होकर तरोताज़ा,
लौट सकता हूँ जहाँ से
एक हँसमुख चेहरा लिए।

**divikramesh.blogspot.com**

## एक दिन

**डॉ. आरती रानी प्रजापति**
**गुरुग्राम, भारत**

एक दिन
शहर में मनाया जा रहा था
बाल दिवस
और
उसी समय
किसी ढाबे पर
छोटू
खाने का ऑर्डर ले रहा था।
एक दिन
शहर में चल रहा था आयोजन
महिला दिवस पर
और उसी शहर में
एक मज़दूर महिला
ठेकेदार से काम के पैसे के लिए
मिन्नतें कर रही थी।
एक दिन
शहर में
नेता ने दिया भाषण
एक समुदाय के खिलाफ़
कुछ दिन बाद
उसी समुदाय के
धार्मिक स्थल पर वह पाया गया।
एक दिन
शहर में किया गया था
एक आयोजन
समाज के पिछड़े तबके के लिए
जिसके कार्य का सारा भार
उसी पिछड़े तबके पर था....

**aar.prajapati@gmail.com**

## गिरमिटिया वंशज

**तरुण घवाना**
**नई दिल्ली, भारत**

गिरमिटिया वंशज, धरती के अनमोल रत्न,
दूर देश में बसे, फिर भी नहीं भूले अपना चमन।

संघर्षों की गाथा, हर कहानी में बसी,
अपनी मिट्टी से दूर, फिर भी उनकी जड़ें
भारतीयता में रची बसी।

भाग्य में मेहनत और आँखों में सपने लिए,
अपने पुरखों की याद में, नई दुनिया बसाने चले।

विश्व के कोने-कोने में, उनकी पहचान बिखरी,
गिरमिटिया के वंशज, बने विश्व-बंधुत्व की
अनकही कड़ी।

भाषा और संस्कृति का, उन्होंने संजोया है खज़ाना,
दूर देश में भी, भारतीयता का दीपक जलाना।

आज भी उनके गीतों में, बजती है बाँसुरी,
गिरमिटिया के वंशज, संस्कृति के सच्चे सूरी।

**tarungh@gmail.com**

# दीप मेरे

**गोवर्धन सिंह फ़ौदार 'सच्चिदानन्द'**
**मॉरीशस**

पथ पर छाया है अंधियारा
दीप मेरे ज्योतिर्मय कर दे,
भ्रमित खड़ा हूँ चौराहे पर
मेरा भाग्योदय कर दे।
इतना-सा यह एहसान कर
मेरी भव-बाधा हर दे, पथ पर।

मन-मस्तिष्क को घेरा द्वेष ने
पाँव न धर पाता मैं धरा पर
अहंकार का अंधकार है,
तम अंतस हर कृतार्थ कर
दुर्व्यसनों का कर उपचार
तन-मन में अभिलाषा भर दे, पथ पर।

यूँ उलझा धागा रिश्तों का
सुध-बुध मेरा मौन है,
बोल यहाँ तो सबके मधुर है,
ज्ञात नहीं पर अपना कौन है।
मैं अनभिज्ञ भटक न जाऊँ
ज्योति प्रीत जला दे, पथ पर।

जीवन स्वयं का स्थिर बैठा
समय पल-पल फिसल रहा,
धर्म-कर्म का बोझ शीश पर
बनकर बवंडर मंडरा रहा।
दब नहीं जाऊँ बोझ तले
ज़रा भार मेरा हलका दे, पथ पर।

हाव-भाव तेरे परमार्थ का
थोड़ा-सा मुझमें हो जाए,
पा जाऊँ, मैं भी लक्ष्य को
जन्म सफल मेरा हो जाए।
सोच में मेरी कर विस्तार
शुद्ध भावनाएँ कर दे, पथ पर।

मैं मिट्टी तू भी मिट्टी का
एक तूही मेरा अपना,
जलना है संग सारा जीवन
फिर मिट्टी में मिल जाना
कर गौरवान्वित मुझको
पहचान मेरी दिला दे, पथ पर।

**goburdhunsingh.fowdar@gmail.com**

# बलात्कार

**श्रीमती केशनी फ़ेकू**
**मॉरीशस**

यह कैसी दरिंदगी है?
यह कैसी दरिंदगी है?
अब विश्वास नहीं है मुझे इंसानियत पर क्योंकि,
आज फिर से हुआ एक लड़की का बलात्कार।
आज हुआ मेरा बलात्कार।।
याद आती है, उस दिन की,
जब अश्लील तरीकों से उसने मुझे छूआ,
निचोड़कर मेरी आत्मा को मुझे निर्जीव किया।
आवाज़ उठाई, पर एक ही क्षण में चुप कराया गया,
एक चुभता-सा वाक्य "तुमने ही कुछ गलत पहना होगा!"

उस समय शीशे के जैसे टूटी मैं,
बिखरे हुए थे मेरे अस्तित्व के टुकड़े
बिखरे हुए थे मेरे चरित्र के हिस्से
हारी थी मैं मनुष्यता से,
हारी थी मैं अपने आप से।

कहते हैं लड़कियाँ छोटे कपड़े पहनती हैं,
इसलिए होते हैं बलात्कार,
तो जाकर उस तीन साल की बच्ची से पूछो,
उसने क्या पहना था,
जब उसके खुद के अपने ने
दैत्य जैसा उसका बलात्कार किया?

जिस बच्ची को दुर्गा रूप मानकर पूजते,
दीवाली पर्व पर जिसकी आरती उतारते,
उसी को कैसे खून से लथपथ हो करते।

हम कैसे देश में जी रहे हैं?
बलात्कारी सज़ा के नाम पर,
कारागारों में राजा जैसे जी रहे हैं।
और हम....हमारा क्या?
घुट-घुटकर अपना जीवन काट रहे हैं।
देश की प्रगति के लिए, एक लाख आवाज़ें थीं।
उसी देश की बेटी के लिए, सब मौन क्यों हैं!!!
बेटी और प्रगति में यह असमानता क्यों है?

जब आप हमको अपनी बेटी मानेंगे,
तब शायद इस देश में बलात्कार नहीं होंगे।
हाथ जोड़कर, न्याय माँगती हूँ, आपसे।
ज्यादा कुछ नहीं,
फाँसी या उम्र कैद की सज़ा भी नहीं,
बस...बस... उन हैवानों को रास्ते पर,
वस्त्रहीन कराकर उनको खड़ा तो किया जाए
दर्द नहीं तो नंगेपन का ही एहसास कराया जाए,
लोगों की भेदती आँखों से महसूस शायद उनको होगी,
हर एक लड़की की पीड़ा,
हर एक माँ की पुकार
हर एक पिता के आँसू॥

वरना तो हर दिन अखबारों में पढ़िएगा
आज फिर से हुआ एक लड़की का बलात्कार,
आज हुआ मेरा बलात्कार,
आज हुआ आपका बलात्कार॥

**ashikeshnee222@gmail.com**

# बोल रहे हैं वन्य प्रदेश

**डॉ. कौशल किशोर श्रीवास्तव**
**मेलबर्न, ऑस्ट्रेलिया**

बोल रहे हैं वन्य प्रदेश, कहते एक कहानी
हरे-भरे उद्यानों की, विस्तृत घने अरण्यों की
उनकी वाणी फैल रही है दुनिया के प्रांगण में
मानव-जाति उलझ गई है अर्थपूर्ण संकेतों में।

सूखे पत्ते, सूखी डालें, सूखे पड़ गए छाले
हरियाली के ऊपर दिखते धब्बे काले-काले
साँसों की तकलीफ़ उन्हें हैं, वायु में है दूषण
जीवन-काल संक्षिप्त हुआ, जलवायु परिवर्तन।

जंगल-आग की ज्वाला में झुलसे वन्य प्रदेश
पशु-पक्षी और जीव अनेकों भोग रहे हैं क्लेश
विचलित मानव खोज रहा है एक नया परिवेश
सागर की लहरें भी कुपित, कैसा है यह युग विशेष?

बर्फ़ों की चट्टानों से निकले पृथ्वी माता के आँसू
कौन उन्हें सँभालेगा जब विज्ञान नहीं है काबिल?
महाप्रलय की कल्पित लीला, मूर्त रूप में आएगी
देख नहीं पाएगा मानव, घड़ी विनाश की होगी।

आज सोचता हूँ मैं क्षण भर, दुविधा की गहराई है
भौतिक विकास, सम्यक जीवन, दोनों के बीच लड़ाई है
कैसे करें संतुलन इनमें – एक असाध्य पहेली है
भोग-विलास की काली छाया, मानवता पर हावी है।

पूछ रहे हैं पक्षीगण "कहाँ है चाँद की वह चाँदनी?
शुक्ल पक्ष की पूर्णिमा की रजतमय वह रोशनी?"
धूमिल हुई आकाशगंगा, गगन भी ओझल हुआ
वसुंधरा आहत हुई – क्या यही हमारा भाग्य है?

डूब रहे हैं महानगर, बढ़ रहा है तापमान
कहीं सूखा का प्रकोप, तो कहीं धरा है जलमग्न
अन्नदाता ग्रामीण किसान, उन पर भी शामत आई है
देश-विदेश पूरी दुनिया पर, ग्लोबल वार्मिंग हावी है।

कल ही मैंने देखा था चिन्तन की अद्‌त वेला में
पृथ्वी लोक मैं छोड़ चला, ब्रह्माण्ड-भ्रमण की यात्रा पर
मंगल ग्रह पर जा उतरा जैसे हो मेरा परिचित परिवेश
स्वागत-स्वागत का गुंजन सुनकर, मैं हो गया सचेत।

क्या यह था एक 'दिवास्वप्न' या 'मन का पागलपन'
या था 'कल्पित विज्ञान' का एक समकालीन विवेचन?
बुद्धि-श्रेष्ठ, उद्यम-प्रवीण, मानव है भाग्य-विधाता
क्रमिक विकास की सीढ़ी पर संकल्प सफल हो न्यारा।

बोल रहे हैं वन्य प्रदेश, अनहोनी है घटना
सुनना होगा आज हमें, लानी होगी चेतना !!

**kkps1944@gmail.com**

# माँ

**शुभ्रा ओझा**
**शिकागो**

हर पल, हर जगह तुम्हें
अपने साथ लिखेंगे,
तुम्हारी कही हर बातों को
हम बहुत खास लिखेंगे,
तुम रहो चाहे जहाँ भी
यह तो है मर्ज़ी तुम्हारी
जब तलक है साँसों में साँस
हर गीत 'माँ' तुम्हारे नाम लिखेंगे।

हर वक्त चलेंगे तुम्हारे पद-चिह्नों पर
तुम्हारे हाथों को थामे अपने हाथ लिखेंगे।
खुद को अकेला कभी मानेंगे नहीं
आशीर्वाद को तुम्हारे अपना ढाल लिखेंगे,
गिरेंगे, उठेंगे फिर चल देंगे
अपनी हर कामयाबी तुम्हारे नाम लिखेंगे,
दिन तुम्हारे बिन गुज़रता नहीं
तुम्हारी यादों को माँ, आठों पहर की बुनियाद लिखेंगे।

कभी बैठेंगे फ़ुर्सत से
करेंगे बच्चों से तुम्हारी ही बातें
तुम्हारी मनोहर छवि माँ, आँखों में बंद लिखेंगे।
तुम्हारे संस्कार नई पीढ़ी में बाँटेंगे
कोई पूछेगा जो ईश्वर का प्रसाद लिखेंगे।
इक दिन क्यों ?
हर दिन, हर माह, हर वर्ष, माँ तुम्हारे साथ लिखेंगे।
हो जाए चाहे दुनिया कितनी भी नाराज़
अपने राम से पहले माँ तुम्हारा नाम लिखेंगे।
माँ सिर्फ़ तुम्हारा ही नाम लिखेंगे।

**imshubhra.ojha@gmail.com**

# मैं मॉरीशस हूँ

**राम मणि तिवारी 'रमन'**
**बहरीन**

निर्भीक अजेय साकार हूँ,
अफ़्रीका का अभेद्य द्वार हूँ।
हिंद महासागर की शान,
संस्कृति और संस्कार हूँ।
पवित्र हूँ, जैसे गंगा,
मणि जैसे पारस हूँ।
तप हूँ, तेज हूँ, तेजस हूँ
मैं मॉरीशस हूँ

संयुक्त हूँ, समावेश हूँ,
विशिष्ट हूँ, विशेष हूँ।
अनेकता में हूँ एकता,
शांति का संदेश हूँ।
आन पर जो बात आई,
हिम्मत हूँ, साहस हूँ।
तप हूँ, तेज हूँ, तेजस हूँ,
मैं मॉरीशस हूँ।

इतिहास से भरी कहानी हूँ,
विश्वास की निशानी हूँ।
अत्याचारों से विचलित नहीं,
अविरल बहता पानी हूँ।
सीमाओं पर नज़र,
सचेत हूँ, चौकस हूँ।

तप हूँ, तेज हूँ, तेजस हूँ,
मैं मॉरीशस हूँ।

पर्यटन की पहली पसंद,
प्राकृतिक सौंदर्य का निबंध।
चहुँ ओर जहाँ है व्याप्त,
मनमोहक बगिया की सुगंध।
आदर्श मेज़बानी अपनी पहचान,
मधुर हूँ मैं, मधुरस हूँ।
तप हूँ, तेज हूँ, तेजस हूँ,
मैं मॉरीशस हूँ।

## स्त्री

**विनोद कुमार दुबे**
**सिंगापुर**

माँ, बहन,मित्र, प्रेमिका
सबमें मैंने देखी थोड़ी-थोड़ी स्त्री।
किंतु विवाह के बाद पत्नी से मिल,
मूड स्विंग जैसे नए टर्म सीखे।
मैंने एक ही स्त्री में कई रूप देखे,
पत्नी के साथ चौबीसों घंटे गुज़ार,
मैंने स्त्री को सबसे ज्यादा समझा।

हम पुरुष तंज कसते रहे कि,
स्त्रियों को ब्रह्म भी न समझ पाएँगे।
तो यह सच है, क्योंकि,
ब्रह्म भी पुरुष ही ठहरे।
नहीं ले आ पाए इतना निश्छल मन,
कि समझ लें स्त्री को आसानी से।

हर चीज़ में नफ़ा-नुकसान ढूँढता पुरुष,
नहीं बचा पाया इतनी संवेदना,
कि समझ सके कैसे कोई स्त्री,
टीवी सीरियल में हो रही विदाई देख,
सारी स्त्रियों के भाग्य का नीर बहा लेती है।

श्रेष्ठता की तलाश में निकला पुरुष,
नहीं जुटा पाया इतनी निःस्वार्थ पात्रता,
कि समझ सके कैसे कोई स्त्री,
परिवार के लिए अब तक का कमाया,
सारा करियर बिनकहे दाव पर लगा देती है।
हासिल करने की दौड़ में शामिल पुरुष,
नहीं बचा पाया इतना सौंदर्यबोध,
कि समझ सके कैसे कोई स्त्री,
आधे घंटे की पार्टी के लिए,
एक घंटे सजने में गुज़ार देती है।

नहीं समझ में आएगा पुरुष को कि कैसे,
श्रेष्ठता की होड़ वाली संवेदनहीन दुनिया में,
जीते हुए भी अछूती रही स्त्रियाँ,
और बहती रही भावनाओं की नदी में,
और गुणा गणित की कच्ची स्त्रियों को,
पुरुष भावनाओं के खरीद-फ़रोख्त में लूटता रहा।

एक बुढ़िया को सड़क पार कराता सिपाही,
उससे बची-खुची उम्र का आशीष ले लेता।
माँ के हाथ के खाने की ज़रा तारीफ़ कर,
बेटा रसोई की आँच में घंटों खड़ा कर देता।
सात जन्मों के साथ के महज़ वादे पर,
पति स्त्री को पूरे दिन प्यासा रख लेता।

निःस्वार्थ स्त्रियों ने पुरुषों को जन्म देकर,
दुनिया चलाने का अधिकार भी दे दिया,
और ऐसा नहीं कि इंसानी दोष स्त्रियों में न थे,
किंतु अगर स्त्रियाँ चलाती दुनिया,
तो समस्याएँ ज़रा छोटी होतीं।

कभी खुद की उम्र घटाकर बताती,
किसी की पीठ पीछे शिकायत करती।
छोटी-छोटी बात का पहाड़ बनाती,
कभी बहू पर दहेज का तंज कसती।

पर कहीं विश्वयुद्ध न होते,
धर्म के नाम पर नरसंहार न होता,
क्यूँकि स्त्रियों ने श्रेष्ठता से सदा ऊपर रखा है,
मानवता और संवेदना को।

माँ, बहन, प्रेमिका, पत्नी, बेटी
मैं शुक्रगुज़ार हूँ जीवन में आयी सारी स्त्रियों का,
जिन्होंने इस कठकरेज़ दुनिया को,
जीने लायक बनाया।
गुणा-गणित में डूबे मेरी कलम से,
भावपूर्ण कविता लिखवाया।

जब तुम प्रकांड पंडित ब्रह्म नहीं,
बल्कि कृष्ण या शिव बनकर आओगे।
इतना भी मुश्किल नहीं होगा समझना ,
राधा या सती में हर स्त्री को समझ पाओगे।

**vinod5787@gmail.com**

# रोम-रोम में हैं बसे, सौरभ मेरे राम

**डॉ. सत्यवान सौरभ**
**हरियाणा, भारत**

राम नाम है हर जगह, राम जाप चहुँ ओर।
चाहे जाकर देख लो, नभ-तल के हर छोर।।

नगर अयोध्या, हर जगह, त्रेता की झंकार।
रामराज्य का ख्वाब जो, आज हुआ साकार।।

रखो लाज संसार की, आओ मेरे राम।
मिटे शोक, मद, मोह सब, जगत बने सुखधाम।।

मानव के अधिकार सब, होने लगे बहाल।
रामराज्य के दौर में, रहते सभी निहाल।।

रामराज्य की कल्पना, होगी तब साकार।
धर्म, कर्म, सच, श्रम बने, उन्नति के आधार।।

राम नाम के जाप से, मिटते सारे पाप।
राम नाम ही सत्य है, सौरभ समझो आप।।

मद में डूबे जो कभी, भूले अपने राम।
रावण-सा होता सदा, उनका है अंजाम।।

राम-भक्त की धार है, राम जगत आधार।
राम नाम से ही सदा, होती जय-जयकार।।

जगह-जगह पर इस धरा, है दर्शनीय धाम।
बसे सभी में एक से, है अपने श्री राम।।

राम सदा से सत्व है, राम समय का तत्त्व।
राम आदि हैं, अन्त हैं, राम सकल समत्व।।

राम-राम सबसे रखो, यदि चाहो आराम
पड़ जाएगा कब पता, सौरभ किससे काम।।

राम नाम से मैं करूँ, मित्रो तुम्हें प्रणाम।
जीवन खुशमय आपका, सदा करे श्रीराम।।

राम-राम मुख बोल है, संकटमोचन नाम।
ध्यान धरे जो राम का, बनते बिगड़े काम।।

रोम-रोम में है बसे, सौरभ मेरे राम।
भजती रहती है सदा, जिह्वा आठों याम।।

उसका ये संसार है, और यहाँ है कौन।
राम करे सो ठीक है, सौरभ साधे मौन।।

हर क्षण सुमिरे राम को, हों दर्शन अविराम।
राम नाम सुखमूल है, सकल लोक अभिराम।।

जात-पात मन की कलह, सच्चा है विश्वास।
राम नाम सौरभ भजें, पंडित और' रैदास।।

सहकर पीड़ा आदमी, हो जाता है धाम ।
राम गए वनवास को, लौटे तो श्रीराम ।।

बन जाते हैं शाह वे, जिनको चाहे राम ।
बैठ तमाशा देखते, बड़े-बड़े जो नाम ।।

जपते ऐसे मंत्र वे, रोज़ सुबह औ' शाम ।
कीच-गंद मन में भरी, और ज़ुबाँ पे राम ।।

राम राज के नाम पर, कैसे हुए सुधार ।
घर-घर दुशासन खड़े, रावण है हर द्वार ।।

हारे रावण अहम तब, मन हो जय श्री राम।
धीर-वीर गम्भीर को, करे दुनिया प्रणाम।।

**satywansaurabh3331@gmail.com**

# हाइकु

**डॉ. नीना छिब्बर**
**भारत**

1.
आया वसंत
प्रकृति है मुस्काई
हवा बौराई।

2.
गुनगुनाए
भँवरे कलियों पर
रे मधुमास।

3.
कृष्ण युगल
प्रेम बाँसुरी सुन
नाचे अनंग ।

4.
प्रकृति माया
जादूगरनी बन
रास रचाए ।

5.
वीणावादिनी
ध्वनि, गीत-संगीत
देख त्रिरूप।

6.
वसंत ऋतु
फूल, सुगंध, मद
परमानंद।

7.
त्याग दे घृणा
सीख ले प्रेम मीत
फूलों की रीत ।

8.
धरा श्यामला
नभ हुआ निलाभ
अहा!आनंद ।

9.
मन तरंग
झूले पी संग राधा
छू ले अनंत ।।

10.
माँ शारदे
वर दे सुज्ञान का
फैले प्रकाश ।

11.
जन मानस
आज रमा राम में
शुभ संकेत।

12.
प्रकृति खिले
गुंजित मंत्रोच्चार
पवित्र जग ।

13.
सीखे कर्त्तव्य
पिता आज्ञा सर्वोच्च
सुख का द्वार।

14.
भीतर राम
बाहर के जो द्वंद्व
होते हैं स्वाहा ।

15.
शबरी जैसी
सहज भाव भक्ति
पाना मुश्किल।

16.
पढ़ें इंसान
पर मन किताब
तो कामयाब।

17.
झिलमिलाएँ
ओस कण मोती से
नलिन पर।

18.
भागे ये पाखी
देख तप्त धरती
कर तू छाँव।

19.
सीखो पाखी से
चोंच भर दानों में
भरना पेट।

20.
नभ पनीला
जागी धरा की आस
वृष्टि की आस।

21.
पिता का पद
शेष आसन पर
विष्णु विराजे।

22.
महफूज़ हूँ
तूफ़ानों के रुख को
मोड़ देती माँ।

23.
रिश्तों में युद्ध
देते भीतरघात
आयु पर्यन्त।

24.
कैसा दुर्भाग्य
पढ़े नहीं शैशव
बेचे किताबें।

25.
हारे है दुख
बैसाखियाँ हैं दुआ
मिले हैं सुख।

**neena.chhibbar@gmail.com**

# हाइकु -तिनके

**हलीम आईना**
**राजस्थान, भारत**

चारों तरफ़,
माया-मोह के काँटे,
कौन जो छाँटे?

---

घोर अँधेरा
दीपक लाचार-सा,
सूरज बनो।

---

दौलत नहीं,
ज़िन्दगी का सहारा,
मुहब्बत है।

---

दूल्हे के जैसे
बिकते पुरस्कार,
प्रतिभा रोये।

---

शब्दों का खून,
जब-जब होता है,
दिल रोता है।

---

भूल बैठे हैं,
आदर्श व संस्कृति,
धर्माधिपति।

**haleemaaina@gmail.com**

# विश्ववाणी

**संजीव वर्मा 'सलिल'**
**जबलपुर, भारत**

विश्ववाणी ज्ञानभाषा अमर हो हिंदी जगत में
जगमगाए सूर्य बनकर विश्व भाषा के नखत में

***

है अनूठा विश्व हिंदी सचिवालय नवतीर्थ है यह
नव रसों से युक्त भाषा, छंद अनगिन देव विग्रह
चलो हिंदी ले चलें मिल जहाँ अनुपस्थित विगत में
विश्ववाणी ज्ञानभाषा अमर हो हिंदी जगत में

***

शब्द तद्भव सहित तत्सम प्रचुर देशज अरु विदेशज
कर रही उपयोग हिंदी विश्व के मांगल्य को भज
गद्य में है पद्य में है बसी हिंदी जग-हृदय में
विश्ववाणी ज्ञानभाषा अमर हो हिंदी जगत में

***

करे अमिधा, लक्षणा सह-व्यंजना हिंदी समाहित
सुरुचिमय शत अलंकारों से 'सलिल' हिंदी सुसज्जित
मॉरीशस जग-तीर्थ हिंदी केंद्र सचिवालय प्रगत में
विश्ववाणी ज्ञानभाषा अमर हो हिंदी जगत में

**salil.sanjiv@gmail.com**

# नया मानव

**अदिति अरोरा**
**सिंगापुर**

दशहरा, दीवाली तुम फिर आओगे
फिर से जलेंगे रावण जगह-जगह
घर सजेंगे जगमगाते दीपकों से
सदियों से चली आ रही परंपराओं की
होगी पुनरावृत्ति
बुराई पर अच्छाई की जीत का
होगा फिर से बोलबाला
तुम प्रतिवर्ष आते हो
दो-चार दिन ठहर, चले जाते हो
बुराई पर अच्छाई की जीत का तुम्हारा संदेश
शायद भस्म हो जाता है, रावण के पुतलों के साथ ही
या हो जाता है लुप्त शांत दीपक के अंधकार तले
ना बुराई खत्म होती है और ना ही जाता है अंधकार
हृदयों से
काम, क्रोध, लोभ, मोह, द्वेष, घृणा, पक्षपात, अहंकार,
स्वार्थ और धोखा
घूमते रहते हैं हम भी ऐसे कई शीश लिए
काश कर पाते हम इनका हनन
और भस्म कर पाते
अपने अंदर के दशानन को
सोचती हूँ, वह दशहरा कब आएगा ?
जिस दिन अपने अंदर के रावण का वध कर
एक नया मानव दीवाली मनाएगा

**aditi.arora1965@gmail.com**

# घोर अंधेरा इस बस्ती में

**सीमा सिकंदर**
**गाज़ियाबाद, भारत**

घोर-अंधेरा इस बस्ती में, छाने वाला है |
सूरज का पारा गिरकर जम जाने वाला है ||

जाल बिछा है सुन ओ, मैना तू तो है भोली;
खोल न खिड़की, इधर शिकारी आने वाला है ||

आज-तलक हम समझ रहे थे जिसको चारागर;
घोल नमक का घाव पे छिड़काने वाला है ||

छोटे हैं पर ये कुछ-न-कुछ कह देते सबको;
क्या इनको कोई रस्ता दिखलाने वाला है ||

नैतिकता की हद में रहकर बोल रहे हम तो;
लहज़ा मेरा वो कहते भड़काने वाला है ||

भूत खड़ा है पीछे आगे दुश्मन कमर कसे;
मेरा ज़िंदा रहना तो चौंकाने वाला है ||

**seemasikander99@gmail.com**

## गज़ल

**डॉ. कविता विकास**
**उत्तर प्रदेश, भारत**

संस्कारों का भान नहीं है
अपना ही सम्मान नहीं है
मंज़िल तक कैसे जाओगे
रास्तों का ही ज्ञान नहीं है
दिल वीरान रहेगा हरदम
इसमें गर मेहमान नहीं है
जीना उसका क्या है जीना
उड़ना गर अरमान नहीं है

हमने बाज़ारों में ढूँढा
सुख का पर सामान नहीं है
ऐसा क्या खोया है अपना
चेहरे पर मुस्कान नहीं है
कब, क्या और कैसे के बीच कहो
कौन भला हैरान नहीं है

**kavitavikas28@gmail.com**

## गज़ल

**लक्ष्मीकांत मुकुल**
**बिहार, भारत**

कोहरे से झाँकता हुआ आया
माँगी थी रोशनी ये क्या आया

सूर्य-रथ पर सवार था कोई
उसके आते ही जलजला आया

घोंसले पंछियों के फिर उजड़े
फिर कहीं से बहेलिया आया

दूर अब भी बहार आँखों से
दरमियाँ बस ये फ़ासला आया

काकी की रेत में भूली बटुली
मेघ गरजा तो जल बहा आया

जो गया था उधर उम्मीदों से
उसका चेहरा बुझा-बुझा आया

बागों में शोख तितलियाँ भी थीं
पर नहीं फूल का पता आया

**kvimukul12111@gmail.com**

## गज़ल

**नवीन माथुर पंचोली**
**मध्य प्रदेश, भारत**

दूर की शहनाइयाँ अच्छी लगीं।
पास की तन्हाइयाँ अच्छी लगीं।
था सफ़र वह धूप का कुछ इसलिए,
राहभर परछाइयाँ अच्छी लगीं।
नींद से अलसा रहा जब तन-बदन,
आपकी अंगड़ाइयाँ अच्छी लगीं।
नाम कोई था हमारे साथ में,
इसलिए रुसवाइयाँ अच्छी लगीं।
डूबकर देखा जो हमने पास से,
इश्क की गहराइयाँ अच्छी लगीं।
जो सभी ने था कहा हमने कहा,
चाँद की रानाइयाँ अच्छी लगीं।।

**navinmathurpancholi@gmail.com**

## गज़ल

**विनीता तिवारी**
**वर्जीनिया, अमेरिका**

प्यार करना, कि यार मत करना।
दिल के टुकड़े हज़ार मत करना।

कुछ खताएँ हैं लाज़मी, लेकिन
बे सबब, बेशुमार मत करना।

कह लो जितनी भी बेहतरीन गज़ल,
खुद-का-खुद ही प्रचार मत करना।

शेर नश्तर-सा दिल में चुभ जाए,
इतनी भी तेज़ धार मत करना।

है बहुत क्रूर ये ज़माना, सुनो!
गैर पर एतबार मत करना।

बेहूदा चुटकुलों से ध्यान रहे,
बज़्म को शर्मसार मत करना।

लिस्ट में अपने चाहने वालों की,
नाम मेरा शुमार मत रखना।

साफ़ रखना हिसाब रिश्तों में,
लेना-देना उधार मत करना।

बाज़ आ जाना अपनी आदत से,
आशिकी बार-बार मत करना।

**Vinu_t@hotmail.com**

# कालचक्र
## दन्तकथा पर आधारित और परिकल्पित रूपक

**जय प्रकाश सिंह**
**भारत**

**दृश्य-1**

**समय** : सुबह का समय।

**स्थान** : वैद्य जी का घर।

*(गंगू वैद्य जी को आवाज़ लगाते हुए मंच पर आता है।)*

**गंगू** : वैद्य जी ... वैद्य जी ... वैद्य जी !

*(वैद्य जी कान पर जनेऊ लपेटे हुए, बड़बड़ाते हुए आते हैं।)*

**वैद्य** : हे भगवान! सुबह-सुबह शौच जाना भी दूभर हो गया है। ऐसे गला फाड़कर चिल्ला रहा है, जैसे पहाड़ टूट पड़ा हो। .... गंगू बेटा, साँस ले लो और आराम से बताओ कि क्या हुआ?

**गंगू** : वैद्य जी, एक बेचारे को महाराज अंगराज के सैनिकों ने बहुत मारा-पीटा है, बेचारा अचेत हो गया है।

**वैद्य** : तुम्हारा क्या लगता है?

**गंगू** : कुछ नहीं।

**वैद्य** : तो मरने दो। संसार में नित्य अनगिनत लोग मर रहे हैं। तुमने सबको बचाने का ठेका ले रखा है?

**गंगू** : नहीं, ऐसी बात नहीं है, वैद्य जी। मेरा तो कुछ नहीं लगता है, किन्तु किसी-न-किसी का अवश्य कुछ लगता होगा।

**वैद्य** : चुप्प ! जाति का तेली, मुझ ब्राहमण को उपदेश दे रहा है। सुबह-सुबह तेरा अपशकुन मुँह देखा है, आज तो भोलेनाथ ही प्राण बचाएँ। यह कहावत तो सुनी ही होगी - शशक साँप संन्यासी तेली, विधवा नारि जो मिले अकेली, काना विप्र मिले मग माहीं, प्राण जाए कछु संशय नाहीं।

**गंगू** : तुम भी तो महाराज काने हो। मेरे भी तो प्राण जा सकते हैं?

**वैद्य** : क्या? मुझे काना कहा? अभी बताता हूँ। कहाँ है मेरा डण्डा?

*(गंगू डरकर भाग जाता है। बड़बड़ाते हुए वैद्य अन्दर चला जाता है। इसी के साथ अंधेरा हो जाता है।)*

**दृश्य-2**

*(प्रकाश वृत में गंगू दिखाई देता है। बाद में हल्का प्रकाश कोल्हू पर पड़ता है, जिसको एक हृष्ट- पुष्ट आदमी खींच रहा है। आदमी का नाम भुल्लर है।)*

**गंगू** : *(दर्शकों से)* मैंने उस बेचारे का देसी इलाज किया। सुबह-शाम दूध में हल्दी मिलाकर पिलाया और घावों पर हल्दी का लेप लगा दिया करता था। बहुत जल्दी वह ठीक हो गया। बस ईश्वर ने उसके साथ एक अन्याय किया, बेचारे को कुछ भी याद नहीं रहा। क्या नाम है? कहाँ का रहने वाला है? माँ-बाप कौन हैं, उसको कुछ भी याद नहीं रहा। इसीलिए मैंने उसका नाम भुल्लर रख दिया। कोल्हू से तेल निकालने में मेरी बहुत मदद करता है। गाता बहुत मीठा है। उसका गाना सुनकर मेरे ग्राहक बढ़ गए। ओह! क्या बकबक करने लगा, चलूँ कुछ काम करूँ।

*(गंगू चला जाता है। प्रकाश भुल्लर पर केन्द्रित होता है, जो कोल्हू खींचते हुए गाना गा रहा है।)*

भुल्लर : *(गाना)*

पड़े किस मोह-माया में, ये मेला चार दिन का है।
जाना है आज या कल, ये मेला चार दिन का है।
न कोई साथ आया था, न कोई साथ जाएगा।

खुली रह जायेगी मुट्ठी, यहीं सब छूट जाएगा।
बिछड़ जाएँगे सब अपने, ये मेला चार दिन का है।
जिसने प्रेम बाँटा है, सबसे प्रेम पाया है।
हुई आँसू से नम आँखें, जगत गुणगान गाया है।
भजो भगवान की माला, ये मेला चार दिन का है।
(गाना समाप्त होने पर धीरे-धीरे अंधेरा हो जाता है।)

**दृश्य-3**

**समय** : दिन का समय।

**स्थान** : अंगराज का दरबार।

*(महाराज अंगराज बैठे हैं। बगल में अंगराज की पुत्री चन्द्रमुखी बैठी है, उसी समय आमात्य धर्मदेव आते हैं।)*

**आमात्य** : महाराज अंगराज की जय हो।

**अंगराज** : आइए आइए आमात्य धर्मदेव।

**चन्द्रमुखी** : प्रणाम आमात्य।

**आमात्य** : सदा प्रसन्न रहो पुत्री चन्द्रमुखी।

**अंगराज** : यही तो मेरी चिन्ता का विषय है आमात्य। पुत्री चन्द्रमुखी सदैव अप्रसन्न रहती है।

**चन्द्रमुखी** : पिताश्री उस राज में कोई कैसे प्रसन्न रह सकता है, जहाँ न साहित्य की गोष्ठी होती है और न ही संगीत की कोई सभा। छोटी-सी-छोटी बात पर यहाँ बस कोड़े बरसाये जाते हैं।

**अंगराज** : आमात्य। राजकुमारी का कथन क्या पूर्णतया सत्य है?

**आमात्य** : पूर्णतया असत्य भी नहीं है। इस राज्य को सैनिक और राज्य कर्मचारी चला रहे हैं। राजधर्म तो धारा नगरी के राजा भोज से सीखना चाहिए।

**अंगराज** : ऐसा क्या है राजा भोज में, जो आप सदैव उनका गुणगान करते रहते हैं?

**आमात्य** : महाराज पूछिये कि ऐसा क्या नहीं है? फिर गुणगान तो उसी का करते हैं, जिसमें गुण होता है।

**अंगराज** : आमात्य धर्मदेव हमें राजा भोज के विषय में कुछ बताइए। अभी अभी आप वहाँ से लौटकर आए हैं। क्या स्थिति है, उनके राज्य की सीमाओं की?

**आमात्य** : सुरिक्षत हैं।

**अंगराज** : राजनीति?

**आमात्य** : सुनीति है।

**अंगराज** : धर्म?

**आमात्य** : सर्वोपरि है।

**अंगराज** : प्रजा?

**आमात्य** : प्रसन्न है।

**अंगराज** : निर्धनता?

**आमात्य** : कोई भूखा नहीं सोता।

**अंगराज** : दरबारी?

**आमात्य** : चाटुकार नहीं हैं।

**अंगराज** : दरबार?

**आमात्य** : नीतिज्ञों, शास्त्रियों, साहित्यकारों, संगीतज्ञों और कला मर्मज्ञों से सदा सुशोभित रहता है।

**चन्द्रमुखी** : यहाँ दीप लेकर खोजने से भी एक संगीतज्ञ नहीं मिलता। यह नगरी कलाविहीन है।

**अंगराज** : अच्छा, शिक्षा की क्या दशा है?

**आमात्य** : जो राजा वेद, शास्त्र, उपनिषद् का ज्ञाता हो तथा धर्म और दर्शन की विवेचना करता हो, वहाँ अशिक्षा भटक नहीं सकती। राजा भोज रात्रि में अन्तःपुर के सुगन्धित-सुकोमल बिछौने पर निद्रा का सुख न लेकर अपने राज्य में भेष बदलकर प्रजा के बीच घूमता है, सबके सुख-दुख की चिन्ता करता है।

*(थोड़ी देर के लिए सन्नाटा छा जाता है। राजा उठकर घूमने लगता है। अचानक रुककर बोलता है।)*

**अंगराज** : इसका मतलब राजकुमारी चन्द्रमुखी ठीक कह रही है। (मुड़कर) आमात्य, हम राजकुमारी चन्द्रमुखी को भी प्रसन्न देखना चाहते हैं। इसके लिए हम एक संगीत सभा का आयोजन करना चाहते हैं। संगीत में चन्द्रमुखी की बहुत रुचि है। आप नगर में संगीत सभा

की घोषणा करा दीजिए। अच्छे संगीतज्ञ को हम पुरस्कृत करेंगे।

**आमात्य** : जैसी आज्ञा महाराज। मैं प्रयास करूँगा।

*(महाराज उठकर तेज़ी से अन्दर चले जाते हैं। धीरे-धीरे अंधेरा हो जाता है।)*

**दृश्य-4**

**समय** : दिन का समय।

**स्थान** : गंगू का घर।

*(गंगू, भुल्लर को आवाज़ लगाते हुए बाहर से आता है। गंगू बहुत खुश है।)*

**गंगू** : भुल्लर.....भुल्लर.....भुल्लर।

*(भुल्लर अन्दर से जवाब देता है।)*

**भुल्लर** : अभी आता हूँ। ग्राहक को तेल दे रहा हूँ।

**गंगू** : अरे ! तू ग्राहक को छोड़, जल्दी यहाँ आ।

**भुल्लर** : *(अन्दर से)* आया। (बाहर आकर) जी मालिक।

**गंगू** : अरे ! किस बात का मालिक? गृहस्थ जीवन क्या होता है, जाना ही नहीं। जोड़ी बनाने वाले ने लगता है कि मेरी जोड़ी किसी और के साथ जोड़ दिया। आज आस जगी है।

*(भुल्लर जाते-जाते रुक जाता है।)*

**भुल्लर** : ऐसा क्या हो गया?

**गंगू** : अरे महाराज ! अंगराज एक संगीत सभा करने जा रहे हैं। अभी-अभी मैं घोषणा सुनकर आ रहा हूँ। अरे ! उस संगीत सभा में जो अच्छा गाएगा, महाराज उसको पुरस्कार देंगे।

**भुल्लर** : तो तुम संगीत सभा में गाने के लिए जा रहे हो क्या?

**गंगू** : मैं और संगीत? गंगू को कोल्हू और तेल के अलावा कुछ नहीं आता। संगीत के मामले में मैं कोल्हू का बैल हूँ।

**भुल्लर** : फिर संगीत सभा के नाम पर क्यों प्रसन्न हो रहे हो?

**गंगू** : तुम्हारे लिए प्रसन्न हो रहा हूँ।

**भुल्लर** : मेरे लिए? मुझे नहीं जाना किसी संगीत सभा में। मुझे नहीं चाहिए पुरस्कार।

**गंगू** : पर मुझे तो चाहिए। महाराज से जो पुरस्कार मिलेगा, मैं उससे अपना ब्याह करूँगा।

**भुल्लर** : मालिक मुझे संगीत का 'स' भी नहीं पता। गुनगुनाना अलग होता है और गाना अलग होता है। क्यों मेरा उपहास कराना चाहते हो?

**गंगू** : नहीं-नहीं, तुम बहुत सुन्दर गाते हो। देखना पुरस्कार तुम्हें ही मिलेगा।

**भुल्लर** : मिलेगा तब, जब कोई गाएगा। मुझे संगीत सभा में न जाना है और न गाना है।

**गंगू** : तुझे गाना पड़ेगा। मैं तुम्हारा मालिक हूँ। मैं तुमसे जो भी कहूँगा, उसे तुम्हें करना पड़ेगा।

*(भुल्लर उठकर वहाँ से चला जाता है। गंगू भी उठकर पीछे चला जाता है। धीरे-धीरे अंधेरा हो जाता है।)*

**दृश्य-5**

**समय** : अंगराज का दरबार।

**स्थान** : संध्याकाल।

*(दरबार में संगीत सभा चल रही है। दरबार में अनेक गायक बैठे हैं। द्वार पर द्वारपाल खड़ा है। एक संगीतज्ञ का गायन चल रहा है, जो बेसुरा है। )*

**संगीतज्ञ** : *(गाना)*

प्रिये तुम भी तो कुछ गाओ।
बीती रात, हुई है भोर, भ्रमर बन रागिनी गाओ।
प्रिये तुम भी तो कुछ गाओ।
खिली उपवन की सब कलियाँ, पनघट चल पड़ी सखियाँ।
पड़ी क्यों तुम हो अलसाई, नहीं लेती हो अंगड़ाई।
खोलो मद भरी आँखें, रस निर्झर-सा बरसाओ।
प्रिये तुम भी तो कुछ गाओ।

*(सब शान्त रहते हैं।)*

**अंगराज** : महोदय बैठ भी जाओ। श्रीमान अपना स्थान ग्रहण कीजिए।

*(तभी आगे-आगे गंगू आता है, पीछे-पीछे*

*राजसी ठाट से भुल्लर आता है।)*

**गंगू** : *(कान में फुसफुसाकर)* अपना वचन भूलना मत। तुमने पूरा इनाम मुझे देने के लिए कहा है।

*(भुल्लर हाँ में सिर हिलाता है। दोनों द्वारपाल के पास पहुँचते हैं। द्वारपाल के पास पहुँचते ही गंगू नाटक शुरू कर देता है।)*

महाराज की जय हो। आइए महाराज आइए।

*(द्वारपाल पल भर के लिए रोकता है।)*

क्या करते हो? महाराज संगीत सभा में सम्मिलित होने के लिए आए हैं। रथ के पहिए की हवा निकल गई थी, इसलिए आने में विलम्ब हो गया।

**द्वारपाल** : *(हकलाते हुए)* क ..... हाँ के म .....राज?

**गंगू** : अरे ! महाराज को नहीं जानता? ये हैं महाराज बंगरसिया। झुककर बोलो- महाराज की जय हो।

**द्वारपाल** : *(हकलाते हुए)* म...राज की ई ई.....

**गंगू** : अरे भाई ! जल्दी बोल। इतनी देर में तो संगीत सभा खत्म हो जाएगी।

*(द्वारपाल झुककर फिर से अभिवादन करता है और अन्दर जाने का संकेत करता है।)*

**गंगू** : *(पीठ थपथपाते हुए)* बंगरसिया आना, तुम्हें संतरी से मंत्री बनवा देंगे। यहाँ खड़े रहते हो, वहाँ बैठे रहना, चाहे सोते रहना।

*(दोनों दरबार में पहुँच जाते हैं। संगीत सुनाने वाले दूसरे संगीतज्ञ बैठ जाते हैं। इसी के साथ संगीत समाप्त होता है।)*

महाराज की जय हो।

*(अंगराज बिना ध्यान दिए बैठने का संकेत करते हैं।)*

**अंगराज** : बहुत ही दुख की बात है कि हमारे राज्य का एक भी संगीतज्ञ मेरी पुत्री राजकुमारी चन्द्रमुखी को प्रभावित नहीं कर सका। लगता है कि मेरी नगरी संगीत विहीन है। आमात्य महाशय बता रहे थे कि हमारे शत्रु भोज के राज्य में साहित्य-संगीत के मर्मज्ञों की भरमार है। हमें लज्जा आती है कि कला-साहित्य के क्षेत्र में हमारा शत्रु हमसे अधिक सम्पन्न है।

*(भुल्लर अचानक खड़ा होकर प्रश्न करता है।)*

**भुल्लर** : महाराज मैं क्षमा चाहता हूँ। महाराज शत्रु किसे कहते हैं?

**टंगराज** : तुम्हारा परिचय?

**गंगू** : *(भुल्लर को चुप कराते हुए)* महाराज की जय हो। महाराज मैं गंगू तेली। ये मेरा सेवक भुल्लर है।

**अंगराज** : ओह! एक सेवक में भला राज संस्कार कहाँ होगा?

**भुल्लर** : महाराज ! प्रश्न करना, कब से संस्कार का परिचायक हो गया? मैंने तो यह पूछा कि शत्रु किसे कहते हैं?

**अंगराज** : प्रश्न करने की तुम्हारी हिम्मत कैसे हुई? क्या शत्रु का अर्थ तुम्हें नहीं पता?

**भुल्लर** : पता है। जिसे आप शत्रु कह रहे हैं, क्या उस शत्रु ने कभी आप पर आक्रमण किया?

**अंगराज** : अंगराज पर आक्रमण करने से पहले शत्रु को सौ बार सोचना होगा।

**भुल्लर** : क्या उस शत्रु ने आपके भू-भाग पर अवैध अधिकार जमाया?

**अंगराज** : इतना साहस किसमें?

**भुल्लर** : फिर वह आपका शत्रु कैसे हुआ?

**अंगराज** : वह हमारा पड़ोसी है।

**भुल्लर** : क्या हर पड़ोसी शत्रु होता है? पूरा संसार एक-दूसरे का पड़ोसी है, फिर तो पूरा विश्व एक-दूसरे का शत्रु हुआ।

**अंगराज** : नाम भुल्लर तेली, बातें बड़ी-बड़ी। *(हँसना)*

**गंगू** : महाराज यह नासमझ है। गाना सुनाने के लिए मैं इसको लेकर आया हूँ। कुछ इनाम इकराम मिल जाएगा, तो मुझ निर्धन का भला हो जाएगा।

**अंगराज** : इनाम में यहाँ कोड़े भी पड़ते हैं।

**गंगू** : महाराज क्षमा करें। मैं जा रहा हूँ। चल भुल्लर, चल यहाँ से।

**भुल्लर** : चलो। जहाँ कला के लिए कोड़े मिलते हों, वहाँ न कला का भला हो सकता है और न किसी कलाकार को सम्मान मिल सकता है।

(जाने को मुड़ता है, तभी अंगराज की आवाज़ गूँज उठती है।)

**अंगराज** : ठहरो कलाकार ! अब तुम्हें अपनी कला का प्रदर्शन करना ही होगा।

**भुल्लर** : महाराज, क्षमा चाहता हूँ, कला स्वच्छंद और सहज होती है। यहाँ का वातावरण अभी संगीत के अनुकूल नहीं लगता।

**गंगू** : गा दे भुल्लर ! कुछ मिल जाएगा। महाराज वह गाएगा। आपका कहा भला कैसे टाल सकता है? चल गा।

*(भुल्लर गाना आरम्भ करता है। दरबार में शान्ति छा जाती है।)*

**भुल्लर** : *(गाना)*

एकहिं रूप बस्यो हिय मोरे, दूजा न कोई।
कैसे बखान करहुँ मैं तोरी, जो छवि रची नयन मा मोरी।
सत्य है तू शिव, सुन्दर तू ही, दूजा न कोई।
एकहिं रूप बस्यो हिय मोरे, दूजा न कोई।

*(गाना समाप्त होते ही चन्द्रमुखी तेज़ी से भुल्लर के पास आ जाती है और एकटक निहारने लगती है। सब वाह-वाह करके करतल ध्वनि करते हैं।)*

**चन्द्रमुखी** : अद्‌भुत! अतिसुन्दर। क्या कंठ पाया है आपने। जिस संगीत की खोज में मैं भटक रही थी, मुझे मिल गया। मन को मोह लिया आपने। आप संगीत के ज्ञानी हैं। आज से आप मेरे गुरु ही नहीं, मेरे भगवान हैं।

**भुल्लर** : राजकुमारी जी आप कैसी बात कर रही हैं? मैं एक साधारण व्यक्ति हूँ।

**चन्द्रमुखी** : नहीं, आप साधारण व्यक्ति नहीं हो सकते, मेरी दृष्टि में आप असाधारण हो। सुर, ताल, लय ईश्वर की देन हो सकती है, किन्तु राग रागिनी बिना गुरु की संगत के नहीं सीखी जा सकती। *(महाराज से)* पिताश्री मैं जानती हूँ कि यह राजकुल की मर्यादा के विरुद्ध है, फिर भी मैं आपसे विनती करना चाहती हूँ। मैं इनको अपना जीवन-साथी बनाना चाहती हूँ।

*(महाराज क्रोध में खड़े हो जाते हैं।)*

**अंगराज** : चन्द्रमुखी! राजकुमारी चन्द्रमुखी संयम से बात करो। तुम अंगराज की पुत्री हो। इस राज्य की राजकुमारी हो। सम्बन्ध समान कुल में होता है। महल छोड़कर तुम झोपड़ी में जाना चाहती हो?

**चन्द्रमुखी** : ऐसे सोने के पिंजरे में रहने का क्या लाभ, जहाँ मन की शान्ति न हो।

**अंगराज** : वहाँ शान्ति नहीं कंगाली मिलेगी।

**चन्द्रमुखी** : रह लूँगी।

**अंगराज** : दुख मिलेगा।

**चन्द्रमुखी** : सह लूँगी।

**अंगराज** : कहना आसान है।

**चन्द्रमुखी** : करके दिखा दूँगी।

**अंगराज** : और हमारा मान-सम्मान?

**चन्द्रमुखी** : कहिएगा कि संगीत के लिए न्योछावर कर दिया।

**अंगराज** : पागल मत बनो। चन्द्रमुखी तुम एक विदुषी हो और यह एक अनपढ़, गँवार है।

**भुल्लर** : महाराज अक्षर-ज्ञान ही ज्ञान नहीं होता।

**अंगराज** : अच्छा? तो तुम्हें ज्ञान-अज्ञान का ज्ञान है? तो बताओ ज्ञानी ! वेद कितने हैं?

**भुल्लर** : चार।

**अंगराज** : नाम?

**भुल्लर** : ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद, अथर्ववेद।

**आमात्य** : महाराज इसको तो कोई बच्चा भी रटकर बता सकता है। इसके ज्ञान की परीक्षा मुझे लेने की आज्ञा दें।

**अंगराज** : आज्ञा है।
*(अंगराज जाकर अपनी जगह बैठ जाते हैं। आमात्य सवाल जवाब करते हैं।)*

**आमात्य** : वेद किसे कहते हैं?

**भुल्लर** : ईश्वरीय ज्ञान की पुस्तक को वेद कहते हैं।

**आमात्य** : वेदों के ब्राह्मण कौन हैं?

**भुल्लर** : ऋग्वेद के ऐतरेय। यजुर्वेद के शतपथ। सामवेद के तांड्य। अथर्ववेद के गोपथ।

**आमात्य** : वेदों के उपवेद कौन हैं?

**भुल्लर** : ऋग्वेद का आयुर्वेद। यजुर्वेद का धनुर्वेद। सामवेद का गंधर्ववेद। अथर्ववेद का अर्थवेद।

**आमात्य** : वेदों के अंग?

**भुल्लर** : शिक्षा, कल्प, निरूक्त, व्याकरण, छन्द, ज्योतिष।

**आमात्य** : उपनिषद् कितने हैं?

**भुल्लर** : कुल लगभग 108 हैं। प्रमुख तेरह हैं।

**आमात्य** : पुराण कितने हैं?

**भुल्लर** : अट्ठारह।

**आमात्य** : अष्टाध्यायी के लेखक कौन हैं?

**भुल्लर** : पाणिनी।

**आमात्य** : रामायण?

**भुल्लर** : वाल्मीकि।

**आमात्य** : महाभारत?

**भुल्लर** : वेद व्यास।

**आमात्य** : अर्थशास्त्र?

**भुल्लर** : चाणक्य।

**आमात्य** : महाभाष्य?

**भुल्लर** : पतंजलि।

**आमात्य** : नाट्यशास्त्र?

**भुल्लर** : भरतमुनि।

**आमात्य** : कामसूत्र?

**भुल्लर** : वात्स्यायन

**आमात्य** : सूर्य सिद्धांत?

**भुल्लर** : आर्यभट्ट।

**आमात्य** : हर्ष चरित,

**भुल्लर** : बाण भट्ट।

**आमात्य** : शृंगारमंजरी?
*(पल भर के लिए शान्ति छा जाती है।)*

**आमात्य** : बोलो ज्ञानी, शृंगारमंजरी की रचना किसने की है?

**अंगराज** : बोलती बन्द हो गयी? या ज्ञान भंडार रिक्त हो गया?
*(सब हँस पड़ते हैं।)*

**अंगराज** : बोलो कलाकार, शृंगारमंजरी की रचना किसने की है?

**भुल्लर** : मैंने।

**चन्द्रमुखी** : नहीं, राजा भोज ने इसकी रचना की है।

**भुल्लर** : जी, मैंने इसकी रचना की है।

**चन्द्रमुखी** : क्या तुम राजा भोज हो?

**भुल्लर** : हाँ, मैं भोज हूँ।
*(शान्ति छा जाती है।)*

**आमात्य** : तुम्हें लज्जा नहीं आती है? पहले दूसरों की रचना को अपना बताते हो और अब अपने आप को राजा भोज बताते हो, राजा भोज! तनिक लज्जा करो।
*(सब हँस पड़ते हैं।)*

**भुल्लर** : आ रही है लज्जा, किन्तु अपने आप पर नहीं, अपितु आमात्य धर्मदेव पर। लज्जा आ रही है कि जिस आमात्य धर्मदेव को सोने के सिक्कों से भरी थैली भेंट की थी, वही आज मुझे नहीं पहचान रहा है। आपके बारे में मुझे सूचना थी। धारा-नगरी में पड़ोसी को शत्रु नहीं मानते हैं, 'अतिथि देवो भव' मानते हैं और आपके यहाँ?

**आमात्य** : महाराज, मुझसे भूल हुई। मैं क्षमा प्रार्थी हूँ। पर आप यहाँ ?

**भुल्लर** : सब कालचक्र का खेल है। ... एक दिन मैं सीमा पर घूम रहा था कि अचानक मेरा घोड़ा पहाड़ी से कूद गया था और मैं आपकी सीमा में आ गिरा। मैं घायल हो गया था। एक घायल

की सहायता न करके यहाँ के सैनिकों ने मुझे प्रताड़ित किया और सब कुछ छीन लिया। भला हो गंगू तेली का, जिसने मेरा उपचार किया और मुझे अपने घर में रखा। संसार में अभी अच्छे लोग हैं। इतने दिनों से मैं स्मृति खोने का ढोंग रचता रहा। मुझे क्षमा करना गंगू। शत्रु को शरण देना, राष्ट्रद्रोह होता है। हो सकता है कि तुम पर कोड़े बरसाये जाएँ। किन्तु जब-जब लोग राजा भोज का नाम लेंगे, गंगू तेली को अवश्य याद करेंगे।

*(अंगराज से)* महाराज अंगराज! आपका शत्रु आपके सम्मुख खड़ा है, आप अपनी इच्छा की पूर्ति सहर्ष कर सकते हैं।

*(अंगराज अवाक से पास आते हैं और हाथ जोड़कर खड़े हो जाते हैं।)*

**अंगराज** : महाराज भोज मुझे क्षमा करें, मैंने आपके साथ अच्छा व्यवहार नहीं किया। नगर-वासियों के कुकृत्य के लिए भी मैं हाथ जोड़कर क्षमा माँगता हूँ। मित्रता के रूप में अपनी पुत्री राजकुमारी चन्द्रमुखी का हाथ मैं आपके हाथ में देना चाहता हूँ। चन्द्रमुखी को आप स्वीकार करें और हमें कृतार्थ करें।

*(अंगराज, चन्द्रमुखी का हाथ राजा भोज के हाथ में देते हैं। संगीत आरम्भ हो जाता है। राजा भोज चलकर गंगू के पास जाते हैं।)*

**भुल्लर** : मालिक! तुम्हारा पुरस्कार?

**गंगू** : महाराज! कैसा मालिक? कहाँ का मालिक? मेरा पुरस्कार मिल गया। छाती ठोंककर मैं कह सकता हूँ कि धारा नगरी के राजा भोज ने मेरा नमक खाया था।

*(राजा भोज गंगू को गले से लगा लेते हैं। धीरे-धीरे अंधेरा हो जाता है।)*

**समाप्त**

**jayvardhanwriter@gmail.com**

# नशा मुक्त मॉरीशस : एक नई दिशा, एक नया संकल्प

**आकाश आर्यनाईक**
**मॉरीशस**

**पात्र :**

- **राजेश** : एक युवक, जो नशे की लत से संघर्ष कर रहा है।
- **विजय** : राजेश के बचपन का मित्र।
- **माया** : एक समर्पित समाज सेविका, जो युवाओं को नशे से बचाने के लिए अथक प्रयास कर रही है।
- **रानी** : माया की सखी, जो जागरूकता फैलाने के लिए समर्पित है।
- **शर्मा अंकल** : समाज के एक सम्मानित और प्रेरणादायक व्यक्ति, जो युवाओं के लिए आदर्श हैं।
- **अन्य युवक और युवतियाँ :** समाज के वे युवा, जो नशे से प्रभावित हैं।

**दृश्य 1 :**

*(राजेश का घर)*

*(कमरे में गहरा अंधेरा और उदासी का वातावरण है। दीवारों पर पुरानी, सूनी तस्वीरें टंगी हैं और धूल भरी किताबें अलमारी में अव्यवस्थित ढंग से रखी हुई हैं। कमरे में एक टूटी हुई कुर्सी, बिखरे हुए कागज़ और आधी जली मोमबत्तियाँ हैं, जिनसे एक अजीब-सी वीरानी छाई हुई है। राजेश अकेला कमरे के कोने में बैठा है, उसकी आँखों में न केवल थकान, बल्कि आत्मविश्वास की कमी भी झलक रही है। इसी बीच विजय, उसके बचपन का दोस्त, दरवाज़े पर खड़ा है। उसकी आँखों में चिंता और सहयोग की छिपी हुई चाह साफ़ झलक रही है।)*

**विजय** : राजेश, दरवाज़ा क्यों बंद कर रखा है? मैं कब से आवाज़ दे रहा हूँ, तूने कोई जवाब ही नहीं दिया।

अंधेरे में तीर चलाना छोड़, बाहर आकर मुझसे मिल।

**राजेश** : छोड़ दे, विजय। अब कोई आस बाकी नहीं रही। सब कुछ निरर्थक-सा लगने लगा है। कहते हैं 'धूप के बिना छाँव नहीं मिलती', मगर अब मुझे लगता है कि मेरी ज़िंदगी की धूप ही कहीं खो गई है। सब कुछ खत्म हो चुका है।

**विजय** : तू क्या कह रहा है, यार? तुझसे यह आशा नहीं थी। 'जहाँ चाह, वहाँ राह'—तूने यह खुद ही मुझे सिखाया था। तेरी मेहनत और हिम्मत को कौन भूल सकता है? तू लहरों से डरकर हार मानने वाला इंसान नहीं था।

**राजेश** : बहुत कोशिश की, विजय। लेकिन नशे की लत ने मुझे पूरी तरह बर्बाद कर दिया। अब मैं खुद को भी नहीं पहचान पा रहा हूँ। मन में लालसा थी, मगर अब सब कुछ खोखला लगता है। मेरे अंदर अब कोई साहस नहीं बचा है। *(उसकी आँखों में आँसू भर आते हैं और बेचैनी स्पष्ट रूप से झलकने लगती है।)*

**विजय** : तू समझता है कि सब खत्म हो गया है, लेकिन क्या तू नहीं जानता कि 'कोशिश करने वालों की कभी हार नहीं होती' यह तेरी लड़ाई है और तुझे ही इसे लड़ना होगा। बुरा समय भी सदा के लिए नहीं टिकता। तू खुद से हार मानकर अपने जीवन का अंत नहीं कर सकता।

**राजेश** : मुझे लगता है कि अब इस नशे से बाहर निकलना मेरे बस में नहीं है। 'सागर की गहराई में मोती छिपे होते हैं', मगर मुझे डर है कि मैं इस गहराई में सदा के लिए खो जाऊँगा।

**विजय** : राजेश, 'बुरा समय हमेशा नहीं रहता।' तूने पहली बार गलतियाँ की हैं, लेकिन इसका मतलब यह नहीं कि तू खुद को बर्बाद कर दे। रात के बाद सवेरा ज़रूर होता है। मैं तुझे इस अंधकार से बाहर निकालने के लिए यहाँ हूँ। अगर तुझमें ज़िद है, तो रास्ता भी है।

**राजेश** : *(थोड़ा हिचकते हुए)*
ठीक है, विजय, मैं एक बार और प्रयत्न करूँगा, पर मुझे स्वयं पर विश्वास नहीं है। यह लत बहुत गहरी हो चुकी है। 'सपनों की ओर पहला कदम बढ़ाने से ही सफ़र शुरू होता है', लेकिन मुझे नहीं पता कि मैं इस सफ़र को पूरा कर पाऊँगा या नहीं।

**विजय** : यह बात सही है, दोस्त। 'उम्मीद पर दुनिया कायम है'। जब तक आस बाकी है, तब तक कोई हार नहीं हो सकती। अब चल, मैं तुझे एक ऐसे प्रतिष्ठित व्यक्ति से मिलवाने ले चलता हूँ, जो तुझे सही दिशा दिखाएगा। याद रख, कभी हार मत मानना, जब तक एक भी साँस बाकी है, सफलता तेरे कदम चूमेगी।

*(विजय और राजेश कमरे से बाहर निकलते हैं। कमरे का जो अंधेरा था, वह धीरे-धीरे कम होने लगता है, जैसे नई उम्मीद की किरण कमरे में प्रवेश कर रही हो।)*

**दृश्य 2 :**

*(माया और रानी का सामूहिक कार्य)*

*(यह दृश्य एक बेंच पर बैठी माया और रानी के बीच हो रहा है। बेंच के आसपास पेड़ हैं, जिनकी शाखाएँ हल्की हवा से हिल रही हैं। वातावरण में शांति है, पर इसके साथ ही एक गहरी गंभीरता भी झलक रही है, जैसे दोनों के विचारों में कोई बड़ी चुनौती समाई हो। माया और रानी दोनों के चेहरों पर चिंता और अपेक्षा की मिश्रित भावना है। माया की आँखें स्थिर और सोच में डूबी हैं, जैसे वह किसी बड़ी लड़ाई की योजना बना रही हो, जबकि रानी के चेहरे पर ऊर्जा और दृढ़ता की झलक है, जैसे वह किसी बड़े परिवर्तन के लिए तैयार हो।)*

**माया** : रानी, यह समस्या अब अत्यधिक बढ़ गई है। शहरों और कस्बों में नशा हर जगह फैल चुका है। हर मोहल्ले में लोग इसके असर से पीड़ित

हैं। यह सिर्फ़ एक सामाजिक समस्या नहीं, बल्कि एक नैतिक संकट भी बन चुका है। हमें इसे रोकने के लिए गंभीर और कठोर कदम उठाने होंगे। क्या हम इसके लिए तैयार हैं?

**रानी** : सही कह रही हो माया। 'दूसरों की मदद के बिना, कोई अपने दर्द को समझ नहीं सकता'। जब तक हम खुद उस दर्द का अनुभव नहीं करते, तब तक उसकी गहराई को समझना कठिन होता है। नशे की लत को सिर्फ़ एक आँकड़े की भाँति देखना हमारी गलती होगी। यह हमारा कर्तव्य है कि इसे एक समस्या के रूप में नहीं, बल्कि समाज की आत्मा को नष्ट करने वाले एक खतरे के रूप में देखें। नशा सिर्फ़ शरीर को ही नहीं, बल्कि आत्मा को भी मार देता है। यह समाज की हर परत में गहराई तक समा चुका है।

**माया** : यह सच है, रानी। लेकिन इस लड़ाई की शुरुआत कहाँ से करें? इतने सारे लोग इससे प्रभावित हैं, तो हम कैसे यह सुनिश्चित कर सकते हैं कि हमारा प्रयास प्रभावी हो? हम कितने भी प्रयास करें, समाज पर इस घातक प्रभाव को कैसे रोक सकते हैं? हमारे कदम छोटे और असहाय लगते हैं, जब हम इस विशाल समस्या को देखते हैं।

**रानी** : मंज़िल उन्हीं को मिलती है, जो किसी भी स्थिति में प्रयास करते हैं। यह रास्ता कठिन हो सकता है, लेकिन अगर हम एक कदम आगे बढ़ाते हैं, तो बाकी लोग भी हमारा साथ देंगे। बदलाव का श्रीगणेश स्वयं से होता है। जब तक हम स्वयं में बदलाव नहीं लाएँगे, समाज में यह बदलाव नहीं आ सकता। हमें हर युवा को यह समझाना होगा कि नशा सिर्फ़ तात्कालिक सुख देता है, लेकिन यह उनकी पूरी ज़िंदगी को बर्बाद कर देता है। हमें उनका विश्वास जीतना होगा कि वे इस बुरी आदत से स्वतंत्र हो सकते हैं और हम उनके साथ हैं।

**माया** : रानी, अब मुझे समझ में आ गया है। हमें इस लड़ाई को अपना कर्म मानना होगा। 'जैसा कर्म वैसा फल'। यह सच है, हम जितना सही करेंगे, उतना ही अच्छा फल मिलेगा। अगर हम इस समाज के लिए सही काम करेंगे, तो हमें सकारात्मक परिणाम मिलेगा। हमें न केवल दूसरों को प्रेरित करना है, बल्कि खुद भी एक स्थिर और सशक्त कदम उठाना है, जिससे हम समाज के प्रत्येक सदस्य को इस बदलाव की ओर प्रेरित कर सकें।

**माया** : रानी, हम इस अभियान को और बड़ा करेंगे। हमें हर जगह नशे के अनिष्ट के बारे में चेतावनी देनी होगी। हर गाँव, हर स्कूल, हर युवा वर्ग में यह संदेश फैलाना होगा। हमें यह समझाना होगा कि नशा केवल व्यक्तिगत समस्या नहीं है, बल्कि यह समाज की जड़ें खोखली कर रहा है। अगर हमें समाज में वास्तविक बदलाव लाना है, तो हर एक व्यक्ति को इस लड़ाई में सम्मिलित करना होगा।

**दृश्य 3:**

*(शर्मा अंकल का घर)*

*(शर्मा अंकल अपने घर के आँगन में एक कुर्सी पर आराम से बैठे हैं। उनके चेहरे पर जीवन के अनुभवों की गहराई और समय की ठहराव वाली झलक है, लेकिन साथ ही एक गंभीरता और प्रेरणा का संचार भी है। माया और रानी उनके पास आकर बैठती हैं, उनकी आँखों में समाज की चिंता और सुधार की संभावना स्पष्ट नज़र आ रही है।)*

**शर्मा अंकल** : बेटियो, आजकल हर जगह नशा फैल चुका है। युवाओं के लिए यह एक गंभीर और बढ़ती हुई समस्या बन चुकी है। यह समस्या धीरे-धीरे समाज की नींव को कमज़ोर कर रही है। हर शहर, हर गली में इसका प्रभाव साफ़ दिखाई देता है। यह हमारी आने वाली पीढ़ियों के लिए

एक गंभीर खतरे की घंटी है।

**माया :** अंकल, हम चाहते हैं कि आप हमारी इस लड़ाई में सम्मिलित हों। आपका मार्गदर्शन हमारे लिए बेहद महत्त्वपूर्ण है। आपके अनुभव और समाज में आपकी प्रतिष्ठा हमें इस लड़ाई में बहुत बड़ा समर्थन दे सकती है। जब आप साथ होंगे, तब हमारी आवाज़ और भी शक्तिशाली होगी

**शर्मा अंकल :** देखो बेटियो, 'कोई भी बड़ा काम सिर्फ़ एक व्यक्ति से नहीं होता'। हमें सबको एक साथ जोड़ना होगा। यह समस्या केवल माया और रानी की नहीं, बल्कि हम सभी की है। अगर समाज के हर व्यक्ति ने इसे अपनी ज़िम्मेदारी माना, तो हम इस समस्या को कम कर सकते हैं। इस लड़ाई में हर किसी की भागीदारी अनिवार्य है।

**रानी :** हम हर युवा को इस अभियान में एकत्रित करेंगे। चाहे कितनी भी बड़ी कठिनाई हो, अगर सच्चे मन से प्रयत्न किया जाए, तो कुछ भी असंभव नहीं है। हमें इस दिशा में अपने प्रयासों को और भी शक्तिशाली करना होगा। हमें यह दिखाना होगा कि नशा समाज के लिए एक बड़ी बुराई है और इससे बचने के उपाय भी विद्यमान हैं।

**शर्मा अंकल :** यही सही है, बेटियो। अगर हम चाहें, तो किसी भी कठिनाई को पार कर सकते हैं। विपदा भी जब आती है, तो हमें नया रास्ता दिखाती है। हमें न केवल समाधान खोजना है, बल्कि इस समस्या का सामना करते हुए समाज को एक नई दिशा भी दिखानी है। जब कठिनाई बढ़े, तब हमें नए तरीके सोचने होंगे और हर चुनौती को एक अवसर के रूप में देखना होगा।

*(शर्मा अंकल एक पल के लिए चुप हो जाते हैं, जैसे वे सोच रहे हों। उनके चेहरे पर गंभीरता और विचारशीलता की छाप स्पष्ट दिख रही है, और उनका मन समाधान की ओर बढ़ रहा है।)*

**शर्मा अंकल :** मुझे लगता है कि हमें इस अभियान को एक जन आंदोलन में बदलना होगा। जब तक लोग इसे अपना दायित्व नहीं समझेंगे, तब तक कोई बड़ा परिवर्तन नहीं आएगा। समाज के हर व्यक्ति को यह अनुभव हो कि बदलाव के लिए हर किसी का योगदान ज़रूरी है। हमें यह समझाना होगा कि यह लड़ाई सिर्फ़ कुछ लोगों की नहीं, बल्कि सभी की है। आवश्यकता ही आविष्कार की जननी है, इसलिए अब समय आ गया है कि हम मिलकर बदलाव की दिशा में एक ठोस कदम उठाएँ।

**दृश्य 4 :**

*(समाज में नशा मुक्ति अभियान)*

*(राजेश अब नशे की लत से बाहर आ चुका है। उसके चेहरे पर आत्मविश्वास और ताज़गी है। माया और रानी के साथ वह नशा मुक्ति अभियान में भाग ले रहा है, जहाँ वे युवाओं को नशे के खतरों के बारे में समझा रहे हैं। चारों ओर युवक और युवतियाँ इकट्ठा हैं, जो उत्सुकता से उनकी बातों को सुन रहे हैं। यह दृश्य एक सकारात्मक परिवर्तन की ओर बढ़ते हुए समाज में आशा की किरण जगा रहा है।)*

**राजेश :** अब मुझे लगता है कि मेरी मेहनत रंग लाई है। 'जो मन से हार मान ले, वह कभी जीत नहीं सकता'। जब तक हम खुद पर विश्वास नहीं करेंगे, तब तक हम किसी भी समस्या को हल नहीं कर सकते। मैंने नशे को छोड़ने के लिए खुद को सुदृढ़ किया और आज मैं यहाँ खड़ा हूँ, दूसरों की मदद करने के लिए।

**रानी :** सही कहा तुमने, राजेश। हर व्यक्ति में क्षमता होती है, बस उसे पहचानने की ज़रूरत है। 'मन के हारे हार है, मन के जीते जीत'। अगर हम अपने मन को सही दिशा में लगाएँ, तो कोई भी मुश्किल हमारे लिए समस्या नहीं बन सकती। नशे से सिर्फ़ शारीरिक नहीं, मानसिक मुक्ति भी ज़रूरी है। हमें यह समझना होगा कि नशा न सिर्फ़ शरीर, बल्कि आत्मा को भी कमज़ोर

करता है।

**माया** : देखो, अब नशे से मुक्ति पा रहे युवाओं के चेहरे पर खुशी है। यही हमारी जीत है। 'जहाँ चाह वहाँ राह'। जब किसी चीज़ की सच्ची इच्छा हो, तब रास्ता अपने आप मिल जाता है। हम चाहते हैं कि हर युवा इस अभियान से जुड़े और समाज में बदलाव लाए। हम सब मिलकर इस बदलाव की ओर कदम बढ़ा सकते हैं।

*(दिन का उजाला चारों ओर फैला है और एक विशाल मैदान में लोग इकट्ठा हुए हैं। मंच पर झंडे लहरा रहे हैं, देशभक्ति से माहौल भरा हुआ है। हर उम्र के लोग, युवा, बुज़ुर्ग, महिलाएँ और बच्चे, इस नशा मुक्ति अभियान में शामिल हैं। विजय और माया ने इसकी शुरुआत की और अब राजेश भी महत्त्वपूर्ण भूमिका निभा रहा है। आत्मविश्वास से भरा राजेश मंच पर खड़ा है, पीछे 'नशा मुक्त मॉरीशस, सशक्त मॉरीशस' के बैनर लगे हैं और नारों की गूँज से मैदान जीवंत हो रहा है।)*

**माया** : *(उत्साहित और गर्व भरे स्वर में)*
आज का दिन ऐतिहासिक है! यह हमारी जीत है! नशा मुक्त समाज ही सशक्त समाज हो सकता है। जब हम देश के प्रति सच्ची निष्ठा रखते हैं, तब हम अपने और दूसरों के जीवन में बदलाव ला सकते हैं। यह हमारे समाज की एक नई पहल है। जहाँ हर युवा नशे से मुक्त होकर अपने भविष्य की ओर कदम बढ़ाता है।

**विजय** : *(मुस्कुराते हुए)*
हाँ, माया, यह केवल हमारी नहीं, बल्कि पूरे समाज की जीत है। आज हम सबने मिलकर यह सिद्ध कर दिया कि अगर हम ठान लें, तो कुछ भी असंभव नहीं है। जब समाज का हर व्यक्ति एक साथ खड़ा हो, तब कोई भी चुनौती बड़ी नहीं होती।

**राजेश** : *(भावुक होकर, धीमी लेकिन दृढ़ आवाज़ में)*
विजय, माया, रानी और शर्मा अंकल ने जो विश्वास मुझ पर दिखाया, उसी ने मुझे बचाया है। जब मैं नशे का अधीन था, तब मुझे नहीं लगा था कि मैं इससे कभी बाहर निकल पाऊँगा। लेकिन आज, मैं गर्व से कह सकता हूँ कि मैं इस देश का ज़िम्मेदार नागरिक हूँ। मैं आज़ाद हूँ और इस आज़ादी को हर किसी तक पहुँचाना चाहता हूँ।

**राजेश** : मैं वादा करता हूँ कि इस नशा मुक्ति अभियान को हर कोने तक ले जाऊँगा। मैं उन सभी युवाओं तक पहुँचूँगा, जो आज उस स्थिति में हैं, जहाँ मैं एक समय था। मैं उन्हें दिखाऊँगा कि जीवन में बदलाव संभव है। अगर मैं इस लत से बाहर आ सकता हूँ, तो कोई भी आ सकता है। हमें अपने समाज को एक नई दिशा दिखानी है।

**शर्मा अंकल** : यह सिर्फ़ राजेश की नहीं, बल्कि हम सबकी जीत है। जब समाज एकजुट होता है, तब कोई भी बुराई ज्यादा देर तक टिक नहीं सकती। यह हमारा सामूहिक प्रयास है और हम इसे यहीं नहीं रुकने देंगे। समाज का हर हिस्सा इस बदलाव की ओर कदम बढ़ाए, यही हमारी असली सफलता होगी।

**रानी** : *(मंच पर आते हुए)*
आज का दिन सिर्फ़ नशा मुक्ति का नहीं, बल्कि समाज में एक नई जागरूकता की नींव रखने का दिन है। हम सभी को एकजुट होकर इस प्रयास को आगे बढ़ाना होगा, ताकि हमारा देश पूरी तरह से नशा मुक्त हो सके। यह केवल एक आंदोलन नहीं, बल्कि एक लक्ष्य है—हमारे समाज का भविष्य।

*(रानी के शब्द भीड़ में एक नई ऊर्जा का संचार करते हैं। सभी लोग अपने हाथों में चौरंगे झंडे उठाकर नारे लगाते हैं। पूरे मैदान में जोश और गर्व का वातावरण है।)*

भीड़ के नारे :
नशे की अधीनता से हम आज़ाद हों,

नया सवेरा, नई शुरुआत हो।
मॉरीशस की धरती, हर दिल में हो,
स्वस्थ समाज की बुनियाद हो।
जो खोया है हमने, वो फिर पाएँगे,
सच्चे सपनों को हम फिर बनाएँगे।
संग मिलकर चलें, हर हाथ में हाथ हो,
नशा मुक्त मॉरीशस, यही हमारा साथ हो।
बदलाव का समय अब आया है,
हर दिल में आनंद और उल्लास समाया है।
हम चलेंगे आगे, डर को छोड़ देंगे,
नशा मुक्त मॉरीशस, सशक्त बनाएँगे।
मॉरीशस की जय !

*(अंत में, मंच पर सभी पात्र—राजेश, विजय, माया, रानी और शर्मा अंकल—एक साथ खड़े हो जाते हैं। वे एक-दूसरे का हाथ थामते हैं और चौरंगे झंडे को सलाम करते हुए 'मॉरीशस की जय' गाते हैं। पूरा मैदान उनकी आवाज़ से गूँज उठता है। सभी युवा नशा मुक्त मॉरीशस के सपने को साकार करने का प्रण लेते हैं।)*

**(समाप्त)**

**sundim08111@gmail.com**

# पुस्तक की आत्महत्या

**डॉ. ऋतु शर्मा ननन पांडेय**
**नीदरलैंड, यूरोप**

**पात्र :**

1. न्यायाधीश (जज साहब)
2. वकील
3. मोबाइल
4. सोशल मीडिया
5. आई पैड
6. लेखक
7. जनता (लेखक, पेन, कागज़, पुस्तकें, प्रकाशक)

**अंक एक :**

*(पर्दा खुलता है। न्यायालय के कमरे में न्यायाधीश बैठे हैं। दो अर्दली उनके आस-पास बड़ी-सी मूठ वाली लाठियाँ लेकर खड़े हैं। नीचे एक मेज़ पर एक क्लर्क बैठा है, टाइपराइटर के साथ। सामने की दो मेज़ पर वकील बैठे हैं, अपने मुवक्किलों के साथ। पीछे कुर्सियों पर जनता बैठी है।)*

**जज साहब :** आज की कार्यवाही शुरू की जाए।

**अर्दली :** जज साहब आज का मुकदमा श्रीमान मोबाइल और लेखक, पेन और कागज़ महोदय के बीच है। लेखक महोदय का कहना है कि उनकी पुस्तकों ने श्रीमान मोबाइल के दबाव में आकर पुस्तकालय की अलमारी में आत्महत्या कर ली। उनके हाथों में उनका लिखा एक पत्र मिला है, जिसमें उन्होंने अपनी आत्महत्या का ठेकेदार श्रीमान मोबाइल को ठहराया है।

**जज साहब :** दोनों को आज की कार्यवाही के लिए बुलाया जाए।

**अर्दली :** श्रीमान मोबाइल और उनके वकील व लेखक और उनके वकील कोर्ट में हाज़िर हो..

*(दोनों वकील कोर्टरूम में अपनी-अपनी जगह से उठकर जज साहब को नमस्कार करते हुए)*

**दोनों वकील :** हम हाज़िर हैं जज साहब।

**जज साहब :** कार्यवाही शुरू की जाए।

*(लेखक का वकील अपनी जगह से उठता है और बोलना शुरू करता है)*

**वकील (लेखक) :** नमस्कार जज साहब - ये श्रीमान मोबाइल यहाँ बहुत सज-धजकर खड़े हैं। ये एक हत्यारे हैं। इन्होंने और इनके फ़ेसबुक, इंस्टाग्राम, खेल के एप्स, सभी भाइयों ने मिलकर मेरे क्लाइंट श्रीमान लेखक की

पुस्तक को आत्महत्या करने पर मजबूर कर दिया है। इनके कारण वह बेचारी कई महीनों पुस्तकालयों, पुस्तक की दुकानों में एक ही जगह खड़ी-खड़ी थक गई थी। उस पर धूल जमने लगी थी। कई जगह खड़ी-खड़ी वह इतनी बीमार हो गई थी कि उसे दीमक खाने लगी थी। अब आप ही बताइए जज साहब ऐसे में वह बेचारी आत्महत्या न करती, तो क्या करती? इस मोबाइल महाशय ने सिर्फ़ लेखक की पुस्तक को आत्महत्या करने पर मजबूर नहीं किया, बल्कि उसके जैसे कई अन्य लोगों के साथ-साथ इनके लुभावने खेल के एपों ने मनुष्यों को भी आत्महत्या करने के लिए उकसाया है। यह और इसके भाई हत्यारे हैं जज साहब। मेरी आपसे विनती है, इनको कड़ी-से-कड़ी सज़ा मिलनी चाहिए। मैं इस बात की गवाही के लिए अपने क्लाइंट श्रीमान लेखक को न्यायालय के कटघरे में बुलाने की आज्ञा चाहता हूँ।

**जज साहब** : आज्ञा है। *(अपने पास रखे पेपर पर पेन से कुछ लिखते हैं।)*

**अर्दली** : श्रीमान लेखक न्यायालय के कटघरे में हाज़िर हो....।

*(लेखक कटघरे में हाथ जोड़कर खड़े हैं।)*

*(अर्दली एक लाल कपड़े में लपेटी हुई गीता लाता है और लेखक को सत्य वचन की शपथ लेने के लिए बहुत कहता है।)*

**अर्दली** : आप गीता पर हाथ रखकर कहिए, आप जो कहेंगे सच कहेंगे। सच के सिवा कुछ नहीं कहेंगे।

**लेखक** : मैं गीता पर हाथ रखकर यह वचन देता हूँ कि मैं जो कुछ कहूँगा सच कहूँगा। सच के सिवा कुछ नहीं कहूँगा।

**वकील** : श्रीमान लेखक आप जज साहब को यह बताइए कि आप जब पुस्तकालय पहुँचे, तब आपने क्या देखा?

**लेखक** : जज साहब किसी पुस्तक को लिखना, ठीक वैसा ही होता है, जैसे एक माँ अपने बच्चे को जन्म देती है। मैंने भी उतने ही प्रयास और प्रेम से अपनी पुस्तकों को जन्म दिया था। फिर उन पुस्तकों को पुस्तकालय व पुस्तक विक्रेताओं ने बहुत सम्मान के साथ खरीदा और उसे अपनी अलमारियों में सजाया। जब पुस्तकें पाठकों द्वारा खरीदी और पढ़ी जाती थीं, तब मैं बहुत खुश होता था, क्योंकि मेरी पुस्तकें पाठकों के ज्ञानवर्धन व मनोरंजन के साथ-साथ उनके अक्षर-ज्ञान को भी बढ़ाती थीं। उस दिन जब मैं बहुत दिनों बाद अपनी पुस्तकों का हालचाल पूछने पुस्तकालय पहुँचा, तब वहाँ की सभी पुस्तकें बहुत रुआँसा-सा चेहरा बनाकर उदास खड़ी थीं। उसने अलमारी की दूसरी तरफ़ इशारा किया - मैंने देखा वहाँ मेरी पुस्तक अलमारी में धूल में लथपथ पड़ी थी। मैंने पास जाकर देखा, तो मेरी पुस्तक ने अलमारी में दम तोड़ दिया था। नई तकनीक के आने से सबसे ज्यादा पुस्तकें ही घायल हुई हैं, जज साहब।

जिस दिन से श्रीमान मोबाइल ने अपने नये-नये लुभावने एप से खुद को सजाया है, उस दिन से मेरी पुस्तक बीमार होने लगी थी। लोगों ने धीरे-धीरे उससे मिलना और उसे पढ़ना बंद कर दिया, क्योंकि मोबाइल महाशय ने उसकी एक कॉपी बनाकर अपने पास रख ली थी। इन्होंने अपने साथियों सोशल मीडिया के साथ मिलकर मेरी पुस्तक की हत्या कर दी है। मेरी आपसे विनती है मेरी पुस्तकों के हत्यारे को सज़ा दी जाए।

****

*(लेखक का वकील जज साहब से बात करते हुए।)*

**वकील (लेखक) :** जज साहब, सुना आपने, मेरे क्लाइंट लेखक महोदय ने क्या कहा? मैं आपसे आज्ञा लेकर एक और गवाह को कटघरे में बुलाने की आज्ञा चाहता हूँ।

**जज साहब :** आज्ञा है।

**वकील (लेखक) :** *(जनता में बैठे श्रीमान पेन की ओर इशारा करते हुए।)* श्रीमान पेन आप कटघरे में आएँ और अपनी व्यथा जज साहब को सुनाएँ।

**श्रीमान पेन :** जज साहब मैं जो कहूँगा, सच कहूँगा, सच के सिवा कुछ नहीं कहूँगा। जज साहब यह बिल्कुल सत्य है कि श्रीमान मोबाइल के कारण न सिर्फ़ लेखक महोदय की पुस्तकें आत्महत्या करने पर मजबूर हुई हैं, बल्कि मेरे अन्य साथी जैसे, पेंसिल, चॉक, कलम और कागज़ भी ऐसा करने को मजबूर हो गए हैं। इनके कारण लोग उन्हें भूलने लगे हैं, जिसके कारण बच्चों का अक्षर-ज्ञान कम हो रहा है। उनकी हाथ से लिखने की आदत छूटती जा रही है। आज हर बच्चे के पास स्मार्टफ़ोन है। जो धीरे-धीरे हमारा अस्तित्व खत्म कर रहा है। यह मोबाइल महोदय हमारे लिए तो घातक है ही, साथ ही, बच्चों के मानसिक विकास में भी अवरोध पैदा कर रहे हैं। इन्होंने पूरी दुनिया को बच्चों की हथेली में समेटकर रख दिया है। इनके कारण घर के बुज़ुर्गों को परिवार होते हुए भी अकेलेपन का त्रास झेलना पड़ रहा है। बच्चे या घर के सदस्यों के पास उनके पास बैठकर बात करने का समय ही नहीं है। हमारी दादी, नानी की कहानी सुनाने की परंपरा पर ये कुठाराघात कर रहे हैं। मेरा आपसे अनुरोध है कि इन्हें कड़ी सज़ा दी जाए।

*(जज साहब अपनी कलम से पास रखे कागज़ पर कुछ लिखते हैं और लेखक के वकील को देखते हुए पूछते हैं।)*

**जज साहब :** आप किसी और को बुलाना चाहते हैं?

**वकील (लेखक):** जी जज साहब, अगर आपकी आज्ञा हो, तो मैं लिपि महोदया को बुलाना चाहूँगा।

**जज साहब :** आज्ञा है।

*(वकील जनता में बैठी एक महिला की ओर इशारा करके उसे बुलाता है और कटघरे में खड़ा होने के लिए कहता है।)*

**वकील (लेखक) :** श्रीमती देवनागरी लिपि महोदया कृपया आप जज साहब को बतलाएँ कि आपको मोबाइल महाशय से कितना खतरा है।

*(देवनागरी लिपि महोदया कटघरे में खड़ी हैं।)*

**देवनागरी लिपि महोदया :** नमस्कार जज साहब! मेरा नाम देवनागरी लिपि है। मेरा जन्म कई हज़ार वर्षों पहले हुआ था। मेरी सहायता से ही सबने लिखना-पढ़ना सीखा और आज बड़े-बड़े ग्रंथ, वेद-पुराण जिनसे भारत का नाम विश्व में प्रदीप्त है, वे सब मेरी सहायता से ही लिखे गए हैं। किन्तु मुझे खेद है कि आज मोबाइल महाशय के आने से मेरा अस्तित्व भी खतरे में है। लोग इन पर जो भी संदेश लिखते-पढ़ते हैं, वे सब रोमन लिपि में लिखते हैं, जिससे मुझे बहुत पीड़ा होती है। यह पीड़ा केवल पीड़ा नहीं है, यह चिंता का विषय है। आपके, मेरे, सबके और हमारी भावी पीढ़ी के लिए भी। जैसा कि आपको विदित होगा, किसी भी देश की पहचान उसकी भाषा और संस्कृति से होती है। जब मैं ही न बचूँगी, तब आप क्या पढ़ेंगे, क्या लिखेंगे और भारत की पहचान क्या रह जाएगी। इसलिए जज साहब मेरी

आपसे करबद्ध प्रार्थना है कि आप मोबाइल महाशय को सख्त सज़ा दें।

*(अदालत की घड़ी बारह बजे का घंटा बजाती है। जज साहब घड़ी की तरफ़ देखते हुए आदेश देते हैं।)*

**जज साहब :** बारह बज गए हैं। आगे की कार्रवाई दोपहर के खाने के समय के बाद पुनः एक बजे शुरू की जाएगी।

*(सभी लोग जज साहब के आगे सर झुकाकर अपनी सहमति प्रदान करते हैं। प्रकाश धीरे-धीरे कम होता हुआ, अंधकार में बदलता है। मंच पर पार्श्व में धीमा-धीमा संगीत बजता है।)*

**अंक दो**

*(न्यायालय में जज साहब अपनी कुर्सी पर बैठे हैं। आस-पास दो अर्दली लंबी मूठ वाली लाठियों के साथ खड़े हैं। धीरे-धीरे मंच पर प्रकाश होता है। दोनों वकील अपने-अपने मुवक्किलों के साथ वहाँ उपस्थित हैं। जनता भी उपस्थित है।)*

*(जज साहब आदेश देते हैं)*

**जज साहब :** आगे की कार्यवाही शुरू की जाए।

**वकील (लेखक):** जज साहब, आपकी आज्ञा से मैं एक और दुखी की याचना आपको सुनाना चाहता हूँ।

*(जज साहब वकील को देखते हुए)*

**जज साहब :** आज्ञा है।

*(लेखक का वकील जनता में से एक व्यक्ति की ओर इशारा करते हुए उसे बुलाता है।)*

**वकील (लेखक) :** श्रीमान कागज़ महोदय कृपया कटघरे में आकर अपनी बात कहें।

*(श्रीमान कागज़ जनता में से उठकर हाथों को जोड़कर कटघरे में खड़े हैं।)*

**श्रीमान कागज़ :** जज साहब, मेरा नाम कागज़ है। मेरा जन्म कई सौ वर्षों पहले हुआ था। तब से लेकर आज तक मैं वेद, पुराण, इतिहास, विज्ञान से लेकर किस्से, कहानी और कवियों व प्रेमियों के दिलों के हाल लिखने के लिए उपयोग होता आया हूँ। लेकिन जब से कम्प्यूटर, आई पैड और मोबाइल महाशय आए हैं, मेरा अस्तित्व कम होता जा रहा है। पहले प्रेमी-प्रेमिका मुझे बहुत प्यार से सालों-साल अपने पास संभालकर रखते थे। जब मुझ पर इतिहास लिखा जाता था, तब मैं बहुत गौरवान्वित महसूस करता था। जब मुझे धार्मिक किताबों के रूप में उपयोग किया जाता था, तब मुझे ईश्वर की सेवा करने का सौभाग्य प्राप्त होता था। जब मैं नन्हे बच्चों के कोमल हाथों में जाता था, तब मैं अपनी ममता उन पर लुटाता था। चित्रकार अपने मन के उद्गारों को रंग-बिरंगे चित्रकला कर मुझे सजाते थे। किन्तु अब सब कुछ डिजिटल होता जा रहा है। घरों से लेकर पुस्तकालय, सरकारी कार्यालयों और विद्यालयों तक में मेरी उपस्थिति कम होती जा रही है। मुझे डर है कि यदि सब कुछ इसी तरह चलता रहा, तो एक दिन मेरा अस्तित्व ही खत्म हो जाएगा। मेरी आपसे विनती है, मोबाइल महाशय और इनके साथियों को कड़ी सज़ा दी जाए।

*(लेखक का वकील जज साहब की ओर देखकर)*

**वकील (लेखक) :** जज साहब सुना आपने? मोबाइल महोदय ने किस प्रकार अपने साथियों के साथ मिलकर इन बेचारे मासूमों पर अत्याचार किए हैं।

*(जज साहब कागज़ पर कुछ लिखते हैं और विपक्ष वकील की ओर देखते हुए पूछते हैं।)*

**जज साहब :** आप विपक्ष के वकील हैं। क्या आप अपने क्लाइंट की सफ़ाई में कुछ कहना चाहते हैं?

**जज** : श्रीमान मोबाइल आप अपनी सफ़ाई में कुछ कहना चाहते हैं?

*(विपक्ष का वकील अपनी कुर्सी से उठता है और जज साहब के आगे सर झुकाकर अपनी कार्यवाही शुरू करता है।)*

**विपक्ष वकील :** जज साहब अब तक मेरे क्लाइंट मोबाइल, आई पैड, सोशल मीडिया पर जितने भी आरोप लगाए गए हैं, वे सब बेबुनियाद हैं। यदि आप आज्ञा दें, तो मोबाइल महाशय अपनी सफ़ाई में कुछ कहना चाहते हैं?

**जज साहब :** आज्ञा है।

**विपक्ष वकील :** मोबाइल महाशय क्या आपने सच में श्रीमान लेखक की पुस्तक को आत्महत्या करने पर मजबूर किया था?

**मोबाइल** : जज साहब मैं वकील साहब और उनके क्लाइंट लेखक महोदय की बात से पूरी तरह सहमत नहीं हूँ। जिस दिन से मेरा जन्म हुआ, मैंने हमेशा लोगों की मदद की है। जैसे-जैसे समय बदलता गया, मेरा रंग-रूप और मेरी भूमिका भी बदलती रही। आज मैं नई-नई तकनीक से बहुत सम्पन्न हो गया हूँ। मेरे रंग-रूप और उपयोगिता में बहुत सुधार आए हैं। मैंने किसी को नहीं कहा कि वह पुस्तक से दोस्ती न करे।

**वकील** : लेकिन पुस्तक ने आत्महत्या करने से पहले एक पत्र लिखा था, जिसमें उसने लिखा उसके मरने का कारण मोबाइल है। इससे यह स्पष्ट हो जाता है कि आप ही लेखक की पुस्तक के हत्यारे हैं। आपकी चमक-दमक और आपके नये-नये खेल के एप के कारण बच्चे और बड़े सारा दिन आपको ही अपने साथ रखना पसंद करते हैं, जिस कारण सभी लोग बेचारी पुस्तकों से दूर और आपके ज्यादा पास होते जा रहे हैं।

**जज साहब** : महोदय मोबाइल इस विषय में आप कुछ कहना चाहेंगे?

**मोबाइल** : जज साहब! वकील साहब मेरे ऊपर झूठा इल्ज़ाम लगा रहे हैं। मैंने किसी की हत्या नहीं की। यहाँ जितने लोग बैठे हैं, आप उनसे पूछ सकते हैं। क्या मैंने उनके दूर के रिश्तों को उनके नज़दीक लाने में सहायता नहीं की? एक सैनिक जो घर से कोसों दूर है, क्या मेरे कारण उसके परिवार वाले प्रतिदिन उसकी हालचाल जानकर खुश नहीं होते? यदि किसी बच्चे को कक्षा में यदि कोई प्रश्न समझ नहीं आया, तो क्या वह मेरी सहायता से उसका हल नहीं जानता? रही बात मेरे भाई इंस्टाग्राम और फ़ेसबुक की, तो क्या उनसे लोग आय अर्जित नहीं कर रहे? हमारी वजह से आपको घर बैठे सारी सुख-सुविधा मिनटों में उपलब्ध हो जाती है। यदि कोई व्यक्ति बीमार है, तो वह हमारी सहायता से मिनटों में टैक्सी बुक करके अस्पताल जा सकता है। कोरोना काल में भी सबका सहारा बने थे। हमारी सहायता से ही सारे बच्चे शिक्षा ले पाए थे। जब सब छोड़ जाते हैं, तब हम ही एकाकी जीवन में रंग भरते हैं।

जज साहब! इंसान ने ही हमें बनाया है। इंसान हमारे अच्छे व बुरे प्रभाव को भली-भाँति समझते हैं। इसलिए जब इंसान हमारा उपयोग करते हैं, तब यह उन पर निर्भर करता है कि वे हमारा उपयोग करें या दुरुपयोग करें। अगर आपको लगता है कि आज के युवा हमारे साथ रहना ज्यादा पसंद करते हैं, तो आपको अपनी पुस्तकों को भी इस प्रकार बनाना होगा, जिससे पाठक उनकी तरफ़ आकर्षित हो। पुरानी लकीर के फ़कीर बनकर नहीं, नई तकनीक और नये समय के साथ पुस्तकों की कहानियों

को बदलना होगा। चित्रों को आकर्षक बनाना होगा। बच्चों के लिए हमारे उपयोग का समय तय करना होगा। अभिभावकों को स्वयं भी पुस्तक पढ़ने की आदत डालनी होगी और बच्चों को भी उपहार में पुस्तकें देना शुरू करना होगा। परिवार के सभी सदस्यों को दिन में एक बार एक-दूसरे के साथ समय बिताना होगा। प्रकाशकों को पुस्तकों का सही और प्रचुर मात्रा में प्रचार करना होगा। तभी पुस्तकों और हमारा सही ताल-मेल बनेगा। अब तो आप मानेंगे जज साहब कि मैं निर्दोष हूँ। मैंने जो कुछ भी किया, वह सबकी भलाई के लिए किया। पुस्तक की आत्महत्या के लिए मुझे बहुत खेद है। किन्तु इसके लिए मैं ही दोषी नहीं हूँ। यदि पुस्तकों ने मेरे अस्तित्व को अपना शत्रु मान लिया है, तो इसमें मेरा कोई दोष नहीं है।

*(मोबाइल हाथ जोड़कर कटघरे में खड़ा है। उसका वकील जज साहब को संबोधित करते हुए कहता है।)*

**वकील (मोबाइल) :** जज साहब, आपने मेरे निर्दोष क्लाइंट मोबाइल की बात को सुना है। क्या अब भी आपको लगता है मेरा क्लाइंट मोबाइल और उसके भाई पुस्तकों की आत्महत्या के लिए दोषी हैं? जज साहब ये तो लोगों की भलाई, जानकारी व सहायता के लिए बने थे। लोगों ने इनका गलत उपयोग किया और पुस्तकों को अनदेखा कर उनका तिरस्कार किया। लेकिन इसमें इनका कोई दोष नहीं है। इसलिए मेरी आपसे प्रार्थना है कि मेरे क्लाइंट और उसके साथियों को बाइज़्ज़त बरी कर दिया जाए।

*(जज साहब नाक पर चश्मा ठीक करते हुए, अपना फ़ैसला सुनाते हैं।)*

**जज साहब :** मैंने दोनों पक्षों के सबूतों, गवाहों की बातों पर गौर किया है और मैं इस नतीजे पर पहुँचा हूँ कि सच में मोबाइल और उसके भाई पुस्तकों की आत्महत्या के लिए दोषी नहीं हैं। यह सच है कि हमें यह स्वयं ही तय करना होगा कि हम आज की आधुनिक तकनीकों का कितना और किस प्रकार प्रयोग करें। साथ ही, सभी अभिभावकों को अपने बच्चों को बचपन से ही पुस्तकें पढ़वाने की आदत डालनी होगी। पुस्तकालयों को इस प्रकार से सुसज्जित किया जाना चाहिए कि लोग वहाँ जाएँ और वहाँ बैठकर आराम से पुस्तकें पढ़ें। मोबाइल महाशय और उनके साथियों को यह अदालत बाइज़्ज़त बरी करती है।

आज की अदालत समाप्त।

*(सब लोग जज साहब के फ़ैसले से खुश हैं। मोबाइल और उसके साथी सबसे हाथ जोड़कर माफ़ी माँग रहे हैं। पीछे से संगीत बज रहा है।)*

**समाप्त**

**ritus0902@icloud.com**

# सपनों की उड़ान

**सुभाषिनी एल. कुमार**
**फ़िजी**

**पात्र परिचय**

| | | |
|---|---|---|
| **दीपा** | : | एक घरेलू स्त्री - उम्र 40 वर्ष |
| **अधिराज** | : | दीपा का पति - जो एक किसान है - उम्र 45 वर्ष |
| **रामेश्वरी** | : | दीपा की सास - उम्र 60 वर्ष |
| **सुहानी** | : | दीपा और अधिराज की बेटी - उम्र 18 वर्ष |
| **आयुष** | : | दीपा और अधिराज का बेटा उम्र 18 वर्ष |
| **राघव** | : | पड़ोसी |
| **गोविंद** | : | पड़ोसी |
| **झुमकी** | : | राघव की पत्नी |
| **ढूमकी** | : | गोविंद की पत्नी |

*स्थान- यह एकांकी एक मध्यवर्गीय परिवार पर आधारित है, जो फ़िजी के बा शहर में रहते हैं। शाम का समय है और बैठक में दीपा, उसकी सास रामेश्वरी और पति अधिराज बैठकर चाय पी रहे हैं और आपस में बातचीत हो रही है।*

*(रामेश्वरी 'शांति दूत' समाचार-पत्र पढ़ रही है तभी अधिराज का प्रवेश होता है।)*

**रामेश्वरी** : बेटा, ज़रा देख तो अभी समय क्या हो रहा है?

**अधिराज** : *(घड़ी पर नज़र डालते हुए)* साढ़े तीन बज रहे हैं माँ।

*(दीपा चाय की ट्रे लेकर आती है और सबको चाय देती है)*

**रामेश्वरी** : क्या ! साढ़े तीन बज गए? *(परेशान होकर)* और हमारे बच्चे अभी तक स्कूल से घर क्यों नहीं आए?

**दीपा** : अरे माँ ! कल तो बच्चों की कक्षा 13 की रिज़ल्ट आई है, वही देखने बच्चे स्कूल गए हैं। कल कुछ काम में व्यस्त थे, इसलिए जा नहीं पाए। मुझे बताकर गए थे कि देर हो सकती है।

**रामेश्वरी** : देर कैसे हो जाएगी? बस रिज़ल्ट देखकर ही तो आना है।

**दीपा** : माँ, कई बच्चे दूर-दूर से रिज़ल्ट देखने आते हैं और इसलिए देर हो गई होगी। *(ट्रे लेकर रसोई में जाते हुए)* आते ही होंगे माँ आप चिंता न करें।

**दीपा** : ये आजकल के बच्चे भी ना।

**अधिराज** : माँ, आप खामखा परेशान हो रही है !

*(दीपा सब्ज़ी लेकर बाहर आती है।)*

**रामेश्वरी** : *(रास्ते की ओर इशारा करते हुए)* लो, आ गए बच्चे। मैं इनके लिए कुछ खाने को ले आती हूँ। *(रसोई में जाती है)* सुबह से भूखे-प्यासे हैं, मेरे बच्चे।

**अधिराज** : *(आयुष को गले से लगाते हुए)* अरे मेरा राजा बेटा, कैसा है तू?

**आयुष** : मैं ठीक हूँ पापा।

**अधिराज** : चल बेटे अब जल्दी से बता। कितने नंबर आए तेरे?

**आयुष** : 290 आउट ऑफ़ 400 पापा।

**अधिराज** : *(प्यार से कहता है।)* शाबाश मेरे बच्चे, यह हुई न बात, चल बता तुझे क्या चाहिए?

*(सुहानी प्रवेश करती है।)*

**आयुष** : पापा...*(कुछ देर सोचता है।)* पापा मुझे मोबाइल फ़ोन चाहिए!

**अधिराज** : मोबाइल फ़ोन चाहिए तुझे? अच्छा मैं कोशिश करूँगा।

**दीपा** : आखिर तुम्हारी मेहनत रंग लाई आयुष। अरे सुहानी बिटिया इधर आ, यहाँ बैठ जा।

*(सुहानी के कंधे पर हाथ रखती है।)* चल बता तेरे कितने नम्बर आए हैं?

*(आयुष पास रखी किताब को उठाकर पढ़ने लगता है और अधिराज बैठकर चाय पीता है।)*

**सुहानी** : मम्मा मेरे....

**अधिराज** : *(बीच में टोकते हुए)* अरे हाँ सुहानी, अब तू भी बता कि तू कितने नंबर लाई है? पास हुई भी है या नहीं?

**दीपा** : ये कैसी बातें कर रहे हैं आप? उसे बोलने का मौका तो दीजिए।

**अधिराज** : अरे मैं तो बस..।।

**दीपा** : मेरी बेटी को कम मत आँकना। यह बात हमेशा याद रखना कि बेटी किसी से कम नहीं होती। आज के समय में तो बेटियाँ ही ज्यादा होनहार होती हैं।

**अधिराज** : अरे भाग्यवान, तुम्हारी मंद बुद्धि में यह बात किसने भर दी। तुम तो चुप ही रहा करो।

*(रामेश्वरी हाथ में जूस और बिस्किट लेकर प्रवेश करती है।)*

**रामेश्वरी** : भला क्यों चुप रहे वह? दीपा सही तो कह रही है। *(अधिराज के पास बैठती है।)* मैंने तुमसे कितनी बार कहा है कि बच्चों में फ़र्क करना बंद करो।

**अधिराज** : माँ आप समझ नहीं रही, मैं तो बस...

**रामेश्वरी** : लो बच्चो जूस पी लो। शाबाश आयुष बहुत बढ़िया। *(सुहानी को पास बुलाती है।)* इधर आ, मेरी गुड़िया इतनी उदास क्यों है ? चल बता कितने नंबर मिले मेरी गुड़िया रानी को?

**सुहानी** : आजी मैं भी पास हो गई।

**रामेश्वरी** : कितने नम्बर लाई बेटी?

**सुहानी** : 390 आउट ऑफ़ 400 आजी।

**रामेश्वरी** : *(झूम उठती है।)* अरे वाह ! मेरी बच्ची तूने तो दिल ही खुश कर दिया।

**दीपा** : सच में, यह तो बहुत खुशी की बात है न जी? सुहानी को कितने अच्छे अंक मिले हैं।

**अधिराज** : हूँ। अच्छा किया है सुहानी।

**रामेश्वरी** : क्या हूँ? *(सुहाना का हाथ पकड़ते हुए)* बोल ! क्या चाहिए मेरी गुड़िया रानी को?

**सुहानी** : आजी.... आजी मुझे तो....

**रामेश्वरी** : अरे तू इतने अच्छे नम्बर लाई है, हमारा कुछ तो देना बनता है न?

**सुहानी** : मैं क्या बताऊँ? कुछ भी... मेरे लिए तो आप लोगों का प्यार ही काफ़ी है।

**रामेश्वरी** : *(सुहानी के सिर पर हाथ फेरती है।)* मेरी प्यारी गुड़िया।

**दीपा** : भगवान की कृपा से मेरे दोनों बच्चे अच्छे नंबर से पास हो गए। इस खुशी के मौके पर मैं सबके लिए खीर बनाती हूँ। है न माँ ?

**रामेश्वरी** : ठीक सोचा तुमने बहू, बहुत अच्छा, मेरा भी कुछ मीठा खाने का मन था। खीर तो बच्चों की मनपसंद भी है। जा जल्दी से बना ला।

**दीपा** : ठीक है माँ।

*(दीपा खीर बनाने चली जाती है।)*

**रामेश्वरी** : चलो बच्चो! तुम दोनों भी नहा-धोकर फ़्रेश हो जाओ।

**दोनों बच्चे** : जी आजी।

*(बच्चों का प्रस्थान।)*

*(रामेश्वरी उठती है।)*

**रामेश्वरी** : कितनी खुशी की बात है न? इन बच्चों ने हमारा नाम रोशन किया है।अब आगे का क्या सोचा है तुमने अधिराज?

*(अधिराज उठता है।)*

**अधिराज** : इसमें सोचना क्या माँ? सुहानी अपनी माँ के साथ घर का काम-काज सीखेगी और आयुष तो कब से एफ़-एन-यू से इंजीनियरिंग का कोर्स करने की सोच रहा था।

**रामेश्वरी** : यह तुम क्या बोल रहे हो बेटे?

**अधिराज** : सही तो कह रहा हूँ माँ। आप को तो पता ही है कि पिछले साल गन्ने की फ़सल में आग लग गई थी और इस साल उतनी फ़सल नहीं हुई

है। मेरे पास अभी उतने पैसे नहीं है कि मैं दोनों बच्चों को आगे पढ़ा सकूँ।

**रामेश्वरी** : तुम कहना क्या चाहते हो बेटे? सुहानी घर पर रहे और सिर्फ़ आयुष आगे पढ़े।

**अधिराज** : हाँ माँ ! यही तो मैं आपको समझाना चाहता हूँ। दोनों बच्चों में से किसी एक को पढ़ाई छोड़नी होगी और मेरे ख्याल से सुहानी को अपनी पढ़ाई यही से छोड़ देनी चाहिए। आयुष को पढ़ाने में हमारा फ़ायदा होगा, क्योंकि वह आगे चलकर हमारी देखभाल करेगा और हमारे साथ रहेगा। मगर बेटी तो पराया धन होती है।

**रामेश्वरी** : नहीं बेटे ! हमारी बेटी बहुत होनहार और समझदार है। सुहानी पढ़ाई में आयुष से भी तेज़ है। यदि मेरे पास पैसे होते तो मैं बच्चों की पढ़ाई के लिए ज़रूर दे देती। मेरी तो सारी जमा पूंजी मेरी आँखों के ऑपरेशन में खर्च हो गई।

*(दीपा प्रवेश करती है।)*

**दीपा** : माँ.... क्या हुआ? आप दोनों इतने परेशान लग रहे हो ? क्या बात है?

**अधिराज** : कुछ नहीं, बस बच्चों की पढ़ाई के खर्चे को लेकर थोड़ी....

**दीपा** : आप परेशान मत हो। हम इस मुसीबत का कोई-न-कोई हल ढूँढ ही लेंगे। मेरे पास कुछ गहने हैं, हम उसे बेचकर दोनों बच्चों की पढ़ाई पूरी करवा सकते हैं।

**अधिराज** : पागल हो गई हो क्या? गहने बेचने की बात कर रही हो। हमारे उतने भी बुरे दिन नहीं आए।

**दीपा** : आप भड़क क्यों रहे हो?

**अधिराज** : तो और क्या करूँ? यदि गहने बेच दोगी, तो बच्चों की शादी होने पर बहू-बेटी को क्या दोगी? तुम्हारे गहने ही तो हमारे पास ले-देकर बचा है।

**दीपा** : बच्चों की शादी में अभी देर है। तब की तब देखेंगे।

**अधिराज** : नहीं, तुम अपने गहने नहीं बेचोगी। जब सुहानी की शादी होगी, तब उसका पति उसको पढ़ा देगा या फिर अगर इस साल फ़सल अच्छी हुई, तो अगले साल हम उसका दाखिल एफ़-एन-यू में करवा देंगे।

**दीपा** : अच्छा मैं रसोई में जाती हूँ, वरना खीर जल जाएगी।

*(दीपा का प्रस्थान)*

**रामेश्वरी** : अधिराज, हमारे बच्चे शुरू से एक साथ रहे हैं, एक साथ पैदा हुए, पले-बढ़े, तुम उन्हें अलग करने की बात कर रहे हो। हमारी गुड़िया इतने अच्छे अंक पाने के बाद घर पर बैठेगी? नहीं! नहीं!..। यह नहीं होना चाहिए।

*(सुहानी का प्रवेश)*

**अधिराज** : तो आप क्या चाहती है माँ? सुहानी की पढ़ाई पूरी करवाने के लिए मैं आयुष की पढ़ाई छुड़वा दूँ?... आप को तो पता है न माँ, दोनों बच्चों को एक साथ पढ़ाने में कितना खर्चा होगा और अभी मेरे पास उतने पैसे नहीं हैं। मैं सिर्फ़ किसी एक की पढ़ाई का खर्च उठा सकता हूँ।

**रामेश्वरी** : *(सुहानी को देख लेती है।)* अच्छा आज खुशी का दिन है, ये सब बातें तो बाद में भी हो सकती हैं।

**अधिराज** : अच्छा माँ, मैं बाहर मुर्गियों को दाना देकर आता हूँ।

*(अधिराज का प्रस्थान)*

**दीपा** : माँ, ज़रा यहाँ आना।

**रामेश्वरी** : आई बहू।

*(सुहानी का प्रवेश, पिता की बातों से परेशान)*

"पापा मेरी वजह से बहुत परेशान हैं, लेकिन इसमें मेरा क्या कसूर है? समझ में नहीं आ रहा कि मैं क्या करूँ। मैं आगे पढ़ना चाहती

हूँ, अपना सपना पूरा करना चाहती हूँ। डॉक्टर बनना चाहती हूँ। लेकिन यदि मैं पापा से आगे पढ़ने की ज़िद करूँगी, तो भईया की पढ़ाई में रुकावटें आ सकती हैं... मैं इतनी स्वार्थी नहीं हो सकती। पापा अपनी जगह पर सही हैं, शायद मुझे ही अपनी पढ़ाई यहीं पर रोक देनी चाहिए, आगे यदि मौका मिले, तो मैं फिर अपनी पढ़ाई दोबारा से शुरू कर लूँगी और यदि दूसरा मौका नहीं मिला तो? मैं क्या करूँ?"

*(अधिराज का प्रवेश)*

**सुहानी** : पापा मुझे आप से ज़रूरी बात करनी है।

**अधिराज** : बोलो सुहानी !

*(दीपा और रामेश्वरी का प्रवेश)*

**सुहानी** : *(पिता का हाथ पकड़ती है।)* पापा मुझे पता है कि आप हमारी पढ़ाई को लेकर बहुत परेशान हैं। आप चिंता न करें। इस साल आप भईया का दाखिला एफ़-एन-यू में करवा दीजिए। मेरा क्या है, मैं तो बाद में भी पढ़ सकती हूँ। मेरे लिए और परेशानी उठाने की ज़रूरत नहीं है।

**रामेश्वरी** : बेटी ! यह तू क्या कह रही है? तू डॉक्टर बनना चाहती है न ! तुझे आगे पढ़ाना हमारा कर्तव्य है। तुझे अपना सपना पूरा करना ही होगा।

*(दीपा खीर टेबल पर रखती है।)*

**सुहानी** : आजी, आप चिंता न करें। मैंने अब तक जितनी पढ़ाई की है, वह मेरे लिए काफ़ी है। सपने तो मैं बाद में भी पूरे कर सकती हूँ। इस साल भईया को पढ़ने दो।

**दीपा** : लेकिन गुड़िया..

**सुहानी** : माँ...आजी, आप लोग परेशान मत होइए, यदि मुझे आगे कोई मौका मिला तो मैं अपनी पढ़ाई पूरी कर लूँगी, पक्का।

**रामेश्वरी** : *(सुहानी के सिर पर हाथ फेरती है।)* मेरी समझदार बेटी, अक्सर लड़कियों को ही अपने सपनों को कुर्बान करना पड़ता है। इसके लिए हमें माफ़ कर देना।

**सुहानी** : कोई बात नहीं आजी। आपने मेरा साथ दिया, यही मेरे लिए काफ़ी है।

**अधिराज** : *(सुहानी को गले लगाता है।)* मेरी बेटी।

*(आयुष का प्रवेश)*

**आयुष** : क्या हुआ?

**दीपा** : कुछ नहीं, तूने इतनी देर क्यों लगा दी नहाने में।

**आयुष** : सॉरी माँ। कितनी अच्छी खुशबू आ रही है खीर की, मुझसे तो रुका ही नहीं जा रहा।

**अधिराज** : तो अब यदि फ़िल्म खत्म हो गई हो, तो खीर खाई जाए।

**दीपा** : जी, बस वही परोसने जा रही हूँ।

**अधिराज** : जा सुहानी, माँ की मदद कर दे।

**दीपा** : आओ सुहानी।

*(खीर खाकर सभी अपने-अपने काम करने में जुट जाते हैं और ऐसे ही रात हो जाती है। (दीपा सब्ज़ी काट रही है और रामेश्वरी बैठकर ग्रंथ पढ़ रही है।)*

**दीपा** : माँ, बहुत रात हो चुकी है, जाकर सो जाइए।

**रामेश्वरी** : बस एक पन्ना बाकी है बहू।

**दीपा** : अच्छा ठीक है माँ।

**अधिराज** : मेरे सिर में बहुत दर्द है, दवाई कहाँ रखी है?

**दीपक** : कमरे में टेबल पर रखी है।

**अधिराज** : अच्छा

*(अधिराज कमरे में दवाई खाने जाता है।)*

**आयुष** : मुझे बहुत नींद आ रही है, मैं सोने जा रहा हूँ, गुड नाइट।

**दीपा** : गुड नाइट बेटे।

*(आयुष का प्रस्थान, बाहर से दो आदमियों की अवाज़ आती है।)*

**राघव** : अरे अधिराज! भाई कहाँ हो?

**अधिराज** : *(घर से बाहर निकलता है।)* मैं यहाँ हूँ। कहिये क्या बात है?

**गोविंद** : राम राम अधिराज भाई!

**अधिराज** : राम राम। अन्दर आओ, कहो कैसे आना हुआ?

**गोविंद** : अरे बात ही कुछ ऐसी है, यहाँ आए बिना रहा ही नहीं गया।

*(पीछे से दो औरतों की अवाज़ आती है।)*

**झुमकी** : अजी सुनते हो!

**ढूमकी** : अजी कहाँ हो?

**राघव** : हम यहाँ हैं। तुम कहाँ हो?

**ढूमकी** : *(गोविंद पर बरस पड़ती है।)* हमें छोड़कर क्यों चले आए? कोई ऐसा करता है अपनी पत्नी के साथ?

**गोविंद** : मुझे क्या पता था कि मेरे पीछे-पीछे तुम भी टपक पड़ोगी।

**ढूमकी** : टपक पड़ी? क्या मतलब है तुम्हारा? क्या तुम नहीं चाहते थे कि मैं आऊँ?

**राघव** : अरे भाभी जी, गुस्सा क्यों करती हो?

**झुमकी** : *(राघव से कहती है।)* तुम तो चुप ही रहो।

**राघव** : अरे, अब तुम क्यों भड़क रही हो?

**झुमकी** : समय का कुछ पता है कि नहीं? दस बज गए हैं। लेकिन आप लोगों का घूमना फिरना तो बंद ही नहीं हो रहा। पैरों में तो टायर लगे हैं, जिधर पाए निकल लिए।

**ढूमकी** : वही तो। *(अधिराज की तरफ़ मुड़ती है।)* अब आप ही बताइए भाई साहब, यूँ ऐसे औरतों को घर पर छोड़कर पड़ोसियों के घर घूमना क्या सही है?

**गोविंद** : तो और क्या करें? घर पर क्या शान्ति मिलती है कभी? रोज़ की किच-किच से परेशान हो गए हैं।

**ढूमकी** : आहाहाहाहा! उल्टा चोर कोतवाल को डाँटे। राजाओं को अब शान्ति चाहिए। यहाँ खुद ही घर की शान्ति भंग कर रखी है।

**राघव** : क्या मतलब?

**झुमकी** : सही तो कह रही है ढूमकी। शाम से हम घर पर बैठे इंतज़ार कर रहे हैं कि कब हमारे पति देव आएँगे।

**राघव** : तो यहाँ का पता कैसे मिल गया?

**झुमकी** : क्या मतलब? अपनी इन्हीं दो आँखों से देखा था हमने, आप दोनों सज्जनों को यहाँ आते हुए।

**ढूमकी** : *(गोविंद से कहती है।)* कृपया बताने का कष्ट करेंगे कि यहाँ क्यों आए हैं?

**गोविंद** : कुछ ज़रूरी काम से आए थे और तुम्हारे चक्कर में वह भी भूल गए।

**राघव** : हमारी गुड़िया रानी किधर है?

**अधिराज** : क्यों? कुछ हुआ है क्या?

**राघव** : तुम दोनों घर जाओ। हम थोड़ी देर में आते हैं।

**झुमकी** : यह अखबार लेकर क्यों घूम रहे हो राघव? लाओ मुझे दो।

**राघव** : मैंने कहा न, घर जाओ। मैं थोड़ी देर में आ रहा हूँ।

**झुमकी** : घर भेजने की जल्दी क्यों है?

**गोविंद** : भाभी जी, हमें कुछ काम है। हम लोग थोड़ी देर में आ जाएँगे।

**ढूमकी** : हमें भी जानना है, क्या ज़रूरी काम है। अगर हम जाएँगे, तो अपने पतियों को साथ लेकर जाएँगे।

**गोविंद** : ठीक है भाग्यवान, यहीं पर जमी रहो।

**राघव** : अधिराज भाई, ज़रा गुड़िया को बाहर बुलाइए।

**अधिराज** : लेकिन बताइए तो सही क्या बात है?

**राघव** : अरे अधिराज भाई, आप तो ऐसे बन रहे हो, जैसे आप को कुछ पता ही नहीं।

**अधिराज** : क्या नहीं पता?

**राघव** : लो जी, नेकी और पूछ-पूछ।

**गोविंद** : ज़रा गुड़िया को बुलाइए तो।

**दीपा** : सुहानी... सुहानी!

**सुहानी** : जी माँ! आई।

**दीपा** : बेटी ज़रा बाहर आना।

**सुहानी** : *(बाहर आती है।)* कहिए माँ क्या बात है?

**गोविंद** : बेटी यह पेपर पढ़। देख इसमें क्या लिखा है।

**अधिराज** : क्या लिखा है?

**राघव** : अरे भाई, पहले बिटिया को पढ़कर सुनाने तो दीजिए। पता चल जाएगा कि क्या लिखा है।

**अधिराज** : पढ़ क्या लिखा है सुहानी।

**सुहानी** : *(पढ़ना शुरू करती है।)* "नुकूलो बा में रहने वाले अधिराज शर्मा और दीपा शर्मा की बेटी सुहानी शर्मा ने अपनी कक्षा 13 के फ़ाइनल एग्ज़ाम में नेशनल टॉप किया है। नुकुलोआ कॉलिज की छात्रा सुहानी शर्मा को फ़िजी सरकार की ओर से इनाम स्वरूप स्कॉलरशिप दी गई है, साथ ही कॉलिज की तरफ़ से एक लैपटॉप"।

**रामेश्वरी** : सच में? अरे वाह ! मेरी बेटी, तूने तो हमरा सिर गर्व से ऊँचा कर दिया।

**ढूमकी** : बधाई हो सुहानी बेटी, लो जी मैं ना कहती थी, बेटी तो घर की शान होती है।

**गोविंद** : अभी थोड़ी देर पहले तो तुम कुछ और ही कह रही थी।

**ढूमकी** : आप भी न।

**दीपा** : *(सुहानी को गले लगा लेती है।)* मैं तेरे लिए बहुत खुश हूँ। यह देख अखबार में तेरी फ़ोटो भी है।

**सुहानी** : हाँ माँ, मेरे पैर तो ज़मीन पर ही नहीं टिक रहे।

**गोविंद** : मुबारक हो अधिराज भाई। किस्मत वाले हो, जो इतनी होनहार बेटी मिली है।

**राघव** : ये सब अधिराज भाई की मेहनत का ही तो फल है, इतनी मेहनत से बच्चों को पढ़ाया-लिखाया, इस काबिल बनाया कि आज एक बेटी अपने बाप का नाम रोशन कर रही है।

**गोविंद** : अरे ! गाँव वाले यही बोल रहे हैं कि काश सुहानी उनकी बेटी होती। सभी आपके नाम की माला जप रहे हैं, अधिराज भाई।

**अधिराज** : मेरे नाम की माला क्यों जपना? जबकि टॉपर तो हमारी गुड़िया है।

**गोविंद** : अरे दीपक भाई, कोई यह नहीं कह रहा कि सुहानी ने नेशनल टॉप किया है। अरे सुहानी, तब क्या बनने का सोचा है तुमने?

**सुहानी** : मैं डॉक्टर बनना चाहती हूँ, काका।

**गोविंद** : अरे वाह ! यह हुई ना बात।

**राघव** : अब हमारे गाँव को बहुत जल्द एक अच्छी डॉक्टर मिलने वाली है।

**सुहानी** : मैं चाहती तो यही हूँ, काका जी।

**गोविंद** : बहुत खूब सोचा है। अब हम चलते हैं, दीपक भाई।

**दीपा** : आप सब चाय पीकर तो जाइए, मैं अभी बना देती हूँ। ऐसे कैसे चले जाएँगे।

**राघव** : नहीं भाभी जी, हम चाय पीकर आए थे। अब हम चलते हैं।

**झुमकी** : लो जी ! क्या बात है ? घर पर बीवी भूखी मर रही है और यहाँ जनाब चाय पानी पीकर बैठे हैं।

**राघव** : हमेशा झगड़ा क्यों करती रहती हो ?

**झुमकी** : मैं झगड़ा कर रही हूँ? मैं!

**राघव** : नहीं, मैं कर रहा हूँ। तुम कुछ नहीं कर रही हो।

**झुमकी** : बहुत बधाई हो सुहानी बिटिया! ख्याल रखना अपना।

**राघव** : चलो, अब हम सब अपने-अपने घर चलते हैं।

**गोविंद** : हाँ ! हाँ !, चलो।

**अधिराज** : जी, चलिए मैं आपको बाहर तक छोड़ देता हूँ।

**राघव** : नहीं नहीं भाई, हम चले जाएँगे।

*(चारों पड़ोसियों के जाने के बाद)*

**रामेश्वरी** : *(सुहानी को गले लगा लेती है।)* मेरी गुड़िया, तूने आज हमारा सिर गर्व से ऊँचा कर दिया। मेरी आखों का तारा है तू, समझी ! अब तू आगे की पढ़ाई भी कर सकती है न?

**सुहानी** : *(पिता की ओर देखती है)* यदि पापा इजाज़त दे तो।

**अधिराज** : *(सुहानी के सिर पर हाथ फेरता है।)* हाँ गुड़िया,

तूने तो अपनी तकदीर खुद बना ली है, अब हम रोकने वाले कौन होते हैं? मैं तो बस यही चाहता हूँ कि तुम और आयुष जीवन में खूब तरक्की करो।

**सुहानी** : धन्यवाद पापा।

**दीपा** : *(स्नेह से)* जा सुहानी, बहुत रात हो चुकी है। जाकर अपने कमरे में सो जाओ। *(रामेश्वरी और अधिराज से कहती है।)* आप दोनों भी सो जाइए। शुभरात्रि।

**सभी एक साथ** : शुभरात्रि।

**(पर्दा गिरता है।)**

**Subashni.Kumar@fnu.ac.fj**

# जीवन के अंतिम पड़ाव पर पहुँचने के बाद पलायन नहीं, सहजता श्रेयस्कर है

**सीताराम गुप्ता**
**दिल्ली, भारत**

रिटायरमेंट अथवा बढ़ती आयु के साथ कुछ लोग हर प्रकार के झंझट व तनाव से मुक्त हो जाते हैं, तो कुछ, झंझट और तनाव से और भी अधिक घिर जाते हैं। यह उनकी सोच और जीवन जीने की शैली के चुनाव पर निर्भर करता है। जीवन के उत्तरकाल में व्यक्ति की सोच अथवा मनोदशा में परिवर्तन होना अस्वाभाविक नहीं। पिछले दिनों मेरे एक मित्र के जन्मदिन की पचहत्तरवीं वर्षगाँठ थी। पचहत्तरवीं वर्षगाँठ की पूर्वसंध्या पर उन्होंने एक संदेश भेजा – 'मैं कल से वाट्सएप का प्रयोग नहीं करूँगा। अतः कृपया वाट्सएप पर मुझे कोई संदेश न भेजें। बहुत ज़रूरी हो, तो आप मुझे फ़ोन कर सकते हैं।' इससे एक सप्ताह पूर्व भी उनका एक संदेश आया था कि एक सप्ताह बाद वे पचहत्तर वर्ष के हो जाएँगे और सभी लोग उनके लिए प्रार्थना करें कि वे अपना शेष जीवन सांसारिक मोह-माया से मुक्त होकर व्यतीत कर सकें। उन्होंने सादगी से अपने मनोभाव अथवा उद्गार प्रकट कर दिए, लेकिन वास्तविकता यह है कि आयु के इस पड़ाव पर पहुँचने के बाद हर व्यक्ति की कुछ ऐसी ही मनोदशा हो जाती है, क्योंकि शेष जीवन में वह बहुत कुछ और बहुत अच्छा करना चाहता है।

यदि जीवन के अंतिम पड़ाव पर पहुँचने के बाद हम ऐसा सोचते हैं, तो यह स्वाभाविक है। इस अवस्था में पहुँचकर व्यक्ति अपनी सारी गलतियों को सुधारना और अपनी सारी कमियों को दूर करना भी चाहता है। हमारा अनुकूलन अथवा कंडीशनिंग ही कुछ ऐसी होती है। समाज भी अवस्थानुसार हर व्यक्ति से विशेष अपेक्षाएँ रखता है। रिटायरमेंट के बाद व्यक्ति से अपेक्षा की जाती है कि वह धर्म-अध्यात्म में रुचि ले। धार्मिक साहित्य पढ़े। तभी रिटायरमेंट पर उसे प्रायः धार्मिक साहित्य भेंट किया जाता है। वास्तव में, जीवन की एक अवस्था को पार करना रिटायर होना नहीं है, अपितु अगली अवस्था के लिए तैयार होना है। हमारे यहाँ जीवन को चार अवस्थाओं में विभक्त किया गया है - ब्रह्मचर्य, गृहस्थ, वानप्रस्थ व संन्यास। यदि हम इस दृष्टि से देखें, तो पचहत्तर वर्ष की आयु के उपरांत संन्यास की अवस्था प्रारंभ हो जाती है। पारंपरिक वैदिक रीति से जीवन व्यतीत करने की आकांक्षा उत्तम है, लेकिन यह विचार करना भी अनिवार्य है कि आज की परिस्थितियों में यह कहाँ तक युक्तियुक्त अथवा संभव है?

आज परिस्थितियाँ बहुत बदल चुकी हैं। आज की परिस्थितियों में हज़ारों वर्ष पूर्व की जीवनचर्या का पालन करना कठिन ही नहीं असंभव है। पुरातन परंपरा के अनुसार पचहत्तर वर्ष के बाद की अवस्था संन्यास की है, जिसमें घर-बार छोड़कर जंगल में जाकर जीवन व्यतीत करना होता है। क्या आज यह संभव है? यदि हम संन्यास ले लेंगे, तो कहाँ जाएँगे? जंगलों में, जहाँ वन्य जीवों के लिए ही स्थान कम पड़ रहा है, वहाँ मनुष्य द्वारा जंगलों में जाकर अपना शेष जीवन व्यतीत करने की सोचना भी उचित प्रतीत नहीं होता। जो लोग एक निश्चित उद्देश्य के लिए कम आयु में ही संन्यास लेकर संन्यस्थ जीवन व्यतीत कर रहे हैं, उनमें से शायद ही कोई सही अर्थों में संन्यासी है। वैसे भी संन्यस्थ जीवन का पालन तभी उचित लगता है, जब उससे पूर्व का जीवन भी उसी पद्धति से अवस्थानुकूल व्यतीत किया गया हो।

यदि जीवन के अंतिम क्षणों तक सहजता अथवा सामान्य रीति से जीवन व्यतीत हो जाए, तो उसमें भी कोई दोष दिखलाई नहीं पड़ता। वास्तव में, सहज अथवा सामान्य बने रहना ही लोगों के लिए कठिन होता है, क्योंकि वे निर्लिप्त, विरक्त अथवा मोह-माया से मुक्त नहीं होना चाहते, अपितु घर-परिवार और समाज को ऐसा कुछ दिखाना चाहते हैं, जिससे वे समाज की अपेक्षाएँ पूरी कर सकें अथवा समाज में उनकी एक विशेष छवि बन जाए। न शरीर की आवश्यकताओं की उपेक्षा संभव है, न मन की इच्छाओं की। उपेक्षा अथवा दमन से और अधिक विकार अथवा मनोग्रंथियाँ विकसित होती हैं। अच्छा तो यही है कि जीवन को जितना

नियंत्रित अथवा संतुलित कर सकते हैं, करें, शेष सामान्य रीति से घटित होने दें। जहाँ तक सुविधाओं और तकनीक के प्रयोग का प्रश्न है, इनका विवेकपूर्ण प्रयोग करने में कोई दोष नहीं। जैसे-जैसे आयु बढ़ती है, वैसे-वैसे इन सब चीज़ों से हमें आसानी ही होती है। आज के व्यस्त जीवन में संचार के आधुनिक तथा विकसित साधनों का कितना महत्त्व है, यह बतलाने की आवश्यकता नहीं। आयु बढ़ने के साथ तो कई सुविधाएँ अत्यावश्यक की श्रेणी में सम्मिलित हो जाती हैं।

यदि वाट्सएप की ही बात करें, तो यह एक अत्यंत उपयोगी माध्यम है। यदि हम इसके द्वारा निरर्थक मेल भेजने में लगे रहते हैं, तो यह हमारा दोष है, न कि वाट्सएप का। यदि हम आयु के किसी पड़ाव पर निर्णय लेते हैं कि अब हम वाट्सएप अथवा अन्य संचार सुविधाओं का उपयोग नहीं करेंगे, तो इसका एक अर्थ यह भी निकलता है कि अब तक हम इनका अत्यधिक उपयोग अथवा दुरुपयोग कर रहे थे। वास्तव में, इन सब बातों पर समय रहते विचार करना अनिवार्य होता है। हाँ, वाट्सएप, फ़ेसबुक अथवा अन्य सुविधाएँ लत बन गई हैं, तो उन्हें छोड़ने का निर्णय उत्तम होगा, इसमें संदेह नहीं। हमारे लिए उचित तो यही होगा कि हम न केवल गलत चीज़ों को छोड़ दें, अपितु अन्य उपयोगी आदतों अथवा आवश्यक चीज़ों को अपनाने में भी विलंब न करें। घोर व्यावसायिक वृत्ति को त्याग दें, लेकिन हमारी रचनात्मकता में किसी भी कीमत पर कमी नहीं आनी चाहिए। इससे स्वयं का विकास भी होगा और समय भी अच्छा व्यतीत होगा।

प्रश्न उठता है कि यदि हम अकेले अथवा जीवनसाथी के साथ परिवार से अलग रहते हैं तथा घर के काम में सहायता के लिए नौकर अथवा नौकरानी रखते हैं, तो क्या उन्हें भी हटा देंगे? क्या सुविधाओं से युक्त घर छोड़कर किसी साधारण कुटिया में निवास करने लगेंगे? यदि किसी व्याधि के कारण किसी यंत्र का प्रयोग कर रहे हैं, तो क्या उसे हटा देंगे? क्या चश्मे अथवा श्रवणयंत्र का प्रयोग करना बंद कर देंगे? यदि हम पेंशनर हैं, तो क्या पेंशन लेना भी बंद कर देंगे? शायद ये सब संभव न हो, क्योंकि आज के युग में सुविधाओं और पैसों के बिना किसी का जीवन नहीं चल सकता। साधु-संन्यासियों का भी नहीं। फिर केवल कुछ बातों के विषय में भावनात्मक निर्णय क्यों? एक महत्त्वपूर्ण प्रश्न और भी है और वह यह है कि यदि हम अपने जीवनसाथी के साथ रहते हैं, तो क्या उसको भी ऐसा करने की छूट देते हैं? प्रायः ऐसा होता है कि हम अपने जीवनसाथी अथवा परिवार को तो यथावत सब करने की छूट दे देते हैं, लेकिन स्वयं महात्मा बनने का नाटक करते रहते हैं। ऐसी नाटकीयता का कोई लाभ नहीं। यथार्थ से पलायन भी हमारी समस्याओं को बढ़ा देता है। वास्तविकता को स्वीकार कर लेने से बहुत-सी समस्याएँ उत्पन्न ही नहीं होतीं।

वास्तव में, जब तक जीवन है, इस संसार में मोह-माया की पूर्णतः उपेक्षा संभव ही नहीं। करनी भी नहीं चाहिए, क्योंकि मोह के कारण ही हम आपस में जुड़े हुए हैं। जो मोह-माया के त्याग का उपदेश देते हैं, उनकी बात पर भी विचार करना चाहिए, क्योंकि वे स्वयं इससे मुक्त नहीं होते। फिर हम क्यों हों? स्पष्ट है कि सेवानिवृत्ति अथवा साठ-सत्तर अथवा पचहत्तर-अस्सी वर्ष की आयु के बाद भी हमें इसी दुनिया में रहना है, तो फिर इस आकर्षक संसार से विरक्ति अथवा पलायन क्यों? ऐसा भी संभव है कि अधिक मोह-माया की मुक्ति के नाटक के कारण हम कहीं के भी न रहें। यदि हम सब सुविधाओं का त्याग करके अलग से तथाकथित सादगी से रहने का निर्णय ले लेते हैं, तो संभव है कि हम किसी बड़ी परेशानी में पड़ जाएँ। भावुकता की बजाय हमें हर निर्णय सोच-समझकर ही लेना चाहिए और व्यावहारिक निर्णय ही लेना चाहिए। हमारे यहाँ त्यागपूर्ण जीवन की बात कही गई है। हमारे पास जो पैसा अथवा सुख-सुविधाएँ हैं, यदि हम उसका त्याग करें अर्थात् उसे अपनी सुविधाओं पर व्यय करें, तो जीवन अपेक्षाकृत सरल हो जाएगा, इसमें संदेह नहीं।

कहा गया है कि 'मनी मेक्स दि मेयर गो' यानी दाम बनाए काम। कई लोग परेशान होते रहेंगे, लेकिन पैसा पास होते हुए भी खर्च नहीं करेंगे। बड़ी आयु में अपनी आर्थिक स्थिति के अनुसार स्वयं पर भी पर्याप्त खर्च करना व अच्छी तरह से रहना और अपने परिचितों और अन्य आगंतुकों पर भी पर्याप्त खर्च करना आवश्यक है। इस आयु में कुछ लोग शिकायत करते हैं कि लोग उनसे मिलने अथवा हाल-चाल पूछने भी नहीं आते। दूसरों को दोष देने की बजाय स्वयं को

ठीक करना चाहिए। यदि आप एक अच्छे मेहमाननवाज़ हैं, तो आप कभी अकेले नहीं पड़ेंगे, इस बात की गारंटी है। कुछ लोगों की आर्थिक स्थिति इतनी अच्छी होती है कि वे कोई भी सहायक आसानी से रख सकते हैं। मेरा मानना है कि यदि व्यक्ति के पास पहले से कोई सहायक नहीं है और उसको कार्य करने में असुविधा होती है, तो कोई-न-कोई सहायक रख लेना आवश्यक है। इससे न केवल उसके जीवन में सुविधा हो जाएगी, अपितु किसी ज़रूरतमंद को रोज़गार भी मिल जाएगा। धर्म-अध्यात्म के नाम पर यदि अकर्मण्य लोगों को दान-दक्षिणा न देकर किसी का जीवन सँवारा जाए, तो और भी अच्छा होगा।

प्रायः अधिकांश लोग कुछ सकारात्मक व्यावहारिक कदम उठाने की बजाय ऊल-जलूल निर्णय ले बैठते हैं। कई लोग न तो आत्म-प्रदर्शन व आत्म-प्रशंसा का लोभ छोड़ पाते हैं और न ही दूसरों के द्वारा प्रशंसा करवाने अथवा पाने का लोभ ही छोड़ पाते हैं, इसलिए वे लोग कुछ ऐसा करना चाहते हैं, जिससे वे चर्चा में बने रह सकें अथवा लोगों की प्रशंसा पा सकें, बेशक उनके कार्य कितने ही अनुपयोगी अथवा अव्यावहारिक क्यों न हों। कई लोगों की आदत होती है कि भजन-कीर्तन करते हुए अथवा माला फेरते हुए भी न केवल इधर-उधर देखते रहते हैं, अपितु बच्चों को डाँटने-डपटने के साथ-साथ दूसरे लोगों को निर्देश भी देते रहते हैं। ऐसी नाटकीयता का कोई लाभ नहीं। हमें हर तरह के आडंबर व पाखंड तथा आत्म-प्रदर्शन व आत्म-श्लाघा से दूर रहने और एक व्यावहारिक व सकारात्मक दृष्टिकोण अपनाने का प्रयास करना चाहिए।

आयु के साथ-साथ कुछ गतिविधियाँ अथवा कुछ चीज़ें स्वतः छूट जाती हैं। ऐसे में हमें उपयोगी वस्तुओं और सुविधाओं की बजाय निरर्थक चीज़ों अथवा अव्यावहारिक आदतों से मुक्त होने का प्रयास करना चाहिए। कुछ लोग एक अवस्था के बाद हर काम करना छोड़ देते हैं अथवा किसी भी बात में रुचि नहीं लेते। जब तक जीवन है, हमें न केवल काम करते रहना चाहिए, बल्कि इस सुंदर संसार की हर बात में रुचि भी बनाए रखनी चाहिए। शरीर और मन को स्वस्थ रखने के लिए दोनों चीज़ें अनिवार्य हैं। वास्तव में, लोग आयु के बढ़ने से बूढ़े नहीं होते, किंतु इसलिए बूढ़े हो जाते हैं कि उनके पास जीवन को जीने का कोई लक्ष्य नहीं होता। जे.आर.डी. टाटा, डॉ. मोक्षगुण्डम विश्वेश्वरैया अथवा एम.एफ. हुसैन आदि महानुभावों ने लंबी आयु पाई व जीवन की अंतिम साँस तक कार्य किया और अपने अंतिम दिनों में जो कार्य किया, वह उनके पिछले कार्यों के मुकाबले में भी बहुत बेहतर था। यही वास्तविक संन्यास है, क्योंकि संन्यासी भी समाज को कुछ देने के लिए ही इस क्षेत्र में पदार्पण करते हैं। अंतिम दिनों में समाज को अपना सर्वस्व दे देने से अच्छा कुछ भी नहीं।

सादगी से जीवन जीना अच्छी बात है, लेकिन सादगी का अर्थ अकर्मण्यता अथवा पलायन नहीं होता। सादगी से तात्पर्य कंजूसी अथवा असामान्य अवस्था में रहना भी नहीं है। अच्छे ढंग से रहने और अच्छे कपड़े पहनने में भी कोई बुराई नहीं होती। सलीके से रहना और कार्य करना न केवल व्यक्ति के आत्मविश्वास में वृद्धि करता है, अपितु समाज में भी यथोचित सम्मान दिलवाता है। सादगी का अर्थ घर-परिवार अथवा बच्चों की उपेक्षा तो बिल्कुल नहीं हो सकता। कई बार सादगी अथवा विशेष रीति से जीवन जीने के लिए हम परिवार के सदस्यों अथवा समाज के लिए मुसीबतें खड़ी कर देते हैं, जो किसी भी तरह से ठीक नहीं कहा जा सकता। अपनी उपयोगिता कभी नष्ट नहीं होने देनी चाहिए। अधिक नाटकबाज़ी और अपनी अनुपयोगिता के कारण ही अधिकांश लोग संबंधों के कूड़ेदान में फेंके जाने को अभिशप्त होते हैं। सादगी व्यवहार व चरित्र में होनी चाहिए, न कि वस्त्रों में। सही अथवा अवसरानुकूल वस्त्रों के अभाव में एक बड़ा विद्वान भी सभा में अपेक्षित सम्मान नहीं पाता है।

हमें स्वयं को संकुचित दायरे में डालने की बजाय घर-परिवार और समाज के लिए और अधिक व्यापक दृष्टि व सहयोग की भावना का विकास करने का प्रयास करना चाहिए। यदि हम समाज में रहते हैं, तो उससे कटकर नहीं रह सकते। घर-परिवार व समाज से जुड़े रहने के लिए भी साधनों की उपेक्षा संभव नहीं। बढ़ती आयु के साथ-साथ व्यक्ति को दूसरे लोगों के साथ और सहयोग की अपेक्षाकृत अधिक आवश्यकता होती है। यदि बड़ी आयु में हम सचमुच जीवन को अधिक सार्थक व गरिमापूर्ण बनाना चाहते हैं, तो

हमें अपनी संकीर्ण मनोवृत्ति को त्यागकर उसे अधिकाधिक व्यापक बनाना चाहिए। हमारी स्वीकार्यता घटने के बजाय बढ़नी चाहिए। इस अवस्था तक पहुँचते-पहुँचते मनुष्य अनुभवों की खान बन जाता है। उसके अनुभवों तथा उसकी योग्यता और क्षमता का उपयोग सीमित न रहकर पूरे समाज के लिए होना चाहिए। संकुचित दृष्टिकोण रखने वाला अथवा एकाकी जीवन व्यतीत करने की आकांक्षा रखने वाला व्यक्ति समाज को कभी कुछ नहीं दे सकता। समाज का ऋण कभी नहीं चुकाया जा सकता, लेकिन इस आयु में जितना संभव हो सके चुका देना चाहिए। जीवन में सहजता द्वारा ही यह संभव है।

**srgupta54@yahoo.co.in**

# सोशल मीडिया के कारण हिंदी साहित्य का लोकतांत्रीकरण

**विनोद विप्लव**
**उत्तर प्रदेश, भारत**

परम्परागत तौर पर साहित्यिक रचनाएँ, पुस्तकें और पत्र-पत्रिकाएँ जैसे मुद्रित माध्यमों से पाठकों तक पहुँचती रही हैं। प्राचीन समय में लिपि का विकास होने से पहले साहित्य जनश्रुति और लोककथाओं द्वारा एक व्यक्ति से दूसरे व्यक्ति तक और एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी तक पहुँचता था। लिपियों का विकास होने पर लोग अपने विचारों को शिलाओं पर लिपिबद्ध करने लगे। शिलाओं पर लिखना इतिहास और साहित्य को संजोकर रखने के लिए बहुत महत्त्वपूर्ण माना जाता था। इसके अलावा प्राचीन काल में साहित्य भोज-पत्र पर और फिर कपड़े पर लिखा जाता रहा। कागज़ का आविष्कार होने के बाद कागज़ों पर साहित्य लिखा जाने लगा। छपाई का विकास होने पर साहित्य पुस्तकों और पत्र–पत्रिकाओं द्वारा लोगों तक पहुँचने लगा। लेकिन इंटरनेट का विकास होने पर साहित्य वेबसाइटों, ब्लॉग्स, ई–बुक्स, ई–लाइब्रेरी और किंडल ई–रीडर आदि के माध्यम से एक-दूसरे तक पहुँचने लगा।

आज के समय में सोशल मीडिया साहित्य के प्रचार–प्रसार का महत्त्वपूर्ण माध्यम बन गया है। सोशल मीडिया के विस्तार के कारण साहित्य अब फ़ेसबुक, ट्विटर (एक्स) , इंस्टाग्राम, यूट्यूब, टेलीग्राम और वाट्सएप जैसे माध्यमों से व्यापक पाठक-वर्ग तक पहुँचने लगा है। इस तरह से हिंदी के अलावा अन्य भाषाओं के साहित्य के प्रसार में सोशल मीडिया की भूमिका काफ़ी महत्त्वपूर्ण हो गई है। यही नहीं, सोशल मीडिया के विस्तृत होने के कारण पिछले कुछ वर्षों के दौरान साहित्य के सृजन और उसके प्रसार के तौर–तरीकों में तब्दीलियाँ आई हैं। सोशल मीडिया के कारण साहित्य और साहित्यिक रचनाओं को लेकर होने वाले विमर्श में भी बदलाव आया है और अब आम लोग भी इस विमर्श में जुड़ने लगे हैं।

पुस्तकों और पत्र–पत्रिकाओं के प्रकाशन और उनके वितरण का काम खर्चीला होता है। ऐसे में पुस्तकें और पत्र–पत्रिकाएँ एक सीमा तक ही प्रकाशित हो सकती हैं। यही नहीं सीमित संख्या में पुस्तकों और पत्र–पत्रिकाओं के प्रकाशन के कारण सीमित संख्या में ही लेखकों या साहित्यकारों की रचनाएँ और पुस्तकें लोगों के सामने आ पाती हैं।

छपाई की तकनीक में काफ़ी विकास होने के कारण अब पुस्तक और पत्र–पत्रिकाओं का मुद्रण पहले की तरह समय-साध्य और श्रम-साध्य नहीं रह गया है। अब मुद्रण को लेकर कई समस्याएँ दूर हो गई हैं, लेकिन इसके बावजूद मुद्रण का काम सस्ता नहीं है। यहीं नहीं, भारत भर के आँकड़ों का अवलोकन किया जाए, तो हम केवल अखबार के कारण लगभग 80 से 90 हज़ार वृक्षों की प्रतिदिन कटाई कर देते हैं, लेकिन अगर पुस्तकों और पत्र–पत्रिकाओं को कागज़ पर मुद्रित करने के बजाए, उसे डिजिटल स्वरूप में प्रकाशित-प्रसारित किया जाए, तो न केवल पर्यावरण को नुकसान से बचा सकते हैं, बल्कि कम-से-कम खर्च में डिजिटल पुस्तकों और पत्र-पत्रिकाओं को अधिक-से-अधिक लोगों तक उपलब्ध करा सकते हैं। इसलिए आज ई–पुस्तक और ई–पत्रिका अधिक लोकप्रिय हो रही हैं। इसकी एक बड़ी मिसाल 'विश्व हिंदी साहित्य' है, जो डिजिटल स्वरूप में दुनिया भर के पाठकों तक पहुँचाई जा रही है। ऐसी और भी कई पत्रिकाओं और पुस्तकें हैं, जो डिजिटल स्वरूप में

प्रकाशित होती हैं और वेबसाइट्स और सोशल मीडिया के ज़रिए व्यापक पाठक-वर्ग तक पहुँच रही हैं।

यह न केवल लेखकों और प्रकाशकों की दृष्टि से, बल्कि पाठकों की दृष्टि से भी लाभप्रद हैं। पाठक के लिए भी पुस्तक या पत्र–पत्रिका को खरीदना महँगा सौदा है। हर व्यक्ति एक सीमा तक ही पुस्तक या पत्रिका खरीद सकता है। यही नहीं, हर पुस्तक और पत्रिका को दुनिया के अलग-अलग कोने में बैठे व्यक्तियों तक पहुँचना संभव नहीं है। हर व्यक्ति के लिए अपनी पसंद या अपनी ज़रूरत की पुस्तक या पत्रिका को खरीद पाना भी संभव नहीं है। इस कारण समाज की एक बड़ी आबादी तक पुस्तकों और पत्र–पत्रिकाओं की पहुँच नहीं हो पाती है। इस तरह से अगर साहित्य केवल मुद्रित माध्यमों पर आधारित होती है, तो उसकी पहुँच की काफ़ी सीमाएँ होती हैं। लेकिन डिजिटल मीडिया और सोशल मीडिया की मदद से साहित्य को कम खर्च में और बहुत ही आसानी से दुनिया के किसी कोने में बैठे पाठक तक पहुँचाया जा सकता है और वह पाठक भी बिना कोई खर्च करके या बहुत ही कम खर्च करके अपनी पसंद और अपनी ज़रूरत की पुस्तक या पत्र–पत्रिका को पढ़ सकता है। इस तरह से इंटरनेट आधारित माध्यमों और सोशल मीडिया ने हिंदी या अन्य भाषाओं के साहित्य और साहित्यिक कृतियों को सर्वसुलभ बनाने में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाई है।

यदि कोई लेखक वेब पर अपनी निजी वेबसाइट या ब्लॉग बनाकर अपनी रचनाएँ या ई–बुक्स प्रकाशित करे, तो नाम मात्र का खर्च आता है। आज तो किंडल के ज़रिए अपनी पुस्तक को ई–बुक्स के रूप में लोगों तक पहुँचाया जा सकता है। वेबसाइट, वेब पोर्टल और किंडल द्वारा लेखकों को आमदनी भी हो सकती है। साहित्यकारों के कई ब्लॉग और वेब पोर्टल काफ़ी लोकप्रिय भी हुए। ये ब्लॉग लेखकों और साहित्यकारों के लिए साझा मंच बन गए, जहाँ लेखकों और साहित्यकारों की रचनाएँ प्रकाशित होती हैं और उन पर चर्चा होती है। इस तरह से अब अपनी रचना को पल भर में दुनिया भर के लाखों पाठकों तक पहुँचाया जा सकता है।

पिछले कुछ वर्षों के दौरान सोशल मीडिया के विकास के बाद ज्यादा-से-ज्यादा लोग अब फ़ेसबुक और ट्विटर पर लिख रहे हैं और अपनी रचनाएँ साझा कर रहे हैं। सोशल मीडिया पर लेखकों, कवियों और साहित्यकारों के कई ग्रुप या पेज हैं, जिनके व्यूअर्स हज़ारों–लाखों की संख्या में हैं। आज बेवसाइटों, ब्लॉग और सोशल मीडिया के आगमन के कारण अधिक-से-अधिक लोग लिखने लगे हैं। पुस्तकों और पत्र–पत्रिकाओं में हर रचनाकार की रचनाएँ नहीं आ पाती हैं। सोशल मीडिया में अनजान या नए लेखकों की बहुत महत्त्वपूर्ण रचनाएँ सामने आती हैं और फिर इन नए माध्यमों से सामने आने वाली रचनाएँ, पुस्तकों और पत्र–पत्रिकाओं में स्थान भी पाती हैं। इस तरह से सोशल मीडिया के कारण रचनाधर्मिता का विस्तार हो रहा है। आज अधिक-से-अधिक लोग कहानी, कविता, समीक्षा आदि लिखने लगे हैं। अब साहित्यिक पत्र–पत्रिकाएँ भी ब्लॉगों और सोशल मीडिया पर प्रकाशित साहित्यिक रचनाओं को ससम्मान प्रकाशित कर रही हैं। ब्लॉग या सोशल मीडिया पर चलने वाली चर्चाएँ भी पत्र–पत्रिकाओं और टेलीविजन चैनलों में स्थान पाने लगी हैं।

वर्तमान में सोशल मीडिया के द्वारा नए लेखक वर्ग का उदय हुआ है, जो साहित्य की विभिन्न विधाओं में सृजन कर रहे हैं। इसी के साथ–साथ पाठक-वर्ग में भी उत्तरोत्तर वृद्धि हो रही है। यह सत्य है कि आज अधिक-से-अधिक संख्या में नए लेखक उभरकर सामने आ रहे हैं और अपनी रचनाओं का प्रकाशन सोशल मीडिया या वेब मीडिया पर बिना किसी रोक–टोक के कर रहे हैं। साहित्य की दुनिया में पाठकों की कमी की बात अक्सर उठती रही है। लेकिन सोशल मीडिया के आने के बाद पाठकों की कमी काफ़ी हद तक दूर हो गई है, क्योंकि सोशल मीडिया द्वारा युवाओं तक भी साहित्य की पहुँच हो रही है। सोशल मीडिया ने अभिव्यक्ति के अवसर बढ़ाए हैं। फ़ेसबुक पर रात को बारह बजे भी रचना लिखकर एक–दूसरे के साथ साझा कर सकते हैं। यदि आपके पास कहने को कुछ है, तो उसे दूसरों तक पहुँचाने के लिए किसी-न-किसी माध्यम की ज़रूरत पड़ेगी। यह माध्यम सोशल मीडिया भी हो सकता है।

सोशल मीडिया का जन्म कभी वैकल्पिक मीडिया के रूप में हुआ था, लेकिन धीरे-धीरे उसका दबदबा इस कदर बढ़ गया कि मुख्य धारा की मीडिया भी उसके प्रभाव से बच

नहीं पाई है। लेकिन इसका सबसे अधिक नुकसान यह हुआ है कि सोशल मीडिया पर सक्रिय ज्यादातर लेखकों के हिंदी, हिंदी भाषा, भाषा-विज्ञान, हिंदी के छंद-अलंकार, हिंदी के साहित्य के गौरवशाली इतिहास आदि के बारे में आवश्यक ज्ञान नहीं है, जिसके कारण उनकी रचनाओं में वह बात नज़र नहीं आती है, जो पुस्तकों और पत्र–पत्रिकाओं में प्रकाशित रचनाओं में होती है। हालाँकि सोशल मीडिया पर सक्रिय सभी लेखक ऐसे नहीं हैं, परंतु ज्यादातर लेखक इसी वर्ग में आते हैं।

इसका कारण यह है कि सोशल मीडिया पर गुणवत्ता को परखने की कोई कसौटी नहीं है। जब कोई रचना किसी पत्र–पत्रिका के संपादक या पुस्तकों के प्रकाशक के पास प्रकाशन हेतु भेजी जाती है तब उस रचना की गुणवत्ता को परखने के लिए संपादक होते हैं और वे तय करते हैं कि रचना प्रकाशन योग्य है या नहीं। अगर कोई रचना प्रकाशन योग्य नहीं है, तो संपादक कारण बताते हुए रचना को वापस कर देते थे, जिससे लेखक अपनी रचना में सुधार करता था। परंतु आज सोशल मीडिया में कोई संपादक या कोई नियंत्रक नहीं है। जिसको जो मन आए वह लिख सकता है और सोशल मीडिया पर प्रकाशित कर सकता है। इसके कारण सोशल मीडिया पर प्रकाशित होने वाली सामग्रियों में गुणवत्ता की काफ़ी कमी होती है।

इसके अलावा, किसी रचना को पढ़ने का जो आनंद पुस्तक या पत्रिका को पढ़ने से मिलता है, वह सोशल मीडिया पर किसी लेख को पढ़कर नहीं मिलता। सोशल मीडिया का प्रयोग करते समय एकाग्रता की कमी होती है। सोशल मीडिया पर किसी रचना को पूरा पढ़ने के बजाय लोग सरसरी नज़र से देखकर आगे बढ़ जाते हैं।

हालाँकि इन समस्याओं के बावजूद सोशल मीडिया जैसे माध्यम के महत्त्व को नकारा नहीं जा सकता। यह नई पीढ़ी का माध्यम है और इसमें कही जाने वाली बात भी महत्त्वपूर्ण हो सकती है। अभिव्यक्ति के माध्यम अलग–अलग दौर में बदलते रहे हैं। सोशल मीडिया नए ज़माने का माध्यम है और बदलाव के साथ बदलना ही बेहतर होता है। सोशल मीडिया ने एक स्पेस रचा है, जिसका उपयोग सब कर रहे हैं। इंटरनेट और सोशल मीडिया भविष्य का माध्यम है। यह बुरे विचारों के लिए जितना उपयोगी है, उतना ही अच्छे विचारों के लिए भी है।

रचनाकारों और फ़िल्मकारों के लिए भी ज़रूरी है कि अपनी रचनाओं अथवा फ़िल्मों के विस्तार के लिए सोशल मीडिया का उपयोग किया जाए। आज न तो सिनेमा और न ही साहित्य इसकी अनदेखी कर सकता है।

आज सोशल मीडिया साहित्य और सिनेमा के प्रचारक के रूप में कार्य कर रहा है। साहित्य का जितना प्रचार-प्रसार होगा, जितनी उपलब्धता होगी, उसका उतना ही विस्तार होगा और जब साहित्य का विस्तार होगा तब यह साहित्य जगत और पूरे समाज के लिए अच्छा होगा। इस नए माध्यम से उन फ़िल्मों को भी लोगों तक पहुँचाया जा सकता है, जिनका परम्परागत वितरण-प्रणाली में कोई स्थान नहीं है।

हर तकनीकी आविष्कार निरपेक्ष होता है, जो हर तरह के काम के लिए प्रयोग किया जा सकता है। चाहे वह अच्छा हो या बुरा। आविष्कार का सदुपयोग इसके दुरुपयोग के साथ ही जुड़ा है। जो तकनीक व्यापक समाज के लिए रोचक या उपयोगी है, वह आसानी से अपनी जगह बना लेता है।

सोशल मीडिया का असर सिर्फ़ नकारात्मक ही नहीं है, सकारात्मक भी है। ट्विटर जैसे मंचों की शब्द-सीमा ने अपनी बात को चुस्त और कम-से-कम शब्दों में कहने के अभ्यास को संभव बनाया है। सोशल मीडिया ने सार्वजनिक अभिव्यक्ति और एक बड़े समुदाय को अपने विचार, अपनी बात, अपनी सोच और अनुभव को व्यापक वर्ग तक पहुँचाना संभव बनाया है और करोड़ों लोगों को अभिव्यक्ति की ताकत प्रदान की है।

**vinodviplav@gmail.com**

# महिलाओं के सशक्तिकरण से ही विकसित होगा भारत

**नृपेन्द्र अभिषेक नृप**
**नई दिल्ली, भारत**

"नारी तुम प्रेम हो, आस्था हो, विश्वास हो, टूटी हुई उम्मीदों की एकमात्र आस हो।" अपनी ममता और आँसुओं से देश का बचपन सँवारने वाली औरत, माँ, बेटी, बहन या पत्नी बनकर नारी, आज भी जुल्मो-सितम की सलीब पर टंगी है। यह सितम उस पर उसी पुरुष द्वारा डाल दिया जाता है, जिसको उसने अब तक अपनी ममता की शीतल छाँव में ढककर रखा है। दया और ममता की मूर्ति स्त्री सदियों से ही पुरुषों के वर्चस्व के आगे दबी हुई दिखाई देती है। किसी देश की स्थिति का अंदाजा वहाँ की रहने वाली महिलाओं की स्थिति से लगाया जा सकता है। एक स्त्री को ममता और प्रेम का आचरण धारण करने वाली कहा जाता है, लेकिन पुरुषों के आगे एक स्त्री को भेदभाव, हिंसा, बुरा बर्ताव आदि का सामना भी करना पड़ता है। इस सृष्टि की जननी पर इतने बड़े सामाजिक अत्याचार क्यों हो रहे हैं ? कब तक उसका बलात्कार करेगा यह समाज? कब तक उसे ज़िंदा जलना होगा? कब तक उसे नंगा घूमना होगा? आज जब वह ज्ञान की रोशनी पाकर तमाम पर्दों को चीरती हुई आसमाँ को छूने के लिए निकल पड़ी है, तो फिर उस पर बलात्कार जैसे धारदार हथियार से सिर्फ़ हमला ही नहीं किया जा रहा, बल्कि उसे ज़िंदा जला दिया जा रहा है। कैसा है हमारा समाज और कानून, जहाँ ऐसा कोई दिन नहीं होता, जब किसी लड़की या बच्ची के साथ कोई जघन्य बलात्कार और हत्या की घटना न होती हो। महिलाओं के सशक्तिकरण में उनके खिलाफ़ हो रही हिंसा उनके सामने रुकावट का पत्थर बनकर खड़ा है।

भारत की बेटियाँ एक तरफ़ जहाँ टोक्यो ओलंपिक में पदक जीतने में पुरुषों से काफ़ी आगे हैं, तो वहीं दिल्ली में एक छोटी-सी बच्ची के साथ पहले बलात्कार होता है और उसके बाद उसे वहीं शमशान में जला दिया जाता है। जब बात पुलिस तक जाती है तब पुलिस पहले दोषियों के कहने पर हत्या और लाश जलाने मात्र का केस करती है और जब बात बढ़ने लगती है तब बाद में सामूहिक बलात्कार की धारा भी उसमें शामिल कर दी जाती है। पुलिस ने अगर तत्काल में ही तत्परता दिखाई होती, तो शायद कुछ सबूत भी मिला होता, लेकिन जिस देश में कानून सिर्फ़ सबूत से चलता है, वहाँ बच्ची को अब न्याय मिलेगा या नहीं, यह वक्त के गर्भ में है। महिलाओं पर हो रहे अत्याचार आखिर रुक क्यों नहीं रहे हैं, यह सबसे बड़ा सवाल है। आए दिन उनके साथ हो रहे बलात्कार की घटनाओं को भी याद किया जा सकता है। एन. सी. आर. बी के आँकड़ों से पता चलता है कि पिछले 10 वर्षों में महिलाओं के बलात्कार का खतरा 44 फ़ीसदी तक बढ़ गया है। आँकड़ों के मुताबिक, 2010 से 2019 के बीच पूरे भारत में कुल 3,13,289 बलात्कार के मामले दर्ज हुए हैं। इन आँकड़ो से आज़ाद भारत में महिलाओं की वर्तमान स्थिति को देखा जा सकता है। यहाँ हर 16 मिनट में एक महिला का बलात्कार होता रहा है।

अगर रेप की घटनाओं पर गौर करे, तो एक बात नई दिख रही है। अभी जो भी रेप की घटनाएँ हो रहीं हैं, उसमें अत्यधिक में साक्ष्य मिटाने के लिए लड़की को जलाया जा रहा है या उसे मारा-पीटा जा रहा है, जोकि अपराध को और जघन्य बना रहा है और यह सब निर्भया कांड के बाद से ही ज्यादातर दिख रहा है। इसका कारण कानून में हुए बदलाव को कहा जा सकता है, क्योंकि यह रेपिस्ट खुद को बचाने और सबूत मिटाने के लिए कर रहे हैं। तो क्या कठोर कानून मात्र से रेप की घटना को नियंत्रित नहीं किया जा सका है ,क्योंकि रेप के बाद अब हत्या भी होने लगी है। बड़ा प्रश्न यह है कि फिर रेप का समाधान क्या हो सकता है?

निर्भया कांड , प्रियंका रेड्डी, हाथरस कांड जैसी घटनाओं ने मानव-जाति को शर्मसार करने का ही काम किया है। दिल्ली के निर्भया कांड के समय में भी देखा गया था कि किस तरह संपूर्ण देश में लोगों में गुस्सा उफान पर आ गया था। सरकार और व्यवस्था की "कुर्सी" हिलने लगी थी और तब जाकर शासन ने कठोर कानून बनाने की पहल की थी, लेकिन आज स्थिति यह है कि बलात्कार के संदर्भ में कठोरतम कानून होने के बावजूद इस तरह के प्रकरणों में

कमी नहीं आ रही है। फिर समस्या कहाँ है? क्या कठोर कानून में कमी है? क्या समाज में कमी है? अनगिनत प्रश्न समाज के समक्ष मुँह बाए खड़े हैं।

रेप होने के कारणों में कुछ कारण भारतीय सिनेमा, वेब सीरीज़ और यहाँ तक कि भारत में कुछ टीवी सीरियल में भी अश्लीलता आसानी से दिखा देने को माना जाता है। लेकिन रेप के लिए सिनेमा रूपी माध्यम को या समाज के किसी खास वर्ग को कोसना या उसका नकारात्मक चित्रण करना उचित प्रतीत नहीं होता, क्योंकि आज हम उस दौर से बहुत आगे बढ़ चुके हैं। इंटरनेट क्रांति और स्मार्टफ़ोन की सर्व-सुलभता ने पोर्न या वीभत्स यौन-चित्रण को सबके पास आसानी से पहुँचा दिया है। अभी तो इंटरनेट पर एड के नाम पर भी अश्लीलता परोसी जाने लगी है। इन सब कंपनियों को इन बातों से कोई मतलब नहीं है कि इंटरनेट पर छोटे बच्चे पढ़ रहे हैं और उसी बीच में एड भी आ जाता है। इंटरनेट भी अब सहज उपलब्ध है। कल तक इसका उपभोक्ता केवल समाज का उच्च मध्य-वर्ग या मध्य-वर्ग ही होता था, लेकिन आज यह समाज के हर वर्ग के लिए सुलभ हो चुका है। यह सबके हाथ में है और लगभग फ़्री है। कीवर्ड लिखने तक की ज़रूरत नहीं, आप बस मुँह से बोलकर ही गूगल को आदेश दे सकते हैं। इसलिए इस परिघटना पर विचार करना किसी खास वर्ग या क्षेत्र के लोगों के बजाय हम सबकी आदिम प्रवृत्तियों को समझने का प्रयास है। तकनीकें और माध्यम बदलते रहते हैं, लेकिन हमारी प्रवृत्तियाँ कायम रहती हैं या स्वयं को नए माध्यमों के अनुरूप ढाल लेती हैं।

आधुनिक युग में मनोवैज्ञानिकों ने भी अपने अध्ययन में पाया है कि हमारे दिमाग की बनावट इस तरह की है कि बार-बार पढ़े, देखे, सुने या किए जाने वाले कार्यों और बातों का असर हमारी चिंतनधारा पर होता ही है और यह हमारे निर्णयों और कार्यों का स्वरूप भी तय करता है। इसलिए पोर्न या सिनेमा और अन्य डिजिटल माध्यमों से परोसे जाने वाले सॉफ़्ट पोर्न का असर हमारे दिमाग पर होता ही है और यह हमें यौन-हिंसा के लिए मानसिक रूप से तैयार और प्रेरित करता है। इसलिए अभिव्यक्ति या रचनात्मकता की नैसर्गिक स्वतंत्रता की आड़ में पंजाबी पॉप गानों से लेकर फ़िल्मी 'आइटम सॉन्ग' और भोजपुरी सहित तमाम भारतीय भाषाओं में परोसे जा रहे स्त्री-विरोधी, यौन-हिंसा को उकसाने वाले और महिलाओं का वस्तुकरण करने वाले गानों की वकालत करने से पहले हमें रुककर थोड़ा सोचना होगा।

रेप जैसे कुकर्मों से मुक्ति के लिए कानून और समाज दोनों को ही अपनी ज़िम्मेदारी लेनी होगी। अदालतों में केस का अंबार लगा है। इसमें हज़ारों बलात्कार के मामले दबे पड़े हैं। देश में न्याय की प्रक्रिया इतनी जटिल हो गई है कि पीड़ित हताश होने लगे हैं। न्याय की प्रक्रिया को आसान करना होगा, तभी हर व्यक्ति को समय से न्याय मिल पाएगा। आज बलात्कार के मामलों को जल्द-से-जल्द निपटाने की ज़रूरत है। मामलों में सज़ा सुनाई जाने लगी, तो फिर अपराधियों में कानून का एक खौफ़ हो जाएगा। वह गुनाह करने से पहले सौ बार सोचेगा। आज बलात्कार पीड़िता को मेडिकल चेकअप कराने के लिए भी समस्याओं से दो-चार होना पड़ता है। फ़ास्ट ट्रैक कोर्ट तो बना है, लेकिन उसकी प्रकिया पूरी होते-होते भी काफ़ी अधिक समय लग रहा है, तब तक बलात्कारी शोषित परिवार को धमकाकर ही केस खत्म करवा दे रहे हैं। ऐसे में कानून का डर ही नहीं दिख रहा है। जिस तरह से दिल्ली में पुलिस का बर्ताव हुआ ठीक वैसा ही कई जगहों के बलात्कार के केस में देखने को मिला है। ऐसे में ज़रूरी है कि पुलिस भी अपनी ज़िम्मेदारी सही तरीके से निभाये। उन्हें कॉलिजों के बाहर अपनी गतिविधियाँ बढ़ानी होंगी और राह चलते लड़कियों पर फब्तियाँ कसने वालों पर कड़ाई से कार्रवाई करनी होगी। ऐसा होने लगा, तो इस तरह की घटनाओं में कमी ज़रूर आएगी। अगर बात कानून की हो, तो बलात्कार की घटनाओं को रोकने के लिए कानून तो बना दिया गया, लेकिन हमें देखना होगा कि इस बीच महिलाओं के प्रति लोगों में संवेदना कितनी बढ़ी है? सरकार ने कानून तो बना दिया, लेकिन वह उसे क्रियान्वित नहीं कर पाई है।

आज के दौर में सामाजिक ताने-बाने को बदलने की ज़रूरत है, इसमें ही महिलाओं का हित है। हमारे देश में बलात्कार की घटनाएँ यौन-आकर्षण की वजह से नहीं होती हैं, इसके पीछे का कारण पुरुषों का महिलाओं पर अधिकार

समझ लेना भी है। आज घर में ही परिवार के सदस्यों द्वारा भी इस घटना को अंजाम दे दिया जाता है। ऐसे में ज़रूरी है कि समाज को भी नैतिक ज्ञान हो, जिससे कि ऐसे कुकर्म करने के पहले उनका ज़मीर जाग सके। इसके लिए स्कूलों के पाठ्यक्रम में भी नैतिक शिक्षा को शामिल किया जा सकता है, ताकि महिलाओं के प्रति इज्ज़त के भाव का उन्हें बचपन से ही भान हो। सही शिक्षा और स्वस्थ माहौल तैयार करके ही हम उन्हें आने वाले भविष्य के लिए एक बेहतर नागरिक के तौर पर तैयार कर सकते हैं।

एक स्त्री सारे रिश्तों को कितने अच्छे से संभालती है। आज महिलाओं का योगदान सभी क्षेत्रों में अहम् है। महिलाएँ किसी भी देश के विकास का मुख्य आधार होती हैं। वे परिवार, समाज और देश की तरक्की में अपनी महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाती हैं। जहाँ आज महिलाएँ हर क्षेत्र में खुद को साबित कर रही हैं एवं पुरुषों से कंधे-से कंधा मिलाकर चल रही हैं, वहीं आज भी कई क्षेत्रों में महिलाओं को पुरुषों के बराबर अधिकार नहीं मिल रहा है।

देश की तरक्की करनी है, तो महिलाओं को सशक्त बनाना होगा। महिलाएँ कितनी सक्षम हैं, यह किसी को बताने की आवश्यकता नहीं है। महिलाओं ने खुद ही अपनी हिम्मत और श्रम से हर दौर में इसे साबित किया है। महिलाओं के सशक्तिकरण का मतलब है कि महिलाओं को अपनी ज़िंदगी का फ़ैसला करने की स्वतंत्रता देना या उनमें ऐसी क्षमताएँ पैदा करना कि वे समाज में अपनी सही पहचान बना सकें। आज महिलाएँ रूढ़िवादी मान्यताओं और पुरुष प्रधान विचार को चुनौती दे रही हैं और हर क्षेत्र में अपने हुनर को आज़मा रही हैं। औरतें अब तो नई-नई सफलता की मिसालें गढ़ रही हैं। समाज के पढ़े-लिखे लोग लड़कियों की शिक्षा के प्रति जागरूक हो रहे हैं और शिक्षित महिलाएँ देश के विकास में अपना अहम योगदान दे रही हैं। जेम्स स्टीफेंस का कथन है - "स्त्रियाँ पुरुषों से अधिक बुद्धिमान होती हैं, क्योंकि वे पुरुष से कम जानती हैं, किन्तु उससे अधिक समझती हैं।"

देश, समाज और परिवार के उज्ज्वल भविष्य के लिए महिला सशक्तिकरण बेहद आवश्यक है। महिलाओं को स्वच्छ और उपयुक्त पर्यावरण की ज़रूरत है, जिससे कि वे हर क्षेत्र में अपना खुद का फ़ैसला ले सकें, चाहे वह देश, परिवार, समाज या स्वयं के लिए हो। देश को पूरी तरह से विकसित बनाने तथा विकास के लक्ष्य को पाने के लिए एक ज़रूरी हथियार है - महिला सशक्तिकरण। भारत का संविधान दुनिया में सबसे अच्छा और समानता प्रदान करने वाले दस्तावेज़ों में से एक है। यह विशेष रूप से लिंग समानता को सुरक्षित करने के प्रावधान प्रदान करता है।

"नारी शक्ति है, सम्मान है, नारी गौरव है, अभिमान है,
नारी ने ही ये विधान रचा, उनको हमारा शत-शत प्रणाम है।"

सिंधु घाटी सभ्यता से लेकर अब तक भारतीय महिलाओं के सम्मान स्तर में काफ़ी कमी आयी है, हालाँकि आधुनिक युग में कई भारतीय महिलाएँ अनेक महत्त्वपूर्ण राजनैतिक तथा प्रशासनिक पदों पर पदस्थ हैं, फिर भी सामान्य ग्रामीण महिलाएँ आज भी अपने घरों में रहने के लिए बाध्य हैं और उन्हें सामान्य स्वास्थ्य और शिक्षा जैसी सुविधाएँ भी उपलब्ध नहीं हैं। आज महिलाएँ अपने कैरियर को लेकर गंभीर हैं, हालाँकि, महिलाओं को सशक्त बनाने के लिए सबसे पहले समाज में उनके अधिकारों और मूल्यों को मारने वाले राक्षसी सोच से जन्मे विकारों को मारना ज़रूरी है, जैसे दहेज-प्रथा, यौन-हिंसा, अशिक्षा, भ्रूण-हत्या, असमानता, महिलाओं के प्रति घरेलू हिंसा, कार्य-स्थल पर यौन शोषण, बाल-मज़दूरी, वैश्यावृति, मानव-तस्करी आदि। लैंगिक भेदभाव राष्ट्र में सांस्कृतिक, सामाजिक, आर्थिक और शैक्षिक अंतर ले आता है, जो देश को पीछे की ओर ढकेलता है।

महिलाओं को समाज में जिस बर्ताव और हिंसा का सामना करना पड़ता है, उसका एक भयानक रूप है - एसिड हमला। हाल ही में इस ज्वलंत मुद्दे को सिनेमा में भी दिखाया गया है, जो समाज को उनके दर्द को दिखा रहा है। पूरी दुनिया में लड़कियों और औरतों पर एसिड अटैक जैसी भयानक वारदातों के साथ एक गंभीर प्रश्न कानून- व्यवस्था के साथ बाज़ार का भी जुड़ा हुआ है। किसी भी पीड़ित के मन में यह सवाल पैदा होना लाज़िमी है कि क्या तेज़ाब जैसी संवेदनशील वस्तु की बिक्री और उपलब्धता बाज़ार में अन्य सामानों की तरह होनी चाहिए? समाज में जिस तरह से उनके

साथ बुरा बर्ताव किया जा रहा है और उन्हें अस्पृश्य बना दिया जाता है, यह अमानवीय है। आज इस एसिड अटैक की वजह से बहुत सारी लड़कियों और महिलाओं की जान जा चुकी हैं, लड़कियों और महिलाओं की ज़िंदगी बर्बाद हो चुकी है, बहुत सारी लड़कियाँ और महिलाएँ आज बद-से-बदतर हालात में अपना जीवन- यापन करने को मजबूर हैं। एसिड अटैक पर न्यायपालिका के साथ-साथ सरकार को अब ऐसे कुछ सख्त कानून बनाने चाहिए, जो इस देश के साथ-साथ दुनिया के लिए एक ट्रेंड सेटर साबित हो। साथ ही ऐसा कोई कानूनी प्रावधान भी होना चाहिए, जिसमें एसिड हमलों की शिकार महिला को सभी तरह की सुरक्षा और सुविधाएँ सुनिश्चित हो।

हम आज़ाद देश के नागरिक हैं, लेकिन यह कैसी आज़ादी है, जहाँ पर महिलाओं को आज भी शाम होने के बाद बाहर निकलने में संकोच है। ज्यादा रात होने पर या हैदराबाद या निर्भया जैसी घटना को अंजाम देने से भी लोग बाज नहीं आते हैं। प्रश्न यह उठता है कि दिनदहाड़े हो या फिर रात के अंधेरे में, आखिर कोई महिला या बच्ची सुरक्षित क्यों नहीं है? कहाँ है शासन और कानून? ऐसी घटनाएँ इसके बावजूद हो रही हैं, तो ऐसे पत्थर हृदय नेता और अधिकारी किस मुँह से अपने पदों पर बैठे हुए हैं। वह वक्त था, जब निर्भया कांड के समय पूरे केंद्र सरकार को लोगों ने कठघरे में खड़ा कर दिया था, लेकिन क्या आज हम ऐसा कर रहे हैं? आज सभी बलात्कार को भी धर्म का रूप देने में लगे हैं, तो वहीं कई लोग राजनीति की रोटी सेंककर अपनी वोट बैंक तैयार करने में लगे हैं। कैंडल मार्च से इस समस्या का समाधान नहीं होने वाला है। सिर्फ़ मोमबत्तियाँ जलाकर पुष्पाजंलि अर्पित करना एक मानसिक छलावा करने जैसा होगा, समस्या का निदान नहीं, न जाने कितनी मोमबत्तियाँ इसके पहले भी जलाई गयीं और श्रद्धा-सुमन अर्पित किये गए, लेकिन परिणाम ज्यों-का-त्यों। बलात्कार जैसी घटनाओं से निजात पाने के लिए कानून का सख्ती से पालन करना होगा, सभी पोर्न साइट्स को पूर्ण रूप से प्रतिबंधित करना होगा। सामाजिक रूप से हर माँ-पिता का दायित्व बनता है कि अपने बच्चों को शिक्षा दे कि वह महिलाओं का सम्मान करे, उनका शोषण न करे, क्योंकि जो लोग बलात्कार कर रहे हैं, वे हमारे समाज से ही निकलकर आते हैं।

"अहिंसा हमारे जीवन का धर्म है, तो भविष्य नारी जाति के हाथ में है।" महात्मा गांधी का यह कथन महिलाओं की उपयोगिता को चरितार्थ कर रहा है। गांधी जी महिलाओं को सशक्तिकरण के विषय के रूप में नहीं देखते थे, बल्कि उनका मानना था कि महिलाएँ स्वयं इतनी सबल हैं कि खुद की ही नहीं, वरन् संपूर्ण मानव-जाति के कल्याण में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभा सकती हैं। उनका कहना था कि अगर महिलाओं को आज़ाद होना है, तो उन्हें निडर बनना होगा। परिवार और समाज के बंधनों को तोड़ते हुए उन पर थोपे गए अन्याय का विरोध करना ही उन्हें जुल्मों से मुक्ति दिला सकता है। उनका कहना था कि महिलाओं को अपने अधिकारों और कर्तव्यों का ज्ञान होना चाहिए। गांधी जी बराबर कहते रहे कि महिलाओं को सशक्त बनना है, तो इसकी पहल परिवार से ही करनी होगी। गलत बातों को वह जब तक सहेगी उसके साथ जुल्म होता रहेगा। गांधीजी ने कहा था - जिस दिन से एक महिला रात में सड़कों पर स्वतंत्र रूप से चलने लगेगी, उस दिन से हम कह सकते हैं कि भारत ने स्वतंत्रता हासिल कर ली है।

यहाँ महिलाओं को उपर्युक्त कानून बनाकर काफ़ी शक्तियाँ दी गई हैं, लेकिन ज़मीनी स्तर पर अभी भी बहुत ज्यादा काम करने की ज़रूरत है। इसके बावजूद महिलाएँ अपनी ज़िम्मेदारियाँ बखूबी और बेहद सुंदरता से और खास बात बगैर किसी अपेक्षा के निभाये जा रही हैं। भारत सरकार द्वारा महिला सशक्तिकरण के लिए कई सारी योजनाएँ चलायी जाती हैं। इनमें से कई सारी योजनाएँ रोज़गार, कृषि और स्वास्थ्य जैसी चीज़ों के लिए चलायी जाती हैं। इन योजनाओं का गठन भारतीय महिलाओं की परिस्थिति को देखते हुए किया गया है, ताकि समाज में उनकी भागीदारी को बढ़ाया जा सके। सचमुच नारी तो - "दुनिया की पहचान है औरत, हर घर की जान है औरत, बेटी, बहन, माँ और पत्नी बनकर, घर-घर की शान है औरत।"

**nripendraabhishek@gmail.com**

# डिजिटल मानवाधिकारों का हनन है डीपफ़ेक

**योगेश कुमार गोयल**
**नई दिल्ली, भारत**

भारत में पहले दक्षिण भारतीय फ़िल्म अभिनेत्री रश्मिका मंदाना और उसके बाद बॉलीवुड अभिनेत्री कैटरीना कैफ़ तथा काजोल का डीपफ़ेक वीडियो वायरल होने के बाद से डीपफ़ेक मुद्दा लगातार चर्चा में है। बॉलीवुड अभिनेता शाहरूख खान और सलमान खान के डीपफ़ेक वीडियो भी खूब वायरल हुए थे, जिनमें उन्हें बेहद मोटा दर्शाया गया था। डीपफ़ेक मुद्दे को लेकर आक्रोश तब और ज्यादा बढ़ गया था, जब कुछ प्रसिद्ध फ़िल्म अभिनेताओं और अभिनेत्रियों के डीपफ़ेक वीडियो सामने आने के बाद प्रधानमंत्री नरेंद्र मोदी का भी एक ऐसा वीडियो वायरल हुआ था, जिसमें उन्हें गरबा खेलते दिखाया गया था, जबकि स्वयं प्रधानमंत्री के मुताबिक उन्होंने कभी गरबा खेला ही नहीं। प्रधानमंत्री का वह डीपफ़ेक वीडियो वायरल होने के बाद 'डीपफ़ेक' एक बड़ा राष्ट्रीय मुद्दा बन गया था। यह बेहद चिंताजनक स्थिति है कि कृत्रिम मेधा यानी आर्टिफ़िशियल इंटेलिजेंस (एआई) की मदद से तैयार किए जा रहे डीपफ़ेक वीडियो अब न केवल जानी-मानी हस्तियों, बल्कि आम आदमी के भी गले की फाँस बनते जा रहे हैं और इसीलिए प्रधानमंत्री भी इसके खतरों को लेकर चेताते हुए कह चुके हैं कि एआई द्वारा बनाए गए डीपफ़ेक बड़े संकट का कारण बन सकते हैं, जो समाज में असंतोष भी पैदा कर सकते हैं। इसीलिए उन्होंने मीडिया से इसके दुरुपयोग के बारे में जागरूकता बढ़ाने और लोगों को शिक्षित करने का आग्रह भी किया था। राष्ट्रपति द्रौपदी मुर्मू ने भी अपराधियों द्वारा जेनरेटिव आर्टिफ़िशियल इंटेलिजेंस के प्रयोग तथा डीपफ़ेक को लेकर चिंता ज़ाहिर करते हुए कहा था कि पुलिस अधिकारियों को सदैव नई तकनीक से अपडेट रहना होगा, ताकि अपराधियों पर बढ़त ली जा सके।

सबसे पहले यह जान लेना बहुत ज़रूरी है कि डीपफ़ेक आखिर है क्या? 'डीपफ़ेक' शब्द, वास्तव में, 'डीप लर्निंग' और 'फ़ेक' के मेल से बना है। किसी भी वीडियो में किसी व्यक्ति के चेहरे अथवा शरीर को डिजिटल रूप से बदलने को 'डीपफ़ेक' कहते हैं। डीपफ़ेक वीडियो और ऑडियो दोनों ही रूप में हो सकता है। इसे एक स्पेशल मशीन लर्निंग का इस्तेमाल करके बनाया जाता है, जिसे 'डीप लर्निंग' कहा जाता है। डीप लर्निंग में कम्प्यूटर को दो वीडियो या फ़ोटो दिए जाते हैं, जिन्हें देखकर वह स्वयं ही दोनों वीडियो या फ़ोटो को एक जैसा बनाता है, यानी एडिटेड वीडियो में किसी अन्य के चेहरे को किसी अन्य के चेहरे से बदल दिया जाता है। इस तरह के फ़ोटो तथा वीडियो में कुछ छिपी हुई लेयर्स होती हैं, जिन्हें केवल एडिटिंग सॉफ़्टवेयर की मदद से ही देखा जा सकता है। ये वीडियो इतने सटीक होते हैं कि आप इन्हें आसानी से नहीं पहचान सकते। यही कारण है कि डीपफ़ेक फ़ोटो और वीडियो फ़ेक होते हुए भी असली नज़र आते हैं। एआई की मदद से बने ऐसे वीडियो किसी को भी आसानी से धोखा देने में पूरी तरह सक्षम होते हैं। डीपफ़ेक में कृत्रिम मेधा और आधुनिक तकनीकों का इस्तेमाल करते हुए किसी वीडियो क्लिप अथवा फ़ोटो पर किसी अन्य व्यक्ति का चेहरा लगाने का चलन तेज़ी से बढ़ रहा है। इसके ज़रिये कृत्रिम तरीके से ऐसे क्लिप या फ़ोटो विकसित किए जा रहे हैं, जो देखने में वास्तविक लगते हैं। डीपफ़ेक के लिए इन दिनों कई वेबसाइट और एप हैं, जहाँ लोग ऐसे वीडियो बना रहे हैं।

डीपफ़ेक कंटेंट एक-दूसरे के साथ प्रतिस्पर्धा करते दो एल्गोरिज़म (डिकोडर और एनकोडर) का उपयोग करके तैयार किए जाते हैं। इस बेहद पेचीदा तकनीक में फ़ेक डिजिटल कंटेंट बनाकर डिकोडर के ज़रिये यह पता लगाया जाता है कि कंटेंट असली है या नकली। डिकोडर हर बार कंटेंट को असली अथवा नकली के रूप में सही ढंग से पहचानता है और फिर उस जानकारी को एनकोडर को भेज देता है, ताकि अगले डीपफ़ेक में गलतियाँ सुधारकर उसे और बेहतर किया जा सके। उसके बाद जो फ़ाइनल आउटपुट निकलता है, वह बिल्कुल असली जैसा होता है, लेकिन, वास्तव में, वह फ़ेक होता है। यह तकनीक जेनरेटिव एडवर्सीरियल नेटवर्क (जीएएन) का इस्तेमाल करती है, जिससे फ़ेक वीडियो और फ़ोटो बनाए जाते हैं। सोशल मीडिया प्लेटफ़ॉर्म पर डीपफ़ेक

वीडियो डाले जाने के बाद ये बहुत तेज़ गति से फैलते हैं। विभिन्न रिपोर्टों के मुताबिक इंटरनेट पर इस समय करोड़ों डीपफ़ेक वीडियो मौजूद हैं। हालाँकि इस तकनीक का प्रयोग मनोरंजन के लिए भी किया जाता है, लेकिन पोर्नोग्रॉफ़ी में इस तकनीक का काफ़ी इस्तेमाल होता है। डीपफ़ेक के ज़रिये ही किसी फ़िल्म अभिनेता अथवा अभिनेत्री का चेहरा बदलकर पोर्न साइटों पर अश्लील कंटेंट पोस्ट किया जाता है। माना जाता है कि इस तकनीक की शुरुआत ही अश्लील कंटेंट बनाने से हुई थी। 'डीपट्रेस' की एक रिपोर्ट के मुताबिक 2019 में ऑनलाइन पाए गए डीपफ़ेक वीडियो में करीब 96 प्रतिशत अश्लील कंटेंट ही था।

डीपफ़ेक मुद्दे पर चिंता बढ़ने का सबसे बड़ा कारण यही है कि इसमें दिखने वाला वीडियो बिल्कुल सही होता है, किन्तु एआई के ज़रिये चेहरा, वातावरण अथवा असली ऑडियो बदल दिया जाता है और देखने वाले को इस बात का ज़रा भी अहसास नहीं होता कि वह असली नहीं, बल्कि डीपफ़ेक वीडियो देख रहा है। भारत में डीपफ़ेक मुद्दे पर आक्रोश पहली बार तब उभरा था, जब डीपफ़ेक तकनीक के ज़रिये तैयार किया गया एक ऐसा वीडियो वायरल हुआ था, जिसमें नज़र आ रही एक महिला को 'पुष्पा' जैसी सफल फ़िल्म से प्रसिद्ध हुई अभिनेत्री रश्मिका मंदाना की तरह दिखाने का प्रयास किया गया था। तब अमिताभ बच्चन ने इस वीडियो का संदर्भ देते हुए सोशल मीडिया प्लेटफ़ॉर्म पर लिखा था कि इस मामले में कानूनी कार्रवाई होनी चाहिए। इलैक्ट्रॉनिक्स और आईटी राज्यमंत्री राजीव चंद्रशेखर के मुताबिक डीपफ़ेक एक बड़ा उल्लंघन है और यह विशेष रूप से महिलाओं को नुकसान पहुँचाता है।

डीपफ़ेक तकनीक का इतिहास देखें, तो पहली बार 2014 में इयन गुडफ़्लो और उनकी टीम ने इस तकनीक को विकसित किया था, जिसमें धीरे-धीरे नई-नई तकनीकों के साथ नए-नए परिवर्तन किए जाते रहे। वैसे 1997 में भी क्रिस्टोफ़ ब्रेगलर, मिशेल कोवेल और मैल्कम स्लेनी ने भी डीपफ़ेक तकनीक की मदद से एक वीडियो में विज़ुअल से छेड़छाड़ की थी और एंकर द्वारा बोले जा रहे शब्दों को बदल दिया था, लेकिन उसे एक प्रयोग के तौर पर किया गया था। हालाँकि इस तकनीक का इस्तेमाल हॉलीवुड फ़िल्मों में बड़े पैमाने पर किया जाता रहा है। दरअसल, शूटिंग के दौरान कई बार किसी कलाकार के पास डेट्स की कमी होने या शूटिंग के बीच में ही किसी कलाकार की मौत हो जाने पर इस तकनीक का प्रयोग किया जाता था, लेकिन तब इस तकनीक का इस्तेमाल नकारात्मक तरीके से नहीं होता था, लेकिन जैसे-जैसे यह तकनीक परिष्कृत होती गई, असली-नकली का फ़र्क करना भी मुश्किल होने लगा और कुछ लोग इसका गलत प्रयोग करने लगे। इसी परिष्कृत तकनीक के ज़रिये विभिन्न हॉलीवुड और बॉलीवुड अभिनेत्रियों के पोर्न वीडियो बनाए जाने लगे। अनेक पोर्न वेबसाइट ऐसे डीपफ़ेक वीडियो से भरी पड़ी हैं। पहली बार डीपफ़ेक शब्द 2017 के अंत में एक 'रेडिट' उपयोगकर्ता द्वारा बनाया गया था, जिसने अश्लील वीडियो पर विख्यात हस्तियों के चेहरे को सुपरइम्पोज़ करने के लिए डीप लर्निंग तकनीक का इस्तेमाल किया था। 2018 तक ओपन-सोर्स लाइब्रेरी तथा ऑनलाइन शेयर किए गए ट्यूटोरियल की बदौलत यह तकनीक इस्तेमाल में आसान हो गई और 2020 के दशक में तो डीपफ़ेक और ज्यादा परिष्कृत हो गए, जिनका पता लगाना कठिन हो गया।

हालाँकि डीपफ़ेक तकनीक से तैयार तस्वीरों और वीडियो को पहचानना आसान तो नहीं होता, लेकिन यह असंभव भी नहीं है। डीपफ़ेक कंटेंट की पहचान करने के लिए कुछ विशेष बातों पर ध्यान देना ज़रूरी है। तकनीक के जानकारों के मुताबिक इन्हें पहचानने के लिए वीडियो को बहुत बारीकी से देखते हुए खासतौर पर चेहरे के भाव, आँखों की हलचल और शारीरिक शैली पर ध्यान देना होगा। इसके अलावा लिप सिंकिंग से भी ऐसे वीडियो की पहचान की जा सकती है। ऐसे वीडियो को लोकेशन और अतिरिक्त रोशनी से भी पहचाना जा सकता है। तस्वीरों को ज़ूम करके भी ऐसे वीडियो और तस्वीर की सच्चाई जानी जा सकती है। ऐसे में डीपफ़ेक वीडियो का प्रसार रोकने के लिए लोगों में जागरूकता पैदा किया जाना बहुत ज़रूरी है। यदि कोई मज़ाक में भी किसी का डीपफ़ेक वीडियो बनाकर शेयर करता है, तो उसके विरुद्ध आईपीसी की धारा के तहत कार्रवाई हो सकती है और भारी जुर्माना भी लगाया जा सकता

है। यदि ऐसे वीडियो के कारण किसी की छवि खराब होती है, तो डीपफ़ेक वीडियो बनाने वाले के खिलाफ़ मानहानि का मामला भी दायर किया जा सकता है।

भारत में डीपफ़ेक से मुकाबले का कानूनी हथियार मौजूद है, लेकिन इस कानूनी अधिकार की जानकारी भी हर किसी को होना ज़रूरी है। डीपफ़ेक के ज़रिये किसी का अपमान करने पर आईपीसी की धारा 499 और 500 के तहत मानहानि का केस किया जा सकता है। यदि डेटा चोरी करके या हैकिंग कर कोई डीपफ़ेक तैयार किया जाता है, तो पीड़ित आईटी एक्ट के तहत शिकायत कर सकता है। इसी प्रकार किसी सामग्री की चोरी होने पर कॉपीराइट एक्ट 1957 के तहत दोषी के खिलाफ़ कार्रवाई की जा सकती है। आईटी एक्ट 2000 किसी भी व्यक्ति को उसकी गोपनीयता की सुरक्षा प्रदान करता है, ऐसे में यदि कोई डीपफ़ेक वीडियो या तस्वीर किसी की मर्ज़ी के बिना बनाकर कानून तोड़ता है, तो उसके खिलाफ़ शिकायत की जा सकती है। कानून की धारा 66डी के तहत ऐसे मामले में दोषी पाए जाने पर उसे तीन वर्ष तक की सज़ा और एक लाख रुपये तक का जुर्माना हो सकता है। आईटी एक्ट में सोशल मीडिया प्लेटफ़ॉर्म की भी ज़िम्मेदारी तय है, जिसमें किसी व्यक्ति की गोपनीयता को सुरक्षा प्रदान करना ज़रूरी है और यदि किसी प्लेटफ़ॉर्म को ऐसे किसी डीपफ़ेक सामग्री के बारे में जानकारी मिलती है, तो शिकायत मिलने के चौबीस घंटे के भीतर उसे हटाना उसकी ज़िम्मेदारी है।

विशेषज्ञों का कहना है कि हालाँकि डीपफ़ेक वीडियो को पकड़ना आसान हो सकता है, क्योंकि ये इंटरनेट पर मौजूद असली वीडियो से ही बनाए जा सकते हैं, लेकिन भारत में ऐसे वीडियो को लेकर चिंता की सबसे बड़ी बात यही है कि हमारे यहाँ इसके लिए जिस धैर्य की ज़रूरत है, वह व्हाट्सएप संदेश अग्रेषित करते रहने वाले लोगों में नहीं दिखती। दरअसल, लोग बिना कुछ सोचे-समझे किसी भी संदेश को एक-दूसरे को अग्रेषित करते रहते हैं। एसी नेल्सन की 'इंडिया इंटरनेट रिपोर्ट 2023' के आँकड़ों के मुताबिक ग्रामीण भारत में 42.5 करोड़ से अधिक इंटरनेट उपयोगकर्ता हैं, जो शहरी भारत की तुलना में 44 फ़ीसद अधिक हैं और इनमें से 29.5 करोड़ लोग नियमित रूप से इंटरनेट का उपयोग करते हैं, ऐसे में डीपफ़ेक वीडियो को लेकर जागरूकता के अभाव में इसके भावी खतरों को समझना कठिन नहीं है। देश में डिजिटल साक्षरता कम होने के कारण ऐसे वीडियो समस्या को बेहद गंभीर बना सकते हैं। एक ओर जहाँ एआई के आगमन से आर्थिक और सामाजिक विकास को लेकर उम्मीदें बढ़ी थीं और यह भी माना जा रहा था कि एआई के ज़रिये फ़र्ज़ी खबरों और गलत सूचनाओं के प्रसार को रोकने का प्रभावी तरीका मिल जाएगा, लेकिन एआई का उपयोग बढ़ने के साथ-साथ इसका दुरुपयोग तेज़ी से बढ़ रहा है, जिससे न सिर्फ़ झूठी सूचनाओं में वृद्धि हो रही है, बल्कि इंटरनेट अब चरित्र हनन करने के मामले में भी एक शक्तिशाली औज़ार के रूप में उभर रहा है।

**mediacaregroup@gmail.com**

# परीक्षा या परेशानी

**श्रीमती रेशमी बत्तू**
**मॉरीशस**

'परीक्षा' अपने-आप में जीवन का एक पड़ाव होती है या फिर जीवन के एक निश्चित पड़ाव तक पहुँचने का सोपान होती है या फिर दोनों का मिश्रित रूप होती है। इस प्रकार से 'परीक्षा' को निश्चित रूप से परिभाषित कर पाना संभव नहीं है, क्योंकि परिस्थिति-विशेष के कारण कभी एक परिभाषा सटीक लगती है, तो कभी दूसरी। कुछ भी हो, आज परीक्षाएँ परीक्षार्थी ही नहीं, उनके माँ-बाप तथा स्वयं अध्यापकों और परीक्षकों के लिए गंभीर चिंता एवं चिंतन का विषय बन गई हैं। इस निबंध में, हम परीक्षाओं को परीक्षार्थियों की दृष्टि से देखने का प्रयास करेंगे तथा उनके मन पर पड़ते प्रभाव का आकलन करने के साथ-साथ विविध परिस्थितियों पर विचार करेंगे। यह कहने में कोई अतिशयोक्ति नहीं होगी कि

परीक्षाओं के प्रथम 'शिकार' परीक्षार्थी या छात्र ही होते हैं।

वास्तव में, 'परीक्षा' को हमारी शिक्षा-प्रणाली का एक अभिन्न अंग बना दिया गया है, ताकि छात्रों की समझ और उनकी योग्यता का पता लगाया जा सके। इससे शिक्षक को शिक्षण-प्रक्रिया आगे बढ़ाने में सुविधा मिलती है। आगे चलकर कक्षा में अध्यापक अपने शिक्षण की दिशा और गति का निश्चय कर पाता है। समग्र रूप से देखा जाए, तो 'परीक्षा' शिक्षा का एक निर्धारित परिमाण होती है या फिर यूँ कहें कि वह छात्रों की योग्यताओं को काटने-छाँटने का एक सोपान होती है, जिसके बिना शिक्षण की सफलता या असफलता का निश्चय कर पाना लगभग असंभव होता है। बचपन से ही हमारे मन में स्कूल की परीक्षाओं का भय घर कर लेता है। कुछ छात्रों के लिए, स्कूल में प्रवेश करते ही घर, विद्यालय और यहाँ तक कि मित्रों के बीच चर्चाओं का प्रमुख विषय 'परीक्षाएँ' ही बन जाती हैं - 'आने वाली परीक्षाएँ कैसी होंगी?', 'उस परीक्षा-पत्र की रूपरेखा कैसी होगी?', 'कौन परीक्षा-पत्र तैयार करेगा?', 'क्या परीक्षा-पत्र तैयार करते समय हमारे स्तर को ध्यान में रखा जाएगा?' आदि। ऐसे कितने ही प्रश्न हमें परेशान करने आते हैं और लंबे समय तक अपना प्रभाव छोड़ते रहते हैं। इतना ही नहीं, परीक्षाओं के बाद भी हमारे मन की प्रश्नावली एक निश्चित शृंखला का अनुगमन करती हुई दिखती है। यथा – 'आज का प्रश्न-पत्र तुम्हें कैसा लगा?', 'क्या तुम इन प्रश्नों या उन प्रश्नों के उत्तर लिखने में सफल हुए?', 'क्या तुम्हें यह प्रश्न कठिन लगा?', 'आज का प्रश्न-पत्र तो थोड़ा सरल था। क्या कल की परीक्षा इतनी ही आसान होगी?', 'अरे! यह प्रश्न हमारी परीक्षा में कैसे आ गया, हमने तो कक्षा में इस पर काम ही नहीं किया है। क्या हमें फँसाने की कोशिश की गई है?' कुछ अन्य परीक्षार्थियों की चिंताओं का प्रमुख विषय प्रश्न-पत्र न होकर परीक्षा के परिणाम होते हैं, जैसे - 'पता नहीं, हमारे परिणाम कैसे होंगे।', 'अगर परीक्षकों ने संशोधन करते समय कठोरता दिखाई, तो हमारा क्या होगा?', 'और अगर मैं असफल हो गया तो...।' ऐसे अनगिनत प्रश्न असंख्य परीक्षार्थियों के मन-मस्तिष्क पर, परीक्षा की घोषणा से लेकर परिणामों के आने तक, छाए रहते हैं।

साल-भर की कड़ी मेहनत के बाद हमारे छात्रों के सामने अक्टूबर का महीना कितने प्रकार के तनावों को अपने साथ लेकर आता है। हर साल छात्रों के परिश्रम का आकलन करने के लिए परीक्षाएँ हमारे छात्रों के जीवन में नए-नए रूप धारण करके पदार्पण करती हैं। कुछ छात्रों को लगता है कि जो परीक्षाएँ कुछ ही दिनों में समाप्त हो सकती थीं, उन्हें नाहक ही इतना लंबा खींचा जाता है। उत्सुकता, जिज्ञासा, परेशानी, घबराहट, तनाव आदि कितनी ही चिंताएँ एक साथ शून्य से निकलकर प्रकट होने लगती हैं। छात्र रात के समय देर तक परीक्षाओं की तैयारी करने के लिए विवश हो जाते हैं। तरह-तरह के निबंध लिखना, व्याकरण के कार्यों एवं नियमों की आवृत्ति करना, गणित के कार्यों का अभ्यास करना, आदि नित्यकर्म छात्रों की दिनचर्या के अंग बन जाते हैं। कुछ छात्र अपनी कमज़ोरी या आलस्य को छिपाने के लिए उस प्रथम व्यक्ति को कोसने लगते हैं, जिसने परीक्षा की व्यवस्था पर विचार किया था तथा इसके कार्यान्वयन के नियम बनाए थे।

सुबह-सुबह नींद से जगाने के लिए जब अलार्म बजता है, तब माँ झट से पलंग की बगल में आकर खड़ी हो जाती है। वह अपने बेटे या बेटी को हिला-हिलाकर उसमें पुनः प्राण और स्फूर्ति के संचार की प्रक्रिया शुरू कर देती है। कुछ ऐसी माताएँ भी होती हैं, जो बड़े प्यार से अपने बच्चों के सिर पर अपने हाथ फेरती हैं और बच्चे के माथे को चूमकर उन्हें जगाती हैं। कभी-कभी बिस्तर पर बैठे-बैठे जब बच्चे अंगड़ाइयाँ लेते हैं और सामने अपने पापा को खड़े पाते हैं, तब उनकी नींद तुरंत भाग जाती है। फिर दिन-भर उनके कानों में पापा के ये शब्द ही गूँजते रहते हैं, "यदि तुम फ़ेल हुए, तो खेलना-कूदना और...मोबाइल-कम्प्यूटर सब बंद!" इन शब्दों के साथ छात्रों के मन-मस्तिष्क पर एक विचित्र प्रश्न छा जाता है, "आखिर पिता इतने पाषाण-हृदय वाले क्यों होते हैं, भगवान?"

परीक्षार्थी को परीक्षा-भवन तक छोड़ने के लिए जाते समय, गाड़ी में बैठे-बैठे, माता-पिता की सलाहों की वर्षा होती रहती है और परीक्षार्थी पूरी तरह तर होकर परीक्षा-केंद्र में प्रवेश करते हैं। परीक्षार्थी विविध प्रकार की मानसिक प्रताड़नाओं का शिकार होते हैं – घर पर पिता की पैनी नज़र और शूल से भी तीक्ष्ण कटाक्ष-भरी बातें, रास्ते पर मिली

सलाहों की बौछार और स्कूल पहुँचने पर सहपाठियों के उत्सुकता-भरे प्रश्न। दूसरी ओर, परीक्षा-कक्ष की ओर बढ़ते हुए जब अध्यापकों से भेंट हो जाती है, तब पग-पग पर उन्हें शुभकामनाएँ मिलती हैं और उनके मन में अनिश्चितता का भय उत्पन्न होता है कि वे अपने अध्यापकों की अपेक्षाओं की कसौटी पर खरे उतरेंगे या नहीं।

जब परीक्षार्थी परीक्षा-कक्ष में बैठकर प्रश्न-पत्र की प्रथम झलक प्राप्त करने की प्रतीक्षा करते हैं, तब न तो उनका मन ही स्थिर रह पाता है और न ही उनका हृदय। उधर प्रश्न-पत्र वितरण के लिए घंटी बजती है, इधर परीक्षार्थियों के हृदय की धड़कनें बढ़ जाती हैं। अत्यन्त शान्त एवं गंभीर वातावरण में, परीक्षार्थी के कानों तक उनकी अपनी धड़कनों की आवाज़ पहुँचती है और कभी-कभी ठंड में भी पसीने की बूँदें प्रकट होती हैं। छोटी उम्र के छात्रों के मस्तिष्क में ये प्रश्न उमड़ते हैं – 'हमें क्यों हमारे दोस्तों से अलग किया जा रहा है?', 'हमें क्यों दूर बिठाया गया है?', 'हमें क्यों अपने दोस्तों की मदद करने अथवा उनसे मदद लेने का अधिकार नहीं?'

ऐसे में कुछ ऐसे भी छात्र होते हैं, जिनको नियमों का उल्लंघन करने में आनंद की अनुभूति होती है। वे नकल करने के लिए छोटी-छोटी पर्चियों का प्रयोग करते हैं। कुछ लोग मित्रों के साथ इशारों में बातें करते हैं और एक पूर्वनिर्धारित प्रणाली के अनुकूल संकेतों से प्रश्नोत्तर करते हैं। अध्यापकों अथवा निरीक्षकों को आते देखकर सूचनाओं का यह गुप्त आदान-प्रदान बंद हो जाता है और कुछ क्षणों के लिए उस निश्चित स्थान पर सन्नाटा छा जाता है। निरीक्षक को दूर जाते देखकर पुनः स्थिति सामान्य हो जाती है। परीक्षाओं में इतनी शक्ति होती है कि वे व्यक्ति को विचित्र व्यवहार करने तथा नकल करने के नए-नए उपायों का आविष्कार करने के लिए सक्षम बना देती है। शायद यह कहावत कि 'आवश्यकता आविष्कार की जननी होती है!' 'परीक्षा' पर भी पूर्णतः चरितार्थ होता है।

दूसरी ओर कुछ ऐसे भी छात्र होते हैं, जो निरीक्षकों के हाथों से प्रश्न-पत्र मिलते ही, उसमें इस तरह डूब जाते हैं कि उन्हें यह ध्यान नहीं रहता है कि उनके आसपास कोई दोस्त बैठा है या कोई अपरिचित। पूरी तन्मयता से और पूरी निष्ठा से वे प्रश्नों के उत्तर में लग जाते हैं। उस समय उनका मन-मस्तिष्क एक श्वेतपट की भाँति बन जाता है और प्रश्नों के हल स्वतः उस पर अंकित होने लगते हैं। अच्छी तरह पढ़ाई और आवृत्ति करने का फल क्या होता है, इसका आभास ऐसे ही मेहनती छात्रों को होता है। उनके मानस-पटल पर माता-पिता एवं अध्यापक-अध्यापिका द्वारा सिखाई गई कई बातें होती हैं। वे धैर्यपूर्वक प्रश्नों को पढ़ते जाते हैं और उत्तर लिखते जाते हैं। कुछ ऐसे भी छात्र होते हैं, जो पढ़ाई और आवृत्ति में किसी प्रकार की चूक नहीं होने देते हैं, किंतु उनमें आत्मविश्वास की कमी होती है। वे बार-बार भगवान का नाम लेते हैं और दिव्य शक्तियों से मदद की गुहार लगाते हैं। यह कहाँ तक कारगर होता है, स्वयं परमात्मा ही जानते हैं।

परीक्षा उस युद्ध की भाँति होती है, जिसकी समाप्ति की घोषणा एक अंतिम घंटी के बजने की आवाज़ से होती है और निरीक्षक के मुख से ये शब्द निकलते हैं - "अब लिखना बंद कीजिए। परीक्षा का समय समाप्त हुआ।" ये वाक्य कुछ छात्रों के मन में संतोष की लहर उत्पन्न करते हैं, तो कुछ छात्रों के दिल की धड़कनें और तेज़ कर देते हैं। उनके चेहरे पर एक ही भाव दिखाई देता है - "काश मुझे थोड़ा और समय मिल जाता, तो यह उत्तर पूरा लिख देता!" किंतु दुख की बात यह है कि परीक्षाओं का गठन व्यक्तिगत आवश्यकताओं को देखकर नहीं किया जाता है। सभी परीक्षार्थियों के लिए एक जैसे नियम होते हैं और एक जैसी सुविधाएँ भी होती हैं। हाँ, इतना तो निश्चित है कि जिसकी जितनी अच्छी तैयारी होती है, उसकी परीक्षा उतनी ही अच्छी होती है और जो परिश्रम को कम और परीक्षा पास करने के लिए अपनाए जानेवाले अन्य अवैद्य उपायों को अधिक महत्त्व देते हैं, उनके लिए परीक्षा किसी परेशानी से कम नहीं होती है।

**trishna2124@hotmail.com**

# कहाँ गए वे दिन

**उषा महाजन**
**नई दिल्ली, भारत**

याद तो है, काफ़ी कुछ बचपन का। कुछ धुंधला-सा, तो कुछ काँच की तरह साफ़, स्पष्ट और सजीव।

बारिशों का संदेशा लेकर आते अंधड़। उनके थमते ही, नन्हे साथियों की शैतान-मण्डली के साथ दौड़ पड़ना, घर के पिछवाड़े की अमराइयों की ओर।

आँधी में गिरी कच्ची अम्बियाँ बीनना। बाल-मण्डली में लड़के भी और लड़कियाँ भी। सभी का साथ-साथ खेलना, दौड़ना। न किसी के गुम होने का डर, न अपहरण का।

बड़े भाइयों के दोस्त आते, तो साइकिल के आगे बैठा, हाट-बाज़ार एक-डेढ़ कोस दूर घुमा लाते। त्योहारों के दिन पर, तालाब किनारे लगने वाले मेलों में ले जाते, मिट्टी के खिलौने दिलाने। तो भी, कोई डर नहीं।

बैतालपुर शुगर मिल की कॉलोनी किसी चहारदीवारी से घिरी नहीं थी। फिर भी एकदम सुरक्षित। तब शायद सभी जगहें सुरक्षित हुआ करती होंगी, इस लिहाज़ से !

तब मैं छह या सात साल की उम्र की रही होगी। दो पक्के साथी थे अपने, एक लड़का - शोकी और एक लड़की - बेबी। शोकी हमारे घर के ठीक सामने वाले घर का बच्चा था। हम तीनों में खास दोस्ती थी, जब कि नन्हे साथी और भी थे। कुछ लड़कियों के नाम तो फिर भी याद हैं - धम्मो, पप्पी, बेबी। पर लड़कों के नाम अब याद नहीं आ रहे।

तो, हम सब घर-घर खेला करते थे। शोकी या उसके साथी बारी-बारी से पिता बनते और कोई लड़की माँ। बाकी के सब लड़के-लड़कियाँ उनके बेटे-बेटियाँ।

हमारे घरों के सामने कुछ नए घर और बन रहे थे, जिस कारण ईंटों और बालू के ढेर वहाँ लगे ही रहते। हम खेलते-खेलते वहाँ जा पहुँचते। शोकी और दूसरे लड़के बालू के ढेरों से सिगरेट के बचे हुए टुकड़े बीनते और हम सब लड़कियाँ सीपियाँ। शाम हो जाती, तो हमारी बाल-मंडली किसी-न-किसी के घर के बरामदे में जमावड़ा लगा लेते।

सभी चले जाते, तो भी, मैं और बेबी खेलते ही रहते और एक-दूसरे को कई बार घर छोड़ने जाते-आते, थोड़ी देर और साथ रहने के लिए बहाने बनाते। याद नहीं आ रहा कि हमको कभी कोई होमवर्क मिला हो। सभी कुछ स्कूल में ही पढ़कर आते और वह हमेशा याद रहता। रहता भी कैसे न ! वहीं पर इमला/ श्रुतलेख मिलता, वहीं पर पहाड़े रटाए जाते। हमें तो अभी नहीं, पर बड़े बच्चे कोरस में - झूम-झूमकर गाते हुए रटते - 'पंद्रह एकम पंद्रह, दूनी तीस, तियाँ पैंतालीस, चौके साठ, पन्चे पचहत्तर, छक्के नब्बे, सत्ते पिचोतर, अट्ठे बीसा, नौ पैंतीसा, धूम-धड़क्का डेढ़ सौ ....' अब भला आप ही बताइए कि यह क्या कभी भूलने वाली बात थी, इस तरह से पहाड़े कंठस्थ करना ! तो स्कूल से घर लौटकर हमारा काम, खाने और सोने के अलावा, सिर्फ़ खेलना ही तो था।

हमारे घरों से थोड़ी ही दूर, गाँव की मुख्य सड़क को जाने के रास्ते में एक पोखर था। पोखर के बाएँ हाथ जाने की तो इजाज़त थी, पर दाएँ हाथ जाने की कत्तई नहीं। दरअसल, पोखर के बाएँ हाथ, कुछ दूर जाने पर, किराने की छोटी-मोटी दुकानें थीं और दायीं तरफ़ रहते थे वे लोग, गांधी जी जिन्हें हरि के जन कहते थे। दूर से ही, उस बस्ती की औरतों को अपनी साड़ियाँ घुटनों तक उठाये, दोनों टांगों के बीच खोंसे बैठे, बेहद सुन्दर टोकरियाँ बुनते या सूप (गेहूँ छानने-फटकने के लिए) बनाते हुए, हम बच्चे देखते रहते, पर उनके पास जाकर उनसे बातें नहीं कर पाते। हर सुन्दर कला को देखने और सीखने - समझने की ललक बचपन से ही मन पर हावी थी। सहेलियों से कहती साथ चलने को, पर वे माँ-बाप के डर से कभी साथ न देतीं।

पोखर के बाएँ हाथ पड़ती दुकानों की भी अपनी ही कहानियाँ थीं। बेहद गरीब से दिखते दुकानदार थे वे। ढेले वाला नमक, तेल, दालें, मसाले वगैरह की पंसारी की दुकानों के पीछे थीं पोखर के बाएँ हाथ पड़ती वे दुकानें। इन दुकानों में खड़िया, स्याही, पट्टियों के साथ कुछ खाने-पीने की भी

चीज़ें बिकती थीं। चूहे उनकी दुकानों में इधर-से-उधर धमा-चौकड़ी मचाते दिखते। बड़े भापों (भाइयों) के दोस्त - निंदर और निकड़ा भाइयों के साथ एक बार मैं और छोटी बहन कुक्की वहाँ से अपनी पट्टी के लिए खड़िया लेने गईं, तो चूहों को इधर-उधर भागते देख घबरा गईं। लौटते समय निंदर भाई बोले - तुम दोनों तो ऐसे ही डर गईं। ये लोग तो भून-भूनकर खाते हैं, इन चूहों को। विश्वास नहीं हुआ निंदर भाई की बात का। बाद में जाना कि कई देशों में तो लोग साँपों और तिलचिट्टों के भी स्वादिष्ट व्यंजन बनाकर खाते हैं।

सन् 1955-56 का समय होगा। सीधी लाइनों में आपस में जुड़े हमारे घर थे, चीनी मिल की कॉलोनी के।

खाना पकाने के लिए रसोई के एक कोने में लकड़ी जलाने वाला मिट्टी का चूल्हा था, जिसका धुँआ बाहर निकालने के लिए छत पर निकलती चिमनी थी। लोहे की एक फुँकनी होती थी। गालें फूलाती माँ, जिसमें मुँह से हवा देकर आग सुलगाया करती। शाम को वह ज्यादातर कोयले की अंगीठी जलाती। सर्दियों में सुबह भी अंगीठी ही रखती। चाय वगैरह तो बिजली के हीटर पर ही बनती थी। बिजली दिन-रात रहती। लोड शेडिंग का नाम कभी सुना तक नहीं था। कमरों में पीली रोशनी वाले साठ वॉट के बल्ब लगे थे, जिन्हें हम लट् कहते। बिजली की इस्तरी और हीटर सभी घरों में थे। छत में पंखे दिन-रात धड़-धड़ चला करते। बिजली का कोई बिल किसी को नहीं देना पड़ता था। वैसे ही नलों में पानी भी दिन-रात बहा करता। पानी के बिल का भी कभी नहीं सुना था। घर में अगल-बगल दो बड़े-बड़े कमरे थे, एक लम्बाई में, दूसरा चौड़ाई में, अंग्रेज़ी का ' एल ' अक्षर बनाते हुए। 'एल ' को घेरता हुआ चौकोर बरामदा और उसके आगे बड़ा-सा आँगन। लम्बाई वाले कमरे से जुड़ी, लम्बी-सी रसोई, जिसका दरवाज़ा आँगन में खुलता और छोटी-सी खिड़की बाहर गली में। आँगन के अंतिम छोर पर एक स्टोर रूम, स्नानागार और गली में खुलता पिछवाड़े का दरवाज़ा था।

मुख्य द्वार कमरों की दूसरी तरफ़ था, लम्बे कमरे में, बाहर के बरामदे में खुलता। सामने कंटीली तारों से घिरा छोटा-सा किचन गार्डन था, जिसकी देखभाल का ज़िम्मा बड़े भाइयों का होता। वे अपने दोस्तों के साथ मिलकर, उसमें मौसम की सब्ज़ियाँ लगाते। पपीते और केले के पेड़ों का झुरमुट भी याद पड़ता है।

आप कहोगे कि अपने दो बड़े भाइयों के रहते, हम उनके दोस्त - निंदर और निकड़ा भाइयों के साथ क्यों घूमती रहती थीं! तो, दरअसल, हमारे दोनों भाइयों - रमेश भापा और सुभाष भापा ने इंटरमीडिएट में गोरखपुर के सेंट एंड्रूस कॉलिज में दाखिला ले लिया था और दोनों भोर सवेरे ही रेलगाड़ी पकड़ 32 मील दूर, गोरखपुर के लिए निकल पड़ते और रात हुए ही घर लौटते। तो हमारे छोटे-मोटे काम करवाने की ज़िम्मेदारी, पढ़ाई-लिखाई से बेपरवाह, गाँव में ही रह रहे उनके दोस्त नहीं लेते, तो और कौन लेता!

भाइयों के एक और जिगरी दोस्त थे, उनके सहपाठी रहे - लक्ष्मीकान्त सिंह। दसवीं तक वे सब एक साथ ही पढ़े थे। लक्ष्मी भैया की गाँव में ज़मीनें थीं। हम अपने भाइयों के साथ लक्ष्मी भैया के घर भी जाते रहते थे। उनके घर की औरतें हम बहनों का खूब लाड़-दुलार करतीं।

गाँव के बड़े-बूढ़ों की चौपाल उनकी बैठक में लगा करती। सारे किसान ज्यादातर ईख (गन्ने) की खेती करते थे और कच्ची सड़कें दिन-रात, ईख लदी बैलगाड़ियों से पटी रहतीं। सभी का गन्ना शुगर मिल को ही सप्लाई होता था।

औरतें जनाने में रहतीं और मर्द हुक्का गुड़गुड़ाते गन्ने से जुड़ी बातें ही करते। ऐसी ही एक बात, उन दिनों वहाँ कहावत के रूप में प्रचलित थी, " बिनब्याही बेटी मरे, औ ठाड़े ऊख बिकाय " (बेटी ब्याह से पहले ही मर जाए और गन्ना खेतों में खड़ा-खड़ा ही बिक जाय) ! तब तो उतना समझ में नहीं आया था, पर होश सम्भाला और समझ में आया, तो बदन में कंपकंपी-सी उठने लगी।

तब का कम्पन्न आज दिन तक जारी है। लड़की और बोझ? खेत में खड़ी फ़सल की पर्याय? फ़सल - जो आँधी, तूफ़ान, ओलों से कभी भी बर्बाद हो सकती थी और उसको रोपने-पोसने की सारी मेहनत पानी में! सो, जब तक खड़ी हो खेतों में, तो ही बिक जाए और पैसा वसूल हो जाए, तो अच्छा। लड़की के मामले में पैसा वसूला नहीं, तो बचा ही लिया जाय ! ब्याह से पहले ही उसके मरने के सपने देख! क्या ही तर्क था !

शायद कलम हाथ में आने का इससे बड़ा और कोई कारण नहीं हो सकता था।

बहुत छोटी थी तब। फिर भी बहुत कुछ समझ में आ जाता था। दोनों बड़े भाई आगे की पढ़ाई करने इतनी दूर गोरखपुर जाते-आते थे। बड़ी बहन निर्मला सुभाष भापा से दो ही साल तो छोटी थी। वह क्यों नहीं जाती थी आगे पढ़ने ? वह क्यों सारा दिन माँ के साथ घर के कामों में ही हाथ बँटाती रहती ? बाऊजी का तर्क था - लड़की को इतनी दूर भेजने का जोखिम वे नहीं उठाना चाहते थे। उनके तर्क के आगे दुविधा में तो पड़ ही जाती। रमेश, सुभाष भापा पढ़ने के लिए रोज़ गोरखपुर के लिए निकल तो पड़ते, लेकिन सही-सलामत घर वापस लौटेंगे या नहीं, इसकी चिंता में हम बच्चों समेत, सारा परिवार उद्विग्न ही रहता। दोनों भाई गज़ब के मेधावी विद्यार्थी थे। दोनों की उम्र में सिर्फ़ डेढ़ साल का अंतर था, पर दोनों एक ही कक्षा में पढ़ते थे और हर कक्षा में दोनों प्रथम, द्वितीय आते।

ट्रेन में उनके साथ गोरखपुर जाने-आने वाले छात्रों में, कई अलग तरह के लड़के भी थे। उनको ये दोनों पढ़ाकू भाई फूटी आँख न सुहाते, खासकर रमेश भापा, क्योंकि वे कुछ रिज़र्व किस्म के लड़के थे। सुभाष भापा तो हँसमुख और मिलनसार थे, तो उनके दुश्मन उतने नहीं थे।

बारहवीं के बोर्ड के फ़ाइनल इम्तिहानों के पहले रमेश भापा को गुण्डों का अल्टीमेटम मिला, " ए रमेसवा ..., इम्तिहान में बैठा, तो समझ ले कि ज़िंदगी से हाथ धोना पड़ेगा ..."

रमेश भापा ने घर आकर बाऊजी को बताया। बाऊजी ने ज़िन्दगी में किस्मत की मार बहुत झेली थी। कराची में, बहुत बड़ा व्यवसाय था उनका, अमीरी की ऐश में रहते थे, हमेशा सूटेड-बूटेड रहते, बेशकीमती सिगरेट पीते थे, पर बुलियन मार्किट में सट्टा खेलने की लत ने उन्हें कहीं का न छोड़ा। 1945 में द्वितीय विश्वयुद्ध के दौरान हिरोशिमा और नागासाकी में एटम बम गिरने के साथ ही बुलियन मार्किट धराशायी हो गयी। दुर्भाग्य से तभी, निर्मला के बाद का ढाई साल का उनका बेटा अचानक ही बीमार होकर चल बसा। बाऊजी इतना टूट गए कि तीन दिनों तक शेयर बाज़ार की खबर ही नहीं ली। टेलीफ़ोन लाइनें डाउन थी। तभी पता चला कि उन्हें भारी घाटा हुआ था। वे दिवालिया घोषित कर दिए गए थे। उन्हें घर का सारा कीमती सामान बेच, घाटा भरना पड़ा।

बाकी के पंजाबी लोग तो पाकिस्तान बनने के दौरान दरबदर होकर, वहाँ से आये थे, हमारे बाऊजी शेयर बाज़ार से दिवालिया होकर, वहाँ से दरबदर होकर, विभाजन से कुछ पहले ही उत्तर प्रदेश के देवरिया ज़िले के बैतालपुर गाँव में आ बसे थे। पढ़े-लिखे थे, सो एक दोस्त की मेहरबानी से बैतालपुर चीनी मिल में नौकरी मिल गई थी। नौकरी की आय से घर किसी तरह चलता था। पुराना वैभव उन्हें रह-रहकर याद आता और किसी चीज़ पर खर्चा करें-न-करें, पर अच्छा खाने-पीने और बच्चों को पढ़ाने पर ही पूरा वेतन खर्च कर देते। अभाव के दिनों में भी उनका रवैया कुलीनों का-सा ही रहा। न कभी कोई घटिया बात की, न कभी कोई घटिया काम। घटिया काम से मतलब - तुच्छ प्रकृति के कामों से है, मसलन - बेईमानी, घूसखोरी जैसे। न ही कभी किसी से डरे, अपने ईमान पर इतना नाज़।

रमेश भापा की बात सुन, बोले कि उनको इन धमकियों से डरना नहीं था। उन दोनों भाइयों को ज़िन्दगी में बहुत आगे बढ़ना था और वह सिर्फ़ पढ़ाई-लिखाई के ज़रिये ही संभव हो सकता था। परिवार के वैभवशाली दिनों को वापस लाने का ज़िम्मा अब उन दोनों भाइयों पर ही निर्भर था और उन्हें हर हाल में पढ़ना और आगे बढ़ना था। सो, रमेश, सुभाष भापा धमकियों से बेपरवाह इम्तिहान देने गोरखपुर जाते-आते रहे।

बहरहाल भाइयों के इम्तिहानों के नतीजे निकले, तो घर-भर की खुशी का ठिकाना नहीं रहा। रमेश भापा ने सेंट एंड्रूस कॉलिज में टॉप किया था और सुभाष भापा दूसरे नंबर के टॉपर थे। जैसा कि बाऊजी का सपना था, दोनों भाइयों को, उन दिनों के सर्वाधिक प्रतिष्ठित इंजीनियरिंग संस्थान 'बी एच यू 'यानी बनारस हिन्दू यूनिवर्सिटी में दाखिला मिल गया। दोनों भाइयों को मनचाही मैकेनिकल इंजीनियरिंग भी मिल गयी। पर कुछ ही दिनों बाद छोटे भाई सुभाष को बाऊजी ने वापस बुला लिया। अपनी मामूली-सी आमदनी से, वे दो लड़कों को होस्टल में रखकर, इंजीनियरिंग कॉलिज में नहीं

पढ़ा सकते थे। कर्ज ले रहे थे, लेकिन इतना तो नहीं ले सकते थे कि कभी चुका ही न पाते। यह तो सुभाष भापा की हिम्मत और उनका बड़प्पन कि लौटकर अपने ही बलबूते, ट्यूशन पढ़ाकर उन्होंने गोरखपुर में ही अपनी पढ़ाई जारी रखी और एम एस सी, मैथमैटिक्स में यूनिवर्सिटी में टॉप किया, गोल्ड मैडल लिया। गोरखपुर यूनिवर्सिटी तब बनी-बनी ही थी और वे वहाँ से मैथ्स के गोल्ड मेडलिस्ट बने।

भाइयों की पृष्ठभूमि बतानी ज़रूरी थी, क्योंकि आगे चलकर मेरी कहानी की बागडोर उन्हीं के हाथों तो आने वाली थी।

शायद 57 या 58 में बाऊजी का तबादला बैतालपुर से 5 मील दूर देवरिया शुगर मिल में हो गया। यहाँ की कॉलोनी का माहौल भी बैतालपुर की मिल के मोहल्ले के वातावरण से कुछ खास अलग नहीं था। हाँ, घर एक-दूसरे से जुड़े-जुड़े न होकर, अलग-अलग थे। कॉलोनी के ठीक पीछे को पड़ती थी एक कच्ची धूल भरी सड़क, जिस पर दिन-रात ईख (गन्ने) से लदी बैलगाड़ियाँ चर्र-चर्र कर गुजरती रहतीं। सड़क के दूसरे छोर पर अरहर के खेत थे और उनके भी पार, आम और महुआ के अनगिनत पेड़ों के झुरमुट, जिनके अंतिम छोर पर एक कुम्हार की छोटी-सी झोंपड़ी थी, जिसके बाहर उसका चाक लगा था। पास ही मटमैले पानी वाला एक पोखरा था। हमारे घर से दो-चार घर बाद ही गन्ने के खेतों की मेढ़ें थीं, जहाँ हम जब जी चाहा, चले जाते। कोई रोक-टोक नहीं थी। दो-तीन मील पर ही मारवाड़ी प्राथमिक पाठशाला थी, जहाँ मैं पाँचवीं में पढ़ती थी और छोटी बहन कुक्की तीसरी में। यहाँ भी स्कूल से लौटकर हमारा काम था सिर्फ़ खेलना-कूदना और सखी-सहेलियों के साथ जहाँ-तहाँ चल देना। कुम्हार की झोंपड़ी तो बिल्कुल पास ही थी। अरहर के खेतों के पीछे, महुआ की पेड़ों के छोर पर। ज्यादातर हम वहीं का रुख करते। उसे अपने चाक को डंडे से घुमाकर गति दे, दोनों हाथों के अंगूठों और तर्जनियों को जोड़, कुल्हड़-शकोरे बनाते देखना अपने-आप में एक अद्‌त अनुभव होता।

अद्‌त अनुभव तो धुनिये को अपनी धुनकी पर रुई धुनते देखना भी था। सर्दियों के दिनों में धुनिये आवाज़ लगाते गलियों में घूमा करते। औरतें हर दो-तीन सालों पर अपने रजाइयाँ-गद्दे खोलकर उनकी रुई धुनवातीं और गिलाफ़ों को धोकर, फिर से भरवा लेतीं।

*बचपन में*
*घर के पिछवाड़े*
*अमराइयों के बीच*
*नंगे पैर भटकते हुए*
*कोयल की कूक सुन*
*स्तब्ध होकर थम जाना।*
*नन्हे मन में पनपती कविता की*
*उस क्षण हुई प्रसव-पीड़ा*
*सह जाना*
*अब भी मुझे याद है।*

*नन्हे साथी के साथ*
*बनते हुए घरों के सामने जमा*
*बालू के ढेर से*
*सीपियाँ चुनना मेरा*
*और उसका*
*जले हुए सिगरेट के टोटे बीन*
*कश लगाना*
*और हम दोनों का*
*माँ-बापू का स्वांग रचना*
*अब भी मुझे याद है।*
*खेलते थे घरों के पिछले बरामदों में*
*और, कभी दूर, पोखर के आस-पास*
*नहीं कहा अम्मा ने*
*घर जल्दी लौट आना*
*क्योंकि, नहीं सुना था किसी ने कभी,*
*बच्चों के अपहरण का।*
*ज़िंदगी की मस्ती भरी बेपरवाही का*
*अब भी मुझे याद है।*

**ushamahajan64@gmail.com**

# अतिथि देवो भव

**शशि पाधा**
**अमेरिका**

हमारे उपनिषदों में एक बहुत ही सार्थक और अमूल्य पंक्ति है 'अतिथि देवो भव'। यानी अतिथि देवता के समान पूजनीय और आदरणीय है। हर प्राणी को घर आए अतिथि का तन, मन और धन से सत्कार करना चाहिए। इन तीन शब्दों में भारत की पूरी संस्कृति समाहित है। यही हमारे जीवन-मूल्यों की पूँजी भी है। हमने बचपन से अभी तक बड़े होते हुए अपने घरों में यही देखा है कि कोई भी, किसी भी समय घर पर आए, उसका मान-सम्मान करना और आदर-सत्कार करना हमारा कर्तव्य हो जाता है।

समय बदल गया है और 'अतिथि' शब्द का अर्थ भी बदल गया है। अब अतिथि के आने की तिथि भी महीनों पहले पता होती है और समय भी। कितने दिन रहना है, यह भी तय होता है। किसी मेहमान के अचानक आ जाने की जो खुशी घर में छा जाती थी, वैसा अनुभव शायद आज की पीढ़ी को हो नहीं सकता। अतिथि-सत्कार का जो अनुभव मैंने आज से लगभग 30 वर्ष पूर्व किया है उस सुखद अनुभव को शब्दों में बाँध पाना ही कठिन है। फिर भी आप के साथ साझा कर रही हूँ।

हिमाचल प्रदेश में एक छोटा-सा नगर है 'नाहन'। पहाड़ों की गोद में बसे इस नगर में स्थित सैनिक छावनी में हम कुछ परिवार बड़े शहरों की दौड़-धूप से दूर प्रकृति के आँगन में रहते थे। आसपास पहाड़, देवदार के वृक्ष और पहाड़ी झरनों के साथ हमारा प्रतिदिन का मेल-जोल था। छोटी-सी छावनी में रहते हुए सभी परिवार कुछ नया, कुछ रोमांचक करते ही रहते थे। कभी पहाड़ी पर ट्रेकिंग के लिए निकल जाते थे और कभी किसी नदी में तैरने। मनोरंजन के इन प्राकृतिक साधनों को छोड़कर वहाँ कुछ करने को नहीं था।

एक बार तीन छुट्टियाँ इकट्ठी आ गईं। हमारे सैनिक परिवार ने नाहन नगर से दूर हरिपुर धार के जंगलों में दो दिन की पिकनिक मनाने का फ़ैसला लिया। फ़ैसला यह भी था कि ज्यादा सामान न लिया जाए। यानी जो भी वहाँ पर उपलब्ध हो उसी से गुज़ारा किया जाए। निर्णय चुनौतीपूर्ण था, क्योंकि सब के बच्चे छोटे थे, फिर भी ऐसी चुनौती के लिए सभी उत्साहित थे।

हरिपुर धार का पहाड़ी क्षेत्र पर्यटन की दृष्टि से आकर्षक है। वहाँ जंगल भी हैं, पहाड़ भी और झरने भी। वहाँ जंगलात विभाग का एक डाक बंगला भी था। तो बस देरी किस बात की। हाँ, एक बात थी कि यह नगर नाहन से लगभग 106 किलोमीटर की दूरी पर था। जाने का रास्ता संकरा, कच्चा-पक्का और घुमावदार था। लेकिन हमारा उत्साह कोई कम नहीं था। हम सब इस नये प्राकृतिक स्थल को देखने के लिए लालायित थे।

सैनिकों का जीवन जीने का अपना एक अलग ढंग होता है। जहाँ जाओ, मेस डिटैचमेंट साथ ही चलती है। अपने पाठकों को मैं 'मैस' शब्द का अर्थ समझा दूँ। छावनियों में प्रत्येक यूनिट की अपनी मेस होती है, जिसमें अविवाहित अधिकारी या जिनका परिवार उस स्टेशन पर नहीं रहता, खाना खाते हैं। यूनिट की सारी पार्टियाँ भी मेस में ही होती हैं। जैसे शहरों में क्लब होते हैं, लगभग वैसे ही सैनिक मेस होती हैं। लेकिन फ़ौजी मेस का वातावरण घर जैसा ही होता है। हमारी मेस के सबसे कुशल और प्रिय संचालक हवलदार ठाकुर प्रशाद हर एक की रुचि का ध्यान रखते थे। बच्चों में तो वो कुछ ज्यादा ही प्रिय थे, क्योंकि उन्हें जो चाहिए ठाकुर प्रशाद भैया कहीं से भी उपलब्ध करा ही देते थे।

इस पिकनिक के लिए भी सभी निश्चिन्त थे। ठाकुर प्रशाद भैया जो थे हमारी चिंता करने वाले। जाने वाले दिन की सुबह हम सब बड़े और बच्चे अपनी-अपनी गाड़ियों में सवार होकर इस सफ़र के लिए निकल पड़े। याद नहीं पर शायद तीन-चार जीप-जोंगा गाड़ियों में हम सब थे और ठीक पीछे वन टन में मेस डिटैचमेंट यानी खाने-पीने का बंदोबस्त, कुक, वेटर और ठाकुर प्रशाद भैया। दूरी तो केवल 106 किलोमीटर की थी, किन्तु पहाड़ी रास्ते पर गाड़ियाँ रेंगती हुई जा रही

थी। आसपास प्रकृति भी अपने पूरे ताम-झाम के साथ हमारे साथ-साथ ही चल रही थी। सब मज़े में थे।

आधे से अधिक रास्ता तय करने के बाद बच्चों को भूख सताने लगी और बड़ों को चाय-कॉफ़ी की तलब। हम सब अपनी गाड़ियों से उतरकर एक ढलान पर बैठकर उस गाड़ी की प्रतीक्षा करने लगे, जिसमें खाने-पीने का बंदोबस्त था। आधा घंटा तो अन्ताक्षरी में नये-पुराने गाने गाते बीत गया। आधा और बच्चों को बहलाने में। लेकिन मेस की गाड़ी का कोई नामो-निशान नहीं। रेडियो सेट पर बात करने से पता चला कि हमारे खाने-पीने के सामान वाली गाड़ी खराब हो गई है और उसके आने में दो-तीन घंटे लग सकते थे। हम और कितनी देर तक बच्चों को पहाड़ी झरने का पानी पिलाकर बहला सकते थे। समझ नहीं आ रहा था कि क्या किया जाए। आसपास घनी धुँध भी थी और घने जंगलों में कुछ साफ़ दिखाई नहीं दे रहा था। सूरज देवता भी आँख मिचौली खेल रहे थे। आगे का रास्ता भी अभी और लंबा था।

तभी हम से किसी की दृष्टि दूर पहाड़ी पर बैठे एक बकरवाल पर पड़ी, जो वहाँ अपनी भेड़-बकरियाँ चरा रहा था। एक सैनिक अधिकारी ने उसे आवाज़ लगाई, तो वह इतने सारे लोगों को और फ़ौजी गाड़ियों को देखकर कुछ हैरान हो गया। क्योंकि ऐसे स्थान पर लोगों का आना–जाना कम ही होता होगा। कुछ झिझककर वह हमारे पास आया, तो हमने उससे पूछा कि क्या यहाँ कुछ खाने को मिल सकता है? उसने बड़ी सहजता से उत्तर दिया, "हाँ जी, अगर आप यहाँ से कुछ ही दूर ढलान पर जाएँ, तो वहाँ एक छोटा-सा गाँव है। कुछ ही घर हैं, लेकिन वहाँ आपको कुछ-न-कुछ मिल सकता है। मेरा ठिकाना तो यहाँ से बहुत दूर और भी ऊपर है। नहीं तो मैं ही बच्चों के लिए दूध ले आता।"

हम भूख के मारे भी थे और उस अनजान पर्वत पर पहाड़ी गाँव देखने को भी उत्सुक थे। हमने उन कच्चे- पथरीले रास्तों से नीचे ढलना शुरू किया। थोड़ी ही दूरी पर दो-तीन घर दिखाई दिए। हमें उन लोगों ने नीचे ढलान से उतरते देख लिया था और वे सब घरों से बाहर खड़े जैसे हमारी प्रतीक्षा कर रहे थे। पास जाकर लगा कि वे लोग हमें देखकर खुश भी थे और हैरान भी। स्त्रियाँ और बच्चे दूर खड़े होकर हमें और हमारे बच्चों को बड़ी उत्सुकता से देख रहे थे।

हमारे साथ आए एक अधिकारी ने अपना परिचय दिया और फिर बड़े संकोच के साथ उन्हें हमारे इतनी दूर सड़क से नीचे उतरने का कारण बताया। कुछ मिनटों में वहाँ आदर-सत्कार की झड़ी लग गई। बीच आँगन में दो चारपाइयाँ बिछ गईं। किसी घर से मक्की और बाजरे की रोटियाँ, किसी घर से आम का अचार और कहीं से कुछ मीठा पीतल की थालियों में सजा हुआ आ गया। गाँव के सभी लोग हमारे आस-पास हाथ जोड़कर खड़े रहे। हमें उस स्वादिष्ट खाने का आनन्द तो आ रहा था, पर हम उनके निश्छल स्नेह से अभिभूत थे। दो-तीन आदमी दोनों अधिकारियों से बातचीत में मग्न थे। स्त्रियाँ और खाने का आग्रह करने लगीं। इतने में एक सात-आठ बरस का बच्चा भागता हुआ आया। उसके हाथ में ग्लूकोज़ बिस्किट के दो पैकेट थे। आते ही उसने वे पैकेट खोले और पूरी आत्मीयता के साथ हमारे बच्चों के बीच बाँटने लगा। उस दिन शायद हमारे बच्चों को इससे अधिक स्वादिष्ट चीज़ नहीं मिली होगी। अब वहाँ के बच्चे और हमारे बच्चे जाने क्या-क्या बातचीत कर रहे थे। गाँव के बच्चे उन्हें वहाँ लगे पेड़ों पर फल दिखलाकर खुश हो रहे थे। कहीं सेब, कहीं नाशपाती और कहीं खुमानियाँ लगी थीं।

हम लोग आराम से वहाँ बैठकर उन पहाड़ी लोगों से बातचीत करने लगे। उनका निर्मल स्नेह और आतिथ्य पाकर हम धनी हुए जा रहे थे। हमें लगा ही नहीं कि हम सब पहली बार मिल रहे हैं। पूरा वातावरण बहुत सुखद था। हम भूल ही गए थे कि यह हमारी मंज़िल नहीं थी। अभी तो हमें और दूर जाना था। इतने में ऊपर की पगडंडी से हमारा ड्राइवर उतरकर आ गया। उसने सूचना दी कि गाड़ियाँ ठीक होकर निकल पड़ी हैं और अब हम भी आगे की यात्रा कर सकते हैं।

हम सब उन्हें धन्यवाद कहते हुए आपस में गले मिलने लगे। शहरों के व्यवहार के अनुसार हमारे साथ आए एक अधिकारी ने अपनी जेब से कुछ रुपए निकाले। वह जैसे ही वहाँ खड़े सब से वृद्ध आदमी को पैसे देने लगा, वो भलामानस हाथ जोड़कर खड़ा हो गया। उसने बड़े स्नेह से कहा, " न साहब जी न। यह क्या कर रहे हैं आप? आप हमारे मेहमान हैं। हमारा सौभाग्य है कि हमें ईश्वर ने आपसे मिलने का

अवसर दिया। आप लोग फ़ौजी हैं, आप हमारी रक्षा करते हैं, आप तो हमारे भगवान हैं। पैसे देकर आप हमें शर्मिंदा मत कीजिए। आप को और कुछ चाहिए तो बिना झिझक के बता दीजिए।"

उनके इन स्नेहसिक्त शब्दों को सुनकर हमें लगा जैसे हम अपने ही घर से किसी यात्रा पर निकल रहे हैं। जाते-जाते उस छोटे-से गाँव के लोगों ने बच्चों को पेड़ से तोड़कर ताज़ा फल भेंट किए ।

यह बात आज से लगभग 35 वर्ष पुरानी है। तब हम सब के बच्चे बहुत छोटे थे। किन्तु आज भी जब हम हरिपुर धार की पिकनिक की बात करते हैं, सब से पहले उस गाँव की याद आ जाती है। अब युग बदल गया है। इसके साथ जीवन-मूल्य और आचार-व्यवहार भी। अब सोचती हूँ कि गाँव के लोगों के घर में रोटी-सब्ज़ी तो थी ही, लेकिन उस छोटे-से बच्चे ने अपने हिस्से के बिस्किट भी बड़े स्नेह से हमारे बच्चों को खिला दिए। वहाँ कोई दुकान तो थी नहीं। उस बच्चे को भी यह उपहार में मिले होंगे, जब कोई परिवार का सदस्य पास के किसी नगर में गया होगा।

सोचती हूँ... इसमें आश्चर्य की कोई बात ही नहीं। यही हमारी संस्कृति है और यही हमारी परम्परा। हम वहाँ से जो सेवा-सत्कार का उपहार लेकर जा रहे थे वह अमूल्य था और वो वह अनुभव किन्हीं शब्दों में गढ़ा नहीं जा सकता।

**shashipadha@gmail.com**

# गुदगुदी

**प्रीति गोविंदराज**
**अमेरिका**

"सिस्टर प्रीति" के संबोधन के साथ ही दो छोटे हाथों ने पीछे से मेरे घुटनों को आलिंगन में बाँधा, तो मैं बिल्कुल स्तब्ध रह गई! दिल्ली के सैन्य अस्पताल में कल ही तो मैं पहुँची थी, यहाँ मुझे कोई नहीं जानता था। आज मेरा पहला दिन था, इसलिए अस्पताल के प्रशासनिक विभाग की ओर मैं अनिवार्य कागज़ी कार्यवाही करने के लिए जा रही थी। ऐसे में, मुझे पीछे से पहचानने वाला कौन हो सकता है? विशेषकर तब, जब मैं यूनिफ़ॉर्म में थी। मन-ही-मन वह दिन याद आया, जब मैं अपनी वर्दी में ससुर जी से मिली थी और उन्होंने मुझसे वही औपचारिक वाक्य दोहराया था, जो वे किसी भी नर्सिंग ऑफ़िसर को देखकर कहने के आदी थे! वे भी मुझे पहचान नहीं पाए थे, जब मैं उनसे मुखातिब थी! "मैं बिल्कुल ठीक हूँ, सब मेरी बढ़िया देखभाल कर रहे हैं" उन्होंने यही कहा था! इतने निकटतम संबंधी मुझे पहचान न सके, तो यह कौन हो सकता था भला?

पलटकर देखा तो सात-आठ साल का एक लड़का खिलखिलाता हुआ हँस रहा था! उसकी निश्छल मुस्कान की धूप में मेरी अपनी मुस्कान भी सूरजमुखी फूल की तरह खिल उठी। उसके सिर पर लाल रंग की टोपी थी। "जैकब" मेरी स्मृति लोक की गहराइयों से एक नाम गूँजा। प्रत्यक्ष रूप से मैंने उससे मुस्कुराकर पूछा, "तुम जैकब हो ना?" तो वह खुशी से सहमति में ज़ोर-ज़ोर से सिर हिलाने लगा। अब उसकी मुस्कान और चौड़ी हो गई। "यहाँ कहाँ आ गए? अम्मची कैसी हैं? अकेले आए हो?" मैंने प्रश्नों की झड़ी लगा दी और वह अपने स्वभाव के अनुसार केवल मुस्कुराता रहा।

इतने में वहाँ उसके पिता, हवलदार मैथ्यू हाँफते हुए पहुँच गए। उनकी साँस फूल रही थी, बेचारे जैकब की गति का मुकाबला न कर सके। "गुड मॉर्निंग सिस्टर, जैकब बहुत मना करने पर भी दौड़कर आपके पीछे-पीछे आ गया। उसे पूरा विश्वास था कि यह आप ही हैं! मैं तो डर रहा था कहीं कोई और हो, लेकिन इसने मेरी एक न सुनी। जैकब अब ज़ोर-ज़ोर से हँसने लगा, जैसे उसने बाज़ी मार ली हो। वह मेरे दोनों हाथ थामकर झुला रहा था, उसके चेहरे की अभिव्यक्ति संतोष और गर्व के बीचोबीच डोल रही थी। पहले ही दिन अपरिचित स्थान में परिचित मुख देखने से मुझे भी अत्यधिक प्रसन्नता हो रही थी। "गुड मॉर्निंग मैथ्यू, आपका ट्रांसफ़र दिल्ली हो गया?" "जी सिस्टर, कर्नल जयप्रकाश सर पुणे से दिल्ली आ गए, तो हम भी उनके पीछे-पीछे यहीं आ

गए।" कर्नल जयप्रकाश ब्लड-कैंसर विशेषज्ञ हैं और पुणे में उनकी देखरेख में सैकड़ों ल्यूकेमिया रोगी थे। उनकी सेवा, कर्मनिष्ठता और समर्पण से हम सभी परिचित थे। सबके मन में उनके प्रति आदर और स्नेह था। "आप क्या पुणे से सीधे दिल्ली आ गईं?" "नहीं मैं पुणे से एम. एस. सी. करने के लिए 'सी एम सी वेल्लोर' चली गई थी, बस कल ही यहाँ पहुँची हूँ। अब मेरी ड्यूटी नर्सिंग स्टूडेंट्स के लेक्चरर की है। "अच्छा मैंने इसी रोड पर 'स्कूल ऑफ़ नर्सिंग' देखा है, वहीं रहेंगी?" "आपकी शादी हो गई?" "जी हाँ, तीन महीने पहले ही हुई है!" "बधाई हो आपको, आपके पति कहाँ हैं?" "वे तो अमेरिका में हैं, कुछ समय बाद मुझे भी वहाँ जाना है।" "अरे वाह, बहुत बढ़िया" "जी धन्यवाद, आज नये ट्रांसफ़र की कागज़ी कार्यवाही करने जा रही थी। यह मेरा सौभाग्य है कि आप दोनों से मुलाकात हो गई!" "सिस्टर, येशु के आशीर्वाद से जैकब अब बिल्कुल ठीक हो गया।" मुझे ज्ञात था, जैकब के बाल उड़ गए थे, इसलिए उसने लाल टोपी लगा रखी थी। कीमोथेरपी का वह अवशेष, जिसके मिटने में कुछ समय लगेगा। बाल अवश्य उग जाएँगे, वह बात उस संघर्ष की सबसे आसान कड़ी थी। उसकी आँखों की चमक और उसका प्रसन्नचित्त चेहरा बता रहे थे कि रोग उससे कोसों दूर है। कीमोथेरपी देने वाली सिस्टर प्रीति से भी आज उसे कोई शिकायत नहीं।

उसका मासूम चेहरा देखकर खुशी से मेरी आँखें छलछला गईं। "जैकब पर हमेशा प्रभु की कृपा बनी रहे, यही प्रार्थना है।" "जी हाँ सिस्टर, आपको याद होगा अम्मची जैकब के साथ पूरे एक साल रही थी।" "अम्मची कैसी हैं? बिल्कुल ठीक हैं 'कोइलोन' वापस चली गईं।" "आप उन्हें मेरा स्नेह और प्रणाम अवश्य दीजिएगा" "बिल्कुल आज ही फ़ोन पर उन्हें बताऊँगा कि आपसे मुलाकात हुई, वे आपको अक्सर याद करती हैं।"

बीते दिनों की झलकी मन की आँखों में तैर गई। उन दिनों हम 'कॉलिज ऑफ़ नर्सिंग' के नर्सिंग कैडेट्स की श्रेणी में आती थीं। उस वर्ष पीडियाट्रिक्स यानि 'बाल-रोग' सिखाया जाता था। इसलिए हमारी क्लीनिकल ड्यूटी भी पीडियाट्रिक-वार्ड में तय थी। वहाँ अनेक विभाग थे, उनमें एक था कैंसर वार्ड। जैकब से पहली भेंट वहीं हुई। उस मासूम को एक्यूट ल्यूकेमिया था, जो एक तरह का ब्लड कैंसर था। इस मर्ज़ का इलाज कीमोथेरेपी था, जो रोगी को कई दिनों तक अस्वस्थ कर देता है। कभी मिचली, कभी उलटियाँ, तो कभी थकान। रक्त की संरचना जानने के लिए कई बार सुई से खून निकालकर जाँचा जाता। चाहे दवाइयों का असर देखना हो या दवाइयों को धमनियों द्वारा शरीर तक पहुँचाने का रास्ता हो, दोनों ही उन दिनों सुई के माध्यम से संभव होते थे। छोटे बच्चों का यह कष्ट देखना असहनीय था। नन्हे जैकब की स्थिति और भी दयनीय थी। जैकब की माँ गर्भवती थी, इसलिए उसकी दादी ही उसकी देखभाल के लिए वॉर्ड में उसके साथ रहती। जैकब की बड़ी-बड़ी काली, चमकीली आँखें और घुँघराले बालों के कारण हमें बाल गोपाल-सा लगता था। इतना प्यारा बच्चा कि उससे अपनत्व स्वतः ही हो जाता। जो भी उसे सुई चुभाता, उससे वह तीन-चार दिन तक नाराज़ रहता। उसकी आधी नाराज़गी दादी से रहती या फिर हमसे। दादी जब कहती कि सिस्टर से क्यों रूठ रहे हो, बेटा? अगर दवाई नहीं लोगे तो ठीक कैसे होगे? तो वह उनकी गोद से उठकर, क्रोध भरी मुद्रा में कहीं दूर जाकर चुपचाप बैठ जाता। उसे हँसाने के लिए जो भी तरकीब किए जाते हैं, सब व्यर्थ साबित होते। बस एक ही नुस्खा काम आता, वह थी - गुदगुदी! गुदगुदी करने पर वह खिलखिलाकर हँस ही देता, चाहे उसने रूठने की ठानी हो! फिर हमारे सारे दोष भुला दिए जाते।

बच्चों का स्नेह निर्मल जल की तरह होता है, मन में कोई द्वेष कहाँ रह पाता? कुछ दिनों तक वह तीन वर्षीय बच्चा अपना दर्द भूल जाता। तीन सप्ताह बाद फिर कीमोथेरेपी लगाने का समय आ जाता। वही चक्र घूमने लगता, शारीरिक पीड़ा के कारण जैकब मुँह फुलाकर हमसे रूठ जाता। उसके उदास चेहरे को देखकर, उसको हँसाने की कोशिश करती या फिर चुपचाप उसकी किताब में चित्रकारी कर देती। मुझे पता था कि वह मेरे जाने के बाद घंटों उनमें रंग भरता रहेगा। कुछ समय के लिए ही सही, उसका मन बहल जाता होगा। मैं भी बचपन में घंटों इसी तरह चित्र बनाया करती थी। उन दिनों हॉस्टल जाती, तो मेरा मन अनमना-

सा रहता। यही कामना करती सब बच्चे स्वस्थ हो जाएँ और अपने-अपने घर मुस्कुराते हुए चले जाएँ। हमारे भाग्य चमक जाते, जब वह प्यार से गले लगा लेता और प्यारी-सी मुस्कान के साथ अपने चित्र भी दिखा देता। जब उसकी तारीफ़ होती, तब वह अपना गोल-मटोल चेहरा अपनी दादी के कंधे पर रखकर मंद-मंद मुस्कुरा देता। उसके समक्ष हँसी-ठिठोली और गुदगुदी करने वाली मैं, अपने कमरे में बैठकर जैकब और उसकी ही तरह बाकी बच्चों के लिए ईश्वर से प्रार्थना करती। आज ऐसा लगा जैसे मेरी प्रार्थना प्रभु ने सुन ली। ईश्वर ने मुझे किसी का दुख बाँटने का अवसर तो दिया ही था और उसके साथ-साथ उनके प्रेम का उपहार भी, इससे अधिक कोई क्या चाह सकता है? आज जैकब शायद मेरे पास ईश्वर-दूत बनकर ही आया था!

"जैकब अब सिस्टर को बाय कर दो, हमें लैब भी जाना है! वरना हमें देरी हो जाएगी, लौटकर स्टेला को स्कूल से लेना है।" "अच्छा, जैकब की बहन का नाम, स्टेला है? अब तो बड़ी हो गई होगी!" "जी सिस्टर, वह साढ़े चार साल की है, नर्सरी में पढ़ती है।" "बहुत अच्छी बात है, जैकब तुम स्टेला के साथ खेलते हो?" "कभी-कभी", जब वह गुड़ियों के साथ नहीं खेलती!" "तुम्हें कौन-सा खेल पसंद है?" "मुझे क्रिकेट और कैरम बोर्ड पसंद है।" "वाह, बहुत खूब, क्या अभी भी तुम ड्रॉइंग करते हो?" "सिस्टर आपके जाने के बाद वह हर सिस्टर से आग्रह करता, आप मुझे चित्र बनाना सिखा दो। "हवलदार मैथ्यू की यह बात सुनकर मैं हँस पड़ी, पुरानी यादें ताज़ा हो गई। "हाँ सिस्टर, मुझे चित्र बनाना बहुत अच्छा लगता है। मुझे पापा ने रंग खरीद कर दिये हैं और मैं स्टेला को भी सिखाता हूँ। आप की तरह इतनी अच्छी चित्रकारी नहीं है मेरी" जैकब फिर से हँसने लगा। "तुम्हारी भी बहुत अच्छी हो जाएगी, अभ्यास करते रहो। मुझे भी बहुत समय लगा था", "अच्छा सच?" जैकब की आँखें इस खुलासे की सच्चाई परख रही थी। "क्या कभी मेरी भी चित्रकारी आपकी तरह हो जाएगी?" "हाँ, बिल्कुल! लेकिन अभी आप अपने पापा के साथ लैब जाओ और कर्नल जयप्रकाश सर को मेरा गुड मॉर्निंग भी कहना।" "ओके सिस्टर ज़रूर। "जैकब जल्दी से सिस्टर को 'बाय' कर दो" हवलदार मैथयू ने घड़ी पर नज़र डाली। हम सब अतीत की सैर से वर्तमान में लौट आए थे। "मैंने सुना है जैकब आप अब बड़े हो गए हो और आपने सुई से दोस्ती कर ली। अब आप इतना रोते नहीं, क्योंकि अब कोई बार-बार ब्लड टेस्ट नहीं होती और न ही लाल रंग की कीमोथेरपी ही लेनी पड़ती है! "हाँ मैं अब नहीं रोता, क्योंकि अब मैं अच्छा हो गया हूँ। हम येशु से रोज़ प्रार्थना करते हैं! "जैकब अब चलो वरना लैब में भीड़ हो जाएगी।" मैंने बाय की मुद्रा में हाथ उठाए ही थे कि जैकब मुझसे लिपट गया। इतने वर्षों बाद मिला था। यदि गले लगे बिना विदा होता, तो शायद हमारी दोस्ती हमसे रूठ जाती और फिर उसे मनाने के लिए हमें शायद गुदगुदी करनी पड़ती!

जैकब के जाने के बाद पलकों पर रुके मोती ढुलक गये, क्या पता यह बूँदें कब आँखों में आ गए? नन्ही-सी मुलाकात मानो संतोष और प्रफुल्लता की औषधि थी। मुझे ऐसा प्रतीत हुआ कोई अपना मुझे बरसों बाद मिला है। मन ईश्वर से कृतज्ञता जताता रहा। मुझे अभी भी विश्वास नहीं हो पा रहा था कि तीन साल के नन्हे जैकब ने मुझे कैसे अब तक याद रखा?

**preethigovindaraj2@gmail.com**

# फ़ौजी डिब्बे में मेरी रेल यात्रा

**मो. आफ़ताब आलम**
**महाराष्ट्र, भारत**

रेल यात्रा का अपना अलग ही आनंद होता है। कम-से-कम खर्च में, जल्दी-से-जल्दी गंतव्य स्थानों तक पहुँचाने में रेलवे हमेशा मददगार साबित होती है। बात चाहे एक शहर से दूसरे शहर घूमने की हो, सगे-संबंधियों से मिलना हो, परीक्षा देनी हो या फिर कोई अन्य वजह। प्रत्येक यात्रा के दौरान अलग-अलग संस्मरण भी होते हैं, लेकिन वह दिन मुझे आज भी याद है, जब मैं बिहार के पटना में आयोजित आशुलिपिक की लिखित परीक्षा में शामिल होने जा रहा था। भागलपुर स्टेशन पर जैसे ही पहुँचा, पटना की ओर जाने वाली एक ट्रेन प्लेटफ़ॉर्म क्र.1 से छूट रही थी और मैं हाँफ़ते-हाँफ़ते ट्रेन के एक डिब्बे में चढ़ गया और अंदर घुसते ही पता चला कि यह तो फ़ौजी का डिब्बा है। मैं अंदर से घबरा गया, लेकिन एक फ़ौजी ने मुझे बुलाया और आराम से बैठने की इजाज़त दे दी, जब मैंने उनसे यह कहा कि यदि मैं यह ट्रेन नहीं पकड़ता, तो शायद आज की परीक्षा में शामिल नहीं हो पाता। यह सुनते ही फ़ौजी ने मुझे पटना तक उसी डिब्बे में यात्रा करने के लिए कहा। दोपहर में पटना में उतरते समय मैंने उन्हें धन्यवाद दिया और फिर पटना जंक्शन से बाहर निकलकर रिक्शा पकड़कर हाईकोर्ट की ओर चल पड़ा। हालाँकि उस परीक्षा में मुझे सफलता नहीं मिली, लेकिन वह दृश्य मेरे मस्तिष्क में बार-बार घूमता है।

रेल यात्रा का वह संस्मरण मुझे बार-बार गुदगुदाता है। तिलकामाँझी भागलपुर विश्वविद्यालय से 1992 में स्नातक की शिक्षा पूरी कर मैंने कुछ दिनों तक स्थानीय समाचार-पत्रों में पत्रकारिता की। 1994 में अपनी नौकरी की तलाश में देश की आर्थिक राजधानी मुंबई आ गया। चूँकि मेरा छोटा भाई यहाँ जरी (कशीदाकारी) के एक कारखाने में काम करता था, इसलिए मुझे रहने के लिए ठिकाना ढूँढना नहीं पड़ा। मुंबई के शेयर बाज़ार इलाके में हर्बर्ट्स मेकेनिकल वर्क्स में अपने औपचारिक कैरियर की शुरुआत की। कुछ महीने ही काम किया था, तभी बुधवार के दिन अचानक फ़ोन की घंटी घनघनाई और कंपनी के मालिक श्री जी.सी. गिडवानी ने मुझे फ़ोन पकड़ा दिया। यह फ़ोन मेरे पिता का था, जिन्होंने बताया कि पटना हाईकोर्ट में आशुलिपिक पद की लिखित परीक्षा हेतु एक कॉल लेटर आया है और यह परीक्षा तीन दिन बाद ही है।

फ़ोन रखने के बाद मैं बड़ा ही चिंतित हो गया। मुंबई से भागलपुर पहुँचना था और मेरे पास समय सिर्फ़ तीन दिन का था। मगर क्या करता कैरियर का सवाल था। मैंने हिम्मत जुटाकर कंपनी के मालिक से एक सप्ताह की छुट्टी माँगी। बड़े अनुरोध के बाद मुझे छुट्टी मिली और यह बताया गया कि एक सप्ताह से अधिक की छुट्टी नहीं मिलेगी। गुरुवार के दिन सुबह मैंने भागलपुर एक्सप्रेस पकड़ी। शुक्रवार की रात 8 बजे भागलपुर पहुँचा और अब मुझे अपने गाँव हरनथ जाने की चुनौती थी, जो भागलपुर शहर से 18 कि.मी. की दूरी पर था। चूँकि उस समय गाँव जाने का रास्ता ठीक नहीं था। सड़कें अच्छी नहीं होने के कारण शाम के समय कोई रिक्शा नहीं जाती थी और फिर चोर-डकैतों का भी बोलबाला था। काफ़ी कोशिश के बाद एक रिक्शा वाला 300 रुपए में गाँव चलने को तैयार हुआ, लेकिन वह इस शर्त पर कि रात में वहीं रुकना होगा और फिर सुबह वहाँ से निकल जाएँगे। मुझे यह सुझाव पसंद आया, क्योंकि मुझे गाँव जाकर अपना वह कॉल लेटर लेकर फिर दूसरे दिन पटना पहुँचना था।

हम लोग भागलपुर स्टेशन से निकले। करीब आधे घंटे के बाद जब मैं कजरैली पुलिस स्टेशन के पास पहुँचा, तो वहाँ काफ़ी भीड़-भाड़ थी और स्थानीय लोगों ने पुलिस स्टेशन को घेर रखा था। बीच सड़क पर एक पेड़ को इस तरह लगा दिया गया था कि कोई भी गाड़ी पार न हो सके। इस तरह वहाँ पर गाड़ियों की कतारें लगी हुई थीं। घंटों वहीं रुकना पड़ा। रात काफ़ी हो चुकी थी और आस पास का दृश्य काफ़ी डरावना था। लोगों में अफ़रा-तफ़री मची थी। कुछ लोगों ने हमें पीछे वापस जाकर दूसरे रास्ते से जाने की सलाह दी। खैर हम लोगों ने किसी तरह पीछे की ओर आकर दूसरा रास्ता पकड़ लिया। कच्ची सड़क पर धूल उड़ाती हमारी ऑटो रिक्शा तेज़ी

से बढ़ रही थी। थोड़ी दूर जाने के बाद एक ऐसा पुल आया, जो बारिश के दौरान टूट गया था और वह उसी अवस्था में पड़ा हुआ था। वहाँ से रिक्शा जाने का कोई रास्ता नहीं था। चारों ओर घुप अंधेरा छाया हुआ था। दूर-दूर तक रोशनी नहीं दिखाई दे रही थी। होती भी कैसे? बिजली नहीं थी और 10 बजे रात में गाँव में भला कोई महँगा कैरोसीन तेल कौन जलाए? सड़क के दोनों किनारे आम और अन्य पेड़ लगे हुए थे। चारों ओर सन्नाटा छाया हुआ था। हम लोग काफ़ी डर गए। अचानक पास से कुछ लोगों की आपस में बातचीत करने की आवाज़ सुनाई पड़ने लगी। हम लोग सहम गए। एक पल के लिए कुछ नहीं सूझ रहा था कि अब क्या करें। ऐसा लगा अब दोनों की मौत इसी अंधेरे रास्ते में लिखी है।

चंद लम्हों के बाद दोनों ने वहाँ से वापस उसी रास्ते पर लौटने का निर्णय लिया और फिर ड्राइवर ने बड़ी तेज़ी से गाड़ी दौड़ायी। ऐसा लग रहा था कि कुछ लोग हमारी गाड़ी का पीछा कर रहे हैं। लेकिन गाड़ी तेज़ चल रही थी। उबड़-खाबड़ धूल भरे रास्ते के बीच हमारी गाड़ी बड़ी तेज़ी से दौड़ रही थी और हम फिर से पहुँच गए उसी हंगामे वाले स्थल पर जहाँ अब कुछ शोर कम हो गया था। थोड़ी देर में मामला शांत हो गया और हम लोगों को वहाँ से निकलने का रास्ता दिया गया। जान बची लाखों पाए। आम तौर पर भागलपुर से हमारे गाँव का रास्ता 45 मिनट का होता है, लेकिन उस दिन करीब तीन घंटे लग गए। रात 12 बजे घर पहुँचा और खाना खाकर सो गया। रिक्शा ड्राइवर को भी मैंने अपने घर के एक किनारे बंगले में सोने की जगह दी और राहत की साँस ली। मैंने माँ से परीक्षा का कॉल लेटर माँगा, तो जवाब सुनकर फिर होश उड़ गए। कॉल लेटर मेरे पिता के पास था और वे उसी दिन शाम को परिवार की एक शादी में गए थे, वह भी लगभग 30 कि.मी. दूर। चूँकि उस समय घर पर फ़ोन या संपर्क का दूसरा कोई साधन तो था नहीं, इसलिए पिता जी के लौटने का इंतज़ार करने लगा। मैंने ऑटो रिक्शा ड्राइवर को लौट जाने के लिए कहा। पिता जी जब शाम को लौटे, तो उनसे आशुलिपिक के लिए लिखित परीक्षा का कॉल लेटर लिया, लेकिन उस समय भागलपुर जाना संभव नहीं था, सो मैंने अगले दिन सुबह सवेरे जाने का फ़ैसला किया।

रविवार की सुबह 5 बजे मैं अपने परिवार के सदस्य के साथ मोटर साइकिल से भागलपुर की ओर चल पड़ा। जैसे ही नाथनगर के पास पहुँचा, वहाँ स्थानीय लोगों द्वारा पानी की किल्लत के खिलाफ़ बड़ी रैली निकाली गई थी और पूरा रास्ता जाम था। गाड़ी जाने का कोई साधन नहीं था। रास्ता खुलने के इंतज़ार में घंटों निकल गए इसी तरह। जब भागलपुर स्टेशन पहुँचा और पटना के लिए गाड़ी का पता लगाया, तब यह बताया गया कि एक ट्रेन प्लेटफ़ॉर्म क्रमांक 1 पर खड़ी है और वह कुछ ही देर में खुलने वाली है। मैं तुरंत टिकट काउंटर की ओर दौड़ पड़ा, मगर वहाँ की लंबी कतार देखकर हैरत में पड़ गया। आदमी-पर-आदमी चढ़ा जा रहा था। हर यात्री अपने-अपने चक्कर में था और पहले टिकट खरीदना चाहता था। उन्हें इस बात की कोई परवाह नहीं थी कि किसी यात्री की गाड़ी भी छूट सकती है। खैर बड़ी मुश्किल के बाद मैं टिकट लेने में सफल हुआ और भागते-भागते प्लेटफ़ॉर्म की ओर बढ़ा, तो देखकर होश उड़ गए। गाड़ी खुल चुकी थी और मैं प्लेटफ़ॉर्म पर ट्रेन पकड़ने के लिए सरपट दौड़ रहा था। हाँफ़ते-हाँफ़ते एक डिब्बे में चढ़ने का प्रयास किया, लेकिन उसमें सफलता नहीं मिली और पैर फिसलने से गिरते-गिरते बचा। फिर भी मैंने हिम्मत नहीं हारी और दोबारा प्रयास किया और इस बार एक डिब्बे में घुसने में कामयाब हो गया।

दो बजे से मेरी आशुलिपिक की लिखित परीक्षा थी। वैसे तो मैं कई तरह की परीक्षाओं का सामना कर चुका था, लेकिन आशुलिपिक की परीक्षा में पहली बार शामिल हुआ था। एक बड़ा-सा हॉल जिसमें हज़ारों परीक्षार्थियों को एक साथ बैठा दिया गया था। नियत समय पर परीक्षा प्रारंभ हुई और हॉल, में जगह-जगह लगाए गए लाउडस्पीकर से आशुलिपि का डिक्टेशन गूँजने लगा। आवाज़ से ऐसा लग रहा था, जैसे डिक्टेशन देने वाला व्यक्ति कहीं दूसरी जगह बैठा था और हॉल में माइक से उसकी आवाज़ गूँज रही थी। कई बार बात समझ नहीं आ रही थी, फिर भी आशुलिपि की पेंसिल शॉर्टहैंड नोटबुक पर दौड़ रही थी। ऐसा लग रहा था कि जीवन की रेस में कहीं पीछे न छूट जाऊँ।

लगभग 3 बजे बाद हमारी परीक्षा समाप्त हुई। अभी

तक तो मेरे मन में केवल कैरियर की तस्वीरें घूम रही थीं, लेकिन अचानक याद आया कि मुंबई वापस भी जाना है और ड्यूटी ज्वाइन करनी है। मैंने गहरी साँस ली और फिर चल पड़ा पटना रेलवे जंक्शन की ओर। रेलवे स्टेशन के पास पहुँचकर पहले भोजन किया और फिर शाम को भागलपुर की ओर जाने वाली एक ट्रेन पकड़ ली। रात 9 बजे भागलपुर पहुँचा, तो फिर वही पिछली बार हुई घटना की याद सताने लगी। पास में पैसे भी सीमित ही थे, इसलिए बड़ी होटलों में ठहरने का तो सोचना ही बेकार था। ऐसे में मुझे तातारपुर का मुसाफ़िरखाना याद आया। मुझे याद है बचपन के दौर में जब मैं एक बार बीमार हुआ था, तब हमारे पिता जी डॉक्टर को दिखाने के लिए कई रोज़ वहीं ठहरे थे। मुसाफ़िरखाना में ठहरने का शुल्क काफ़ी कम था, इसलिए वहाँ कोई भी ठहर सकता था, लेकिन साफ़-सफ़ाई का बुरा हाल था। मन के चाहने से सब कुछ नहीं होता है। कई बार लोगों को मन मारकर भी रहना होता है। सो मैंने मुसाफ़िरखाना का कमरा एक रात के लिए किराए पर ले लिया और होटल में खाना खाया। सोमवार सुबह 9 बजे उसी इलाके के पेट्रोल पंप के पास से हमारे गाँव के लिए जीलानी ट्रावेल्स की बस चलती थी। मैं उसी बस से लगभग 11 बजे अपने गाँव पहुँच गया। दोपहर का खाना खाया और फिर अगले दिन मंगलवार को मुंबई जाने के लिए अपना सब सामान इकट्ठा किया। परिवार के सदस्य खासकर माँ और नानी एक सप्ताह तक रुकने की ज़िद कर रहे थे और मैं जाने की ज़िद पर अड़ा था। चूँकि मेरी माँ का कोई सगा भाई या सगी बहन नहीं थी, इसलिए नानी ने शादी के बाद से ही पूरे परिवार को मायके में ही रख लिया था। इस कारण नानी से हम लोगों का लगाव ज्यादा था। लेकिन मुझ पर अपने कैरियर की धुन सवार थी, सो मैंने पहली बार नानी की बातों को भी ठुकरा दिया और दूसरे दिन सुबह मुंबई के लिए रवाना होने का निर्णय लिया।

आधे मन से माँ ने अपनी हामी भरी और रास्ते के लिए नाश्ता और कुछ पकवान बनाने में जुट गई। जब भी मैं माँ की ओर देखता, तब ऐसा लगता अब उनकी आँखों से पानी छलक जाएगा। लेकिन माँ भी चालाक निकलीं, वह भी अपनी आँखों में पानी को सुखा देती थी, ताकि मुझे पता न चल सके। मंगलवार सुबह फिर से भागलपुर की ओर चल पड़ा। एक बैग में कुछ कपड़े, कच्चा चना, पकवान और एक पानी का थर्मस लिए बस में चढ़ने लगा। चढ़ते समय परिवार को एक टकटकी लगाकर देख रहा था, जैसे पता नहीं अब अगले साल कब किनसे मुलाकात होगी। स्टेशन पहुँचकर मैंने सामान्य श्रेणी से ट्रेन का टिकट लिया और फिर किसी तरह एक सामान्य डिब्बे में सीट पाने में सफल हो गया। फिर गहरी साँसें लीं और थोड़ी ही देर में ट्रेन चल पड़ी। मोबाइल का ज़माना तो था नहीं, जो सूचित कर देता कि मेरी ट्रेन चल पड़ी है। फिर भी समय देखकर लोग पता लगा लेते हैं कि अब ट्रेन चल पड़ी होगी। गाड़ी धीरे-धीरे चलने लगी और मैं खिड़की से बाहर शहर एवं उसके आसपास का नज़ारा देखने लगा। चूँकि मेरा कॉलिज जीवन अधिकांशतः इसी इलाके में गुज़रा था, इसलिए उससे गहरा लगाव हो गया था। गाड़ी तेज़ चल रही थी और ऐसा लग रहा था कि एक-एक पेड़ हमसे अलविदा कह रहा हो।

समय के साथ ट्रेन भी अपनी रफ़्तार में थी। बार-बार घर की याद आ रही थी। डिब्बे में यात्रियों की संख्या सीटों से कई गुना अधिक थी। सामान्य डिब्बे में यात्रियों की रेलम-पेल और गर्मी में पसीने की बदबू। भीड़ इतनी कि शौचालय में भी यात्री समाचार-पत्र और चादर बिछाकर बैठने पर मजबूर थे। फिर भी दिल-ही-दिल में एक सीट को लेकर खुश था। इसी याद में कई घंटे गुज़र गए और अब भूख महसूस होने लगी। वैसे तो माँ ने रास्ते में खाने के लिए काफ़ी कुछ दिया था, लेकिन ट्रेन में रबड़ी, लिट्टी चोखा, छोले-भटूरे, घुगनी मुढ़ी, बदाम, आदि खरीदकर खाने का मज़ा ही कुछ और है। कुछ लोग चाय-गरम, चाय-गरम की आवाज़ लगाते, तो एक साहब खराब चाय ले लो, खराब चाय ले लो.....कहकर लोगों को अपनी ओर आकर्षित करते थे। उनकी चाय अन्य चाय वाले से बेहतर होती थी। ये खराब चाय वाले अक्सर इस ट्रेन में मिल जाते हैं और वे खराब चाय वाले के नाम से मशहूर हो गए हैं। हालाँकि अब कई लोगों ने उनकी लोकप्रियता भुनाने के लिए खराब चाय ले लो, खराब चाय ले लो.....कहकर लोगों को अपनी ओर आकर्षित करना शुरू किया, लेकिन उनमें उनके जैसा स्वाद नहीं मिलता। हर कोई अपनी चाय को

खराब बताकर अच्छी चाय का एहसास दिलाने की कोशिश करता। इस तरह अब लोगों को असली और नकली में अंतर करना मुश्किल हो गया है।

मुगलसराय (अब पं. दीनदयाल उपाध्याय जंक्शन) से पहले उस डिब्बे में एक वृद्ध व्यक्ति चढ़ा। उनकी नज़रें आसपास की सीटों की ओर दौड़ रही थीं। लेकिन कोई अवसर न देखते हुए बीच में ही अपना सामान रखकर उस पर बैठ गए। यह देखकर मुझे शर्मिंदगी महसूस होने लगी। मैंने उनसे पूछा....बाबा.....कहाँ तक जाना है। बेटा मुगलसराय तक जाना है.....यह सुनकर मैंने अपने पास की सीट पर थोड़ी जगह बनाकर उन्हें बैठने का इशारा किया। यह देखकर वे बहुत खुश हो गए। मुगलसराय आते ही उन्होंने अपना सामान उठाया और हमें धन्यवाद देते हुए वे डिब्बे से उतर गए। देर रात हो गई और आँखें बंद होनी शुरू हो गईं। हम लोग अपनी-अपनी सीटों पर डटे थे और बैठे-बैठे झपकियाँ लेते। बीच-बीच में नींद खुलती थी, तो अपने सामान की ओर भी देखता रहता था। इस तरह राह कट रही थी। डिब्बे में कुछ युवा वर्ग भी थे, जो मस्ती करते हुए अपनी-अपनी गप्पे हाँक रहे थे। सुबह जब शौचालय जाने का ख्याल आया, तब सीट के नीचे रखा जूता गायब देखकर होश उड़ गए। इधर-उधर तलाश किया, लेकिन नहीं मिल पाया। किसी ने बताया कि थोड़ी देर पहले एक बच्चा झाड़ू लगा रहा था शायद उसी ने हाथ साफ़ कर दिया। मैंने अपने दिल को तसल्ली दी कि चलो बाकी सामान तो सुरक्षित है और हो सकता है कोई मुसीबत आने वाली थी, जो टल गई।

बुधवार की शाम को मैं मुंबई के दादर स्टेशन पहुँच गया। मुंबई की धरती पर नंगे पाँव स्पर्श करना मेरे लिए कुछ इस प्रकार सुकूनदायक लगा, जैसे किसी पवित्र स्थल में बिना चप्पल के प्रवेश करने पर लगता है। खैर मैंने वहाँ से लोकल ट्रेन से कुर्ला स्टेशन उतरकर बेस्ट की बस पकड़ी और रात 10 बजे शिवाजी नगर स्थित अपने निवास पर पहुँच गया। यह निवास दरअसल जरी का एक कारखाना था, जहाँ मेरे छोटे भाई काम करते थे और मुझे वहीं ठहरने की अनुमति मिली हुई थी। दूसरे दिन मैंने अपनी 1250 रुपए की प्राइवेट नौकरी फिर से ज्वाइन कर ली। हालाँकि मैं उस नौकरी से संतुष्ट नहीं था, क्योंकि साल में सिर्फ़ 50 रुपए की वृद्धि होती थी। दूसरी नौकरी की तलाश के लिए छुट्टियाँ नहीं मिल पाती थीं। वैसे भी कंप्यूटर के आने से आशुलिपिकों की माँग घट गई थी। इस क्षेत्र में लड़कियों का बोलबाला अधिक था। इसलिए मुझे उसमें कोई खास अवसर नहीं दिखाई दे रहा था। मैं अक्सर अपने कंपनी मालिक को बताए बिना ही प्रतियोगिता परीक्षाएँ देता रहता था। कर्मचारी चयन आयोग की लिखित परीक्षा भी पास की, लेकिन अंतिम चयन में सफल नहीं हो सका।

इस बार भी आशुलिपिक की परीक्षा में सफलता नहीं मिली, लेकिन मैंने हार नहीं मानी और मेरा उत्साह बना हुआ था। चूँकि मैंने अपनी पढ़ाई के दौरान ही भागलपुर में पत्रकारिता प्रारंभ की थी, इसलिए मैंने मुंबई में भी पत्रकारिता के क्षेत्र में अपना कैरियर तलाश करना प्रारंभ कर दिया। अंततः मुझे एक हिंदी साप्ताहिक में उपसंपादक की नौकरी मिल गई। एक वर्ष बाद मैंने एक दैनिक अखबार ज्वाइन किया। थोड़े वर्ष बाद मुझे देश के सबसे बड़े एक मीडिया हाउस में मुंबई ब्यूरो के रूप में काम करने का अवसर प्राप्त हुआ। निरंतर प्रयास करते हुए जीवन में एक ऐसा मोड़ आया, जिसने हमारी ज़िंदगी बदल दी और मुझे एक सरकारी संस्थान में राजभाषा विभाग में नौकरी मिल गई। इस तरह मेरे कैरियर का सपना साकार हुआ।

रेल यात्रा अब हमारे जीवन का अभिन्न अंग बन गया है। अब मैं हर साल अपने परिवार के साथ उसी भागलपुर एक्सप्रेस से मुंबई आता-जाता हूँ। ढाई दशक बीतने के बाद भी मुझे उस फ़ौजी डिब्बे की रेल यात्रा का स्मरण बार-बार आता है। वास्तव में, जीवन की यात्रा भी किसी रेल यात्रा से कम नहीं। हर बार नए यात्री और नया अनुभव देखने और सुनने को मिलता है। सहयात्री अच्छा मिल जाए, तो यात्रा बहुत मज़े में कट जाती है। धन्य हो भारतीय रेलवे।

**aaftaby2k@gmail.com**

# सूरीनाम नहीं न्यूयॉर्क में दी गयी दूसरी आहुति

**सुरेश कुमार श्रीचंदानी**
**अजमेर, भारत**

1999 में 14 से 18 सितंबर तक आयोजित छठे विश्व हिंदी सम्मेलन - लंदन में मेरी ओर से विश्व हिंदी यज्ञ में पहली आहुति दी गई थी, तब मुझे ऐसा आभास नहीं हो पा रहा था कि मैं दूसरी आहुति कहाँ दूँगा? यद्यपि लंदन के उस सम्मेलन के बाद सातवाँ विश्व हिंदी सम्मेलन फ़िजी में होने की प्रबल संभावना थी, किंतु इस संबंध में वर्ष 2003 के आरंभ तक कुछ भी स्थिति स्पष्ट नहीं हो पा रही थी। कुछ ही समय के बाद भारत सरकार के विदेश मंत्रालय ने 5 से 9 जून, 2003 को सूरीनाम की राजधानी पारामारिबो में सातवाँ विश्व हिंदी सम्मेलन आयोजित किए जाने की आधिकारिक घोषणा कर दी। कई अनुकूल स्थितियाँ बनने के बाद भी अंतिम समय में मैं अपनी ओर से निर्णय नहीं कर पाया और एक बड़ी अंतर्बाधा से ग्रसित हो गया एवं मानसिक सुविधा का संतुलन मेरे इस सम्मेलन में भाग लेने के पक्ष में नहीं ठहर पा रहा था, इसलिए विश्व हिंदी यज्ञ में मेरी तरफ़ से दी जाने वाली दूसरी आहुति सूरीनाम में मैं नहीं दे पाया।

समय चक्र के चलते रहते ही जब दिनांक 10 जनवरी, 2007 को अजमेर के दैनिक भास्कर समाचार-पत्र में प्रकाशित सुप्रसिद्ध हिंदी विद्वान श्री जवाहर कर्नावट का लेख "विश्व भाषा बनने का सपना" पढ़ा तो ज्ञात हुआ कि जुलाई 2007 में अगला विश्व हिंदी सम्मेलन भारतीय विद्या भवन के सहयोग से न्यूयॉर्क में आयोजित होगा। यह खबर सही निकली। कुछ समय के बाद ही भारत सरकार के विदेश मंत्रालय की तरफ़ से न्यूयॉर्क में 13 से 15 जुलाई, 2007 को आठवाँ विश्व हिंदी सम्मेलन आयोजित किए जाने और इसका केन्द्रीय विषय "विश्व मंच पर हिंदी" होने की आधिकारिक घोषणा कर दी गई। मैंने बिना विलंब किए इस सम्मेलन के लिए पंजीकरण कराने का आवेदन उन्हें भेजा, तो मुझे पंजीकरण क्रमांक 1014 आवंटित किए जाने की सूचना मिल गई। दिनांक 08/06/2007 को सामूहिक रूप से आवास व्यवस्था के लिए अग्रिम राशि भी भेज दी। इसी दौरान मैं अपने प्रतिदिन के लेखन-कार्य आदि में व्यस्त रहने लग गया था। दिनांक 01 जून से 18 जून, 2007 तक मैं "आत्मिक व्यक्तित्व के विकास श्रृंखला" की मेरी दूसरी पुस्तक "आत्मविस्मृति सुप्रबन्धन" के एक मध्यवर्ती प्रक्रमण को पूरा कर चुका था। शेष 98 पुस्तकों के कार्य को मैंने न्यूयॉर्क सम्मेलन से लौटकर आने के बाद करने का विचार किया। 18 जून, 2007 के बाद के समय को मैंने अहर्निश रूप से केवल-और-केवल आठवें विश्व हिंदी सम्मेलन में मेरे प्रतिभागन संबंधी आवश्यक कार्रवाइयाँ करने के लिए आरक्षित कर दिया। 18 जून, 2007 को प्रातःकाल से लेकर सायंकाल तक एक मुद्दे पर बैठकर लेखन-कार्य में इतना तल्लीन रहा कि मुझे आसपास क्या हो रहा है – इसकी कोई सुध-बुध नहीं थी, लेकिन सायंकाल 7.30 बजे सूट-बूट पहनकर घर से बाहर जाने के लिए निकला। दरअसल उस समय मेरा सूट-बूट पहनकर तैयार हो जाना मेरे स्तर पर न्यूयॉर्क सम्मेलन में मेरे भाग लेने के लिए आवश्यक समस्त कार्रवाइयों के लिए कमर कस लेने का भी सूचक था। मेरे लिए कमर कस लेने का अर्थ था कि जो 'एकाग्रता', 'संकल्पशील बनना' और 'लक्ष्योन्मुख बनना' शीर्षकांकित पुस्तकों में जिस उपायविद्वता की चर्चा की है, उसे अब सात समंदर पार न्यूयॉर्क जाकर विश्व हिंदी यज्ञ में आहुति देने के विभिन्न प्रक्रमणों में अपने जीवन में उतारकर देख लेना। उसी दिन मैं अपने घर के निकट स्थित एक इन्टरनेट कैफ़े में संयुक्त राज्य अमेरिका की एच बी 1 वीज़ा का आवेदन देने की तैयारी में लग गया, लेकिन इसके लिए अधिकृत वेबसाइट पर जाने से जब मुझे ज्ञात होता है कि ऐसी वीज़ा का आवेदन कर देने के बाद भी साक्षात्कार का समय चार-छह महीनों के बाद ही मिल पाता है, तो यह जानकर कुछ समय के लिए निराशा के भँवर के प्रभाव में आ गया, लेकिन मैंने हिम्मत नहीं हारी और यह सोचने लगा कि विश्व हिंदी सम्मेलन के लिए भारत में संयुक्त राज्य अमेरिका के दूतावास ने कुछ-न-कुछ विशेष व्यवस्था अवश्य की होगी। अगले ही दिन मैंने भारत के विदेश मंत्रालय के हिंदी कक्ष से इस बाबत जानकारी चाही, तो मुझे कुछ सकारात्मक जानकारी मिल पायी।

इसके अगले सप्ताह ही मैंने अपना वीज़ा आवेदन तैयार कर और निर्धारित बैंक में वीज़ा शुल्क जमा कराकर इंटरनेशनल ट्रेड टावर, नेहरू प्लेस दिल्ली के पास स्थित वी.एफ.एस केन्द्र पहुँच गया, लेकिन कुछ समय बाद मेरी खुशी का ठिकाना न रहा, जब भोजनावकाश के आसपास ही वी.एफ.एस केन्द्र के अधिकारियों ने यह सार्वजनिक सूचना मौखिक रूप से सुनाई कि आठवें विश्व हिंदी सम्मेलन के प्रतिनिधियों को वीज़ा देने के लिए दिनांक 29 जून, 2007 और समय 10.00 से 12.00 बजे नियत किया गया है। यह जानकर मैंने राहत की साँस ली तथा समस्त विहित कार्रवाइयाँ संपन्न कर लीं। मुझे सारी घटनाएँ कालक्रम के अनुसार स्मरण में आती हैं, क्योंकि वे एक श्रृंखला के रूप में हैं। इसी सम्मेलन में जाने के लिए प्रयासरत श्री जगदीप डांगी (अब स्वर्गीय) मुझे मिले, उनका जीवन-परिचय जानकर मैं अभिभूत हुआ। मैंने उन्हें बताया कि मैं लंदन के सम्मेलन में भाग ले चुका हूँ, तो उन्होंने मुझसे अनेक प्रश्न किए और मुझसे मार्गदर्शन माँगा। मैंने भी कई मूल्यवान सुझाव उन्हें दिये, जिन्हें उन्होंने उपयोगी पाया। अब मेरे लिए सब कुछ अनुकूल हो रहा था। दिनांक 29/06/2007 को मैंने वीज़ा आवेदन भरकर विहित केन्द्र पर भली-भाँति दाखिल कर दिया। दिनांक 02/07/2007 को मुझे एच.बी 1 वीज़ा की स्वीकृति हो गई। दिनांक 03/07/2007 को मैंने यात्रा टिकट आरक्षित करा लिया। दिनांक 05/07/2007 को मेरे नियोक्ता ने मुझे विदेश-यात्रा की अनुमति दे दी। दिनांक 04/07/2007 को मैंने आवश्यक चिकित्सा जाँचें करा लीं और उनके आधार पर दिनांक 06/07/2007 को दी ओरिएण्टल इंश्योरेंस कम्पनी से एक लाख यू.एस डॉलर की समुद्रपारीय चिकित्सा दावा बीमा पॉलिसी खरीद ली।

न्यूयॉर्क के लिए मेरी यात्रा का आरम्भ 11 जुलाई, 2007 को होता है। इन्दिरा गांधी अंतर्राष्ट्रीय विमानपत्तन दिल्ली पर मैं थोड़ा-सा पहले ही पहुँच गया। विमानपत्तन की अनिवार्य प्रक्रिया से गुज़रने के दौरान मेरी मुलाकात राजभाषा विभाग, गृह मंत्रालय के एक वरिष्ठ अधिकारी श्री शमशेर अहमद खान से हुई, जो विमानपत्तन के अधिकारियों से भारत सरकार की राजभाषा नीति के अन्तर्गत विमानपत्तन पर प्रयुक्त होने वाले विभिन्न प्रपत्रों को राजभाषा अधिनियम की धारा 3 (3) के अनुसरण में द्विभाषिक रूप में उपलब्ध कराने पर ज़ोर दे रहे थे। जब उत्प्रवास की कार्रवाइयाँ संपन्न हो गईं, तब मैंने श्री शमशेर अहमद खान से विस्तृत परिचय प्राप्त किया और उन्हें मेरे स्वयं के भी भारत सरकार की राजभाषा नीति के कार्यान्वयन के कार्यों से जुड़े होने की बात उन्हें बतायी। मुझे उनके बारे में यह जानकर सुखद अनुभूति हुई कि वे बाल-साहित्य से भी जुड़े हैं और वे आठवें विश्व हिंदी सम्मेलन में "हिंदी बाल-साहित्य : वर्तमान सन्दर्भ" पर अपने शोध आलेख का वाचन करेंगे। ऐरोफ़्लोट एयरलाइन्स की एस यू 536 उड़ान से हम मॉस्को विमानपत्तन, पहुँचे जहाँ हमें कुछ प्रतीक्षा करनी थी। इस दौरान मेरी मुलाकात चैन्नई की हिंदी प्राध्यापिका डॉ. मधु धवन तथा प्रोफ़ेसर डॉ. निर्मला एस. मौर्य से हुई। मॉस्को से उड़ान संख्या एस.यू 315 टी के द्वारा जॉन एफ केनेडी विमानपत्तन तक की यात्रा सफलतापूर्वक संपन्न हुई। उस विमानपत्तन पर ही आठवें विश्व हिंदी सम्मेलन के आयोजकों के द्वारा स्थापित एक स्वागत पटल मिला, जहाँ संपर्क साधने पर वहाँ के भार साधकों ने पेनसिल्वेनिया होटल के लिए परिवहन सुविधा उपलब्ध करा दी और मैंने वहाँ पहुँचकर अपने-आपको व्यवस्थित कर लिया और मुझे इस बात का संतोष था कि ठीक समय पर, ठीक स्थान पर पहुँचना हो गया है।

दिनांक 13 जुलाई, 2007, शुक्रवार विश्व हिंदी के लिए ऐतिहासिक दिन था। इसका साक्षी बनने का अवसर मुझे मिला। इसलिए मैं गहन रुचि, जिज्ञासा और उत्साह से इस सम्मेलन का उद्घाटन होते हुए देखने के लिए तैयार था। पहले दिन होटल पेनसिल्वेनिया के 18वें तल पर स्थित भोजनशाला में ही अल्पाहार के अवसर पर मेरे कुछ पूर्व परिचितों के दर्शन हो गए। उनमें से एक श्री रामेन्द्र भट्टाचार्य थे, जो पी.ई.सी ऑफ़ इण्डिया के हिंदी विभाग में महाप्रबन्धक पद पर कार्य कर रहे थे। वे केन्द्रीय अनुवाद ब्यूरो दिल्ली में मेरे त्रैमासिक अनुवाद प्रशिक्षण कार्यक्रम के अक्टूबर-दिसंबर 1996 के समूह में मेरे सह-प्रशिक्षणार्थी रह चुके थे। दूसरे थे श्री सुबोध कुमार, जो किसी केन्द्रीय कार्यालय के ही राजभाषा विभाग के उच्चाधिकारी थे। उन्होंने भी केन्द्रीय

अनुवाद ब्यूरो के इसी प्रशिक्षण कार्यक्रम के कुछ सत्रों में मुझे अनुवाद प्रशिक्षण प्रदान किया था। तीसरे थे श्री दिनेश कुमार चमौला, जिनके साथ मैंने अप्रैल 1994 में भारतीय पेट्रोलियम संस्थान देहारादून में हिंदी अधिकारी पद के लिए आयोजित साक्षात्कार दिया था। चौथे थे श्री बालेंदु दाधीच, जिनसे मेरी मुलाकात एक बार 1987 में दिल्ली अहमदाबाद मेल (रेलगाड़ी) में अजमेर ब्यावर के बीच मेरी रोज़ाना की यात्रा के दौरान हुई थी और मैंने उन्हें बताया था अजमेर के समाचार-पत्र 'दैनिक नवज्योति' में प्रकाशित उनके द्वारा लिखित लेख मैं पढ़ता रहता हूँ। इन चारों से बहुत पहले हुई मुलाकातों के लंबे अंतराल के बाद जो अगली मुलाकात हो रही थी वह इसी सम्मेलन में, यानी यह सम्मेलन बहुत पुराने परिचितों से फिर से मिलाने की कड़ी बन रहा था और एक अद्‌त सुखद अनुभूति करा रहा था।

उद्‌घाटन अवसर में भाग लेने के लिए हम सारे प्रतिभागी एवं अन्य संयुक्त राष्ट्र कार्यालय ठीक समय पर पहुँच गए। मुख्य द्वार पर सुरक्षा जाँच के लिए पंक्तिबद्ध होकर प्रतीक्षा करने के दौरान मेरी दृष्टि एक शिल्प कृति पर पड़ी, जिसमें एक बहुत बड़ी बन्दूक के अग्र भाग को किसी आवरण से बाँध दिया था, तो मेरे पास ही खड़े किसी लेखक ने टिप्पणी की कि यह तो बन्दूक की मूठ को बाँध दिया गया। इस पर मैं उन लेखक महोदय की अभिव्यक्ति के स्तर के प्रखर होने से प्रभावित हुआ और मन-ही-मन यह सोचने लगा कि शब्दों के जादूगर लेखकों और साहित्यकारों के सान्निध्य मात्र से अभिव्यक्ति-कौशल निखर सकता है। यद्यपि उनकी टिप्पणी कि "यह तो बन्दूक की मूठ को बाँध दिया गया है" पर गहन विचारन करते हुए अपनी अंतर्राष्ट्रीय कानून की पढ़ाई के आधार पर मैं इस निष्कर्ष पर पहुँचा कि यह संयुक्त राष्ट्र संघ के मुख्य उद्देश्य "विश्व शान्ति और सुरक्षा" सुनिश्चित करने के आधार पर अहिंसा का ही सार्वभौमिक प्रतीक है।

संयुक्त राष्ट्र संघ मुख्यालय भवन के सभागार क्रमांक चार में आहूत आठवें विश्व हिंदी सम्मेलन का उद्‌घाटन समारोह अत्यन्त ही भव्य था। संयुक्त राष्ट्र संघ के तत्कालीन महासचिव श्री बान की मून ने अपने उद्‌घाटन-भाषण की शुरुआत 'नमस्ते- क्या हाल चाल है' कहकर की, जिससे मेरे जैसे कई श्रोताओं में आत्मीयता का संचार हो गया। उन्होंने भारत से अपने संबंधों और वरिष्ठ कूटनीतिज्ञ श्री सतीश नाम्बियार से मिले मार्गदर्शन का स्मरण किया। उन्होंने यह भी बताया कि उनका दामाद भारतीय है और उनके नाती का जन्म भारत में ही हुआ है। उनके भाषण में आने वाले हिंदी शब्दों का करतल ध्वनियों से स्वागत किया जाता रहा। सम्मेलन के अतिथियों का स्वागत भारत के राजदूत रणेन्द्र सेन के द्वारा किया गया। भारत के विदेश राज्यमंत्री श्री आनन्द शर्मा के द्वारा सम्बोधन दिया गया एवं भारतीय सांस्कृतिक संबंध परिषद् के द्वारा प्रकाशित गगनाञ्चल पत्रिका के विशेषांक तथा विश्व के हिंदी विद्वानों की निर्देशिका का लोकार्पण किया गया। मंच पर आसीन थे संयुक्त राष्ट्र संघ में भारत के स्थायी प्रतिनिधि श्री निरूपम सेन, मॉरीशस के शिक्षा और मानव संसाधन मंत्री श्री धर्मवीर गोकुल तथा नेपाल के उद्योग मंत्री श्री राजेन्द्र महतो। उद्‌घाटन-सत्र में ही भारत के प्रधानमंत्री डॉ. मनमोहन सिंह का संदेश वीडियो कॉन्फ़ेरेंसिंग द्वारा सुनाया गया। इसके बाद के कार्यक्रम फ़ैशन इंस्टीट्यूट ऑफ़ टेक्नोलॉजी के सभा कक्षों में होने थे। यह भवन होटल पेंसिल्वेनिया से 8-10 मिनट की भ्रमण दूरी पर ही स्थित था। इसी भवन के ग्रेट हॉल में भारतीय सांस्कृतिक संबंध परिषद् के द्वारा आयोजित तीन प्रदर्शनियों का उद्‌घाटन भारत के विदेश राज्य मंत्री श्री आनन्द शर्मा द्वारा किया गया। पहले दिन ही अपराह्न 3.00 बजे से सायंकाल 6.00 बजे तक तीन शैक्षिक समानांतर सत्र आयोजित हुए, जिनके विषय थे – 1. संयुक्त राष्ट्र में हिंदी 2. देश-विदेश में हिंदी शिक्षण : समस्याएँ और समाधान 3. वैश्वीकरण, मीडिया और हिंदी।

शैक्षिक सत्र 1: 'संयुक्त राष्ट्र में हिंदी' में मैं उपस्थित रहा, जिसमें विश्व हिंदी सचिवालय की तत्कालीन महासचिव डॉ. विनोद बाला अरुण के द्वारा प्रस्तावित 'विश्व हिंदी निधि' और 'विश्व हिंदी कोश' के सुझाव मेरे स्मरण में बार-बार आते रहते हैं, लेकिन मैं देखता हूँ कि इनके लिए किसी भी स्तर पर कोई सार्थक पहल या प्रयास नहीं हो रहा है। इसी सत्र के वक्ता प्रोफ़ेसर हरमन वैन आल्फन (यू.एस.ए) से मेरी बातचीत हुई, जो पूर्णतः हिंदी में थी।

'वैश्वीकरण और हिंदी' वाले सत्र को भी मैंने गहन रुचि से

सुना तथा प्रोफ़ेसर रामबक्ष जाट के द्वारा सुझाए गए वैश्वीकरण के सात 'एम' 1. आधुनिकीकरण 2. मध्यम वर्ग 3. बाज़ार 4. संचार-माध्यम 5. बहुराष्ट्रीय कम्पनियाँ 6. अप्रवासन 7. सम्पन्नता का स्मरण मैंने हमेशा के लिए कर लिया।

प्रथम संध्या में भव्य कवि-सम्मेलन आयोजित हुआ, जिसमें भारतीय कवियों यथा – डॉ. कैलाश बाजपेयी, गुलज़ार, कन्हैयालाल नन्दन, रामा पाण्डेय, अशोक चक्रधर, सुरेश शर्मा, बलबीरसिंह 'करुण' तथा आलोक श्रीवास्तव के साथ-साथ प्रवासी भारतीय कवि डॉ. पद्मेश गुप्त, बृज गोयल, उषा राजे सक्सेना और अनूप भार्गव थे।

सम्मेलन का दूसरा दिन यानी 14 जुलाई (शनिवार)। इस दिन 'विदेशों में हिंदी' (प्रवासी हिंदी साहित्य), 'हिंदी के प्रचार-प्रसार में सूचना प्रौद्योगिकी की भूमिका', 'हिंदी के प्रचार-प्रसार में हिंदी फ़िल्मों की भूमिका' तथा 'हिंदी, युवा पीढ़ी और ज्ञान विज्ञान' – विषयों पर शैक्षिक सत्र आयोजित हुए। विदेशों में हिंदी सृजन सत्र के बीज वक्ता श्रीमती उषा राजे सक्सेना को मैंने सुना तथा सत्र समाप्ति के बाद उन्हें बताया कि मैं उनसे छठे विश्व हिंदी सम्मेलन में भी मिल चुका हूँ, तो उन्होंने मुझसे पूछा कि आपका इस सम्मेलन में कैसे आना हुआ है और आपका हिंदी के क्षेत्र में क्या योगदान है ? मैंने उन्हें बताया कि मैं भारत सरकार की बीमा कम्पनी दी ओरिएण्टल इंश्योरेंस के हिंदी विभाग में गत 19 वर्षों से हिंदी अनुवादक पद पर कार्यरत हूँ और मैंने हिंदी साहित्य की राष्ट्रीय काव्य-धारा की सबसे बड़ी कृति 3001 मनहरण मुक्तकों की कविता पुस्तक 'भारत भारतीयता भारतीय नायक' की रचना की है तथा आत्मिक व्यक्तित्व के विकास की श्रृंखला पर सौ पुस्तकों के लेखन-कार्य में जुटा हुआ हूँ, तब उन्होंने सन्तोष भाव से सिर हिलाया। 'हिंदी के प्रचार-प्रसार में सूचना प्रौद्योगिकी की भूमिका' वाले सत्र में मैंने श्री बालेंदु दाधीच को सुना। हिंदी के प्रचार-प्रसार में फ़िल्मों की भूमिका में डॉ. निर्मला एस. मौर्य (चैन्नई) को पूरा सुना तथा श्री गुलज़ार का अध्यक्षीय भाषण भी सुना। उन्होंने कई बातों के साथ-साथ मुंशी प्रेमचन्द के फ़िल्म उद्योग से जुड़ाव और फ़िल्मी परिवेश तथा प्रकाशन और फ़िल्म मीडिया की भिन्नता के साथ सामंजस्य बिठाने के बारे में बताया था। सत्र समाप्ति के बाद मैंने श्री गुलज़ार को मेरी लिखित कविता पुस्तक 'भारत भारतीयता और भारतीय नायक' की प्रति भेंट की। 'हिंदी, युवा पीढ़ी और ज्ञान-विज्ञान के सत्र के संचालक श्री राम चौधरी को सुना और मैंने उन्हें बताया कि आप हरियाणा (भारत) से हैं और मैं आपसे छठे लंदन सम्मेलन में मिला था और मैंने विश्व हिंदी न्यास (वर्ल्ड हिंदी फ़ांउडेशन) यू.एस.ए बाबत बातचीत की। इसी दिन रात्रि में भोजन के उपरान्त उस्ताद शुजात हुसैन खान का सितार वादन हुआ और श्रीमती गीताचन्द्रन के द्वारा भरतनाट्यम् की प्रस्तुति दी गई। अगले दिन होटल पेंसिल्वेनिया की लिफ़्ट में मुझे उस्ताद शुजात हुसैन खान मिले, तो मैंने उन्हें बताया कि मैं अजमेर से हूँ और उनसे जानना चाहा कि क्या आपका कभी अजमेर की ख़्वाजा मोइनुद्दीन चिश्ती की दरगाह में जाना हुआ है ? तो उन्होंने कहा कि मैं हर साल वहाँ ज़ियारत करने ज़रूर जाता हूँ।

हिंदी के महाकुम्भ के समापन दिवस यानी 15 जुलाई, 2007 (रविवार) के दिन चार समानान्तर सत्र चले, जिनके विषय थे – 'हिंदी भाषा और साहित्य : विविध आयाम', 'साहित्य में अनुवाद की भूमिका', 'हिंदी और बाल-साहित्य' एवं 'देवनागरी लिपि'। 'साहित्य में अनुवाद की भूमिका' मेरे लिए गहन रुचि का विषय था, सो मैं इस सत्र में बैठा। मेरे परिचित डॉ. शमशेर अहमद खान को सुनने के लिए 'हिंदी और बाल-साहित्य : वर्तमान सन्दर्भ' का भी श्रवण लाभ प्राप्त किया।

15 जुलाई, 2007 को ही सुप्रसिद्ध गायक श्री पंकज उदास का गज़ल कार्यक्रम हुआ। "चाँदी जैसा रंग है तेरा, सोने जैसे बाल" जिसे दूरदर्शन आदि पर सुना था, अब उसे आमने-सामने सुनने का आनन्द मिला। कार्यक्रम के बाद मैं पंकज उदास जी से मिला और उन्हें बताया कि उनका गाया हुआ "एक तरफ़ उसका घर एक तरफ़ मयकदा" गीत का प्रशंसक हूँ, तो वे ऐसा सुनकर मुस्करा दिये। 26 फ़रवरी, 2024 को उनके निधन का समाचार सुनने पर मुझे उनकी वह मुस्कान याद आयी और मैंने ईश्वर से उनकी आत्मा को शांति प्रदान करने के लिए प्रार्थना की।

इस सम्मेलन के अन्त में 20 भारतीय, 20 विदेशी विद्वानों और "हिंदी का भविष्य" विषय पर आयोजित निबंध प्रतियोगिता के दो विजेताओं सुश्री स्वर्णिमा (दिल्ली) तथा

सुश्री सोनिया सोनल (पंजाब) का सम्मान किया गया। भारत के प्रधानमंत्री के विशेष प्रतिनिधि सांसद डॉ. कर्णसिंह का समापन भाषण संस्कृति, दर्शन और भारतीय साहित्य के अनेक पक्षों का स्पर्शी था, जिसके श्रवण से मैं चूकना नहीं चाहता था। समापन कार्यक्रम को अपनी गरजदार आवाज़ से सुप्रसिद्ध कमेंटेटर जसदेव सिंह के द्वारा गुंजायमान बनाया गया।

मेरी इस यात्रा का मुख्य उद्देश्य ही विश्व हिंदी यज्ञ में दूसरी आहुति देना था, इसलिए पर्यटन पक्ष पर मैंने अधिक ध्यान नहीं दिया। मैं शाकाहरी हूँ तथा सात्विक जीवन जीने के लिए प्रयासरत रहता हूँ, जबकि न्यूयॉर्क में कई प्रकार के विलासिता के साधनों की भरमार है। मैं केवल प्रातः और सायंकाल में होटल पेंसिल्वेनिया के चहुँ ओर चार-पाँच किलोमीटर तक पैदल भ्रमण कर न्यूयॉर्क की भव्यता को देख-जान लेता था तथा कई बार मुझे सह प्रतिनिधि श्री रामेन्द्र भट्टाचार्य की संगति मिल जाती थी। मैं भारत 18 जुलाई को लौट आया और कुशलतापूर्वक यात्रा संपन्न होने पर ईश्वर को धन्यवाद दिया।

मुझे इस सम्मेलन के दौरान कुछ अन्य प्रतिनिधियों का सान्निध्य भी मिला, जिनमें श्री रिचर्ड पार्कर, पी.एच.डी हैं, जो इण्डियाना के रहने वाले थे। महाराष्ट्र के श्री दिलीप रघुवंशी (अमरावती) और पुणे के विश्व पत्रकार श्री सदानन्द गॉडगिल की जोड़ी ने मुझे प्रभावित किया। राजभाषा विभाग भारत सरकार की निदेशक सुश्री मोहिनी हिंगोरानी से भी मेरा मिलना हुआ। उन्होंने मुझे बताया कि मैं एक बार आपके नगर अजमेर में आई थीं और आपके घर के पास स्थित हालानी दरबार में ठहरी थीं।

इस सम्मेलन की थाती के रूप में "विश्व हिंदी निर्देशिका" एवं गगनाञ्चल (भारतीय सांस्कृतिक संबध परिषद् दिल्ली), विश्व हिंदी और युवा पीढ़ी (नेशनल बुक ट्रस्ट, दिल्ली) और विश्व मंच पर हिंदी का "मीडिया" का विशेषांक – जुलाई सितंबर 2007 (केंद्रीय हिंदी संस्थान, आगरा) मेरे घर के पुस्तकालय में शामिल हुईं और उन्हें कई बार पढ़कर विश्व हिंदी के ज्ञान में मैं वृद्धि करता रहता हूँ।

**shrichandani3@gmail.com**

# भारत की बात बताती हूँ

**डॉ. सुधा जगदीश गुप्त**
**मध्य प्रदेश, भारत**

कितना सुखद लगता है ना! एक प्रदेश से, दूसरे प्रदेश में प्रवेश करना ! वैसे भी वाणी का बदलाव हमें आकर्षित करता है।

दिसंबर के अंतिम सप्ताह में जब मध्य प्रदेश, यूपी, दिल्ली एवं अन्य प्रदेशों में कड़कड़ाती ठंड से दाँत बजते हैं, लोग अलाव तापते हैं, तब माया नगरी मुंबई में पंखे घर-घर चलते हैं। अजब है मौसम के मिज़ाज! अलग-अलग देशों में अलग-अलग रंग दिखाता है और मन है कि हर मौसम का लुफ़्त उठाना चाहता है। अब हम छोटे कस्बाई शहरों के लोगों को लोकल ट्रेन और मेट्रो में जाना भी अलग आह्लादकारी लगता है। मैट्रो के अपने-आप दरवाज़े खुलना, बंद होना, एक्सीलेटर में चलना, चढ़ना-उतरना कस्बाई लोगों को एक मायावी दुनिया के चित्र रंगों में समेट लेता है। हम ठहरे ठेठ कस्बाई। कटनी मध्य प्रदेश से पहली बार जब मुंबई आई, तब इस बंबईया भोर और रैन का अजब नज़ारा देखा। रात्रि 2:00 बजे जब फ़्लाइट से आई, तब पूरे रास्ते में कारों, टैक्सी के काफ़िले, लाल दहकती लाइट्स से सड़कें अंगारों की तरह दहक रही थीं। ट्रैफ़िक जाम। ओफ्फ! अचानक ही कह बैठी, मुंबई कभी सोती नहीं भई!

आप भी सोचेंगे, इस दौर में जब लोग विदेश यात्राओं की बात करते हैं, तब आप भारत के शहरों, कस्बों, महानगरों की यात्रा की बात करती हैं। सच पूछिए! भारत की बात ही निराली है। मुझे इस समय प्रसिद्ध गीतकार 'इंदीवर' का गीत याद आ रहा है -

"है प्रीत जहाँ की रीत सदा मैं गीत वहाँ के गाता हूँ, भारत का रहने वाला हूँ, भारत की बात बताता हूँ।"

मुंबई से बड़ोदरा यानी महाराष्ट्र से गुजरात जा तो रहे थे, लेकिन रेल में सामने जो दंपत्ति यात्री बैठे थे, वे बिहार

के थे। मुझे उनकी बोली-बानी रिझा रही थी। मैंने कहा, "बहुत अच्छी बोली लग रही है आपकी।" वे बोले, "हमार विश्वास करी, भोजपुरी भाषा सीखल आ कउनो मुश्किल काम नइखे।"

मैं मुस्कुराई। हम बहू-बेटे बुंदेली में बात कर रहे थे, उन्हें हमारी बोली अच्छी लग रही थी। उनके बच्चे 'हमार फ़ोनवा देहल, हमार फ़ोनवा' करके झगड़ा कर रहे थे। मैंने कहा - लो मेरा मोबाइल लोगे? इसमें भी गेम है। बड़ा बच्चा झट से तैयार हो गया। मैंने कहा, "लेकिन एक शर्त है। मेरी एक पहेली का उत्तर बताना होगा।" बच्चा माँ का मुँह देखने लगा।

माँ ने कहा, "बुझौवल। अच्छा ठीक है।" मैंने कहा, "बुंदेली में पूछूँ?" बच्चों की माँ ने कहा, " हम बुंदेलखंड में भी रहे हैं। तब ठीक है," "तन्नक सी मन मन्नक सी, हल्दी जैसी गाँठ, चटाक चूमा लै गई तौ हाय दइया रे।" बूझो तो जाने? सभी यात्री आनंद ले रहे थे। पीछे वाले एक यात्री ने फटाक से बोला – 'बर्रैया'

सभी यात्री रस आनंद लेते हुए तालियाँ बजाकर हँस पड़े। बच्चा चतुर था बोला, "आप हमार बुझौवल बतइबे?"

मैंने कहा, "पूछो।" उसने माँ की तरफ़ मुँह पर उंगली रखकर कहा, "आप नहीं बताइए।" "चऊकी पर बन बैइठिल रानी, सिर पर आग बदन पर पानी बतइबे।"

अब मेरी परीक्षा की घड़ी थी, मैंने दिमाग पर ज़ोर डालते हुए कहा, "यह तो मोमबत्ती है।" बच्चा ताली बजाने लगा। कुछ देर बच्चे मोबाइल गेम भूल गए।

हम सब ने भोजन किया और करीब 10:30 बजे रात्रि हम बड़ोदरा स्टेशन पहुँचे। उतरते ही सबसे पहले स्टेशन का मुआयना किया, कुछ खास है क्या? स्टेशन के सामने की तरफ़ हरे पेड़ की पेंटिंग थी, हरियाली का प्रतीक। एक फ़ोटो क्लिक की और ऑटो से होटल 'रिवाइवल लॉर्ड्स इन' पहुँचे, जो शानदार रोशनी से जगमगा रहा था। इतनी रात्रि में भी दो-तीन ठेले वाले फाफड़ा, ढोकला की आवाज़ लगाते निकले। फाफड़ा, ढोकला गुजरात के प्रसिद्ध व्यंजन हैं, जैसे - आगरे का पेठा, बंगाल का रसगुल्ला।

रात्रि में हमने बढ़िया होटल में विश्राम किया। दूसरे दिन सवेरे बड़ोदरा में विश्व की सबसे ऊँची मूर्ति 'स्टैच्यू ऑफ़ यूनिटी' देखने के लिए बेहद उत्सुकता और जिज्ञासा थी। आदरणीय प्रधानमंत्री मोदी जी ने गुजरात का नाम विश्व पटल पर स्वर्ण अक्षरों से दर्ज करा दिया है। लौह पुरुष सरदार वल्लभ भाई पटेल की 182 मीटर ऊँची प्रतिमा लौह धातु से निर्मित है। बड़ोदरा से करीब 90 किलोमीटर दूर इतनी ऊँची प्रतिमा का निर्माण कि ऊपर सिर करके देखने में सिर से टोपी ही नीचे गिर जाए,अद्त संरचना है। आपको पता ही नहीं लगेगा कि आप प्रतिमा के भीतर लिफ़्ट से प्रवेश कर रहे हैं। अंदर जाने के बाद संग्रहालय है, जहाँ सरदार पटेल, गांधी, नेहरू और स्वाधीनता संग्राम की फ़िल्म आप देख सकते हैं। आश्चर्यजनक संरचना है। पूरी मूर्ति का ढाँचा इस प्रकार निर्मित किया गया है, निश्चित ही दाँतों तले उंगली दबानी पड़ेगी। वहाँ तैनात गार्ड ...कर्मचारी कह रहे थे, सब प्रधानमंत्री मोदी की माया है। इतनी ऊँचाई पर चढ़ने के लिए थोड़ी-थोड़ी दूरी पर एस्केलेटर एवं मूविंग वॉक लगे हुए हैं, ना चलने की दिक्कत, ना चढ़ने की। अद्त नायाब निर्माण किया गया है। यहीं से सामने दिखाई देता है, 'सरदार सरोवर बाँध' का दृश्य।

विशेष बात इस क्षेत्र में यह है कि जहाँ देखो वहाँ जगहों का नामकरण - एकता नगर, एकता क्रूज़, एकता गार्डन, एकता नर्सरी, एकता मॉल, एकता सिटी ही लिखा दिखाई देगा और नीचे उतरने पर ठीक सामने विशाल दीवार पर लिखा हुआ था, "एक भारत, श्रेष्ठ भारत।" यह देखकर मन प्रसन्न हो गया। यहाँ खड़े होकर सबने शान से छायाचित्र लिए।

दूसरी खास बात इस क्षेत्र में यह है कि जितने भी ऑटो ड्राइवर हैं, सब लड़कियाँ हैं, महिलाएँ हैं। एक भी पुरुष ऑटो ड्राइवर नहीं है। लड़कियों को आगे बढ़ाने का यह भी एक तरीका है। सारे ई-रिक्शा गुलाबी रंग में दिखाई दे रहे थे और सवारी लिए जा रही थीं, हमारी अपनी बेटियाँ। संग्रहालय देखने के बाद आप फिर एस्केलेटर से ऊपर जाकर पूरी अनावृत प्रतिमा का अवलोकन करेंगे और लौटेंगे सुखद यादें लिए। देश को तरक्की के सोपान पर चढ़ते हुए तथा विज्ञान और तकनीक के क्षेत्र में प्रगति करते हुए देखकर आप चमत्कृत होंगे।

बहुत ही अद्त, अनुपम है भारत। अलग-अलग धर्म-

संप्रदाय को मानने वाले लोग, अपनी ही मस्ती में डूबे रहते हैं। ईश्वर, खुदा ईसा, शैव वैष्णव, शाक्य, सब भक्ति-रस में डूबे अपने रास्ते चुनते मुक्ति का मार्ग ढूँढते हैं, मन्नतें माँगते हैं। मंज़िल सबकी एक है, रास्ते अनेक। अयोध्या में सीता-राम धुन, मथुरा में राधे-श्याम धुन, मुंबई में गणपति, बंगाल में देवी, हर तरफ़ प्रभु तेरे रूप की माया, कहीं धूप, कहीं छाया।

हमारा क्या -"कबिरा खड़ा बाज़ार में, सबकी माँगे खैर, ना काहू से दोस्ती ना काहू से बैर।" हम पोईचा स्वामीनारायण के दर्शनार्थ निकल पड़े। दुनिया के सबसे बड़े मंदिर का खिताब मिला है अक्षरधाम दिल्ली के स्वामीनारायण मंदिर को जो 100 एकड़ ज़मीन पर फैला है। इसकी चर्चा दिल्ली यात्रा के तहत करूँगी। फिलहाल बड़ोदरा गुजरात की बात करते हैं। स्वामीनारायण मंदिर देश-विदेश में अपनी भव्यता और खूबसूरत स्थापत्य कला के लिए जाने जाते हैं। गुजराती में एक कहावत है कि -"साधु हो तो स्वामीनारायण का " मन में प्रश्न उठना स्वाभाविक था आखिर स्वामीनारायण है कौन ? तीन अप्रैल 1781 चैत्र शुक्ल, विक्रम संवत अयोध्या के पास गोंडा ज़िला के छपिया ग्राम में जिस बालक का जन्म हुआ, वह घनश्याम पांडे था। पाँच वर्ष की अवस्था से ही पढ़ना शुरू किया और अल्प आयु में अनेक शास्त्रों को पढ़ लिया। कुछ समय में घर छोड़ देश की परिक्रमा को निकल गए। जाति रंगभेद, लिंग भेद से परे उच्च नैतिकता, प्रेम और करुणा की विचारधारा लोगों के मन में डाली। आम बालकों से अलग तीक्ष्ण बुद्धि का यही बालक आगे चलकर घनश्याम पांडे से सहजानंद स्वामी, स्वामीनारायण, श्रीजी महाराज, नीलकंठ वर्णी नाम से जाना जाने लगा। 200 साल पहले स्वामीनारायण संप्रदाय की नींव रखी गई थी। ऐसा कुछ तो अवश्य था कि उनके जीवनकाल में ही खुद ब्रिटिश हुकूमत ने मंदिर के लिए ज़मीन दान की थी।

अब हम भव्य विराट मंदिर के गेट पर खड़े थे, जहाँ विशाल हाथियों पर सवार स्वामी नारायण की मूर्ति विराजमान थी। भक्तों के स्वागत में हाथी झूमते नज़र आ रहे थे। रंगों की अद्त छटा, अनुपम कलाकृति देखते ही बनती थी। धन्य है! वह कारीगर, जिन्होंने इन दिव्य मूर्तियों को गढ़ा। अंदर प्रवेश करने पर मंदिर प्रांगण के चारों तरफ़ फैले बाग हरियाली में शिव पार्वती परिवार सहित राधा कृष्ण रासलीला में निमग्न, पशु पक्षियों की ऐसी कलात्मक छटा की आँखों को विश्वास ही ना हो कि निर्जीव हैं। चारों तरफ़ कैमरे क्लिक हो रहे थे।

प्रतिदिन शाम 4:30 बजे स्वामीनारायण नौका विहार के लिए निकलते हैं। मंदिर प्रांगण में बने सरोवर का झिलमिलाता स्वच्छ पानी, जिसमें मयूर आकृति की नौका पड़ी हुई है। स्वामीनारायण की प्रतिमा मंदिर से बाहर लाकर नौका पर विराजती है और फिर विहंगम दृश्यावलियाँ बिखर जाती हैं। भक्तों की भीड़ उमड़ रही थी, बैंड बाजे, शहनाई, शंख, घड़ियाल की टंकार से पूरा वातावरण गूँज रहा था – "स्वामी नारायण की जय", "सहजानंद महाराज की जय" और "नीलकंठ हमारो, जय-जय-जय कहती हुई भक्त मंडली रथ का रस्सा खींचते हुए मगन थी। पूरी परिक्रमा करने के बाद सारे रथ कतारबद्ध खड़े हुए। फिर दिव्य महाआरती के दर्शन करना अद्त एवं मनोहारी दृश्य था।

किसी राजनीति या संप्रदाय की बहसबाज़ी में ना पड़कर यात्रा का आनंद लेना चाहिए, सो भरपूर लिया। इतना अवश्य है कि जो हाथी-घोड़े चल रहे थे, वे बहुत अस्वस्थ नज़र आ रहे थे, घोड़े की आँख बिल्कुल सफ़ेद दिखाई दे रही थी, लग रहा था उसे दिखाई नहीं दे रहा है। यह देखकर मन थोड़ा विचलित हुआ। इन जानवरों को प्रतिदिन अनुशासनबद्ध नियम से 5:30 बजे मंदिर की परिक्रमा लगानी ही होती है, पूरी सज-धज के साथ।

यह हमारी यात्रा का अंतिम दिन था। हम सवेरे-सवेरे विशाल पैलेस के सामने खड़े थे। महाराजा सयाजीराव गायकवाड पैलेस भी अपने आप में अपनी विशालता के साथ महाराजा और गुजरात की गाथा सुनाता है। जहाँ 147 कमरे, मात्र महाराजा और महारानी लक्ष्मी देवी के लिए बने थे।

जिनमें अब ऊपर की मंज़िल में महाराज की पुत्रवधू राधिका राजे का परिवार रहता है। गाइड के रूप में ऑडियो गाइड मिल जाता है, बस कान में लगाइए और म्यूज़िक के साथ पैलेस भ्रमण कीजिये, इसका अपना अनूठा आनंद है। पैलेस के सामने वाला मैदान गोल्फ़ खिलाड़ियों के लिए दे दिया गया है। विवाह आदि जैसे कार्यक्रम भी महल में होते रहते हैं। दूल्हा-दुल्हन भी ठाठ से कहते नज़र आएँगे कि

हमारा विवाह तो महल में हुआ था। इसी बहाने गवर्नमेंट को आय होती है और मैनेजमेंट भी होता रहता है।

अब चलिए आज की यात्रा के अंतिम पड़ाव में चलते हैं, जो बेहद रोमांचक हर्षातिरेक से भरने वाली है। जी हाँ! माता के दरबार में 'पावागढ़'। 'पावागढ़' का नाम सुनते ही गूँजने लगता है कानों में गीत -"पंखिड़ा तू उड़ के जाना पावागढ़ रे, महाकाली से मिलके कहना गरबा खेलेंगे।"

पावागढ़ ले जाने वाला हमारा ड्राइवर था अमजद खान। था तो खान, लेकिन देवी का पक्का भक्त। वह सुनाने लगा- "यह बहुत सिद्ध देवी हैं। दरअसल, एक बार काली माता सुंदर स्त्री का रूप धरकर पहाड़ों पर गरबा खेल रही थीं। माता का सुंदर, सौम्य रूप देखकर वहाँ का राजा मोहित हो गया और उसने देवी का हाथ पकड़ लिया। देवी के क्रोध में राजा तो भस्म हो गया, किंतु माता काली आत्मग्लानि के कारण बोली – "पहाड़ तू फट जा, मैं इसी में समा जाना चाहती हूँ।" पहाड़ फटा और देवी पहाड़ के बीच समाने लगीं। यह दृश्य शिवजी ने देखा, तो उन्होंने देवी को रोकना चाहा। किंतु देवी पहाड़ में समा चुकी थी। केवल सिर ही बाहर रह गया था, जिसे शिव जी रोक पाए, शिव जी ने प्रार्थना की - "हे देवी ! अनर्थ हो जाएगा आप यही विराजमान रहें।"

पावागढ़ पहाड़ में यहाँ केवल काली माता का सिर ही दिखाई देता है।"

कथा सुनकर मैंने कहा - "तुम लोग भी देवी को मानते हो क्या? "

"हाँ, माताजी, मेरे पिता, पिता के पिता भी माता को मानते थे। कहते हैं - माता में शक्ति है, यह सिद्ध देवी हैं, हम सब दर्शन को जाते हैं।" यह सुनकर लगा कि कहाँ है, सांप्रदायिकता?

बहुत ऊँचाई पर माता विराजमान हैं। रोपवे से ऊपर जाना था सो, चिंता ना थी। लेकिन, रविवार होने के कारण भीड़ बहुत थी। बमुश्किल, रोपवे की टिकट विंडो तक पहुँचे, वह बोला, "जॉइंट चाहिए? अंबे माँ और काली माता की।"

हमने कहा - "अंबे माँ कहाँ हैं ?" वह बोला, "राजस्थान में।"

"अरे ! लेकिन, हम तो गुजरात में हैं।"

वह हँसा, "आप कच्छ की खाड़ी यानी बॉर्डर पर हैं, यहाँ से राजस्थान लग जाता है।"

नहीं भाई ! अभी तो हमें काली माता का ही दे दो टिकट।

मैंने देखा कि कुछ राजस्थानी, कुछ गुजराती वेशभूषा में स्त्री-पुरुष दिखाई दे रहे थे। अजीब सुखानुभूति हो रही थी। महाराष्ट्र, गुजरात और राजस्थान, एक साथ मिल रहे थे।

रोपवे से हम छह सवारी चढ़ते चले जा रहे थे, "काली माता की जय"। मैंने सोचा कि सीधे दरबार में पहुँचेंगे। लेकिन, वहाँ पहुँचने के बाद तो हालत खराब! इतनी ऊँचाई पर पहुँचने के बाद भी करीब हज़ार-आठ सौ सीढ़ियाँ और चढ़नी थीं, यह मेरे लिए तो असंभव दिखाई दे रहा था। वहाँ पता किया कि यहाँ जो चढ़ने में असमर्थ हैं, उनके लिए क्या व्यवस्था है ? पता चला डोली की व्यवस्था है, लेकिन वह केवल 5:00 बजे तक ही है।

अब क्या हो ? ना लौटते बन रहा था, न चढ़ते। हमारी बुंदेली में एक कहावत है- "गुड़ भरो हंसिया, उगलत को ना लीलत को"

वही दशा हो रही थी, किंतु मेरी हिम्मत की दाद तो आपको देनी ही पड़ेगी। "जय माता दी" कहते-कहते चौड़ी सकरी सीढ़ियाँ चढ़ते चले गए, बीच-बीच में बाज़ार भी लगा हुआ मिलता गया। दूर से बहुत सारे झंडे दिखाई दे रहे थे, हमने सोचा आखिर हम पहुँच ही गए, किंतु जब वहाँ पहुँचे, तब वह मंदिर नहीं था। इतने ऊपर जाकर तालाब था। "दूधिया तालाब"। प्रकृति का अनुपम नज़ारा।

सूर्य अस्ताचल को था, जिसका प्रतिबिंब जल पर तैरकर विहंगम दृश्य रच रहा था। हमने वहाँ बैठकर साँस ली, अस्ताचल हो रहे सूर्य को प्रणाम किया। फिर ऊपर निहारा, तो हिम्मत जवाब देने लगी। अब तो ना चढ़ सकेंगे, किंतु, बहू-बेटे और पौत्र सारांश ने ऐसी हिम्मत दिलाई कि माता रानी को भी कृपा आखिर करनी ही पड़ी और अब हम थे माता के दरबार में, विराट भव्य पीला-पीला जगमगाता कलाकारी का नायाब दिव्य मंदिर। चमचमाते भव्य श्रृंगार में माँ के दर्शन पाकर जीवन धन्य हो गया।

दो दिन के टूर में गुजरात की झाँकी देखी, जिसे याद कर आज भी मन आनंदित है। अनुपम देश है, हमारा भारत।

**sudhaamrita.gupta@gmail.com**

# मॉरीशस की साहित्यिक यात्रा और सखियों की मस्ती

**डॉ. अंजना सिंह सेंगर**
**नोएडा, भारत**

जीवन में कभी-कभी ऐसे अवसर भी आते हैं, जो हमारी स्मृतियों में सदा के लिए अंकित हो जाते हैं। साहित्य का संग, सखियों का साथ और मॉरीशस की सुरम्य भूमि की साहित्यिक यात्रा - इन सबने मिलकर इस अनुभव को अद्‌त और अविस्मरणीय बना दिया। भोपाल की प्रसिद्ध साहित्यिक संस्था "विश्व रंग" और मॉरीशस के विश्व हिंदी सचिवालय ने संयुक्त रूप से 7, 8, और 9 अगस्त, 2024 को एक भव्य तीन दिवसीय कार्यक्रम का आयोजन किया। यह आयोजन हिंदी भाषा की वैश्विक महत्ता और साहित्यिक-सांस्कृतिक आदान-प्रदान को बढ़ावा देने का एक प्रयास था, जहाँ अनेक देशों के साहित्यकारों ने सहभागिता की।

जैसे ही हमें इस कार्यक्रम में भाग लेने का निमंत्रण मिला, हम सभी सखियाँ अत्यधिक उत्साहित थीं। हम सभी ने अपने दैनिक जीवन की व्यस्तताओं से समय निकालकर इस अद्वितीय अवसर को जीने का निश्चय किया। मॉरीशस पहुँचते ही वहाँ की हरी-भरी वादियाँ, स्वच्छ आकाश और समुद्र की लहरें मानो हमारा स्वागत कर रही थीं। कार्यक्रम का शुभारंभ विश्व हिंदी सचिवालय के प्रांगण में शोभायात्रा से हुआ, जो गाजे-बाजे के साथ निकली। सभी सहभागी नाचते-गाते इस शोभायात्रा में शामिल हुए। तदोपरांत, मॉरीशस के गिरमिटिया मज़दूरों की वर्तमान पीढ़ी द्वारा सांस्कृतिक प्रस्तुतियों के साथ ही साहित्यिक कार्यक्रम शुरू हुए, जिनमें काव्य-पाठ, महत्त्वपूर्ण विषयों पर चर्चा-परिचर्चा, पुस्तकों का लोकार्पण और लेखकों से बातचीत आदि का सिलसिला चला।

साहित्य का संग और सखियों का रंगीन साथ :—

इस यात्रा के दौरान, हमारा परिचय मॉरीशस के विश्व हिंदी सचिवालय की महासचिव डॉ. माधुरी रामधारी जी से हुआ, जो भारतीय परिधान में बेहद सौम्य और सरलता से भरी दिख रही थीं। उनकी मधुर वाणी और सरल स्वभाव ने हमें शीघ्र ही उनसे जोड़ दिया। रात को करीब दस बजे हम बस में बैठकर अन्य देशों से आए प्रतिभागियों के साथ परिचय करते हुए होटल पहुँचे। रास्ते में ही तय हो गया कि हम सभी जापान से आईं रमा दी के कमरे में इकट्ठे होंगे और खूब मस्ती करेंगे।

रमा दी, जो पंजाबी संस्कारों में रची-बसी हैं, जापान में रहते हुए भी भारतीय परंपराओं को सहेजे हुए हैं। उनके व्यवहार में इतनी आत्मीयता थी कि जो भी उनसे एक बार मिल लेता, वह उनका होकर रह जाता। उनकी रूम पार्टनर, अंजू पुरोहित, मलेशिया से आई थीं - सौम्य किंतु गंभीर स्वभाव की। मैं और मेरी रूम मेट सारिका जेठालिया, जो इंडोनेशिया से आई थीं, हम दोनों रमा दी के कमरे में पहुँचे, तो ग्रुप की सबसे प्यारी और चुलबुली जर्मनी की शिप्रा से पहली बार मिलना हुआ। हालाँकि मैं शिप्रा के नाम से पहले से ही परिचित थी, लेकिन इस पहली मुलाकात ने उसे और खास बना दिया। क़तर से आईं शालिनी वर्मा और भारत के भोपाल की मुक्ति श्रीवास्तव, जहाँ थोड़ी शांत और संकोची स्वभाव की थीं, वहीं नाइजीरिया की इशिता यादव और बहरीन की ममता तिवारी ने महफ़िल में चार चाँद लगा दिए। श्रीलंका की अथिला कोतलावल और रूस की सफ़रमो तोलीबी भी सबके साथ घुलने-मिलने में पीछे नहीं थीं।

रात का जलसा, सखियों का हँसी-भरा ठिकाना :

रात के करीब 11 बजे, जैसे ही रमा दी के कमरे का दरवाज़ा खुला, शिप्रा ने चुलबुले अंदाज़ में सबसे पहले आवाज़ लगाई, "आ जाओ जी, अब यहाँ न नींद है, न आराम। बस मस्ती-ही-मस्ती है!" कमरे में पैर रखते ही ऐसा लग रहा था कि हम किसी मस्ती के लोक में प्रवेश कर गए हों। रमा दी का कमरा, अब एक छोटे से डिस्को में बदल चुका था। किसी ने मोबाइल पर ही फ़िल्मी पार्टी के गाने चला दिए और फिर शुरू हुआ धमाल। जहाँ मीतू (ममता) और इशिता ने ज़बरदस्त डांस किया, वहीं शिप्रा ने नाटकीय अन्दाज़ में नृत्य और हास्य प्रस्तुत किया और बाकी सब ताली बजाकर और

हूटिंग करके उनका साथ दे रही थीं। हमने इन मोहक और आनंददायक पलों को कैमरे में कैद कर लिया।

रमा दी ने मुझे शांत बैठे देखा, तो मुझे घेरते हुए कहा, "अरे, वो 'कतरा-कतरा' वाला शेर तो सुना दो!" सबकी आँखों में शरारत की चमक देखकर मैं भी मुस्कुरा पड़ी। "कतरा-कतरा वाले शेर की कहानी एक दिन पुरानी थी, जब सभी सखियाँ मेरे कमरे में इकट्ठी हुई थीं, तब चाय और स्नैक्स के साथ ही हमने शेरो-शायरी का भी आनंद लिया था। मैं अपना "कतरा-कतरा" वाला शेर सुनाने की कोशिश करती, लेकिन हर बार हँसी के ठहाके सुनते ही खुद भी हँसी में लोटपोट हो जाती। हँसी-ठहाकों के बीच शेर तो पूरा न कर सकी, लेकिन उस पल की याद में हमने अपने ग्रुप का नाम "कतरा-कतरा ग्रुप" रख दिया।

रमा दी ने हँसते हुए कहा, "चलो, अब थोड़ी गंभीरता भी दिखाओ, कोई अपने दिल की बात बताए!" ममता ने तुरंत कहा, "मैं बताती हूँ, लेकिन एक शर्त है-जो भी बोले, बाकी सब उसे रोस्ट करेंगे!" और फिर सबकी शरारतें शुरू हो गईं। ममता ने एक प्यारी-सी कहानी सुनाई, लेकिन शालिनी ने तपाक से कहा, "अरे वाह ममता, ऐसे बोल रही हो, जैसे बॉलीवुड की कोई हीरोइन हो!" और सब हँसी में लोटपोट हो गए।

इतने में सफ़रमो ने याद दिलाया कि उसे आधी रात में दूसरे होटल से निकलना है। उसका होटल हमारे होटल से करीब पाँच सौ कदमों की दूरी पर था। हम सब उसे छोड़ने के लिए एक साथ पैदल ही चल पड़े। मॉरीशस की सुनसान सड़कों पर, रात के सन्नाटे में, हमारी टोली अपनी ही मस्ती में चल रही थी; किसी ने गाना गाया, किसी ने चुटकुले सुनाए और बीच-बीच में मोबाइल से उन मोहक पलों को कैद भी करते रहे।

वापस लौटते हुए, हम ठंडी हवाओं का आनंद लेते हुए होटल पहुँचे। लेकिन हमारी मस्ती खत्म होने का नाम नहीं ले रही थी। हमने कमरे में लौटते ही वीडियो और रील्स बनानी शुरू कर दीं और फिर, मौज-मस्ती के बीच हमने इस यादगार रात को सहेज लिया।

मॉरीशस की इस साहित्यिक यात्रा का सार :

तीन दिनों के साहित्यिक और सांस्कृतिक कार्यक्रमों के अंतिम दिन शाम को समापन के लिए हमें मॉरीशस के "महात्मा गांधी इंस्टीट्यूट" ले जाया गया, जहाँ हॉल में हमने भोजपुरी गीतों की गायिका मालिनी अवस्थी के गीतों का आनंद लिया। अंत में, मॉरीशस के प्रधानमंत्री माननीय प्रवीण कुमार जगनाथ जी ने समापन भाषण दिया। वापसी की तैयारी करते हुए हम सबका मन भारी था, लेकिन एक-दूसरे से गले मिलते समय आँखें नम होने के साथ-साथ दिल में खुशी और मन में संतोष था।

यह यात्रा सिर्फ़ शब्दों का आदान-प्रदान नहीं थी, बल्कि यह दो संस्कृतियों का मिलन और सखियों के साथ बिताए गए अनमोल पलों का संग्रहण भी थी। इस यात्रा ने हमें सिखाया कि भाषा और साहित्य कैसे लोगों को जोड़ते हैं और सीमाओं को मिटा देते हैं। हमारे लिए यह यात्रा केवल साहित्य के नए आयामों से परिचित होने का ज़रिया नहीं थी, बल्कि सच्ची दोस्ती और स्नेह के उन पलों को जीने का मौका भी थी। सखियों की हँसी, ठिठोलियों और प्यार ने इसे और भी यादगार बना दिया। हम सबने इन लम्हों को अपने दिलों में सहेज लिया और भारत लौटते समय मन में एक ही ख्याल था; यह यात्रा हमारे जीवन की ऐसी अमूल्य धरोहर है, जो हमें सदैव प्रेरित करती रहेगी।

**anjanasiak90@gmail.com**

# अण्डमान – दुख और गर्व से भरी एक यादगार यात्रा

**डॉ. काजल पाण्डे**
**पुणे, भारत**

पहले कभी अण्डमान जाने का मतलब 'काला पानी' की सज़ा हुआ करती थी। मुझे भी ऐसा ही लगता था कि वहाँ शायद काला पानी होता होगा। लेकिन कभी-कभी ऐसा होता है कि आपको बहुत समय बाद सही बात का पता चलता है। अण्डमान के काले पानी को समझने का सही समय मेरा शायद अब आया।

मेरी माँ अण्डमान घूमने जाने के लिए कहा करती थी। वे तो कभी जा नहीं पाई, पर इतने सालों में मैंने उनका सपना अपनी बेटी के माध्यम से, अपने और अपने परिवार के लिए पूरा कर दिखाया। 12 नवंबर, 2023 को दिवाली वाले दिन हमने अपनी अण्डमान-यात्रा पुणे से आरंभ की। हम लोग इंडिगो की फ़्लाइट से जा रहे थे, बस यहीं से मेरे अण्डमान के अनुभव जुड़ने शुरू हो गए। फ़्लाइट में मुझे एक नई चीज़ देखने को मिली। वह यह कि खाने के साथ मिले नैपकिन पर लिखा था – 'दाने-दाने पर लिखा है खाने वाले का नाम'। मैंने तो हमेशा से नैपकिन या तो खाली देखा है या फिर कोई भी ब्रांड वाला, पर यह मेरे लिए नया और बहुत हृदय प्रेरित था।

हम पहले पुणे से बैंगलोर और फिर बैंगलोर से पोर्ट ब्लेयर पहुँचे। वहाँ से हमने केसरी ट्रैवल्स का टूर पैकेज लिया था। जहाँ पर हमें मुंबई और पुणे से आए और लोग भी मिले, जिन्होंने हमारे साथ-साथ केसरी ट्रैवल्स का टूर पैकेज लिया था। हमारे साथ जो लोग आए थे, उनमें कोई माँ-बेटी, तो कोई पति-पत्नी, तो कोई अपने परिवार के साथ था। अण्डमान में पोर्ट ब्लेयर एयरपोर्ट का नाम बदलकर स्वतंत्रता सेनानी वीर सावरकर जी के नाम पर रखा गया है। समय का भी कैसा फेर है, हम यहाँ घूमने आए हैं वह भी अपने मन से, पैसे खर्च करके, जबकि हमारे शहीद वीरों को यहाँ सज़ा भुगतने के लिए भेजा जाता था, उनको तरह-तरह की यातनाएँ दी जाती थीं।

हम सभी होटल सिल्वर सैंड सैंटीनल गए, जहाँ हमने दोपहर का भोजन किया, जोकि बहुत ही स्वादिष्ट था। होटल भी साफ़-सुथरा और अच्छे स्टॉफ़ के साथ बहुत बढ़िया था। मुझे बाद में यूट्यूब पर देखकर पता चला कि होटल सिल्वर सैंड अण्डमान के सबसे अच्छे होटलों में से एक है।

वहाँ से फिर हम सभी 'सिल्वर सैंड सी प्रिंसिस बीच रिसॉर्ट' गए, जहाँ समुद्र के किनारे जाने के लिए रिसॉर्ट से ही रास्ता था। 'पोर्ट ब्लेयर' आते हुए मैंने ऊपर हवाई जहाज़ से जीवन में पहली बार समुद्र देखा था। जितनी खुशी मुझे तब हुई थी, उससे कहीं अधिक खुशी मुझे यह देखकर हुई कि हम आराम से समुद्र के किनारे जाकर उसको देख सकते हैं। मेरे और मेरी बेटी के लिए समुद्र देखने और उसमें जाने का यह पहला अनुभव था।

यहाँ आकर मैंने देखा कि सूर्यास्त शाम 5 बजे ही हो जाता है, जिसके कारण आपके पास घूमने के लिए कम समय रहता है। शाम को चाय-कॉफ़ी के बाद हम सबने अपने-अपने कमरों में आराम किया।

चूँकि दिवाली का दिन था, इसलिए केसरी ट्रैवल्स वालों की ओर से रात को लक्ष्मी पूजन रखी गई, जिसमें सब लोगों ने पारंपरिक वेशभूषा पहनकर भाग लिया और आनंद उठाया। उसके बाद सबने एक-दूसरे से परिचय किया, जिसमें पता चला कि हम में कोई मराठी भाषी है, कोई हिंदी भाषी है, कोई गुजराती भाषी, तो कोई तमिल भाषी है – लेकिन सबसे पहले हम सब एक हैं, भारतीय हैं। उसके बाद सबने साथ में रात का खाना खाया।

13 नवंबर 2023 की सुबह जल्दी उठकर मैं, मेरी बेटी और मेरे पति रिसॉर्ट से लगे हुए समुद्र के किनारे गए, जहाँ से हमने कुछ सीप और कोरल इकठ्ठे किए, साथ-ही-साथ शांत और स्वच्छ समुद्र के पानी का मज़ा लिया। चूँकि हमें सुबह ही निकलना था, तो हम सब नाश्ता करके अपने-अपने बैगों के साथ स्वराज द्वीप (हैवलॉक) जाने की ओर निकल पड़े। पहले बस से डॉक गए और वहाँ से मैकक्रूज की दो घंटे की यात्रा का आनंद लेते हुए स्वराज द्वीप (हैवलॉक) पहुँचे। यह

अपने आकर्षक सफ़ेद रेतीले समुद्र-तटों के लिए प्रसिद्ध है - अण्डमान के सबसे खूबसूरत समुद्र-तटों में से एक। वहाँ से हम सब सिल्वर सैंड होटल गए, जो बहुत ही सुंदर था। वहाँ पर रात का खाना खाने के बाद हम लोगों ने अपने-अपने कपड़े पंखे में सुखाने के लिए डाले, क्योंकि बारिश के कारण हमारे कपड़े, बैग और हम बुरी तरह से भीग चुके थे।

14 नवंबर, 2023 की सुबह हमें स्वराज द्वीप से मोटरबोट के माध्यम से 'एलीफ़ैंट बीच' पर ले जाया गया, जहाँ हमने डीप स्नोर्कलिंग की। मैं, मेरी बेटी और मेरे पति हम तीनों ने एक साथ यह गतिविधि की, जिसमें खूब मज़ा आया। 'एलीफ़ैंट बीच' अछूते मूँगों की विविधता और विविध प्रजातियों के साथ समृद्ध समुद्री जीवन के लिए बहुत प्रसिद्ध है। इस समुद्र-तट की मूँगा चट्टानें लगभग एक या दो मीटर से शुरू होती हैं। समुद्र में थोड़ी गहराई पर आप जीवंत मूँगों और रंग-बिरंगी मछलियों के समूहों को खूबसूरती से तैरते हुए देख सकते हैं, यह एक अद्‌त दृश्य है!

उसके बाद वहाँ से हम स्वराज द्वीप वापस आकर राधानगर बीच गए। राधानगर समुद्र-तट को "टाइम्स पत्रिका" द्वारा 2004 में एशिया के सर्वश्रेष्ठ समुद्र-तट का दर्जा दिया गया। इस द्वीप को अंडमान द्वीप-समूह के गहनों में से एक के रूप में जाना जाता है। वहाँ से फिर हम वापस होटल आए।

'पोर्ट ब्लेयर' घूमने के दौरान मैंने देखा कि यहाँ बंगाली भाषा बोलने वालों के साथ-साथ तमिल भाषा बोलने वाले भी स्थानीय लोग हैं। सभी लोग बहुत मददगार और शांत हैं।

15 नवंबर 2023 को हम लोग शहीद द्वीप (नील) की ओर रवाना हुए। यहाँ का पानी सबसे साफ़ था। यह अपनी अद्वितीय जैव विविधता और घने उष्णकटिबंधीय जंगलों और सफ़ेद रेत के समुद्र-तटों और समृद्ध मूँगा चट्टानों से परिपूर्ण हरियाली के लिए जाना जाता है। यहाँ पर भी हम सिल्वर सैंड होटल में ठहरे, जिससे समुद्र का किनारा होटल से लगकर था। यहाँ पर एक बच्ची मेरी बेटी मीठी की दोस्त भी बनी, जिसकी मम्मी रोमानिया से थी तथा पापा आंध्र प्रदेश से थे और बच्ची फ़्रांस में जन्मी थी। कैसे होता है कि दोस्ती में देश या भाषा कोई मायने नहीं रखती। दोस्ती की कोई भाषा नहीं होती।

यहाँ से हम सब लोग 'भरतपुर बीच' पर गए, जो नील द्वीप का सबसे अच्छा समुद्र-तट तथा शांत और सुरम्य दोनों है। फिर हम 'लक्ष्मणपुर' समुद्र-तट पर गए, जहाँ पर हमने बहुत ही सुंदर सूर्यास्त का नज़ारा देखा।

नील द्वीप पर सबसे लंबा समुद्र-तट और पुल के आकार में एक प्राकृतिक चट्टान का निर्माण नील द्वीप के प्राकृतिक पुल के रूप में लोकप्रिय है। हज़ारों वर्षों की अवधि में, समुद्र के जीवित मूँगों ने इस शानदार संरचना का निर्माण किया है। बाद में हम सभी मकरूज़/फ़ेरी द्वारा पोर्ट ब्लेयर के लिए बढ़े।

16 नवंबर, 2023 को पोर्ट ब्लेयर आकर हम सिल्वर सैंड के होटल सैंटीनल में रुके। यहाँ से नेताजी सुभाष चंद्र बोस द्वीप 'रॉस द्वीप' पर मोटरबोट के माध्यम से गए। इस द्वीप में वर्तमान में बॉलरूम, मुख्य आयुक्त का घर, सरकारी घर, चर्च, कब्रिस्तान, अस्पताल, बेकरी, प्रेस, स्विमिंग पूल और टूप बैरक जैसी पुरानी इमारतों के खंडहर हैं। सभी जीर्ण-शीर्ण स्थिति में हैं, जो पुराने ब्रिटिश शासन की याद दिलाती हैं। साथ-ही-साथ यहाँ हमें अनुराधा राव मिली, जो कई भाषाएँ बोल लेती हैं और वहाँ रह रहे हिरणों, मोर, पक्षियों आदि की देख-रेख करती हैं। उन्हें देखकर मैं थोड़ी भावुक हो गई थी। यह हम सबके लिए अविस्मरणीय अनुभव था। हमारे होटल के पास ही हमने 'सागरिका सरकारी इंपोरियम' से अपनी बेटी की इच्छानुसार अपने मित्रों के लिए कुछ उपहार देने योग्य चीज़ें खरीदीं।

17 नवंबर, 2023 को शाम को हमने 'सेल्युलर संग्रहालय' और 'सेल्युलर जेल' का दौरा किया, जो इस जेल में कैद स्वतंत्रता सेनानियों को दी जाने वाली यातनाओं का मूक गवाह था। हम 'वीर सावरकर' स्मारक पर गए। वहाँ जब हमने 'लाइट एंड साउंड शो' देखा, तब इतिहास जाग उठा। हमें बताया गया कि किस प्रकार का कीड़े वाला और पत्थर वाला खाना उनको दिया जाता था। वे क्षण मेरे लिए दुख और गर्व से भरे थे।

हम 'चैथम सॉ मिल' देखने गए, जो एशिया की सबसे बड़ी मिलों में से एक है। 'कॉटेज इंडस्ट्रीज़ एम्पोरियम' तथा 'वन संग्रहालय' भी गए, जो स्केल मॉडल के माध्यम से वन

गतिविधियों की जानकारी प्रदान करता है और पडौक, मार्बल, प्यूमा, गुर्जन, सैटिन वुड आदि प्रसिद्ध लकड़ियों से बने सजावटी टुकड़े प्रदर्शित करता है।

रात को होटल में रात का खाना खाकर 'केसरी ट्रैवल्स' की तरफ़ से केक कटवाया गया और कुछ खेलों के साथ उपहार भी बाँटे गए।

18 नवंबर 2023 की सुबह 'पोर्ट ब्लेय'र से हम पहले हैदराबाद और फिर पुणे पहुँचे। पूरी यात्रा के दौरान मौसम हमें अच्छा मिला ; कभी बारिश, कभी धूप। वहाँ पर बहुत ही शांति है। शहरों की तरह भागम-भाग, भीड़ और शोर-शराबा नहीं है। साफ़ और नीला आसमान दिखाई देता है तथा हवा में ताज़गी है।

**kajaldelhi2001@gmail.com**

# चाटुकारिता व चापलूसी

**वसीम अहमद नगरामी**
**उत्तर प्रदेश, भारत**

'ज़रूरत है चाटुकारिता में दक्ष एक अदद चापलूस की....।'.. इस आशय का एक अदद विज्ञापन समाचार-पत्र में देखा, तो बाँछें खिल गईं, हसरतें जाग उठीं, रोम-रोम प्रफुल्लित हो उठा, मन कुलांचे मारने लगा। हो-न-हो यह विज्ञापन मुझ जैसे नाकारा, चाटुकार और चापलूसी में आकंठ डूबे मतलब परस्ती में निपुण के लिए ही छापा गया मालूम पड़ता है। मुझ जैसे "हाँ जी! हाँ जी! व यस सर! यस सर!" करने में अग्रणी व्यक्ति के लिए कभी कोई वान्ट भी निकल सकती है, यह विचार तो कभी सपने में भी नहीं आया था। क्योंकि चाटुकारिता और चापलूसी को लोग इज़्ज़त की नज़र से नहीं देखते। कई बार तो घोर उपेक्षा का शिकार भी होना पड़ जाता था। लेकिन जब से अखबार के सिंगल कॉलम येलो कलर्ड पट्टी में एक अदद चाटुकारिता में दक्ष चापलूस की वान्ट निकली है तब से आँखों के सामने रंग-बिरंगी फुलझड़ियाँ छूटने लगी हैं। मन फूलकर कुप्पा हुआ जा रहा है तथा मांसपेशियों का आकार बुलन्द-से-बुलन्दतर होता जा रहा है कि मुझ जैसे मानस के लिए तो यह एक वरदान है, मुँह माँगी मुराद है, एक सुखद व सुनहरा अवसर है। मन खुशी से बाग-बाग और बाग से बगीचा-बगीचा हुआ जा रहा है। अवसर का लाभ उठाने के लिए मन कुलांचे मारने लगा है।

बचपन से चापलूसी के सिवा कुछ करना आया ही कहाँ था? बात-बात में चाटुकारिता और चापलूसी करने की वजह से रोज़ ही बीसियों बार जहाँ-तहाँ फटकार भी लगायी जाती रही थी। तब मन मसोस कर रह जाते थे। उन दिनों यह पता ही कहाँ था कि चापलूसों के भी कभी दिन बहुरेंगे। चापलूसी करने के फ़ायदे कम नुकसान ही अधिक हुआ करते थे। जिसको देखो डाँट ऊपर से पिला दिया करता था। कितना संघर्ष करना पड़ा है इस चापलूसी की खातिर। आज सोचता हूँ यदि चापलूसी छोड़ दी होती, तो कहीं का न रह जाता। वैसे चापलूसी करने का कोई अनुभव प्रमाण-पत्र तो है नहीं। लेकिन इतना अवश्य है कि यदि चापलूसी पर लिखित परीक्षा भी आयोजित करा दी जाए, तो उसे उत्तीर्ण करने में मुझे तनिक भी कठिनाई न होगी। कमोबेश एक दशक से अधिक समय से निर्बाध रूप से चापलूसी करता चला आ रहा हूँ। इतने लंबे अरसे बाद मेरी बंद किस्मत के दरवाज़े खुलने की उम्मीद भर आई है। अब मैं देश की बेरोज़गारी का प्रतिशत घटाकर कम करने में सहायक होकर अपने देश के नौकरीशुदा चापलूसों की जमात में शामिल होने का सुख-सौभाग्य प्राप्त करूँगा। आज मेरा मन यह सोच-सोचकर खुशी से उछल रहा है कि कल तक जो लोग मेरी चापलूसी के हुनर को घटिया व निरर्थक समझकर नाक-भौं सिकोड़ते थे तथा मेरे मुँह पर मेरी खिल्ली उड़ाया करते थे, उन्हें जवाब देने का समय अब आ गया है। अब मैं उन्हें बता सकूँगा कि चापलूसी करना कितने फ़ायदे का सौदा रहा।

चापलूसी करना न आता होता, तो शायद आज मैं बेरोज़गार से रोज़गार शुदा लोगों की जमात में शामिल ही न हो पाता। यही नहीं आगे चलकर अब मुझे चापलूसों को ढूँढ-ढूँढकर उनका एक सशक्त संगठन भी तैयार करना होगा, ताकि शोषित व उपेक्षित पड़े असंगठित चापलूसों को भी उनका एक सशक्त मंच दिलाया जा सके एवं उपयुक्त सुविधाओं के साथ-साथ उन्हें न्यूनतम संवर्धन के सुअवसर सुलभ कराए जा सकें, ताकि वे अपने आप को उपेक्षित व शोषित महसूस न कर सकें।

चापलूसी इंसानों में पाई जाने वाली एक दुर्लभ किस्म की कला है, जो न तो किसी विद्यालय में सिखाई जा सकती है और न ही इसको बाहर से किसी में थोपा जा सकता है। हाँ! कुछ हद तक यह वंशानुगत तो हो सकती है, पर उन्हीं में जिनके पूर्वजों ने इस कला को संजोए रखने के लिए चापलूसी व चाटुकारिता के अनेकानेक रिकॉर्ड ध्वस्त किए हों। अर्थात् जिनमें चाटुकारिता व चापलूसी कूट-कूटकर भरी रही हो और मरते दम तक भी जिन्होंने इन तत्त्वों का अनुसरण करते रहने से गुरेज न किया हो तथा अपनी पीढ़ियों से भी शपथ

उठवा गए हो कि भले ही कुछ भी हो जाए कभी भी चापलूसी व चाटुकारिता का दामन न छोड़ना। क्योंकि चाटुकारिता व चापलूसी ही वह हुनर है, जिसकी विरासत के साए में न सिर्फ़ हमारे पूर्वज फलते-फूलते रहे हैं, वरन् भावी पीढ़ी को भी यह महती विरासत सौंप गए। अब हमें भी उक्त हुनर से अपने घरों के चिराग रोशन रखने हैं। जिस तरह से चाटुकारिता व चापलूसी का हुनर रखने वालों के लिए वान्ट निकल रही हैं, इसे देखते हुए कहा जा सकता है कि आने वाला समय चाटुकारिता व चापलूसी का ही होगा।

**vasimahmad438@gmail.com**

# इम्तहानी रुत के मज़े!

**हरीश कुमार 'अमित'**
**हरियाणा, भारत**

इम्तहानों की रुत आते ही पता नहीं क्यों लोगों के चेहरे पर मुर्दनी-सी छा जाती है। अपने को तो यह रुत बड़ी मज़ेदार और दिलकश लगा करती है। आप सोचेंगे कि हम शायद बावले हो गए हैं, जो ऐसा कह रहे हैं। जी हाँ जनाब, इम्तहानी रुत में खुशी के मारे बावले हो ही जाते हैं हम।

इम्तहानों के मौसम के मज़े बहुत निराले होते हैं। शाम को दफ़्तर से छूटकर घर पहुँचो, तो घर में ऐसा शांत वातावरण मिलता है कि जी चाहने लगता है सुई गिराकर उसकी आवाज़ सुनी जाए। आम दिनों में सुनाई देने वाले गुल-गपाड़े और चिल्ल-पों न जाने कहाँ उड़न-छू हो गए होते हैं, इन दिनों। व्यस्त भाव से चाय का कप पकड़ाते वक्त श्रीमती जी या तो बिल्कुल चुप रहती हैं या फिर फुसफुसाकर एकाध बात कहकर तेज़-तेज़ कदमों से बच्चों के कमरे की तरफ़ चली जाती हैं - उनकी पढ़ाई पर नज़र रखने के लिए। ऐसे में हम याद करने लगते हैं श्रीमती जी के मुँह से निकली जली-कटी बातों को, जो वे आम दिनों में शाम की चाय के साथ बदस्तूर हमें परोसा करती हैं। ऐसी जली-कटी बातों के बिना चाय पीना हमें ऐसा लगता है, मानो अमृतपान कर रहे हों।

टी.वी. देखने का भी अलग ही आनंद होता है, इम्तहानी रुत में। जो जी चाहे देखो - खबरें, मैच या कोई पसंदीदा फ़िल्म। आम दिनों में तो यह सब हम किश्तों में ही देख पाते हैं। घर के बाकी सदस्य 'बस एक मिनट' कहकर चैनल बदलते हैं, तो एक मिनट दस-पंद्रह मिनटों से पहले समाप्त नहीं होता। ऐसा भी हमारे साथ हुआ कि ट्वेंटी-ट्वेंटी क्रिकेट मैच के बीसवें ओवर में जब जीत के लिए उन्नीस रनों की ज़रूरत थी, घर के एक सदस्य ने 'बस एक मिनट' कहकर अपना मनपसंद सीरियल लगा लिया। बड़ी मिन्नत-खुशामद करने पर कुछ देर बाद मैच वाला चैनल जब दोबारा लगा, तो मैच खत्म हो चुका था और खिलाड़ी लोग एक-दूसरे से हाथ मिलाते हुए मैदान से बाहर जा रहे थे। एक बार कोई पुरानी फ़िल्म देख रहे थे, तो श्रीमती जी ने चैनल बदल दिया। तब फ़िल्म के हीरो-हीरोइन खुद बच्चे थे। काफ़ी देर बाद जब उसी फ़िल्म वाला चैनल दोबारा लगा, तब हीरो-हीरोइन दादा-दादी बन चुके थे।

इम्तहानों के मौसम में दफ़्तर से छुट्टी लेना बड़ा आसान होता है। बच्चों के इम्तहान वाला बहाना अचूक सिद्ध होता है। हमने तो कई बार यह देखा है कि बच्चों के इम्तहान के बहाने वाली हमारी छुट्टी की अर्ज़ी मंज़ूर करने वाला अफ़सर हमारे छुट्टी से लौटने पर स्वयं भी उसी 'कारण' से छुट्टी पर गया होता है।

इम्तहानी रुत में श्रीमती जी को खाना बनाने के लिए पूरा समय नहीं मिल पाता, इसलिए इन दिनों हम जब दफ़्तर जाते हैं, तब दोपहर का खाना हमारे साथ नहीं होता। खाने के बगैर दफ़्तर जाने का हमें कोई अफ़सोस नहीं होता, बल्कि इसमें हमें अनिर्वचनीय सुख मिलता है। किसी ने कहा है न कि अगर तुम्हारी किस्मत में नींबू है, तो उनकी शिकंजी बनाकर पी जाओ। सो ऐसे दिनों के लंच टाइम को हम जश्न में तब्दील कर लिया करते हैं। हमारी एक सहकर्मिणी, जो इम्तहानों की रुत के कारण इन दिनों बगैर लंच लिए दफ़्तर आती हैं, इस जश्न में हमारी साझेदार बनती हैं। इन दिनों हम दोनों लंच टाइम में कभी किसी होटल, तो कभी किसी रेस्तराँ में तरह-तरह के व्यंजनों का लुत्फ़ उठाते हैं। फिर दोपहर बाद

व्यंजनों के स्वाद और सहकर्मिणी के साथ के नशे में झूमते-झामते जब वापस अपने दफ़्तर की सीट पर विराजमान होते हैं, तब फ़ाइलों को नीला-काला करने के साथ-साथ मन-ही-मन यह सोचते रहते हैं कि अगले दिन लंच टाइम में कहाँ जाया जाए और क्या खाया जाए। यह बात अलग है कि शाम को घर पहुँचकर श्रीमती जी को यह कहना हम बिल्कुल नहीं भूलते कि घर से ले जाने वाले लंच को इन दिनों बहुत 'मिस' कर रहे हैं।

हम तो यही चाहते हैं कि ऐसी इम्तहानी रुत पूरे साल चलती रहे। कुछ गलत कहा क्या हमने?

**harishkumaramit@yahoo.co.in**

# इसका जूता उसके सर

**रेखा शाह आरबी**
**उत्तर प्रदेश, भारत**

जूते पैरों की आन-बान-शान होते हैं। जूते पहले हमारे देश में आम आदमी को बनाने का अधिकार था। तो ज़्यादातर उसे ही खाने का भी अधिकार था। कोई भी उसे जूता खिला देता था। स्कूल में गुरुजी, घर में बाबूजी, तो कभी बड़े भाई-बहन और कभी-कभी तो अड़ोसी-पड़ोसी तक खिला देते थे। पहले लोग बुरा भी नहीं मानते थे। क्या होता था कि बनाने वाले भी अपने, खिलाने वाले भी अपने, खाने वाले भी अपने होते थे। तो बुरा क्या मानना था। आजकल लोग बुरा इसलिए मानते हैं कि आजकल लोग अपनों को अपना नहीं मानते हैं। जूते आम-खास सब पहनते थे। जूते बनाने का ज़्यादातर काम अब कुछ ब्रांडेड कंपनियों के पास है। तो जूते खाने का काम भी ज़्यादातर ब्रांडेड लोगों के पास ही है। आम आदमी के पास खाने के लिए खाना नहीं है, तो वह जूते क्या खाएगा। गरीब न ब्रांड वाले जूता पहनता है, ना खाता है और ना जूते वाली क्लास से उसको कोई सरोकार है। गरीब का कोई ब्रांड नहीं होता है।

जूता बहुत काम की चीज़ होती है। साथ ही यह दो मुँही तलवार भी होता है। पैर में पड़ा हो, तो इज़्ज़त बढ़ा देता है। सर पर पड़ा, तो बेहद निर्दयता से इज़्ज़त उतार भी लेता है। हाँ इसके लिए ब्रांड से कोई लेना देना नहीं है। बिना ब्रांड के भी जूते वही काम करते हैं, जो ब्रांडेड जूते करते हैं। जूते का सीधा संबंध हमारे सम्मान से कुछ यूँ जुड़ा होता है। यदि घर में पड़ता है, तो हमें सुधार देता है और यदि बीच बाज़ार पड़ता है, तो मतलब हमारे सारे ग्रह नक्षत्र को बिगाड़ देता है।

जूते को कभी आम मत समझिए। जवानी के दिनों में अनेक दिलफ़ेक आशिक मिज़ाज जब-जब अपनी प्रेमिकाओं की गली में जाते थे, तब-तब अपनी ज़ुल्फों के साथ-साथ अपने जूते भी चमका कर जाते थे। लेकिन उलटा तब पड़ जाता था, जब अपनी प्रेमिका के भाइयों के हाथ जूतारस का रसास्वादन करते थे। तभी उन्हें प्रेम रोग से मोक्ष प्राप्त होता था और कितनों को कई-कई बार खाने के बाद मोक्ष प्राप्त होता था। जूता एक, उसके रंग अनेक होते हैं।

कई बार हमें बचपन में पढ़ते हुए पाठ याद नहीं हो पाता था। लाख रट्टा मारे, लाख सिर पीटे, किंतु याद होने का नाम ही नहीं लेता था। सारे तंत्र-मंत्र करके देख लेते थे। किताब में मोर पंख रखते। पुस्तक देवी को सौ-सौ बार प्रणाम करते। लेकिन पाठ याद नहीं हो पाता था। लेकिन ज्यों ही बाबूजी का जूता सिर पर तबला बजाता, त्यों ही आश्चर्यजनक रूप से कुछ ही मिनटों में सब कुछ याद हो जाता था। अतः यह सब भूला-बिसरा याद कराने में सक्षम था। तो इस प्रकार जूता अव्यवस्थित याददाश्त को एक व्यवस्थित प्रणाली में लाने में सहायक होता था। इतिहास गवाह है कि बच्चे जब भी अपने बाप के हाथ में जूता देखते थे, उनका सारा भूत-प्रेत भाग जाता था। उनकी सारी बीमारी दूर हो जाती थी। अतः जूते को बाल-सुधार यंत्र भी कहा जा सकता है। जिसका न कल कोई तोड़ था, ना आज कोई तोड़ है।

कुछ लोग अपनी गरीबी के चलते जूते पहनने के बिल्कुल काबिल नहीं होते हैं। हाँ, कभी कुछ लोग जूते खाने लायक ज़रूर होते हैं। अतः जब आप उन्हें जूते खिलाएँ, तब आप अपने पैरों के जूते को तैयार रखिए, दौड़कर भागने के

लिए। जितना तेज़ आपके जूते चलेंगे, उतना आपके बचने की संभावना ज्यादा रहेगी। वरना थप्पड़ खाने से ज्यादा लोग जूता खाना बुरा मान जाते हैं। जबकि दोनों खाना अच्छा नहीं माना जाता है। इसमें भी लोग भेदभाव कर जाते हैं। अगर आपको विश्वास नहीं है, तो आप किसी से पूछकर देख लीजिए कि महोदय आप जूते खाएँगे या थप्पड़ खाएँगे। सामने से आपको सामान्य जवाब तो मिलेगा ही नहीं, दोनों के उत्तर में महोदय को लाल पीला होना है।

जूते में इतनी बुराई होने के बावजूद शादी-ब्याह में दूल्हे की सालियाँ ना दूल्हे का बटुआ चुराती है, ना घड़ी चुराती है, ना चश्मा चुराती हैं। वह चुराती है, तो दूल्हे के जूते चुराती हैं और जूते के ओरिजिनल दाम से चौगुना दाम लेने के बाद ही देती हैं। इसी प्रकार हमारे देश के मंदिरों के बाहर बाकायदा जूता-चोर बैठे रहते हैं। इधर आप दर्शन- पूजन में लीन हुए, उधर आपके जूते किसी औरों के पैरों में पड़कर चल दिए। उसके बाद आपके पास झक मारने के सिवा कुछ नहीं बचता। जूते में लाख बुराई सही, लेकिन फिर भी जूते की पूछ कम नहीं है। अतः आप कोशिश कीजिए कि आपके जूते सही सलामत आपके पैरों में पड़े रहे ना कि सिर पर पड़े। अगर आपके जूते को सिर की लत लग ही गई है, तो कम-से-कम वह सिर दूसरे का हो।

**rekhasahrb@gmail.com**

# कहते हैं मुझको हवा हवाई

**धर्मपाल महेंद्र जैन**
**कनाडा**

किसी ने कहा था कि ज़्यादातर लोग घर में मरते हैं और हवाई यात्रा में बहुत कम लोग, इसलिए लंबी उम्र पाने के लिए हवाई यात्रा करते रहना चाहिए। इसी चक्कर में हवाई यात्राएँ करते हुए मुझे तीस साल से अधिक हो गए। हवा में उड़ने का सुख अलग है। बिज़नेस क्लास का टिकट हो, तो पैर फैलाकर चौड़े हो बैठ जाओ, पसंदीदा खाना खाओ, फ़िल्में देखो, संगीत सुनो और मुफ़्त की उम्दा शराब पियो।

अब तो मैं हवाई जहाज़ में घुसते ही अपनी पेटी बाँध लेता हूँ, पर पहली हवाई यात्रा में मैं 'पेटी' का अर्थ नहीं समझ पाया था। परिचारिका इशारा कर कह रही थी, अपनी पेटी बाँधो और मैं अपना पेट सम्हाल रहा था। कुर्सी में कोई पेटी थी ही नहीं। मैं जिस पट्टे और बक्कल के ऊपर बैठा था, उन्हें एक-दूसरे में फिट करना था, ताकि मेरा पेट निर्धारित सीमा में रहे। क्या मालूम किस भाषाविद् ने इसका नामकरण पेटी किया था। दशकों पहले उसने बेल्ट का अनुवाद पेटी कर दिया, तो वही चल रहा है। हवाई जहाज़ का मामला नहीं होता, तो सारे हिन्दीदां इस गलत अनुवाद पर पिल पड़ते, पर महाराजा की शान में कौन गुस्ताखी कर सकता है, पेटी बाँधना है, तो यात्री अपना पेट बाँध लेते हैं, कुर्सी से। ऐसे ही एयर प्लेन का अनुवाद हवाई जहाज़ हुआ, जो कॉन्वेंट के किसी बच्चे द्वारा किया लगता है। इस नाम में न कोई अलंकार है, न शब्दों का सौंदर्य। हवाई जहाज़ का नामकरण यदि किसी विद्वान भाषा-शास्त्री ने किया होता, तो वह होता आकाशमार्गीय पवन रथ। वह तो अच्छा हुआ कि कोई गुणी संपादक विदेश-यात्रा पर गए और उन्होंने इसे संस्कृतिनिष्ठ नाम दे दिया वायुयान। फिर भी मैं सोचता हूँ इक्कीसवीं सदी में घरेलू उड़ानों के लिए जो बीसवीं सदी के छोटे यान उपयोग में लाए जाते हैं, उन्हें उड़नखटोला कहना ठीक रहेगा।

चलिए छोड़िए, नाम में क्या रखा है। मेरी पहली उड़ान में पेटी बाँधने के बाद, विमान ज़मीन पर चलने लगा। पायलट ने घोषणा की कि अब हम टैक्सी करेंगे। मैंने सहयात्री से पूछा, पैसे हवाई जहाज़ के दिए, तो यह टैक्सी क्यों...। उसने मुझे घूरते हुए कहा - जनाब, आपका उड़नखटोला जब 'रन वे' पर चलता है, तब उसे टैक्सी कहते हैं। जब तक यह हवा में नहीं उड़ता, इसे हवाई जहाज़ नहीं कहा जाता। हवा में रहे तो हवाई नाम दें। आप पहली बार उड़ रहे हैं क्या...। मेरे अज्ञान से मेरी पोल खुल गई और शर्मिंदगी झेलते हुए मुझे 'हाँ' कहना पड़ा। विमान ने उड़ान भरना शुरू किया तो मुझे उल्टी जैसा लगने लगा। मैं कानों में असहनीय दर्द महसूस करने लगा। कनपट्टी में अजीब तरह का खिंचाव था। खुशी

की बात यह थी कि ये कैंसर के लक्षण नहीं थे। भला हो परिचारिका का, गर्म नाश्ते और चाय की महक भर ने मुझे प्रफुल्लित कर दिया था। छोटी भारतीय उड़ानों में बढ़िया नाश्ता परोसा जाता है, पर अंतर्राष्ट्रीय उड़ानों में बड़ी दुकान और फीके पकवान वाली कहावत लागू होती है। कॉन्टीनेन्टल ब्रेड-बटर में भारतीय भोजन वाला वह स्वाद और आनंद कभी नहीं आया कि पेट भर जाए, पर आत्मा नहीं भरे। वही परिचारिका नाश्ता परोस रही थी, जो कुछ देर पहले 'सेफ़्टी प्रदर्शन' कर रही थी और बाहर भागने के रास्ते बता रही थी। उसकी कही बातों को ध्यानपूर्वक सुनते हुए मैं अपनी डायरी में नोट कर रहा था, तब वह मुझे देखकर मुस्कुरा रही थी। बाद में मैंने जाना कि आप कितनी भी बार उड़ान भर चुके हों, आपको हर बार परिचारिकाओं द्वारा बताया जा रहा 'सेफ़्टी प्रदर्शन' देखना पड़ता है। आपात स्थिति में पैराशूट पहनकर हवाई जहाज़ से कैसे छलांग लगाना है, यह उपाय मुझे पक्का याद हो गया। यह अलग बात है कि इतने सालों में कभी पैराशूट खींचने का मौका मुझे किसी हवाई कंपनी ने नहीं दिया। कई बार मुझे आपात द्वार के एकदम पास वाली पसंदीदा सीट पर बैठने का अवसर मिला। निकासद्वार के पास की सीटों के आगे-पीछे अधिक जगह छोड़ी जाती है। सामान्य दाम पर यहाँ पाँव पर फैलाकर बैठने का अवर्णनीय सुख मिलता है। आमतौर पर हवाई जहाज़ों में आपात स्थिति बनती नहीं है और जब आपात स्थिति बनती है, तो आदमी के बस में करने को कुछ अधिक नहीं होता, सिवाय हड़बड़ी मचाने के, तब सभी यात्रियों से शांत रहने की अपील की जाती है। हवाई जहाज़ के आपातकालीन निकास द्वार को धकेलने या खोलने का सुअवसर मुझे कभी नहीं मिला। जब भी मैं हवाई जहाज़ के आपातकालीन निर्गम द्वार के पास बैठा, उड़ानकर्मी मुझे समझाते रहे कि पीला जैकेट कहाँ से निकालना है, उसे पहनकर कैसे फुलाना है, ऑक्सीजन मास्क कैसे लगाना है और द्वार खुलते ही जो फिसलपट्टी बने उस पर कैसे रपट जाना है। ऐसी नौबत कभी आई नहीं, तो मैं आपको सुनाने के लिए जीवंत अनुभव कहाँ से लाऊँ!

भारत से न्यूयॉर्क या टोरंटो तक की लंबी यात्राओं में मेरे अनुभव बढ़ने लगे। मैंने पाया कि भारतीय यात्री यान में घुसते ही फ़रमाइशें शुरू कर देते हैं। वे टिकट का ज्यादा-से-ज्यादा पैसा वसूलने के लिए ऐसा करते हैं। कोई कितना भी रोके, विमान के भारत से चलने के आधे-एक घंटे बाद इकॉनॉमी क्लास में खमण-ढोकले, मक्के की रोटी और सरसों के साग के ड्यूटी फ़्री टिफ़िन खुल जाते हैं। कुछ यात्री शराब में मस्त हो सो जाते हैं। एयर होस्टेस उन्हें हिला-डुलाकर खाना दे, तो वे खा लेते हैं अन्यथा वे सोए रहते हैं। एयर होस्टेस उन्हें नहीं छेड़ती। वह जानती है, बंदा उठेगा तो फिर कहेगा 'वन पटियाला पैग प्लीज़'। पीने वालों को नशा चढ़े उसके पहले ही दिल्ली-मुंबई उड़ान जैसी कम दूरी की फ़्लाइट गंतव्य पर पहुँच जाती है। नाश्ता और गर्मागर्म खाना टिकट के दाम में शामिल नहीं हो, तो बहुत-से यात्री बिना नाश्ता-पानी के ही यात्रा कर लें। खरीदने वालों को ये चीज़ें चार-पाँच गुना महँगी मिलती हैं। खाना-पीना मुफ़्त में मिले, तो खुशी-खुशी गले में उतर जाता है।

पड़ोसी यात्री यहाँ भी मेरे कंधे पर सो जाते हैं। मेरी टीवी स्क्रीन पर ताका-झाँकी कर फ़िल्म देखते हैं। मैं झपकी लेने लगता हूँ, तो वे बड़े अदब से बोलते हैं, 'एक्सक्यूज मी प्लीज़' और अपनी बंद मुठ्ठी से कनिष्ठा उंगली मेरी तरफ़ तान देते हैं। लघुशंका का यह संकेत भले ही हमने किंडरगार्टन में सीखा हो, पर जीवन भर बड़ा काम आता है, और-तो-और, हर देश के नागरिक इसका एक ही मतलब निकालते हैं। मैं अक्सर गलियारे के पास वाली सीट लेता हूँ। खिड़की के पास वाली सीट पर बैठा यात्री आकाश में बादल देख-देखकर टाइमपास कर लेता है, पर बीच की सीट पर बैठने वाले यात्री की हालत इतनी बुरी हो जाती है कि वह हर आधे घंटे में पूछता है हम कितनी देर में पहुँचेंगे। उसे समझाना पड़ता है कि चौदह घंटे यात्रा का किराया दिया है, तो वायुयान में इतनी देर तो बैठना ही होगा।

आमतौर पर घरों में कुर्सी के आगे टेबल लगती है। हवाई जहाज़ में कुर्सी के पीछे छोटी-सी टेबल बनाने के लिए प्लास्टिक का पटिया लगा होता है। उसका सुख पीछे वाला यात्री उठाता है। आगे वाले यात्री की इच्छा अपनी कुर्सी को पीछे कर आरामदेह मुद्रा में फैलने की हो, तो पीछे बैठा यात्री दो-चार अपशब्द गुनगुना देता है। उसके सामने की जगह

और कम हो जाती है।

लंबी हवाई यात्राओं में सीट पर सोने वालों की मुद्राएँ बड़ी रोचक होती हैं। यात्रियों के लिए बैठे रहने की पीड़ा, सज़ा से कम नहीं होती। बहुत से लोग खाने की टेबल खोलकर उस पर सिर टिकाने की कोशिश में बैठे-बैठे ऊकडू सो जाते हैं। कुछ तो कमर से पूरी तरह झुक जाते हैं। वायुयान से एक-दो घंटे की यात्रा अच्छी लगती है, पर चौदह-पंद्रह घंटे की यात्रा थकाकर चूर कर देती है। पंद्रह घंटे हवा में और तीन-चार घंटे हवाई अड्डों की लालफीताशाही में। हवाई अड्डों पर अलग तरह की लालफीताशाही है, तीन घंटे पहले पहुँचो। कनेक्टिंग फ्लाइट, सिक्युरिटी, इमिग्रेशन, कस्टम, बैगेज बेल्ट से सामान उठाने आदि में आने वाली कठिनाइयाँ तब मालूम होती हैं, जब आप यात्रा करते हैं। दूसरों के संस्मरण सुनकर आप अनुमान नहीं लगा सकते। यदि मैं आपको कहूँ कि चौदह घंटे की यात्रा में वायुयान के सुपर क्लीन टॉयलेट, सार्वजनिक शौचालयों से भी बदतर हो जाते हैं, तो आपको विश्वास नहीं होगा। हकीकत जानने के लिए आपको खुद जाना पड़ेगा। वायुयान में धूम्रपान की सख्त मनाही है। लोग टॉयलेट में जाकर भी धूम्रपान नहीं कर सकते। जो चेनस्मोकर हैं, उन्हें हवाई यात्रा सज़ा लगती है। प्रस्थान एयरपोर्ट से लगाकर आगमन एयरपोर्ट तक उनकी धूम्रपान बंदी, कठिन व्रत जैसी होती है। इतनी जद्दोजहद के बाद, कई बार जब यात्री अपने गंतव्य शहर पहुँच जाता है, तब उसे मालूम पड़ता है कि उसके बैग उसकी फ़्लाइट में चढ़े ही नहीं। गंतव्य तक पहुँचते-पहुँचते यात्री इतना थक जाता है कि उसे अगले दो दिन समझ ही नहीं आता कब दिन हुआ और कब रात। हैंगओवर केवल शराब पीने से ही नहीं होता, लंबी हवाई यात्रा करने से भी होता है।

यान के सकुशल लैंड करने (उतरने) पर यात्रीगण तालियाँ बजाते हैं। यान हवाई अड्डे के किसी द्वार से जुड़ने के लिए खड़ा हो जाए, तो बेसब्र यात्रीगण खड़े हो जाते हैं। उनका बस चले तो वे कूदकर बाहर निकल जाएँ। आप्रवासन और कस्टम जाँच के लिए उनमें लाइन में लगने का धैर्य नहीं रहता। जब वे अपने सामान के बैग पाने के लिए चलित पट्टों के पास आते हैं, तब उनकी निगाहें अपने सूटकेस तलाश रही होती हैं। जिसे जाने की जल्दी होती है, उसका सामान उतनी देर से आता है। कभी-कभी तो यात्री आ जाता है, पर उसका सामान नहीं आता और सामान आ भी जाए, तो दूसरा यात्री आपका सामान लेकर निकल लेता है। अंतर्राष्ट्रीय यात्रियों के सूटकेसों के रंग, आकार और डिज़ाइन इतने मिलते-जुलते हैं कि कई यात्री उन्हें पहचानने के लिए अपने नाम-पते का बड़ा-सा गत्ता सुटकेस पर चिपकाकर रखते हैं।

आप पहली बार हवाई-यात्रा कर रहे हैं, तो ध्यान रखें, यह ज़ंजीर खींचने से नहीं रुकता। यदि आप ऊपर लगा बटन सही तरीके से दबा सकें, तो परिचारिका तुरंत हाज़िर हो जाती है। इसमें फ़र्स्ट क्लास और बिज़नेस क्लास भी होते हैं, जिनका किराया तीन गुना है। वहाँ खुराक तीन गुना मिलती है और शराब अनलिमिटेड। एक सिख सवा लाख के बराबर माना गया है, यह गणित यहाँ अनलिमिटेड पीकर सिद्ध हो जाता है। आपको छोटे-से केबिन में सोने के लिए स्लीपर भी मिल सकता है, जितना दाम उतना माल। आने वाले समय में वायुयान बसों की तरह चलेंगे, ठसाठस भरे। सीट के अभाव में लोग खड़े-खड़े यात्रा करने के लिए तैयार हो जाएँगे। हवाई अड्डों पर कुली चिल्लाते मिलेंगे, मुंबई फ़्लाइट, सिंगापुर फ़्लाइट। हवाई जहाज़ से आपके नीचे धरती पर टपकने का डर मिथ्या है। आसमान से टपकने वाले को अटकने के लिए खजूर मिल ही जाएगा, ऐसा भ्रम भी नहीं पालें। वही होगा जो राम चाहेंगे, "होइहि सोइ जो राम रचि राखा।" कहीं विमान ही टपक गया तो बीमा कंपनी को ब्लैक बॉक्स में सब लेखा-जोखा मिल जाएगा, इसलिए टपकने से नहीं डरें। अपने वॉलेट में बोर्डिंग पास, टिकट, आईडी, पासपोर्ट और वीज़ा हमेशा रखें, अन्यथा आपको किसी दूसरे देश में उतरना पड़ा, तो आप किस डिटेंशन सेंटर में रखे गए यह कोई नहीं जान पाएगा।

सस्ते किराये की हम बात न ही करें, तो अच्छा है। जिस कंपनी की जैसी मर्ज़ी, वैसा किराया, हर दिन अलग, सुबह-शाम अलग। शादी-ब्याह और त्योहारों का सीज़न हो, तो दोगुना किराया। माँग अधिक तो किराया अधिक। आप जहाँ सर्च करने लगे, उस रूट पर यात्रा टिकट तुरंत बढ़ जाता है। जिस दिन आपको जाना हो किराया आसमान पर, जिन दिनों

नहीं जाना हो, तब किराया एकदम सस्ता। दो लोग जा रहे हों, तो आपके बॉस रियायती टिकट दिला सकते हैं। बस उन्हें आपका कंपेनियन टिकट का भाड़ा स्वीकृत करना होगा। आप अक्सर यात्रा करते हैं, तो समझ लीजिए आपके दम पर ही हवाई यात्रा ज़िंदा है। इस नेक काम के लिए आपको 'एयर माइल्स' का लाभ मिलता है, जिससे आप लाउंज में आराम करने की सुविधा, मुफ़्त या ऊँची श्रेणी में अपग्रेड का टिकट पा सकते हैं।

किराया भले कम नहीं करें, पर यह धैर्य रखिए कि आपकी रिज़र्व सीट आपको ही मिलेगी। मेरे साथ अभी तक ऐसा नहीं हुआ कि मेरी अलॉट सीट किसी दूसरे यात्री को भी दे दी गई हो। एक सीट, दो यात्रियों को बेचने का कौशल भारतीय रेल के टीसी जानते हैं। यह तरकीब दुनिया के किसी और देश को मालूम नहीं है। कम सामान लेकर चलें। एक बार मेरे पास दो किलो लगेज अधिक हो गया, उसका भाड़ा बना दस हज़ार रुपए। मजबूरी में भाड़ा दिया, नहीं देता, तो फ़्लाइट मुझे वहीं छोड़कर उड़ जाती। जब अपनी सीट पर आया, तो सहयात्री को देखकर चौंक गया। वे डेढ़ क्विंटल के तो होंगे। मैंने वायुयान कंपनी को सुझाव लिख भेजा कि यात्री का किराया भी वज़न के हिसाब से लगना चाहिए। ये कोई बात हुई कि डेढ़ क्विंटल के मोटे आदमी और आधे क्विंटल के दुबले-पतले आदमी का किराया बराबर है। मुझे विश्वास है, वज़न-आधारित यात्री किराया जल्दी ही लागू हो जाएगा। इससे आयुष्यमान भारत के लोगों को 'फ़िट' रहने की प्रेरणा मिलेगी।

वायुयान पर इतनी बात हो गई, पर मैंने कैप्टन के बारे में यहाँ कुछ नहीं लिखा, तो वे नाराज़ हो जाएँगे। ये वे शख्स हैं, जो टेढ़े-मेढ़े बादलों और पहाड़ों की चोटियों के बीच हवाई गाड़ी को सुरक्षित चलाते हैं। कॉकपिट से जब कैप्टन बोलता है, तब उसकी भाषा कभी समझ नहीं आती। वह चार शब्द बोलता है, तो दो खा जाता है। वह तेज़ी से बोलता है, तो उसे लगता है उसके धीरे बोलने से विमान की गति कम हो जाएगी। उसे खुद से ज्यादा ऑटो पायलट यानि मशीनी पायलट पर भरोसा होता है, क्योंकि मानक नियमों के पालन में ऑटो पायलट कोई ढील नहीं बरतता, वह लकीर का फ़कीर होता है। आप जानते ही हैं कि जिन राज्यों में हाईकमान के ऑटो पायलट सरकार चलाते हैं, वहाँ गुटबंदी वाले आतंकवादी कम होते हैं। हमारे हवाई जहाज़ में कभी आतंकवादी नहीं आए, तो मेरा कभी अपहरण नहीं हुआ। इसलिए हवाई यात्रा मेरे लिए बहुत सुरक्षित है। मेरे लिए कोई फिरौती माँगता भी तो कोई सरकार नहीं देती। व्यंग्यकार को सरकार क्यों छुड़ाने लगी, उसे आतंकवादी कल ले जाने वाले हों, तो आज ले जाएँ, उसकी बला से!

**dharmtoronto@gmail.com**

# हिंदी की स्थिति विदेशों में
# (नीदरलैंड व सूरीनाम के विशेष संदर्भ में)

**डॉ. आरती पाठक**
**दिल्ली भारत**

**साक्षात्कारकर्ता : आपका परिचय जिसे पढ़कर पाठक आपके व्यक्तित्व से रूबरू हो सकें।**

**साक्षात्कारदाता :** मेरा जन्म दिल्ली में हुआ। मेरे पिता टेक्सटाइल डिज़ाइनर और माँ गृहणी व समाज सेविका हैं। पाँच भाई-बहनों में सबसे छोटी होने के कारण जितना अधिक सबका स्नेह मिला, उतनी ही स्वतंत्रता भी प्राप्त हुई। भारत में अपनी शिक्षा पूर्ण करने के बाद व कार्य करने के बाद वर्ष 2003 में एक प्रवासी भारतीय (गिरमिटिया) परिवार में डॉ. दिनेश ननन पांडे से विवाह के उपरांत मैं नीदरलैंड में स्थाई रूप से निवास कर रही हूँ। मैं 2012 से अपने शहर के टाउन हॉल की परामर्श समिति की सदस्या के रूप में कार्यरत हूँ। एक समाजसेवी के रूप में भी मुझे यहाँ एक अच्छी पहचान बनाने का अवसर प्राप्त हुआ है। यहाँ के प्रतिष्ठित विद्यालय Vincent Van Gogh की विद्यालय समिति की सदस्या के रूप में पिछले पाँच वर्षों से जुड़ी हुई हूँ। अंतर्राष्ट्रीय हिंदी संगठन नीदरलैंड की अध्यक्षा हूँ। मुंबई साहित्य अकादमी की नीदरलैंड सचिव के रूप में मनोनीत हूँ।

हमारे घर का वातावरण साहित्यिक ही था। मेरे माता-पिता और बड़ी बहनों को भी साहित्यक पुस्तकें पढ़ने का बहुत शौक था, हमारे घर में साहित्यिक पुस्तकों व लेखकों पर चर्चा हुआ करती थी। मेरी बड़ी बहन कविता, गीत लिखा करती थी, जो उस समय उनके स्कूल, कॉलिज की पत्र-पत्रिकाओं में प्रकाशित हुआ करती थीं। हमारे घर में साप्ताहिक 'हिन्दुस्तान' व 'धर्मयुग' जैसी पत्रिकाएँ आती थीं। बाल-पत्रिकाएँ जैसे – 'चंदा मामा', 'पराग', 'नंदन' भी बहुत शौक से पढ़ी जाती थीं। पिताजी को गीत लिखने का बहुत शौक था, पर ज़िंदगी की कश्मकश में कभी उन गीतों को छपवा नहीं सके। हर बच्चे की तरह मुझे भी किताबें पढ़ना बहुत पसंद था। माँ अक्सर रात को सोने से पहले कहानियाँ सुनाती थी। उस समय हमारे घर में माँ के लिए विशेष 'सोवियत भूमि' नाम से पत्रिका आती थी, जिसमें वहाँ सोवियत संघ की संस्कृति, बाल-कहानियाँ, हस्तकला आदि के बारे में पढ़ने व जानने को मिलता था। बाद में वह पत्रिका बंद हो गई। दिल्ली में जहाँ हम रहते थे, वहाँ सप्ताह में एक बार चलती-फिरती लाइब्रेरी आया करती थी, जिसमें भारतीय बाल-साहित्य के साथ-साथ विदेशी बाल-साहित्य की पुस्तकें भी पढ़ने को मिलती थीं। उन पुस्तकों के आवरण और चित्र मुझे हमेशा आकर्षित करते थे। वहीं से मेरे बालमन में विश्व की विभिन्न भाषाओं के साहित्य को पढ़ने की रुचि जागृत हुई।

हमारा घर दिल्ली विश्वविद्यालय, मॉरिस नगर के पास ही था और उस समय ज्यादातर प्रोफ़ेसर वहीं रहते थे, जिनका आना-जाना अक्सर हमारे घर रहता था। मेरी बहन जब कॉलिज में पढ़ती थी, तब हमारा घर मॉरिस नगर के पास होने के कारण बहुत सारे साथी, जो साहित्यकार हैं, उनके लिए हमारा घर ही साहित्य-चर्चा का स्थान हुआ करता था। बाद में हम लोग कनॉट प्लेस में रहने लगे। मुझे आत्मनिर्भर रहना ज्यादा पसंद था। कनॉट प्लेस से संसद मार्ग ज्यादा दूर नहीं था, इसलिए मैं दिल्ली के आकाशवाणी रेडियो के युवाओं का उस समय का बहुत ही मनपसंद कार्यक्रम 'युवा वाणी' के लिए काम करने लगी।

आकाशवाणी से मेरा सफ़र दिल्ली दूरदर्शन तक जा पहुँचा, जहाँ स्वर्गीय कुबेर दत्त जी, बाद में स्वर्गीय डॉ. शरददत्त जी 'पत्रिका' व 'साहित्यिकी' नाम के दो कार्यक्रम करते थे, जिनको उनके कार्यक्रमों के प्रोग्राम प्रोड्यूसर डॉ. विवेकानंद रिकॉर्ड किया करते थे। मेरे साहित्यिक रुझान और स्पष्ट हिंदी उच्चारण से प्रभावित हो, उन्होंने मुझे पत्रिका व साहित्यिकी कार्यक्रमों का संचालक बना दिया। जिन लेखकों को मैंने पढ़ा या जिनको पढ़ रही थी, अब मुझे सौभाग्य से उन्हीं का सानिध्य प्राप्त हो रहा था। कमलेश्वर जी, डॉ. नामवर सिंह जी, श्री भीष्म साहनी, श्री निर्मल वर्मा, डॉ. नरेन्द्र कोहली से लेकर डॉ. लीलाधर मंडलोई जी, भगवान दास मोरवाल जी तक लगभग सभी साहित्यकारों, आलोचकों व व्यंग्यकारों के

साक्षात्कार लेने का मुझे अवसर मिला। मेरा अधिकतर समय इन्हीं लोगों में बीता और यहीं से शुरू हुई मेरी लेखन-यात्रा। उस समय के प्रभावशाली समाचार-पत्र 'जनसत्ता', 'नवभारत टाइम्स' आदि में मैंने कई लेख लिखे।

**साक्षात्कारकर्ता : अनुवाद के विषय में अपने निजी अनुभवों को साझा करें।**

**साक्षात्कारदाता :** हिंदी भाषा के अतिरिक्त अन्य भाषाओं के साहित्य को पढ़ने की जिज्ञासा ने मुझे अनुवादक भी बना दिया। भारतीय अनुवाद परिषद् दिल्ली से अनुवाद का डिप्लोमा करते समय मुझे किसी भी एक लेखक की रचना को हिंदी में अनूदित करना था, क्योंकि मैंने फ्रांस के साहित्यकार ज़ाँ पॉल सात्र (Jean-Paul-Satre) व सिमोन दे बोव्वार को भी पढ़ा था, जिसने मुझे बहुत प्रभावित किया था। जाँ पॉल सात्र का एक बहुत ही चर्चित व नोबेल पुरस्कार विजेता नाटक "नो एक्ज़िट" का मैंने पहली बार हिंदी में "बंद रास्तों के बीच" नाम से अनुवाद किया। सात्र बहुत ही अलग अस्तित्ववाद व दार्शनिक सोच के लेखक थे। उनके इस नाटक का अनुवाद करते समय मैं बहुत ही दुविधा में थी, क्योंकि एक तो मैंने इतने बड़े लेखक को चुना, दूसरे इनकी समझ को जानने के लिए भी मुझे इनके अन्य उपन्यास व नाटकों को समझना पड़ा। सात्र अस्तित्ववाद के जनक माने जाते हैं, उनका मानना था कि प्रत्येक विचारधारा से ऊपर व्यक्ति का अपना अस्तित्व होता है। किसी भी स्थिति में प्रत्येक व्यक्ति को अपने अस्तित्व पर निर्णय लेने में स्वतंत्र होना चाहिए। सात्र विश्व के एकमात्र साहित्यकार थे, जिन्होंने नोबेल पुरस्कार यह कहकर लौटा दिया कि "इस प्रकार के सम्मान से व्यक्तियों में असमानता पैदा होगी। मैंने इस नाटक का अनुवाद करने के बाद डॉ. विवेकानंद से इसका अवलोकन करवाया, उन्होंने कहा इस नाटक का तुमने आधे से अधिक अनुवाद कर लिया है, अगर तुम बाकी का अनुवाद कर लो, तो एक अच्छी हिंदी पुस्तक तैयार हो जाएगी, क्योंकि इस नाटक का कोई हिंदी अनुवाद तब तक प्रकाशित नहीं हुआ था। मैंने उनकी बात मानकर उनके सहयोग से यह पहला संयुक्त अनुवाद किया। अभी तक इस नाटक का लगभग सौ बार मंचन हो चुका है। मेरे इस संयुक्त अनुवाद के बाद इस पुस्तक को फिर किसी ने हिंदी में अनूदित नहीं किया है। मेरी यह पुस्तक दिल्ली के प्रसिद्ध प्रकाशन समुदाय राधा कृष्ण प्रकाशन द्वारा प्रकाशित हुई। इसके बाद मैंने दस से अधिक बाल-कहानियों का अनुवाद किया, जो प्रवासी दुनिया ई-पत्रिका में डॉ. अनिल जोशी व सरोज शर्मा जी द्वारा छप चुकी हैं। अनूदित कहानियों के अतिरिक्त भी कई अन्य बाल-कहानियाँ प्रवासी दुनिया में छपी हैं। अभी हाल ही में डच के प्रसिद्ध बाल- साहित्यकार क्रिस वेग्तर (Chris Vegter) की पुस्तक 'Dierenbeul' का हिंदी में अनुवाद किया, जो दिल्ली के कृष्णादी प्रकाशन ने प्रकाशित की और विश्व रंग में इसका विमोचन किया गया। इस वर्ष इस बाल-उपन्यास का द्वितीय संस्करण, जो हिंदी और रोमन हिंदी में है, भोपाल के लाईन प्रकाशन से प्रकाशित हुआ है। नीदरलैंड की लोक कथाएँ पुस्तक में डच लोक कथाओं का मैंने हिंदी में अनुवाद किया है, जो ज्ञान मुद्रा प्रकाशन भोपाल से प्रकाशित हुई है। चौथी पुस्तक जिस पर मैं इन दिनों काम कर रही हूँ, वह हिंदी की पंचतंत्र की कहानियों का डच में अनुवाद है, जो शीघ्र ही प्रकाशित होगी। इसके अतिरिक्त बहुत से साझा संकलन प्रकाशित हो चुके हैं।

दूरदर्शन के कार्यक्रम करते हुए मैंने तीन वर्षों तक दिल्ली विश्वविद्यालय के खालसा कॉलिज में पत्रकारिता की प्राध्यापिका के रूप में कार्य किया।

**साक्षात्कारकर्ता : एक हिंदी प्रशिक्षक के तौर पर हिंदी की स्थिति को सूरीनाम और नीदरलैंड में आप किस तरह से देखती हैं?**

**साक्षात्कारदाता :** अब आप सोचेंगे यहाँ मैं सूरीनाम देश, जो दक्षिण अमेरिका में है, उसको नीदरलैंड जो यूरोप में है, से क्यों जोड़ रही हूँ? इनका आपस में क्या संबंध है? तो सबसे पहले मैं आपको इनके आपसी संबंध के बारे में थोड़ी जानकारी देना चाहूँगी। सूरीनाम दक्षिण अमेरिका का एक देश है, जो डच शासकों और नीदरलैंड (हॉलैंड) के अधीन था। 1873 में जब भारत में ब्रिटिश राज था उस समय डच शासक भारत पहुँचे, तब ईस्ट इंडिया कंपनी ने डच शासकों को वहाँ अपने पैर नहीं जमाने दिये। उस समय दास-प्रथा समाप्त हो जाने से डच शासकों की आर्थिक व्यवस्था डगमगा

गई थी। इसलिए वे दूसरे देशों से खेती व अन्य कामों के लिए लोगों को अनुबंध पर ला रहे थे। भारत में तब ईस्ट इंडिया कंपनी और डच कंपनी में यह करार किया गया कि ईस्ट इंडिया कंपनी डच कंपनी को उनकी गन्ने, कपास व चावल की खेती के लिए किसान देगी और इसके बदले में डच कंपनी भारत छोड़ देगी। 1873 में इस प्रकार भारतीय अनुबंधित किसानों के साथ, जो 26 जनवरी, 1873 को चार सौ लोगों को लेकर कलकत्ता बंदरगाह से चला और 5 जून, 1873 को सूरीनाम पहुँचा। इस तरह से सूरीनाम में हिंदी भाषा का आगमन हुआ। 1975 में जब सूरीनाम डच शासकों (नीदरलैंड) से स्वतंत्र हुआ, तब वहीं भारतीय नीदरलैंड आए, इस तरह से सन् 1975 से नीदरलैंड में हिंदी का आगमन हुआ।

**साक्षात्कारकर्ता : शैक्षणिक विषय को आप किस-किस स्तर पर तैयार करती हैं?**

**साक्षात्कारदाता :** एक हिंदी भाषा प्रशिक्षक के रूप में हिंदी की स्थिति के विषय में यदि हम बात करें, तो मैं आपको बताना चाहती हूँ कि सूरीनाम और नीदरलैंड दोनों ही देशों में रहने वाले प्रवासी भारतीय उस तरह के प्रवासी भारतीय नहीं हैं, जैसे अमेरिका, लंदन, कनाडा या अन्य किसी देश में रहने वाले प्रवासी हैं। भारतीय भले ही 150 पूर्व सूरीनाम गए और उसके बाद वे नीदरलैंड आए हैं, किंतु इतने वर्षों में हिंदी भाषा न तो सूरीनाम में आधिकारिक रूप में डच और अंग्रेज़ी भाषा के बाद तृतीय भाषा के रूप में अपनाई गई और न ही नीदरलैंड में हिंदी भाषा को दूसरी या तीसरी भाषा के रूप में मान्यता मिली है। इसलिए यहाँ हिंदी भाषा की स्थिति अन्य देशों की अपेक्षा बहुत भिन्न है। सूरीनाम के विद्यालयों में हिंदी भाषा की शिक्षा नहीं दी जाती। जितनी भी हिंदी भाषा का प्रसार लोग वहाँ करते हैं, उतनी हिंदी या तो उन्होंने अपने पूर्वजों से सीखी है या फिर भारत जाकर हिंदी की शिक्षा ग्रहण की है। 45 वर्ष पूर्व "सूरीनाम हिंदी परिषद्" की स्थापना सूरीनाम में वर्धा विश्वविद्यालय की मदद से की गई। वहीं का पाठ्यक्रम आज भी सूरीनाम और 40 वर्ष पूर्व नीदरलैंड में "हिंदी परिषद् नीदरलैंड" की स्थापना हुई, उसमें पढ़ाया जाता है। ये दोनों संस्थाएँ हिंदी स्वयं सेवकों द्वारा संचालित हैं। 1980 में नीदरलैंड के लाईदन विश्वविद्यालय में हिंदी का एक विभाग बनाया गया, लेकिन लोगों की कम रुचि के कारण यह विभाग 1983 में बंद कर दिया गया। इन दोनों संस्थाओं में सप्ताहांत में कक्षाएँ लगती हैं। इसके अतिरिक्त सूरीनाम व नीदरलैंड में सप्ताहांत में मंदिरों में हिंदी व संस्कृत की स्वतंत्र कक्षाएँ लगती हैं। नीदरलैंड में अब हिंदी भाषा के पाँच प्राथमिक विद्यालय हैं, जहाँ डच भाषा के अन्य विषयों के साथ- साथ हिंदी भाषा की शिक्षा दी जाती है। आज की युवा पीढ़ी अपनी मातृभाषा हिंदी सीखना चाहती है। इसलिए हिंदी की ऑनलाइन कक्षाएँ भी लगती हैं।

**साक्षात्कारकर्ता : हिंदी भाषा-शिक्षण के दौरान आप किस प्रविधि का प्रयोग करती हैं ?**

**साक्षात्कारकर्ता :** एक शिक्षिका के रूप में जब मैं विद्यार्थियों के लिए पाठ तैयार करती हूँ तब मैं डच और हिंदी दोनों भाषाओं का प्रयोग करती हूँ, क्योंकि मुझे पता है कि मेरे सूरीनाम व नीदरलैंड के विद्यार्थी हिंदी भाषा को उस रूप में प्रयोग नहीं करते या जानते हैं, जैसे भारत के निवासी या अन्य देशों के प्रवासी। इसलिए जब मैं हिंदी की वर्णमाला पढ़ाना या उसका उच्चारण करना सिखाती हूँ, तब मैं डच भाषा के वर्णों और उच्चारण का भी प्रयोग करती हूँ। जैसे - अ-a, आ-aa, ज -dj, व- w, इस तरह से मैं उनको डच के साथ हिंदी भाषा पढ़ना-लिखना सिखाती हूँ। इस तरह से सीखना उनके लिए बहुत आसान होता है। वे बहुत सही और अच्छे ढंग से हिंदी भाषा को अपना सकते हैं। मेरी कोशिश रहती है कि मैं हिंदी की कक्षा में ज्यादा क्लिष्ट या कठिन शब्दों का प्रयोग जितना संभव हो कम करूँ। कई बार वर्णों या शब्दों को सिखाने के लिए डच भाषा में फलों और सब्ज़ियों के नाम का उपयोग करना पड़ता है। जिस व्यक्ति को हिंदी के साथ डच भाषा का ज्ञान नहीं है, वह इन दोनों देशों में हिंदी का प्रचार-प्रसार ठीक से करने में असमर्थ है।

**साक्षात्कारकर्ता : हिंदी-साहित्य एवं भाषा को इन देशों में किस रूप में अपनाया गया है?**

**साक्षात्कारदाता :** हिंदी-साहित्य का स्वरूप भी यहाँ भारत से अलग है। जो लोग 1873 में सूरीनाम आए थे, उनमें से बहुत से लोग पढ़ना-लिखना जानते थे। उनके द्वारा

उस समय हस्तलिखित पत्र, गीत, भजन, कहानी, नाटक ही सरनामी साहित्य माना जाता था। बाद में जब हिंदी-शिक्षण संस्थानों की स्थापना हुई और भारतीय दूतावासों द्वारा शिक्षण-सामग्री उपलब्ध होने लगी तब प्रथमा, मध्यमा, उत्तमा, प्रवेश, परिचय, कोविद व रत्न स्तर की परीक्षाएँ आरंभ हुईं, तब कोविद पाठ्यक्रम में जयशंकर प्रसाद की 'ध्रुव स्वामिनी', 'संक्षिप्त गबन', रत्न पाठ्यक्रम में दिनकर की 'रश्मिरथी', जयशंकर प्रसाद की 'अजातशत्रु', भगवती चरण वर्मा कृत 'चित्रलेखा', 'आधुनिक काव्य-संग्रह', 'हिंदी साहित्य का इतिहास', 'राष्ट्रभाषा और हिंदी लिपि', 'हिंदी भाषा सिद्धांत और अध्ययन' आदि पुस्तकें शामिल हैं। आज के समय में जब विद्यार्थी किन्हीं हिंदी फ़िल्मों के बारे में बात करते हैं, तब मैं उन्हें उस लेखक द्वारा लिखित अन्य पुस्तकों के बारे में भी जानकारी देती हूँ। पुरानी हिंदी फ़िल्मों और पुराने हिंदी फ़िल्मी गीतों को सूरीनाम व नीदरलैंड में प्रवासी भारतीय बहुत पसंद करते हैं। फ़िल्म अभिनेता राज कपूर इन्हें बहुत पसंद हैं, उनकी फ़िल्म 'तीसरी कसम' की बात होती है, तो फणीश्वर नाथ रेणु का नाम आता है। दो बीघा ज़मीन हो, तो प्रेमचंद का नाम याद आता है। हिंदी साहित्य को यहाँ के विद्यार्थी पढ़ना और समझना चाहते हैं।

**साक्षात्कारकर्ता : हिंदी भाषा के माध्यम से आप छात्र-छात्राओं को भारतीय संस्कृति कैसे समझाती हैं ?**

**साक्षात्कारदाता :** भारतीय समाज और यहाँ की सामाजिक व्यवस्था में बहुत अंतर है। 150 वर्ष पूर्व, यहाँ पर पहली पीढ़ी के भारतीय सामाजिक व्यवस्था को रहन-सहन, खान-पान, वैवाहिक संबंध, रीति-रिवाज़ और वरणों के आधार पर बहुत अच्छे ढंग से समझते थे। समय के साथ-साथ व डच संस्कृति का प्रभाव पड़ने से कुछ बदलाव आए हैं। हिंदी भाषा में रामायण के माध्यम से भारतीय सामाजिक व्यवस्था को समझाने में आसानी होती है। क्योंकि जब पहली पीढ़ी भारत से आई थी, तब वह अपने साथ रामायण, गीता साथ लेकर आई थी। उसी को उन्होंने अपने आचरण और व्यवहार में अपनाया। चाहे वह पारिवारिक संबंध हो या फिर वैवाहिक संबंध, आज भी उसी परंपरा से चलते हैं। रीति-रिवाज़ भी थोड़े-बहुत बदलाव के साथ मनाए जाते हैं। विद्यार्थियों का हिंदी पढ़ने का उद्देश्य अपनी जड़ों और अपनी मातृभाषा व संस्कृति की पहचान करना तो है ही, साथ ही हिंदी भाषा आज के समय में लगभग वैश्विक भाषा के रूप में विकसित हो रही है और भारत की उन्नत होती अर्थव्यवस्था के कारण भी विद्यार्थियों की रुचि हिंदी भाषा के प्रति बढ़ गई है। हिंदी फ़िल्मों ने भी लोगों को हिंदी लिखने के लिए आकर्षित किया है। हिंदी वैसे भी सरनामी (भोजपुरी, अवधी, मैथिली आदि भाषा को मिलाकर बोली जाने वाली भाषा) के बहुत पास है। अपने अस्तित्व और संस्कृति को बनाए रखने के लिए अपनी मातृभाषा का ज्ञान होना बहुत आवश्यक है।

हिंदी भाषा को लेकर अभी यहाँ ज्यादा शोध नहीं हो रहे हैं। इसके अनेक कारण हैं - शोध संबंधी जानकारी व पुस्तकों का अभाव होना, हिंदी भाषा का आधिकारिक रूप में स्थापित न होना, दूतावास के सांस्कृतिक केन्द्रों में केवल भारतीय शिक्षकों का होना, जिन्हें डच भाषा का ज्ञान कम होता है।

**साक्षात्कारकर्ता : आपके मतानुसार वैश्विक पटल पर हिंदी का भविष्य कैसा दिखलाई पड़ रहा है?**

**साक्षात्कारदाता :** आज वैश्विकरण, ग्लोबलाइज़ेशन या भूमंडलीकरण का अर्थ है विश्व में चारों ओर अर्थव्यवस्थाओं का बढ़ता हुआ एकीकरण। वास्तव में, यह एक आर्थिक अवधारणा है, जो आज सांस्कृतिक और बहुत कुछ अर्थों में भाषाई संस्कार से भी जुड़ चुकी है। वैश्वीकरण आधुनिक विश्व का वह स्तंभ है, जिस पर खड़े होकर दुनिया के हर समाज को देखा, समझा और महसूस किया जा सकता है। वैश्वीकरण आधुनिकता का वह मापदण्ड है, जो किसी भी व्यक्ति, समाज और राष्ट्र को उसकी भौगोलिक सीमाओं से परे हटाकर एक समान धरातल उपलब्ध कराता है। वैश्वीकरण के प्रवाह में आज कोई भी भाषा और साहित्य अछूता नहीं है, वह भी अपनी सीमाओं को पार कर विश्व भर के पाठकों तक अपनी पहचान बना चुका है, जिसमें दुनिया भर के प्रबुद्ध पाठक भी एक-दूसरे से जुड़ सके हैं और साहित्य का वैश्विक परिप्रेक्ष्य से मूल्यांकन संभव हो सका है।

अंतिम दशकों एवं 21वीं सदी के पहले दशक में हिंदी भाषा में जो परिवर्तन हुए हैं, वे साधारण नहीं हैं। आज हिंदी भाषा का स्वरूप ग्लोबल हो चला है। भाषा और व्याकरण

में नये प्रयोग किए जा रहे हैं। साथ ही आज हिंदी भाषा का महत्त्व अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर भी बढ़ रहा है। आज दुनिया में कोई ऐसी जगह नहीं है, जहाँ भारतीय न हों। आप्रवासी भारतीय पूरे विश्व में फैले हुए हैं। आज हिंदी भाषा का अध्ययन अनेक देशों में प्राथमिक स्तर पर, कहीं माध्यमिक तो कहीं विश्वविद्यालय स्तर पर हो रहा है। कहीं यह अपनी मातृभूमि भारत से जुड़े रहने का भावात्मक माध्यम लगता है, तो कहीं इसका उद्देश्य आधुनिक भारत के अंतर्मन को समझना है। विश्व में हिंदी भाषा के शिक्षण को बढ़ावा देने के लिए निजी संस्थान तथा धार्मिक और सामाजिक संस्थाएँ भी बढ़-चढ़कर अपना योगदान दे रही हैं।

निस्संदेह, आज हिंदी भाषा का फलक विस्तृत हुआ है। भारत के साथ-साथ हिंदी विश्व की भाषा बनने को तैयार है। आज हिंदी भाषा में वह सामर्थ्य है, जो पूरे विश्व को एक सूत्र में पिरोकर रख सकती है। आज हिंदी भाषा व्यापार और व्यवहार दोनों की भाषा बन गई है। हिंदी भाषा के प्रचार-प्रसार और विकास में सभी भाषा-भाषियों का महत्त्वपूर्ण योगदान है। वैश्विक पटल पर हिंदी भाषा को स्थापित करने के लिए जहाँ एक ओर साहित्यकारों और विभिन्न पत्र-पत्रिकाओं ने इसकी पृष्ठभूमि तैयार की है, वहीं दूसरी ओर हिंदी सिनेमा, गीतों, विज्ञापनों, बाज़ार, कंप्यूटर तकनीक, इंटरनेट आदि ने इसे विस्तीर्ण किया है।

हम निःसंकोच कह सकते है कि हिंदी भाषा का भविष्य बहुत उज्ज्वल है।

**artipathak@kalindi.du.ac.in**

# एक निःस्वार्थ हिंदी सेवी : श्रीमान बिसुनदयाल रामफल

**डॉ. सोमदत्त काशीनाथ**
**मॉरीशस**

(बिसुनदयाल रामफलजी रोज़ हिल के ग्लाडस्टोन स्ट्रीट में रहते हैं। वे एक सेवानिवृत्त हिंदी अध्यापक हैं तथा एक ऐसे हिंदी लेखक हैं, जिन्होंने निष्काम तथा निःस्वार्थ भाव से हिंदी भाषा की सेवा की है। वास्तव में, वे ग्रेड 3 में पढ़ रही, मेरी एक विद्यार्थिनी लैना रामपदारथ के नाना जी हैं। इसी साल उनसे आश्चर्यजनक रूप से जान-पहचान हुई और फिर उनसे मिलने का अवसर भी प्राप्त हुआ। उन्होंने एक दिन अपनी पोती लैना के हाथों अपनी कहानियों का संग्रह भेजा और उस पुस्तक के साथ एक पत्र भी था, जिसमें उन्होंने अपनी पोती में हिंदी भाषा तथा हिंदी काव्य-पाठ के प्रति अभिरुचि उत्पन्न करने के लिए, मुझे धन्यवाद किया था। इसके बाद मैंने उन्हें अपनी कुछ पुस्तकें भेजीं और एक पत्र भी लिखा। इस प्रकार पत्रों के आदान-प्रदान के बाद, 15 अक्टूबर, 2024 को चार बजे उनसे एक लघु साक्षात्कार करने का अवसर मिला।)

**साक्षात्कारकर्ता : गुरुजी, आपने अपनी पोती लैना के हाथों अपनी रचनाएँ भेजीं। इसके लिए मैं आपके प्रति आभारी हूँ। आपने एक समर्पित हिंदी अध्यापक के रूप में बहुत सालों तक हमारे देश के भविष्य को सींचा है और आपने लगभग इक्कीस वर्ष पहले अवकाश ग्रहण किया। आज आप 80 वर्ष के हैं। आप सेवानिवृत्त हो चुके हैं फिर भी एक सच्चे हिंदी सेवक के रूप में आज भी पूरी तरह से समर्पित हैं। अध्यापक तथा हिंदी लेखक के रूप में अपनी साहित्यिक-यात्रा के विषय में बताने से पूर्व, क्या आप अपना एक संक्षिप्त जीवन-परिचय दे सकते हैं?**

**साक्षात्कारदाता :** मेरा जन्म 31 अक्टूबर, 1943 में, एक ऐसे परिवार में हुआ, जहाँ मैंने बचपन में गरीबी के कई रूप देखे। हम तीन बहनें और दो भाई थे। बच्चों के क्रम में, मैं चौथे स्थान पर हूँ। हाँ, मुझे इस बात का बड़ा दुख है कि मेरे पिताजी की अधिक स्मृतियाँ मेरे पास नहीं हैं। बहुत छोटी उम्र में ही मेरे पिताजी की मृत्यु हो गई थी। मेरी माँ ने बहुत कष्ट झेलकर हम पाँचों बच्चों को पाला-पोसा और हमें स्कूल भेजा। जूता तो दूर की बात है, मैं बिना चप्पल के स्कूल जाता था। फिर भी मैं कठिन परिस्थितियों से लड़ता रहा। माँ ने मुझे हर रूप से पढ़ने के लिए तथा आगे बढ़ने के लिए प्रोत्साहित किया। अपने जीवन में मैं माँ के प्रभाव को कभी भी नहीं भूला सकूँगा। माँ के संघर्ष भरे जीवन से मुझे भी जीवन की

हर परिस्थिति में चुनौतियों का सामना करने के लिए हिम्मत मिली।

**साक्षात्कारकर्ता : तो क्या हिंदी अध्यापक बनने का प्रोत्साहन तथा हिंदी के सृजनात्मक साहित्य में अपना योगदान देने की प्रेरणा आपको अपनी माता जी से ही मिली?**

**साक्षात्कारदाता :** काशीनाथ जी, कुछ हद तक आपकी बात सही है। किंतु गहराई से देखें, तो हिंदी लेखन के प्रति मेरे आकर्षण की कहानी कुछ विचित्र है।

**साक्षात्कारकर्ता : ऐसा क्यों गुरुजी?**

**साक्षात्कारदाता :** बचपन में, मैं मॉरीशस के उत्तर प्रांत में स्थित 'पेचीराफ़्रे' गाँव में रहता था। वहीं मेरी प्राथमिक शिक्षा संपन्न हुई और वहीं मैंने कुछ हद तक माध्यमिक स्तर की पढ़ाई की। फिर मेरी बड़ी बहन की शादी 'बो-बासें' शहर में हुई। बहन के विवाह के पश्चात् परिस्थितियों ने एक ऐसा मोड़ लिया कि माँ ने 'बो-बासें' देखा और मेरा परिवार 'बो-बासें' रहने आ गया। क्या आप जानते हैं कि मैं 'बो-बासें' में जिस किराये के घर में रहने आया था वह घर किसका था?

**साक्षात्कारकर्ता :** नहीं, मुझे नहीं पता। यदि आप इसपर कुछ जानकारी देने का कष्ट करेंगे, तो बहुत अच्छा होता।

**साक्षात्कारदाता : हम जिस किराये के घर में रहने आए थे वह घर हिंदी के जाने-माने स्थानीय लेखक डॉ. मुनीश्वरलाल चिंतामणि जी का था।**

**साक्षात्कारकर्ता : तो क्या आपको हिंदी अध्यापक बनने और हिंदी में लिखने की प्रेरणा डॉ. मुनीश्वरलाल चिंतामणि से मिली?**

**साक्षात्कारदाता :** मैं इस बात को अस्वीकार नहीं करता हूँ कि मुझे डॉ. मुनीश्वरलाल चिंतामणि से हिंदी के क्षेत्र में आगे बढ़ने की प्रेरणा मिली। स्वतंत्रता के पूर्व का दौर एक अलग दौर था। राजनीतिक परिदृश्य में हिंदी को एक विकल्प की भाँति नहीं, बल्कि एक शस्त्र के रूप में देखा जा रहा था। जो हिंदी रूपी शस्त्र धारण कर लेता, उसे वोट डालने का अधिकार मिलता। मैं उस समय घर के खर्चों में हाथ बँटाने के लिए एक कराने की दुकान में काम करता था। मैंने केंब्रिज स्कूल सर्टिफ़िकेट की परीक्षा पास कर ली। एक दिन एक बड़ी-सी दुकान के मालिक ने मुझे 100 रु प्रति माह काम पर रख लिया। फिर एक माध्यमिक स्कूल के मैनेजर ने मुझे 120 रु वेतन पर इतिहास पढ़ाने के लिए आमंत्रित किया। इसके बाद 500 रु प्रति माह वेतन पर एक दुकान में मुझे काम पर रख लिया गया। किंतु यह काम अल्पकालिक था। मैं फिर से कम आमदनी पर एक छोटी दुकान में काम करने के लिए विवश हो गया। जहाँ मैं रहता था, वहाँ एक नौजवान हायर स्कूल सर्टिफ़िकेट की तैयारी कर रहा था। उसकी मदद से, रात-रात भर पढ़ाई करके मैंने 4 ए-लेवल की परीक्षाएँ दीं और मैं उत्तीर्ण हो गया। साथ में, मैं हिंदी बैठका में हिंदी पढ़ रहा था। हायर स्कूल सर्टिफ़िकेट के बाद मैंने प्राथमिक सरकारी पाठशाला में हिंदी अध्यापक के रूप में काम करने के लिए आवेदन भरा और मेरा चयन हो गया। इसी बीच अभिमन्यु अनत, भगत जी, सोमदत्त बखोरी तथा विष्णुदयाल बंधु आदि हिंदी सेवियों से मेरा संपर्क हुआ, जिन्होंने हिंदी लेखन के प्रति मेरे झुकाव को सुदृढ़ किया। इसी दौरान मुझे भारत जाकर बनारस हिंदू विश्वविद्यालय में स्नातकोत्तर स्तर की पढ़ाई करने की प्रेरणा मिली और मैं बी.ए, के बाद बी. एड. करके मॉरीशस लौटा। इसके बाद मैं माध्यमिक स्तर पर हिंदी-शिक्षण का काम करने लगा। 1968 से लेकर 2003 तक मैंने प्राथमिक स्तर पर, फिर माध्यमिक स्तर पर हिंदी के अध्यापक के रूप में काम किया। नवंबर 2003 में मैंने अवकाश प्राप्त कर लिया।

**साक्षात्कारकर्ता : गुरुजी, सचमुच आपका जीवन विविध प्रकार की अनुभूतियों तथा चुनौतियों से भरा रहा। क्या अब आप अपनी साहित्यिक यात्रा पर कुछ प्रकाश डाल सकते हैं?**

**साक्षात्कारदाता :** काशीनाथ जी, जैसे कि मैंने संकेत दिया, मेरा लेखन किसी निश्चित प्रक्रिया या फिर किसी विशिष्ट प्रशिक्षण से नहीं उभरा है। बचपन से ही हिंदी के प्रति मेरी विशेष रुचि रही है। मैं हिंदी पुस्तकें लेकर पढ़ता रहता हूँ। मैंने अपने अध्यापनकाल में लिखना आरंभ किया, किंतु अवकाश प्राप्त करने के बाद ही मैंने अपनी पुस्तकों का प्रकाशन किया।

**साक्षात्कारकर्ता : गुरुजी, क्या आप अपनी पुस्तकों**

**के विषय में कुछ जानकारी दे सकते हैं?**

**साक्षात्कारदाता :** मैंने अब तक अपनी तीन एकल पुस्तकें प्रकाशित की हैं और कई साझा-संकलनों में मैंने अपनी रचनाएँ छपने के लिए भेजी हैं। हिंदी लेखक संघ के कई संकलनों में मेरी रचनाएँ छपी हैं। हाल ही में, डॉ. इन्द्रदेव भोला इन्द्रनाथ द्वारा संपादित 'मॉरीशस का बृहद हिंदी काव्य-संकलन' पुस्तक में मेरी कुछ प्रतिनिधि कविताओं ने स्थान प्राप्त किया है। हाँ, मेरी जिन एकल पुस्तकों का प्रकाशन हुआ है, वे इस प्रकार से हैं – 'कुंति' (कविता-संग्रह), 'मॉरीशस की लघु कथाएँ' तथा एक एकांकी-नाटक संग्रह।

**साक्षात्कारकर्ता : गुरुजी,आप बधाई के पात्र हैं कि आप निःस्वार्थ भाव से हिंदी भाषा की सेवा करते हुए मॉरीशस की साहित्य-निधि में अपना योगदान देने का अथक प्रयास कर रहे हैं। 80 वर्ष के होने के उपरान्त भी आप हिंदी की पुस्तकें पढ़ते हैं, लिखते हैं और सबसे बड़ी बात यह है कि आप नई पीढ़ी के रचनाकारों को प्रोत्साहित करने का प्रयास भी करते हैं। निश्चित ही आपकी कविताओं में जहाँ हमारी वर्तमान पीढ़ी के लिए प्रेरणा बनने की क्षमता है, वहीं आपकी कहानियों में मूल्यों के समावेश के साथ-साथ मॉरीशस के विविध काल-खंडों के जीवन्त परिदृश्य को हमारे सामने उजागर करती हैं। आपकी लेखनी बिना थके, आपके अथाह अनुभवों के सागर में गोता लगाकर मॉरीशस के हिंदी साहित्य को संपन्न करे और हिंदी के प्रबुद्ध लेखकों में आपकी पहचान बने, यही मेरी ईश्वर से प्रार्थना है।**

**साक्षात्कारदाता :** आपके शुभकामना भरे शब्दों के लिए धन्यवाद, काशीनाथ जी! जिस दौर में, मैंने लिखना आरंभ किया मुझे किसी का साथ नहीं मिला और स्थानीय हिंदी लेखकों में विशेष मान्यता न मिलने के उपरान्त भी मैंने सृजनात्मक लेखन की चुनौतियों को स्वीकार किया तथा हिंदी सेवक का धर्म और कर्त्तव्य निभाया। यदि आज हिंदी लेखकों और संस्थाओं का निःस्वार्थ भाव से आपसी सहयोग का भाव विकसित हो, तो मुझे विश्वास है कि आगे चलकर मेरे जैसे असंख्य हिंदी रचनाकार सृजनात्मक लेखन की ओर बढ़ेंगे और अन्यों को भी बढ़ने के लिए प्रेरित करेंगे।

**साक्षात्कारकर्ता : गुरुजी बिसुनदयाल रामफल जी, आपने मुझे इतना समय दिया और मेरे सभी प्रश्नों के सटीक उत्तर दिए, इसके लिए मैं आपके प्रति कृतज्ञ हूँ। धन्यवाद, नमस्कार!**

**साक्षात्कारदाता :** मेरे विचार, मेरी दृष्टि तथा मेरे प्रयासों को पाठकों तक पहुँचाने के लिए मैं आपको धन्यवाद देना चाहूँगा। आपकी भी साहित्यिक यात्रा सफल हो, ईश्वर से मेरी प्रार्थना है। नमस्कार!

**mskashinath@gmail.com**

# वरिष्ठ विज्ञान लेखक देवेंद्र मेवाड़ी जी का साक्षात्कार

**सरल, बोलचाल की भाषा में लिखा विज्ञान, अंधविश्वासों को दूर करने में सहायक होता है: देवेंद्र मेवाड़ी**

**शालिनी वर्मा**
**दोहा, कतर**

विज्ञान जैसे कठिन समझे जाने वाले विषय को अपने सरस और सरल लेखन से रुचिकर बनाने वाले विज्ञान साहित्यकार श्री देवेंद्र मेवाड़ी बच्चों और सामान्य पाठकों के बीच बहुत लोकप्रिय हैं। उन्हें लोग विज्ञान लेखक, यायावर, किस्सागो आदि रूपों से भी जानते हैं। देश-विदेश की प्रमुख पत्र-पत्रिकाओं में उनके विज्ञान के ऊपर लिखे 3,500 से अधिक लेख प्रकाशित हो चुके हैं। उन्होंने पाँच वैज्ञानिक पुस्तकों और 100 से अधिक वैज्ञानिक लेखों का अनुवाद किया है तथा वैज्ञानिक पुस्तकों के भाषा-संपादन का कार्य भी बखूबी किया है। देवेंद्र जी ने 'धूमकेतु' (कॉमेट) पर विज्ञान प्रसार के लिए 'धूमकेतु' फ़िल्म का पटकथा-लेखन, लखनऊ दूरदर्शन से 'नई बात-नया चलन' प्रोग्राम, दिल्ली दूरदर्शन के लिए 'कृषक मंच' सीरियल की 26 कड़ियों के लिए पटकथा-लेखन और लोक सभा तथा राज्य सभा टीवी पर प्रसारित

विज्ञान समाचार सीरियल 'विज्ञान दर्पण' की 68 कड़ियों के लिए पटकथा लेखन भी किया है।

विज्ञान, आत्मकथात्मक तथा यात्रा संस्मरणों की उनकी 30 पुस्तकें प्रकाशित हो चुकी हैं, जिनमें से 'मेरी यादों का पहाड़', 'छूटा पीछे पहाड़' और 'जीवन जैसे पहाड़' आत्मकथात्मक पुस्तकें, 'कथा कहो यायावर' तथा 'दिल्ली से तुंगनाथ वाया नागनाथ' यात्रा संस्मरण और 'मेरी प्रिय विज्ञान कथाएँ', 'दस कहानियाँ', 'विज्ञाननामा', 'विज्ञान वेला में','नाटक-नाटक में विज्ञान', 'विज्ञान की दुनिया', 'विज्ञान बारहमासा'आदि विज्ञान की लोकप्रिय पुस्तकें हैं।

देवेन्द्र जी को मध्यप्रदेश संस्कृति विभाग का 'राष्ट्रीय गुणाकरमुले सम्मान-2023', केन्द्रीय साहित्य अकादमी का 'बाल साहित्य पुरस्कार', 'वनमाली विज्ञान कथा सम्मान', 'आत्माराम पुरस्कार', उत्तर प्रदेश हिंदी संस्थान का 'विज्ञान भूषण' सम्मान, हिंदी अकादमी दिल्ली के 'ज्ञान-प्रौद्योगिकी' सम्मान और विज्ञान प्रौद्योगिकी मंत्रालय के 'विज्ञान लोकप्रियकरण राष्ट्रीय सम्मान', आनंद प्रकाश जैन शिखर सम्मान, भारतेन्द बाल-साहित्य पुरस्कार जैसे अनेक राष्ट्रीय पुरस्कारों से सम्मानित किया गया है। शालिनी वर्मा जी से इस साक्षात्कार में उन्होंने अपने अनछुए पहलुओं और विज्ञान लेखन की उपयोगिता, कठिनाइयों पर बातचीत की है।

**साक्षात्कारकर्ता : प्रणाम महोदय, आपकी अनुमति से इस साक्षात्कार को आरंभ करती हूँ। सर्वप्रथम पाठकों को अपने बाल्यकाल और अपनी शिक्षा-दीक्षा के विषय में कुछ बताइए।**

**साक्षात्कारदाता :** धन्यवाद शालिनी जी, आप मुझे अपने बचपन में लौटने का अवसर दे रही हैं। मैं भारत में उत्तराखंड प्रदेश के पहाड़ों का निवासी हूँ। वहाँ नैनीताल ज़िले के एक ऊँचे पहाड़ पर कालाआगर गाँव में 1944 में मेरा जन्म हुआ। मेरे पिताजी का नाम श्री किशन सिंह मेवाड़ी और माताजी का नाम श्रीमती तुलसा देवी था। मेरे गाँव के चारों ओर घने जंगल थे, जिनमें सैकड़ों तरह की चिड़ियाँ और वन्य जीव रहते थे। बाघ भी थे। आदमखोर बाघ को मारने के लिए प्रसिद्ध शिकारी और प्रकृति प्रेमी जिम कार्बेट भी हमारे गाँव में आए थे। वसंत ऋतु में वहाँ दिन भर कुक्कू चिड़िया बोलती थी और जंगलों में लाल रंग के बुरांश के फूल खिल जाते थे। कहने का मतलब यह शालिनी जी कि मैं प्रकृति की गोद में पला-बढ़ा। इसलिए मेरे लेखन में आपको प्रकृति का वर्णन और ध्वन्यात्मकता काफ़ी दिखाई देगी।

जहाँ तक शैक्षिक योग्यता का सवाल है, मैंने अपनी प्राथमिक शिक्षा गाँव की ही पाठशाला में प्राप्त की। हमारे दो गाँव होते थे- ठंडे पहाड़ों में और गर्म पहाड़ी इलाके में। गर्म इलाके में मैंने जंगल की पाठशाला में पढ़ाई की, जहाँ स्कूल की कोई इमारत नहीं थी। हम जंगल में पेड़ों के बीच ही पढ़ते थे। उसके बाद कक्षा छह से लेकर बारहवीं तक मैंने अपने गाँव के सामने काफ़ी दूर दूसरे पहाड़ पर ओखलकांडा इंटर कॉलिज में पढ़ाई की। वहाँ भी चारों ओर प्रकृति ही प्रकृति थी। मैंने अपनी उच्च शिक्षा सुप्रसिद्ध पर्यटन नगरी नैनीताल में प्राप्त की। वहाँ से जीव विज्ञान में बी.एस-सी., वनस्पति विज्ञान में एम.एस-सी और हिंदी साहित्य में एम.ए. किया। बाद में, राजस्थान विश्वविद्यालय से पत्रकारिता में पी.जी. डिप्लोमा अर्जित किया। शेष तो सब स्वाध्याय ही है।

**साक्षात्कारकर्ता : क्या आपकी बाल्यकाल से ही लेखन में रुचि थी? आपका लेखन से लगाव किस प्रकार हुआ?**

**साक्षात्कारदाता :** मैंने हाईस्कूल में पढ़ते समय लिखना शुरू किया। तब तक मैं प्रेमचंद और अन्य लेखकों की बहुत सारी कहानियाँ पढ़ चुका था और मेरा मन करता था कि मैं भी कहानियाँ लिखूँ। तब मैंने अपनी रूलदार कॉपी में कहानियाँ लिखना शुरू किया। कुछ समय बाद मुझे अपने स्कूल के पुस्तकालय में 'विज्ञान लोक' पत्रिका दिखी। उसमें विज्ञान की बहुत रोचक बातें सरल भाषा में बताई गई थीं। मैं विज्ञान का विद्यार्थी था, इसलिए मुझे लगा कि मैं भी विज्ञान की बातें लिखकर अपने साथियों और अन्य लोगों को बताऊँ। इस कारण मैं विज्ञान लिखने लगा। धीरे-धीरे मेरी कहानियाँ हिंदी की साहित्यिक पत्रिकाओं में छपने लगीं। 'कहानी', 'नई कहानियाँ', 'माध्यम' और 'उत्कर्ष' जैसी साहित्यिक पत्रिकाओं ने मेरी कहानियाँ प्रकाशित कीं। मैंने अपने दो वैज्ञानिक लेख विज्ञान की लोकप्रिय पत्रिका 'विज्ञान जगत' के संपादक प्रोफ़ेसर आर. डी. विद्यार्थी को भेजे। साथ ही, उन्हें पत्र भी

लिखा कि मैं हिंदी में विज्ञान के लेख लिखना चाहता हूँ, लेकिन उन्हें कौन प्रकाशित करेगा। उनका उत्तर मिला- "मैं तुम्हारे दोनों लेख 'विज्ञान जगत' में प्रकाशित कर रहा हूँ। लिखते रहना और अपने लेख मुझे भेजना और यह याद रखना कि हो सकता है तुम स्वयं भविष्य में एक विज्ञान लेखक बनो।" बस, उनके इन शब्दों ने मेरे मन में विज्ञान लेखन की लौ जगा दी और मैं निरंतर विज्ञान लिखने लगा।

**साक्षात्कारकर्ता : महोदय, आपने किन-किन विषयों पर लेखन किया है?**

**साक्षात्कारदाता :** मैं विगत 60 वर्षों से लिख रहा हूँ और मेरी तीस से अधिक पुस्तकें प्रकाशित हो चुकी हैं। विषय या विधा के हिसाब से देखें, तो मेरा लेखन तीन श्रेणियों में रखा जा सकता है: विज्ञान लेखन, आत्मकथात्मक संस्मरण और यात्रावृत्तांत। इनमें से जहाँ तक मेरे विज्ञान लेखन का सवाल है- मैं साहित्य की कलम से विज्ञान लिखता हूँ। कहने का मतलब यह कि मेरे विज्ञान लेखन में पाठकों को सरसता अनुभव होती है। इसका एक कारण यह भी है कि मैं विज्ञान को साहित्य की विविध विधाओं और शैलियों में लिखता हूँ।

**साक्षात्कारकर्ता : आप एक प्रसिद्ध विज्ञान कथाकार और नाटककार हैं, पर विज्ञान जिसे नीरस विषय भी कहा जाता है, उसको कहानियों के माध्यम से लिखने का आरंभ किस प्रकार हुआ?**

**साक्षात्कारदाता :** प्रसिद्ध तो पता नहीं, लेकिन हाँ मैं विज्ञान कथाएँ लिखता हूँ। मैंने विज्ञान के नाटक भी लिखे हैं। आपका कहना सच है कि आम तौर पर विज्ञान को नीरस विषय कहा जाता है, जबकि ऐसा है नहीं। विज्ञान को भी बहुत रोचक तरीके से लिखा और पढ़ाया जा सकता है। उसे कहानी, कविता, गीत, नाटक, रिपोर्ताज, ललित लेख, साक्षात्कार, यात्रावृत्तांत के रूप में भी लिखा जा सकता है। विज्ञान कथा लिखने के लिए यह आवश्यक है कि वह मुक्कमल कहानी हो, विज्ञान का विवरण या व्याख्या नहीं। अतः विज्ञान कथा लिखने के लिए हिंदी कहानी के स्वरूप को लिखना और समझना अनिवार्य है।

मैं सन् 60 के दशक में नैनीताल में पढ़ता था, जब कथाकार यमुनादत्त वैष्णव अशोक से मेरी भेंट हुई। उन्हें पता था कि मैं विज्ञान का विद्यार्थी हूँ और कहानियाँ भी लिखता हूँ। उन्होंने मुझसे कहा कि आपको विज्ञान कथाएँ लिखनी चाहिए, क्योंकि विज्ञान और साहित्य दोनों में ही आपकी रुचि है। वे भी विज्ञान के विद्यार्थी रहे थे। उन्होंने यह भी बताया कि जब वे इलाहाबाद विश्वविद्यालय में पढ़ते थे तब उनकी कहानी 'वैज्ञानिक की पत्नी' को प्रथम पुरस्कार मिला था। निर्णायक प्रसिद्ध लेखक जैनेंद्र कुमार थे। उनकी बात मेरे मन में बैठ गई और मैंने अपनी पहली विज्ञान कथा 'शैवाल' लिखी।

बाद में उस समय की प्रसिद्ध पत्रिका 'साप्ताहिक हिंदुस्तान' ने मेरी विज्ञान कथा 'सभ्यता की खोज' को उपन्यासिका के रूप में प्रकाशित किया। इस पत्रिका के संपादक तब मनोहर श्याम जोशी थे और वह उपन्यासिका पाठकों को बहुत पसंद आई थी।

**साक्षात्कारकर्ता : आप की पहचान एक किस्सागो के रूप में भी है, इसके बारे में पाठकों को कुछ बताइए।**

**साक्षात्कारदाता :** किस्सागोई की मौखिक कला का उपयोग मैं विज्ञान की रोचक बातें और कहानियाँ सुनाने के लिए करता हूँ। अब तक मैं दो-ढाई लाख बच्चों और बड़ों को किस्सागोई में विज्ञान की कहानियाँ सुना चुका हूँ। ये कहानियाँ मैंने भारत के विभिन्न प्रदेशों में जाकर सुनाई हैं। इसमें मैं कभी अपने श्रोताओं को अंतरिक्ष में ले जाकर सौरमंडल की सैर कराता हूँ,कभी टाइम मशीन में बैठाकर अतीत, वर्तमान और भविष्य की सैर कराने के बहाने पर्यावरण की कहानी सुनाता हूँ और कभी फ़सलों की कहानियाँ सुनाता हूँ। छोटे बच्चों को लोककथाएँ सुना देता हूँ।

**साक्षात्कारकर्ता : विज्ञान और साहित्य दोनों को एक साथ लाना कठिन होता होगा, आप इन्हें किस प्रकार जोड़ पाते हैं?**

**साक्षात्कारदाता :** मैं विज्ञान को साहित्य में बदल देता हूँ। एक बार मैं भाभा शिक्षण केन्द्र मुंबई में प्रोफ़ेसर शिवादास का व्याख्यान सुन रहा था। उनकी यह बात सुनकर मैं चकित रह गया कि 'इफ़ साइंस इज़ डिफ़िकल्ट, चेंज इट टु लिटरेचर' मतलब यदि विज्ञान कठिन लगता है, तो उसे साहित्य में बदल दो। मैं वर्षों से यही कर रहा था, इसलिए उनकी बात सुनकर चकित भी हुआ और खुश भी। जैसा मैंने

पहले भी कहा विज्ञान को रोचक और सरस बनाने के लिए हमें उसे साहित्य की विभिन्न विधाओं में लिखना चाहिए।

**साक्षात्कारकर्ता : आपने अनेक विज्ञान नाटक लिखे हैं, इसके विषय में पाठकों को कुछ जानकारी दीजिए।**

**साक्षात्कारदाता :** मैंने अपने अधिकांश नाटक आकाशवाणी के लिए रेडियो नाटकों के रूप में लिखे हैं। यानी, वे श्रव्य नाटक हैं। उनमें से कई नाटकों को मंचन के लिए भी ढाला जा सकता है। मेरे विज्ञान नाटक विज्ञान की महत्त्वपूर्ण खोजों, वैज्ञानिकों, लोक वैज्ञानिकों, पर्यावरण आदि विषयों पर आधारित हैं। इसके अलावा मैंने अपनी कुछ विज्ञान कथाओं का भी नाट्य रूपांतरण किया है। मेरी चर्चित विज्ञान कथा 'सभ्यता की खोज' का रेडियो नाट्य रूपांतर हिंदी के कथाकार-उपन्यासकार श्री नवीन जोशी ने किया है। नाटकों के माध्यम से पाठकों को विज्ञान की जानकारी बहुत रोचक रूप में मिल जाती है और उन्हें पढ़ते हुए पाठकों को नाटक का रोमांच भी अनुभव होता है।

**साक्षात्कारकर्ता : समाज में व्याप्त अंधविश्वासों को दूर करने में विज्ञान लेखन किस प्रकार सहायक हो सकता है?**

**साक्षात्कारदाता :** विज्ञान लेखन चाहे प्रिंट मीडिया के लिए किया जाए अथवा इलेक्ट्रॉनिक या फ़िल्म माध्यम के लिए, उस जानकारी से समाज में वैज्ञानिक जागरूकता फैलती है। वह जानकारी अंधविश्वासों और अनावश्यक रूढ़ियों के भ्रम को तोड़ती है। यहाँ मुझे प्रसिद्ध खगोल वैज्ञानिक तथा विज्ञान कथाकार डॉ. जयंत विष्णु नार्लीकर की बात याद आ रही है कि समाज में मोटे तौर पर तीन वर्ग होते हैं- वैज्ञानिक, शिक्षक तथा विद्यार्थी और आमजन। वैज्ञानिकों की अपनी तकनीकी भाषा होती है। वे उस शब्दावली में शोध-पत्र लिखते हैं, जिसे वैज्ञानिक ही समझते हैं। शिक्षक उस जटिल वैज्ञानिक जानकारी को कुछ सरल बनाकर विद्यार्थियों को पढ़ाते हैं। यह जानकारी अर्ध तकनीकी भाषा में दी जाती है। तीसरा वर्ग यानी आमजन आम बोलचाल की भाषा को समझता है। इसलिए आम बोलचाल की भाषा में लिखे हुए विज्ञान को वे सरलता से समझ सकते हैं। इसी भाषा में लिखा हुआ विज्ञान उनमें वैज्ञानिक जागरूकता पैदा करता है और उन्हें सच्चाई बताता है। इसलिए आमजन के लिए आम बोलचाल की भाषा में जितना भी विज्ञान लिखा जाएगा, वह अंधविश्वासों को दूर करने में उतना ही अधिक सहायक होगा।

**साक्षात्कारकर्ता : आप अपने-आपको यायावर कहते हैं, आपका घुम्मकड़ होना क्या आपके लेखन को प्रभावित करता है?**

**साक्षात्कारदाता :** मैं अपने-आपको नहीं, बल्कि लोग मुझे यायावर कहते हैं, क्योंकि मैं अनेक जगहों की यात्राएँ करता रहता हूँ। मेरी वे यात्राएँ स्वयं नई जगहों को देखने और प्रकृति तथा लोगों को समझने के लिए भी होती है और बच्चों तथा बड़ों को किस्सागोई में विज्ञान की कहानियाँ सुनाने के लिए भी। मेरी इस तरह की यात्राओं की एक पुस्तक है 'कथा कहो यायावर'। पाठकों को यह पुस्तक बहुत पसंद है।

मैं अपनी यात्राओं के अनुभव पर यात्रावृत्तांत लिखता हूँ। 'कथा कहो यायावर' के अलावा मेरी एक और पुस्तक 'दिल्ली से तुंगनाथ वाया नागनाथ' में भी मैंने अपने यात्रा-अनुभव लिखे हैं। यात्रा अनुभवों की मेरी एक और पुस्तक जल्दी ही प्रकाशित होगी।

**साक्षात्कारकर्ता : आपने संपादन और अनुवाद में भी बहुत कार्य किया है कुछ उन पर भी प्रकाश डालिए।**

**साक्षात्कारदाता :** मैंने अपना कैरियर भारतीय कृषि अनुसंधान संस्थान, नई दिल्ली में शोध-कार्य से शुरू किया। तीन वर्ष शोध-कार्य करने के बाद मैंने कैरियर के लिए संपादन का क्षेत्र चुना और भारत के प्रथम कृषि विश्वविद्यालय, पंतनगर की मासिक कृषि पत्रिका 'किसान भारती' का तेरह वर्षों तक संपादन किया। इसके अलावा मैंने विज्ञान लोकप्रियकरण की प्रमुख संस्था 'विज्ञान प्रसार' की मासिक विज्ञान पत्रिका 'ड्रीम 2047' के हिंदी खंड का भी आठ वर्षों तक संपादन किया। इसके अतिरिक्त विश्व हिंदी न्यास की पत्रिका 'विज्ञान प्रकाश' के कुछ अंकों का भी संपादन किया। मैंने विज्ञान की लगभग आधा दर्जन पुस्तकों का भाषा-संपादन किया है, जिनमें 'डार्विन की आत्मकथा', जे.बी.एस. हाल्डेन की 'हर चीज़ कहती है अपनी कहानी' भी शामिल हैं। जहाँ तक अनुवाद की बात है, तो मैंने विज्ञान की पाँच-छह पुस्तकों का अनुवाद किया है - इनमें 'जीन और जीवन' (डॉ.

डी. बालासुब्रमणियम), 'कहानी रसायन विज्ञान की' (अनिर्बान हाजरा), 'हमारे पक्षी' (डॉ. असद आर. रहमानी) और 'मंगल बुला रहा है' (श्रीनिवास लक्ष्मण) शामिल हैं। इसके अलावा मैंने अमेरिकी दूतावास की प्रमुख पत्रिका 'स्पैन' तथा कुछ अन्य पत्रिकाओं के लिए सौ से भी अधिक वैज्ञानिक लेखों का अनुवाद किया है। भारतीय वैज्ञानिकों के जीवन पर आधारित कुछ वृत्तचित्रों की पटकथाओं का भी भावानुवाद किया है।

**साक्षात्कारकर्ता : आपने विभिन्न विषयों पर पुस्तकें लिखी हैं, अपनी पुस्तकों के बारे में थोड़ी जानकारी साझा कीजिए।**

**साक्षात्कारदाता :** शालिनी जी, जैसा कि मैं पहले बता चुका हूँ, मेरी तीस पुस्तकें प्रकाशित हो चुकी हैं। साहित्यकारों और विज्ञान साहित्यकारों पर मेरे संस्मरणों की पुस्तक जल्दी ही प्रकाशित होगी। बाल-विज्ञान की भी एक पुस्तक छप रही है। देश-विदेश की यात्राओं पर भी एक पांडुलिपि तैयार कर रहा हूँ। मेरी आत्मकथात्मक संस्मरणों की तीन पुस्तकें प्रकाशित हो चुकी हैं- नेशनल बुक ट्रस्ट से 'मेरी यादों का पहाड़' और संभावना प्रकाशन से 'छूटा पीछे पहाड़' तथा 'जीवन जैसे पहाड़'। यह मेरी आत्मकथात्मक पुस्तकों की चतुष्टयी है, इसलिए चौथी पुस्तक पर काम कर रहा हूँ। 'कथा कहो यायावर' और 'दिल्ली से तुंगनाथ वाया नागनाथ' में पाठक मेरी यात्राओं का आनंद ले रहे हैं।

शेष विज्ञान-साहित्य की पुस्तकें हैं। मैं विज्ञान विविध विधाओं और शैलियों में लिखता हूँ, जिनकी छटा आप मेरी विज्ञान की पुस्तकों में देख सकती हैं। इनमें 'विज्ञाननामा' है, 'विज्ञान वेला में', 'मेरी विज्ञान डायरी, भाग-1 और भाग-2' और 'विज्ञान प्रसंग' है, 'मेरी प्रिय विज्ञान कथाएँ' और 'दस कहानियाँ' हैं, बच्चों के लिए 'विज्ञान बारहमासा' है, तो 'सौरमंडल की सैर', 'विज्ञान की दुनिया', 'विज्ञान और हम' भी हैं।

पाँच अनूदित पुस्तकें हैं और छह पुस्तकों का भाषा-संपादन किया है। जलवायु परिवर्तन के दुष्प्रभावों को ध्यान में रखकर रूम-टु-रीड एनजीओ से बच्चों के लिए मेरी 'मोनू मोनाल' पुस्तक प्रकाशित हुई है।

मेरा एक स्वप्न है कि एक ऐसी पुस्तक लिखूँ जिसे पाठकों का खूब प्यार मिले और लोग उसे याद रखें। वह पुस्तक अभी लिखी जानी है। यों समझ लीजिए कि उसे लिखने के अभ्यास में अब तक ये लगभग तीस पुस्तकें लिखी गई हैं।

**साक्षात्कारकर्ता : आज के विज्ञान लेखन के क्षेत्र में क्या कमी है, जिसको दूर किया जा सकता है?**

**साक्षात्कारदाता :** सबसे बड़ी कमी तो यह है कि आज आम पत्रिकाएँ और समाचार-पत्र विज्ञान की रचनाओं को उतना स्थान नहीं दे रहे हैं, जितना साठ, सत्तर और अस्सी के दशक तक दे रहे थे। लाखों प्रतियाँ प्रति सप्ताह बिकने वाली 'धर्मयुग', 'साप्ताहिक हिंदुस्तान' के साथ ही 'नवनीत', 'कादम्बिनी', 'दिनमान', 'रविवार' जैसी पत्रिकाएँ विज्ञान की रचनाएँ प्रकाशित करती थीं। समाचार-पत्रों के रविवारीय पृष्ठ प्रमुखता से विज्ञान छापते थे। आकाशवाणी और दूरदर्शन पर विज्ञान की सामयिक और स्तरीय वार्ताएँ तथा परिचर्चाएँ प्रसारित होती थीं। आज परिदृश्य ही बदल गया है। पत्रिकाओं की संख्या ज़रूर घटी है लेकिन जो पत्रिकाएँ हैं भी, तो उनमें विज्ञान की रचनाएँ बहुत कम दिखाई देती हैं। समाचार-पत्रों में विज्ञान घटता चला गया। केवल सरकारी संस्थाओं से विज्ञान की पत्रिकाएँ प्रकाशित हो रही हैं, जैसे विज्ञान प्रगति, 'आविष्कार' और 'वैज्ञानिक'। निजी क्षेत्र में भोपाल की आइसेक्ट संस्था से छत्तीस वर्षों से हर माह 'इलेक्ट्रॉनिकी आपके लिए' पत्रिका प्रकाशित हो रही है, जिसकी प्रसार संख्या 35,000 प्रतियाँ प्रति माह है। उत्तराखंड की गैर-सरकारी संस्था 'पहल' उत्तराखंड विज्ञान एवं प्रौद्योगिकी परिषद् (यूकॉस्ट) के सहयोग से 'विज्ञान परिचर्चा' पत्रिका प्रकाशित कर रही है। देहरादून से ही 'विज्ञान सम्प्रेषण' छप रही है।

पत्र-पत्रिकाओं में बच्चों के लिए विज्ञान बहुत कम छप रहा है, हालाँकि भोपाल की 'चकमक' तथा 'इकतारा' की 'साइकिल' और 'प्लूटो' पत्रिकाएँ बच्चों के लिए रोचक विज्ञान प्रकाशित कर रही हैं।

**साक्षात्कारकर्ता : आप एक वरिष्ठ और सुप्रसिद्ध विज्ञान साहित्यकार हैं, परंतु क्या आपको ऐसा नहीं लगता कि आज की पीढ़ी की पुस्तकों में रुचि कम होती जा रही है ? कम उम्र में ही इंटरनेट ने बच्चों को सभी**

**विषयों की जानकारी एक क्लिक में उपलब्ध करवा दी है, तो क्या आज के बच्चे पुस्तकें पढ़ना चाहते हैं ? आप इस विषय पर क्या सोचते हैं?**

**साक्षात्कारदाता :** मैं विज्ञान की कहानियाँ सुनाने के लिए बच्चों से मिलता रहता हूँ। मैंने देखा है, उनमें पुस्तकें पढ़ने की बहुत चाह है। लेकिन, अगर घर में ही माता-पिता और अभिभावक पुस्तकें नहीं रखेंगे और न पुस्तकें पढ़ेंगे, तो बच्चों को क्या दोष दें। दूसरे, कई अभिभावक बच्चों पर केवल पाठ्यपुस्तकें पढ़ने का दबाव डालते हैं। यह गलत है। उन्हें पाठ्यपुस्तकों के अलावा अन्य अच्छी पुस्तकें भी पढ़ने देनी चाहिए। हर पुस्तक ज्ञान देती है। इंटरनेट ने एक क्लिक पर सभी विषयों की जानकारी ज़रूर उपलब्ध करा दी है, लेकिन वह पुस्तक नहीं है। पुस्तक जो हाथों से छूने का रोमांच दे, अपनी खुशबू दे, हर पन्ना पलटने का आनंद प्रदान करे, पढ़ते हुए कल्पना के पंख दे, जब चाहें पढ़ें, जब चाहें सिरहाने रख लें और जब मन हो तब पढ़ते रहें। असल में, पुस्तकें बच्चों की सबसे अच्छी दोस्त हैं। इंटरनेट हो या मोबाइल, कम्प्यूटर या कोई और गैजेट, वह पुस्तक का स्थान नहीं ले सकता।

**साक्षात्कारकर्ता : महोदय, आपको अनेक सम्मानों और पुरस्कारों से सम्मानित किया गया है, कृपया अपने पाठकों को कुछ सम्मान के बारे में बताइए।**

**साक्षात्कारदाता :** शालिनी जी, मुझे क्या मेरे लेखन को, मेरी कलम को कई सम्मान और पुरस्कार मिले हैं। इनमें राष्ट्रीय सम्मान भी शामिल हैं। पुरस्कार जब अनायास और लेखन के मूल्यांकन के आधार पर मिलते हैं, तब मन प्रोत्साहित होता है। लगता है, मेरे लेखन के लिए मेरी पीठ पर स्नेह से थपकी दी गई है। मुझे विज्ञान लेखन के लिए माननीय राष्ट्रपति के हाथों से केन्द्रीय हिंदी संस्थान का "आत्माराम पुरस्कार" मिला। केन्द्रीय साहित्य अकादेमी का "बाल साहित्य पुरस्कार", राष्ट्रीय विज्ञान तथा प्रौद्योगिकी परिषद् का "राष्ट्रीय विज्ञान लोकप्रियकरण पुरस्कार", उत्तर प्रदेश हिंदी संस्थान का "विज्ञान भूषण पुरस्कार", हिंदी अकादमी दिल्ली का "ज्ञान-प्रौद्यौगिकी सम्मान", "वनमाली विज्ञान-कथा सम्मान", "भारतेन्द हरिश्चन्द्र बाल-साहित्य पुरस्कार" तथा कुछ अन्य पुरस्कार प्राप्त हुए हैं। हाल ही में मुझे मध्यप्रदेश शासन के संस्कृति विभाग ने "गुणाकर मुले राष्ट्रीय सम्मान-2023" से सम्मानित किया है।

**साक्षात्कारकर्ता : नए विज्ञान लेखकों को आप क्या सुझाव देना चाहेंगे ?**

**साक्षात्कारदाता :** नए विज्ञान लेखकों को सुझाव का प्रश्न सुनकर मुझे लगता है- मैं विज्ञान लेखन का अपना अनुभव उन्हें बता सकता हूँ। मेरा दीर्घ अनुभव यह है कि हमें सरल भाषा और रोचक शैली में विज्ञान लिखना चाहिए, ताकि पाठक उसे आसानी से समझ सकें। इसलिए मैं तो विज्ञान लिखते समय मन में जनाब ऐश देहलवी का यह शेर दुहराता रहता हूँ-

अपना कहा तुम आप ही समझे तो क्या समझे
मज़ा कहने का जब है एक कहे और दूसरा समझे

दूसरी बात यह है कि विज्ञान लेखकों को साहित्य की विविध विधाओं में विज्ञान लिखना चाहिए। इससे उनका विज्ञान अधिक पढ़ा जाएगा और पाठकों की संख्या बढ़ेगी।

**साक्षात्कारकर्ता : आपकी ओर से पाठकों के लिए कुछ संदेश।**

**साक्षात्कारदाता :** मैं तो स्वयं पाठक और विद्यार्थी हूँ। पढ़ता रहता हूँ। जितना पढ़ेंगे, उतना ही अधिक ज्ञान बढ़ेगा। इसलिए पढ़ने की आदत बना लेनी चाहिए। मेरी बहुत-बहुत शुभकामनाएँ!

**साक्षात्कारकर्ता :** धन्यवाद महोदय, मैं आपका आभार व्यक्त करती हूँ कि आपने अपना बहुमूल्य समय इस साक्षात्कार के लिए दिया। मैं आशा करती हूँ कि आपके इस साक्षात्कार से विश्व भर में विज्ञान लेखन को जानने, समझने में रुचि रखने वालों को अवश्य लाभ होगा। पुनः धन्यवाद।

**साक्षात्कारदाता :** इस बातचीत के लिए आपका भी हार्दिक आभार शालिनी जी।

**shln.verma2@gmail.com**

# उदयभानु हंस से बातचीत

**रोहित कुमार 'हैप्पी'**
**न्यूज़ीलैंड**

2012 में अपने हरियाणा प्रवास के दौरान मैं अपने एक मित्र को लेकर उदयभानु हंस का साक्षात्कार करने उनके हिसार स्थित निवास पर गया। स्लेटी रंग का कुर्ता और सफ़ेद पायजामा, आँखों पर काला चश्मा पहने और चिरपरिचित मुस्कान लिए 'हंस जी' बाहर ही मिल गए। बड़े स्नेह के साथ अपनी बैठक में ले गए। वहाँ दीवार पर उनके चित्र, छायाचित्र, पुरस्कार और प्रमाण-पत्र देखे जा सकते थे। एक फ़्रेम में जड़े एक छायाचित्र में वे अनेक कवियों के साथ दिखाई देते हैं, बीच में अमिताभ बच्चन हैं और उनके दाएँ-बाएँ गीतकार नीरज और हंस जी व अन्य कवि हैं।

"अमिताभ बच्चन! यह फ़ोटो शायद किसी कवि-सम्मेलन की है?" मेरे साथ आए मित्र ने चित्र को देखते हुए, खड़े-खड़े ही उत्सुकता दिखाई।

"हाँ, यह हरिवंशराय बच्चन जी के एक कार्यक्रम की है।" हंस जी ने उत्तर दिया। कुछ देर कुशलक्षेम की बातचीत होती रही, फिर उनके रचना-कर्म पर साक्षात्कार आरम्भ हुआ -

**साक्षात्कारकर्ता : आपका जन्म पाकिस्तान में हुआ तो आपकी शिक्षा-दीक्षा भी वहीं हुई होगी?**

**साक्षात्कारदाता :** मैंने स्कूल में मिडिल तक उर्दू-फ़ारसी पढ़ी और घर में पिताजी हिंदी और संस्कृत पढ़ाते थे। मेरे पिताजी हिंदी और संस्कृत के विद्वान थे और कवि भी थे। बाद में मैंने प्रभाकर और शास्त्री की और फिर हिंदी में एम.ए।

मेरी आरंभिक शिक्षा मुल्तान के दायरा दीनपनाह कस्बे के मिडिल स्कूल में हुई। मैंने उर्दू और फ़ारसी में शिक्षा पाई। हिंदी और संस्कृत घर पर पिताजी पढ़ाते थे। उनकी इच्छा थी कि मैं उनकी तरह ही कर्मकांडी पंडित और धर्म-उपदेशक बनूँ। उन्होंने 1940 में मुझे दरियाखान ज़िला मियांवाली के संस्कृत विद्यालय में पढ़ने भेज दिया, जिसे स्वामी अमरदेव संचालित करते थे। शुरुआत में मुझे अपने हाथ से कपड़े धोना और ज़मीन पर सोना अच्छा नहीं लगा। जैसे-तैसे बड़ी मुश्किल से वहाँ दो साल गुज़ारे। बाद में पिताजी ने मुझे मुल्तान के संस्कृत कॉलिज में पढ़ने भेज दिया।

**साक्षात्कारकर्ता : आप संस्कृत में भी लिखते थे?**

**साक्षात्कारदाता :** 1941 में छात्रावस्था में ही मैं संस्कृत कविता का और फिर 1943 से उर्दू व हिंदी कविता का अभ्यास करने लगा था। संस्कृत के लेखक के रूप में 1942 में मुझे जगद्गुरु शंकराचार्य द्वारा 'कविभूषणम्' की उपाधि दी गई तथा 1943 में 'साहित्यालंकार' की उपाधि से सम्मानित किया गया।

बाद में 1945 में शास्त्री की परीक्षा पंजाब यूनिवर्सिटी लाहौर में सर्वप्रथम रहकर उत्तीर्ण की तथा सनातन धर्म संस्कृत कॉलिज मुल्तान में ही शिक्षक हो गया।

जब मैं हंस जी से विभाजन के बारे में पूछता हूँ, तब वे भावुक हो जाते हैं। उनकी आँखों की नमी छुपाए नहीं छुपती। अपनी जन्म-भूमि हम सभी को प्रिय होती है। वे कहते हैं-

"देश-विभाजन के बाद एफ.ए की परीक्षा दी। 1950 में बी.ए डिग्री की और बाद में दिल्ली विश्वविद्यालय के हंसराज कॉलिज से 1952 में एम.ए हिंदी की। देश-विभाजन के पश्चात् सात वर्ष तक दिल्ली में जीवन यापन किया। कुछ समय रामजस कॉलिज, दिल्ली में अस्थायी प्राध्यापक रहा। मैं उस समय ट्यूशन भी देता था।"

हंस जी 86 वर्ष के हो गए थे, लेकिन उनकी स्मरण-शक्ति अभी भी कमाल की थी। वे जब भी किसी घटना का उल्लेख करते, तब उन्हें वर्ष भी याद होता था।

**साक्षात्कारकर्ता : फिर आप हिसार (हरियाणा) में गवर्नमेंट कॉलिज में आ गए?**

**साक्षात्कारदाता :** हाँ, 1954 से सेवामुक्त होने तक मैं गवर्नमेंट कॉलिज हिसार (हरियाणा) में हिंदी-विभाग का अध्यक्ष रहा और यहीं प्रिंसिपल के पद से सेवामुक्त हुआ।

**साक्षात्कारकर्ता : आप हरियाणा के पहले राज्य कवि हैं, इसके बारे में बताइए!**

**साक्षात्कारदाता :** "1966 में हरियाणा बना तो 1967 में मैं हरियाणा का पहला राज्य कवि बना। राज्य कवि की पृष्ठभूमि भी काफ़ी दिलचस्प है। हरियाणा बनने से पहले जब अविभाजित पंजाब के कैरों साहब चीफ़ मिनिस्टर थे और वी. एन. गाडगिल गवर्नर थे, तब की बात है। उस समय दो-तीन कवि मशहूर थे। मेरे अलावा देवराज दिनेश थे। उन्हें मैं तब से जानता हूँ, जब पाकिस्तान नहीं बना था। मैं तब मुल्तान में सातवीं कक्षा को संस्कृत पढ़ाता था। जब मुल्तान में कवि-सम्मेलन होते थे, तब देवराज दिनेश भी वहाँ आते थे। वे वीर रस की कविताएँ सुनाया करते थे। बाद में वे दिल्ली रेडियो में चले गये थे। हम लोग पंजाब के एक कवि सम्मेलन में साथ-साथ थे, वहीं गवर्नर ने राज्य कवि बनाने का सुझाव दिया, मुख्यमंत्री ने भी अपनी सहमति दे दी। इस प्रकार इन्द्रजीत सिंह 'तुलसी' और देवराज दिनेश को संयुक्त पंजाब के 'राज्य कवि' का दर्जा प्रदान हुआ । देवराज दिनेश मुझसे एक साल सीनियर थे। बाद में जब हरियाणा अलग राज्य बना, तब मुझे 1967 में दो वर्ष के लिए राज्य कवि की उपाधि दी गयी।"

**साक्षात्कारकर्ता : इन्द्रजीत सिंह 'तुलसी' और देवराज दिनेश दोनों ने हिंदी फ़िल्मों में भी गीतकार के रूप में काम किया है। क्या आपने भी हिंदी फ़िल्मों के लिए गीत लिखे हैं?**

**साक्षात्कारदाता :** "नहीं, मैंने ऐसा नहीं किया पर कुछ रुबाइयों का फ़िल्मों व धारावाहिक में अवश्य उपयोग किया गया है।" हंस जी अभी उन रुबाइयों को याद ही कर रहे थे कि कौन-सी रुबाइयाँ थीं, तभी कमरे में पास से गुजरती उनकी बेटी ने याद दिलाया, ''मैं साधु से...."

"ओह, हाँ!" फिर वे वह रुबाई सुनाते हैं-

"मैं साधु से आलाप भी कर लेता हूँ,
मन्दिर में कभी जाप भी कर लेता हूँ।
मानव से कहीं देव न बन जाऊँ मैं,
यह सोच के कुछ पाप भी कर लेता हूँ॥"

एक और रुबाई याद आ रही है - जो 'ज़ी टीवी' के एक धारावाहिक में भी उपयोग की गई थी-

सावन में मरुस्थल भी चहक जाते हैं,
काँटे भी बहारों में महक जाते हैं।
मदहोश जवानी पे न झुंझलाओ तुम,
इस उम्र में सब लोग बहक जाते हैं।"

**साक्षात्कारकर्ता : क्या 'रुबाई' और 'मुक्तक' दो भिन्न विधाएँ हैं।**

**साक्षात्कारदाता :** हाँ, 'रुबाई' और 'मुक्तक' दो भिन्न विधाएँ हैं। "मेरी पुस्तक 'हिंदी रुबाइयाँ' में मैंने स्वामी श्यामानन्द का एक आलेख 'रुबाई का छन्द-विधान' दिया है। उसे देखना। मैं अभी तुम्हें कुछ पुस्तकें दूँगा।"

**साक्षात्कारकर्ता : आप अमेरिका, इंग्लैंड सहित अनेक देशों की यात्रा कर चुके हैं। आपके अमेरिका के संस्मरण मैंने बहुत वर्ष पहले 'दैनिक नवभारत टाइम्स' में पढ़े थे।**

**साक्षात्कारदाता :** अमेरिका में 'गुलाब खंडेलवाल' ने अनेक हिंदी विधाओं में सृजन किया है। 'खंडेलवाल' की पहली पुस्तक 'कविता' का 'आमुख' महाकवि 'निराला' ने लिखा था। "निराला द्वारा किसी पुस्तक का आमुख लिखना बड़ी बात थी।"

**साक्षात्कारकर्ता :** मैं अमेरिका में खंडेलवाल परिचित हूँ। मेरे पास उनकी अनेक पुस्तकें हैं, जिनमें 'कविता' शीर्षक वाली पुस्तक भी सम्मिलित है। अच्छा, लेखन में लगी हुई युवा पीढ़ी को आप क्या संदेश देना चाहेंगे?

**साक्षात्कारदाता :** हंस जी ने मुस्कुराते हुए ये पंक्तियाँ कह दीं -

"सुगंध जिसमें न हो वो सुमन नहीं होता,
सुरा का घूँट कभी आचमन नहीं होता।
प्रसव की पीड़ा ज़रूरी है एक माँ के लिए,
बिना तपस्या के लेखन-सृजन नहीं होता॥"

**साक्षात्कारकर्ता : क्या 'सृजन' पर कोई और रुबाई है?**

**साक्षात्कारदाता :** *(अपने अंदाज़ में मुस्कुराते हुए)* कहते हैं, 'सृजन' पर एक और रुबाई सुनिए -

अनुभूति से जो प्राणवान होती है,
उतनी ही वो रचना महान होती है।
कवि के हृदय का दर्द, नयन के आँसू,

पीकर ही तो रचना जवान होती है॥"

**साक्षात्कारकर्ता : यहाँ बैठे मुझे कई घंटे हो गए थे। अब विदा लेने का समय आ गया है।**

**साक्षात्कारदाता :** "एक मिनट बैठो। मैं अपनी पुस्तकें दे दूँ।" *(वे कुछ पुस्तकों पर हस्ताक्षर करके देते हैं और फिर एक पर्ची में देखकर अन्य दो पुस्तकों के मुद्रण में हुई त्रुटियाँ ठीक करने लगते हैं।)*

**साक्षात्कारकर्ता : इन्हें रहने दें, मैं देख लूँगा।**

**साक्षात्कारदाता :** "नहीं, मैं अभी ठीक करके देता हूँ। मुद्रण में कुछ गलतियाँ हो गई थीं।" *(पूरी त्रुटियाँ ठीक करके जब वे आश्वस्त हुए तभी उन्होंने वे पुस्तकें मुझे दीं। मैंने एक बार पुनः प्रणाम किया, तो उन्होंने मेरी पीठ थपथपा दी।)*

*26 फ़रवरी, 2019 को हंस जी का निधन हो गया। अभी कुछ समय पहले 2023 में हिंदी फ़िल्मों के अभिनेता आशुतोष राणा ने भी 'हंस जी' का एक गीत,'तुझसे प्रीत लगा बैठा' यूट्यूब पर प्रस्तुत किया है। लाखों लोगों ने इस गीत को सराहा है। आज हंस जी तो हमारे बीच नहीं हैं, लेकिन उनकी स्मृति शेष सदैव हमारे साथ रहेगी।*

**editor@bharatdarshan.co.nz**

# शब्द संस्कृति के मेले में – डॉ. सूर्यनारायण रणसुभे

**रमा बुलबुले-नवले**
**नांदेड़, भारत**

महाराष्ट्र के सुप्रसिद्ध समीक्षक, अनुवादक, गहन चिंतक, विद्वद व्याख्याता एवं शून्य से शिखर तक की यात्रा करने वाले औलिया डॉ. सूर्यनारायण रणसुभे द्वारा लिखित 'शब्द संस्कृति के मेले में' सद्यप्रकाशित किताब है। इस पुस्तक की भूमिका में लेखक रणसुभे जी ने कहा है – "उनके जीवन के चालीस-पचास सालों में दर्जनों व्यक्ति उनके संपर्क में आए। उनमें से कुछ पचास-साठ स्त्री-पुरुष उनके मन में हमेशा के लिए बस गए। इन लोगों ने उन्हें भावनिक, भाषिक, बौद्धिक या रसिकता की दृष्टि से संपन्न किया। कई सुखद अनुभव दिए। कुछेक का दर्द इनके दर्द से एकात्म होकर और घना हो गया। ऐसे ही कुछ लोगों के ये संस्मरण हैं।" इन संस्मरणों में उनके परिवार का एक भी व्यक्ति उपस्थित नहीं है; बावजूद यहाँ एक बड़ा परिवार मौजूद है। यह परिवार एक विशिष्ट जाति का परिवार है। आजीवन किसी जाति से बँधकर न चलने वाले की जाति? सुधा अरोड़ा जी को तो रणसुभे जी इस समाज-संरचना में बैठने वाले व्यक्ति ही नहीं लगते। पर यह सच है... बात इतनी ही है कि यह एक 'अलग जाति' है.... यह जाति है 'शब्द संस्कृति से विनिर्मित लोगों की'। जो जाति केवल और केवल मनुष्यता के प्रति प्रतिबद्ध होती है। लेखक इसी जाति के हैं और शायद इसी जाति के लोगों के संस्मरण वे लिख रहे हैं। दूसरी महत्त्वपूर्ण बात यह है कि इन संस्मरणों के माध्यम से हम समकालीन चालीस-पचास सालों का साहित्यिक, भाषिक, शैक्षिक, सांस्कृतिक और सामाजिक इतिहास पढ़ सकते हैं। प्राचीन इतिहास लिखना आसान होता है, पर समकालीन इतिहास पर बात करना, लिखना काफ़ी चुनौतीपूर्ण होता है। इस अर्थ में यह पुस्तक एक 'ऐतिहासिक दस्तावेज़' भी है।

'शब्द संस्कृति के मेले में' कृति में शब्द-संस्कृति से विनिर्मित व्यक्तियों के संस्मरण हैं। संस्कृति मनुष्य की होती है। यहाँ बात, शब्दों की संस्कृति से निर्मित लोगों की है। संस्कृति मनुष्य के रहन-सहन, उसकी आस्थाओं, विश्वासों, दृष्टियों और जीवन-दर्शन की परिचायक होती है। यहाँ शब्द संस्कृति की छाया में पले-बढ़े रणसुभे जी ने; उनके हिस्से जितनी छाँव आयी, उस घनी छाँव का सुखद, शांत और गहरा अनुभव कराया है। साथ ही, उनके रहन-सहन, उनकी आस्थाओं, उनके विश्वासों, उनकी दृष्टियों, उनके आचरणों, उनके जीवन-दर्शन और उनकी साहित्यिक धारणाओं द्वारा बेजोड़ मानवीय-मूल्यों की स्थापना की है। जिनसे उन्हें छाँव मिली, उनमें उनके गुरु हैं, उनके सहपाठी हैं, उनके सहयोगी हैं, उनके दोस्त हैं, उनके समकालीन साहित्यकार हैं, उनके अध्यापक छात्र हैं, कुछ छात्र-मित्र भी हैं और हैं कुछ उनके ज्ञान की विरासत को आगे ले जाने वाले राही भी। लेखक उनसे खुद लाभान्वित हुए हैं और हमें उससे भी अधिक लाभान्वित कर रहे हैं और आने वाली कई पीढ़ियों को लाभान्वित करते रहेंगे। यह ऐतिहासिक दस्तावेज़ दीपशिखा की भाँति आलोक फैलाता रहेगा। यह किताब 'वह मील का पत्थर' है, जो बताता रहेगा कि साहित्यकारों की यह भी एक दुनिया थी। एक तपस्वी (रणसुभे) ने सहृदयों को इस दुनिया की सैर करवाने के लिए तपस्या की थी। पाठक जब इस किताब और उनके साहित्य को पढेंगे तब लगेगा कि इस तपस्वी को 'गुरुदेव' कहा जाता है, पर इस 'गुरुदेव' का व्यक्तित्व अब इस शब्द में समाता नहीं है। अब तो वह 'गुरुदेव' से 'ऋषि' बन गए हैं।

यह किताब आठ खण्डों में विभाजित, पचास संस्मरणों का संकलन है। अनुक्रमणिका में हर व्यक्ति के संस्मरण के शीर्षक के साथ केवल दो-चार शब्दों में उस व्यक्ति के समग्र व्यक्तित्व को रेखांकित किया गया है। ये शब्द उस व्यक्ति को पाठकों के सामने हुबहू खड़ा करने में समर्थ हैं। पहला खंड 'जिनके निकट बैठकर मैं हिंदी साहित्य को समझ-बुझ सका' वे अपने गुरु अमर सिंह राठोड़ और श्री चंद्रकांत कुसनुर जी को याद करते हैं, जिन्होंने इन्हें 'सहृदय पाठक' बनाया। दूसरा खंड 'इलाहाबाद : भाषा और साहित्य की समझ का तीर्थ क्षेत्र' में उनकी साहित्यिक समझ के विकसित होने की प्रक्रिया का

विश्लेषण है। इलाहाबाद की तपती धूप में मिले घने छायादार पेड़ों से वे पाठकों को मिलाते हैं; जो प्रकाश के द्वीप भी हैं। उनसे मिलकर हम अलग-अलग अनुभवों की सुखद यात्रा करने लगते हैं। कुछेक कटु अनुभव भी हैं। इन संस्मरणों में विभागाध्यक्ष की ऐंठ वाले डॉ. रामकुमार वर्मा, दूर-दराज़ में उनका हर दृष्टि से ख्याल रखने वाले उनके मानस पिता डॉ. हरदेव बाहरी, प्रखर बुद्धिमत्ता के धनी डॉ. रघुवंश, कवि चित्रकार डॉ. जगदीश गुप्त, दीपशिखा-सी डॉ. शैलकुमारी, पुरुष सौंदर्य के मूर्त रूप सुमित्रानंदन पंत, देवी सरस्वती का मूर्त रूप महादेवी वर्मा, धूप-छाँह के निवासी अमृत राय के संस्मरण हैं। इनमें रघुवंश जी को भूलना असंभव है। उनके दोनों हाथों की अँगुलियाँ जन्मत: नहीं थीं, अँगुलियों के नाम पर केवल माँस के गोले थे; बावजूद डेढ़-दो हज़ार पृष्ठों का मज़मून केवल पैरों से लिखकर 'प्रकृति और काव्य' जैसी समीक्षकों के लिए अत्यंत उपयोगी समीक्षात्मक किताब लिखी। तीसरे खंड में वे 'इलाहाबाद के साथी' (साथियों) से हमारी निकटता स्थापित कराते हैं और ये अहिंदी भाषी उनके साथी हमारे भी आत्मीय हो जाते हैं। इन साथियों में चंद्रकांत गर्जे, अर्जुन शतपथी, माचि रेड्डी ने कठिन समय में उनका साथ दिया। यहाँ तक कि जीवन की परेशानियों से टकराकर उन्होंने जब आत्महत्या करने की सोची, तब उन्होंने ही उन्हें बचाया। उसके बाद जब वे अध्यापक के रूप में मराठवाडा के दयानंद महाविद्यालय, लातूर में स्थिर हो जाते हैं, तब अपने सहयोगी अध्यापकों एवं संपर्क में आये अध्यापकों से उनका रिश्ता दृढ़ हो जाता है। विभागाध्यक्ष भूदेव पाटील अग्रज बन जाते हैं, चंद्रभानू सोनवने उनके हाथ में लेखनी थमा देते हैं, मराठवाड़ा के दादा भगतसिंह से वे टकराते हैं, कबीर की तरह मस्तमौला व्यक्तित्व के धनी भगवानदास वर्मा से उनकी निकटता स्थापित होती है। पाँचवे खंड में 'मेरे (उनके) हिस्से आये लेखक-लेखिकाएँ और आलोचकों' से वे मिलवाते हैं। उनके सिद्धांत, उनकी जीवन दृष्टि, उनका कार्य, विषद करते-करते कई साहित्यिक अवधारणाओं की हमारी समझ बढ़ाते हैं। उनसे संबंधित किताबों की सहज ही जानकारी वे देते जाते हैं। पाठक इन सभी साहित्यकारों की निकटता में वास करने लगते हैं। उनके सहवास का एहसास कराने वाला यह खंड बहुत विशेष बन गया है, जिनमें कमलेश्वर, राजेंद्र यादव, मन्नू भंडारी, सुधा अरोड़ा, चंद्रकांत बांदिवडेकर, विजय बहादुर सिंह जैसे दिग्गजों से पाठक रूबरू होते रहते हैं। छठे खंड में वे पाठकों को अपने अंतरंग मित्र फक्रुद्दीन 'बेन्नूर' से मिलवाते हैं। एक पूरा खंड अपने इस मित्र के लिए देने की बात ही उन दोनों के संबंधों की गहराई को सिद्ध करती है। एक साथ भोगे हुए सुख-दुख की अभिव्यक्ति करती है। इस खंड का शीर्षक 'उफ़ न करेंगे, लब सी लेंगे, आँसू पी लेंगे' है ; बावजूद सांप्रदायिकता के दाह से उत्पन्न आह निकल ही जाती है, लब खुल जाते हैं और आँसू बह निकलते हैं। यह दर्द पाठकों को ऐसे छीलता है कि ज़ख्म गहरा हो जाता है, जो केवल टीस देते रहता है। सातवाँ खंड 'वर्धा के वे दिन' - वर्धा में ले जाता है और मिलाता है एक 'तपस्वी' से। वे यह बतलाते हैं कि अनंतराम त्रिपाठी जी की बदौलत आज वर्धा विश्वविद्यालय का अस्तित्व है। यह संस्मरण उस संपूर्ण संघर्षपूर्ण इतिहास को उजागर करता है। वे उस महान फ़कीर – 'प्रथमवीर' से भी मिलवाते हैं, जिन्होंने हिंदी प्रचार सभा के इतिहास को शब्दबद्ध किया है। आठवाँ खंड – 'मित्र भी, छात्र भी और भी बहुत कुछ' में वे उन्हें नहीं भूलते, जिनमें उनके दोस्त चंद्रकांत गर्जे और छात्र-मित्र सतीश यादव हैं; जिनके कारण वे आज ज़िंदा हैं। इसी खंड में वे अपने अज़ीज़ छात्रों से मिलवाते हैं और मिलवाते हैं अपनी विरासत से, जिनमें स्मृतिशेष प्रो. संजय नवले, प्रो. रणजीत जाधव, प्रो. सतीश यादव और प्रो. रमा बुलबुले-नवले हैं। किसी भी व्यक्ति के लिए स्वयं द्वारा निर्मित साधना के मार्ग पर चलना सहज होता है; पर औरों को अपने पथ पर चलाना और अपनी विरासत कायम करना बहुत दुष्कर। रणसुभेजी न केवल अपने मार्ग पर चलते हैं, बल्कि वे अत्यंत साहस और ज़िद के साथ अपनी विरासत का दायित्व लेने वाले कंधों का निर्माण करने के लिए अपना खून भी जलाते हैं। इन कंधों का परिचय भी इसी पुस्तक में मिलेगा।

हिंदी का संस्मरण साहित्य बहुत समृद्ध नहीं है, पर जितना लिखा गया है, वह स्तरीय है। हिंदी संस्मरण साहित्य को यह कृति समृद्ध करती है। लेखक जिनके संस्मरण का सृजन कर रहे हैं, उसके व्यक्तित्व को शब्दों के माध्यम से

ऐसे बाँधते है कि उनका अंतरंग पाठकों के सामने अपने-आप खुलने लगता है। इस विधा में स्मृति का बड़ा काम होता है। संस्मरणकार स्मृति और अपनी निरीक्षण की क्षमता के बलबूते एक-एक व्यक्ति का हुबहू बिंब बनाते जाते हैं। करीब 80 साल में प्रवेश कर चुके रणसुभे जी की स्मृति और निरीक्षण की क्षमता गज़ब की है। पचास-साठ साल पहले की बातें भी इतनी सहजता और संपूर्णता से प्रत्यक्ष करते हैं कि लगता है यह अभी घटित हुई है। 'अमरसिंह राठोड़' और 'चंद्रकांत कुसनूर' ने उन्हें एक अच्छा पाठक, एक अच्छा श्रोता और एक अच्छा 'आधुनिक मनुष्य' बनने के संस्कार दिए। कुसनूर जी ने उन्हें साहित्य का ककहरा सिखाया। उनका यह वाक्य, 'आधुनिकता एक जीवन दृष्टि है, जिसका मुख्य आधार मनुष्य का विवेक है। जाति-धर्म के संस्कारों से परे जाकर मनुष्य को देखने की दृष्टि ही आधुनिकता है' तथा 'खुद के संस्कारों से लड़ना ही आधुनिकता है।' इन वाक्यों को लेखक आजीवन नहीं भूले। इन्हीं संस्कारों की पक्की नींव ने उन्हें मूल्यों की प्रतिबद्धता से ज़रा-सा भी हिलने नहीं दिया। उन्हें याद आता है अमरसिंह राठोड़ जी का समय। उस समय राजनीति में विरोधी दल के व्यक्ति को बर्बाद करने की अपेक्षा आधार दिया जाता था। दोनों में वैचारिक भिन्नता के बावजूद वे एक-दूसरे के मित्र हुआ करते थे, शत्रु नहीं।

इलाहाबाद में 'अध्यापक' बनने का मंत्र उन्होंने पाया था। वे यह जान चुके थे कि किसी भी विषय का अध्यापक बनने की तुलना में साहित्य का अध्यापक बनना चुनौतीपूर्ण होता है। साहित्य के अध्यापक को जीवन के सारे संदर्भों से जुड़ना पड़ता है। रणसुभे जी एक अध्यापक और समीक्षक के रूप में रघुवंश जी को नहीं भूल सकते। अध्यापक के रूप में वे उनके आदर्श हैं। उन्होंने पैर से लिखना सीखकर अपने अपाहिजत्व पर विजय हासिल की और वे उच्चकोटि के समीक्षक तथा कुशल अध्यापक बने। 'साहित्य का अध्ययन साहित्य पढ़कर नहीं होना चाहिए' – उनका यह वाक्य रणसुभे जी आजीवन भूलते नहीं। समकालीन साहित्य या साठोत्तरी साहित्य पढ़ाना और चुनौतीपूर्ण होता है। नई कविता से जुड़े जगदीश गुप्त जी का भी मानना था कि सारे जीवन-संदर्भों को समझे बिना अध्यापन संभव नहीं होता। इस प्रकार की चुनौतियाँ आजीवन रणसुभे जी ने स्वीकारी। इसके लिए अपने युगीन अध्यापकों की नाराज़गी भी सही। पर अपने गुरु द्वारा दिखाए मार्ग से वे विचलित नहीं हुए। अध्यापन की बात तो छोड़ ही दीजिए, पर हम अचंभित तब होते हैं, जब किसी रचनाकार को प्रश्न पूछने हो, तब भी वे उनकी पूरी रचनाएँ पढ़कर जाते थे। राजेंद्र यादव और मन्नू भंडारी को मराठवाड़ा में जब निमंत्रित किया गया था, तब वे उनसे मिलने के पहले उनकी सारी रचनाओं को पढ़ लेते हैं और बाद में प्रश्न पूछते हैं। किसी भी रचना का अत्यंत बारीकी से अध्ययन करने की उनकी वृत्ति का परिचय कमलेश्वर को प्रश्न पूछते समय दिखाई देता है। इन संस्मरणों में वे खुद भी झाँकते हैं। उनकी जीवन-यात्रा साथ-साथ चलती है। डॉ. हरदेव बाहरी ने उन्हें शब्दों एवं भाषा के प्रति सचेत किया था। जगदीश गुप्त की यह बात – 'कलाकार व्यक्ति को दूर से ही देखना चाहिए' – उन्होंने गाँठ बाँध ली है। रामकुमार वर्मा का अध्यापन के समय विषय से भटकना उन्हें ठीक नहीं लगता था। यह बात उन्हें उनके लेखकीय व्यक्तित्व को छोटा करने वाली लगती है। डॉ. बा. आं. म. विश्वविद्यालय के हिंदी विभागाध्यक्ष एवं उपकुलपति राजूरकर जी की अकादमिक दादागिरी पर वे व्यंग्य करते हैं। पढ़ने-लिखने से उनका संबंध नहीं रहा - यह बात स्पष्ट रूप में कहने का नैतिक अधिकार, अपनी इसी ईमानदारी के कारण वे रखते हैं। राजूरकर जी ने, रणसुभे जी, रंगनाथ तिवारी जी, भगवानदास वर्मा जी और यहाँ तक कि खुद की पत्नी को भी हिंदी विभाग में नहीं लिया। इस प्रसंग में सहज ही राजनीति का सूत्र और उसके पीछे का मनोविज्ञान पर बतलाते हुए वे कहते हैं 'अपने से ऊँचे कद के आदमी को शिरकत न करने देना।' राजूरकर जी के इस स्वभाव पर स्पष्ट टिप्पणी के बावजूद लेखक ने उनकी अच्छाइयों का बखान करने में ज़रा भी हिचक महसूस नहीं की। यह बात लेखक के व्यक्तित्व की ऊँचाई की अभिव्यक्ति करती है। अपने सहयोगी एवं विभागाध्यक्ष भूदेव पाटील, लोगों को अपने रूखे स्वभाव के कारण भले ही विक्षिप्त लगे, परंतु वे भीतर से कितने कोमल और सच्चे थे, यह बताना वे नहीं भूलते। विजय बहादुर, बेन्नूर तथा जगदीश गुप्त के साथ अपनी खवैयेगिरी का बखान वे करते हैं। सुमित्रानंदन पंत की सुकुमारता एवं सौंदर्य, शैल कुमारी की शांत मूर्ति, महादेवी

वर्मा की शीतल वाणी में बौद्धिक व्याख्यान के आनंद की अनुभूति, विजयबहादुर सिंह का अथ से इति तक पारदर्शी व्यक्तित्व पाठकों को अभिभूत करता है। इनके व्यक्तित्व को हम साक्षात् देखने लगते हैं।

इस रचना में साहित्य की कई अवधारणाएँ स्पष्ट हो जाती हैं तथा अत्यंत मौलिक किताबों का परिचय भी मिलता है। पंत छायावाद के पुनर्मूल्यांकन की बात करते हुए यह संकेत देते हैं कि वे एक साथ छायावाद, प्रगतिवाद, प्रयोगवाद और नई कविता के प्रणेता हैं। 'विजय बहादुर सिंह : पारदर्शी व्यक्तित्व' में लेखक इस बात की ओर ध्यान आकर्षित करते हैं कि किसी भी रचना का अध्ययन करते समय रचनाकार के व्यक्तिगत जीवन को नहीं, रचना को देखना ज़रूरी होता है, क्योंकि रचनाकार का व्यक्तिगत जीवन भूतकाल की बात होती है, रचना तो पीढ़ियों को प्रेरणा देती है। अनुवादक प्रकाश भाताम्ब्रेकर की सफलता का राज़ बताते हुए वे कहते हैं कि चाहे मराठी हो या हिंदी – ये भाषाएँ उनकी जीने की भाषाएँ रही हैं। अनुवाद में दिक्कतें तब आती हैं, जब अनुवादक 'जीने की भाषा' से परिचित नहीं होता। केवल जानने की भाषा से अनुवाद संभव नहीं है। उमा केवलराम-देशमुख, शब्दों के प्रति काफ़ी संवेदनशील हैं – यह बात कहकर सहज ही वे अनुवादक को शब्दों के प्रति संवेदनशील होने की बात कह जाते हैं। छात्रों के लिए 'सपनों के सौदागर' रहे जगदीश गुप्त की साठोत्तरी साहित्य पर की गई टिप्पणी, साठोत्तरी साहित्य को समझने में सहायक बन जाती है। कमलेश्वर के साहित्य में 'साँप' और 'गंदे मोज़े' का प्रयोग बार-बार क्यों होता है? इसका उत्तर इसी किताब में है। मन्नू जी की 'त्रिशंकु' कहानी के सूत्र भी हमें उनके संस्मरण द्वारा ही मिलते हैं। मनुष्य दूर को नाप सकता है, पर अपने निकट के लोगों पर उसका ध्यान बहुत कम जाता है। अपने ही क्षेत्र के औरंगाबाद (मराठवाड़ा) के, भगवानदास वर्मा ने कहानी पर अत्यंत स्तरीय किताब - 'कहानी की संवेदनशीलता' लिखी। 'संवेदना' और 'संवेदनशीलता' का बुनियादी चिंतन करने वाली किताब के रूप में इसका परिचय उनके इसी संस्मरण के कारण मिलता है। 'बेन्नूर' जी ने 'भारतीय मुसलामानों की मानसिकता' के बारे में लिखा। अल्पसंख्यकों के दर्द को वे सामने लाए। वर्धा विश्वविद्यालय के अस्तित्व का ज्वलंत इतिहास लिखने वाले केशव प्रथमवीर पुणे के ही हैं।

रणसुभे जी ने अपना जीवन हिंदी भाषा एवं साहित्य के लिए जिया है। अपने छात्र जीवन में समकालीन भाषिक प्रश्न को लेकर वे और उनके साथी इंदिरा गांधी से मिले थे। दक्षिण में हिंदी विरोधी आंदोलन जब उफ़ान पर था, तब अहिंदी भाषी छात्र के रूप में निवेदन तैयार कर भाषा के प्रश्न पर इंदिरा गांधी से उन्होंने चर्चा की थी। इन यादगार स्मृतियों को 'श्रीमती इंदिरा गांधी : एक यादगार स्मृति' में वे लिखते हैं। अनेक भाषाओं के ज्ञाताओं के प्रति उनके मन में सम्मान का भाव है। 22 भाषाएँ जानने वाले डॉ. राधाकृष्ण मुदलियार जी का प्रसंग प्रशंसनीय है। उस समय उपकुलपति ने जब उनकी भाषिक जानकारी को परखना चाहा तब यह देखा गया कि,, यह विद्वान केवल भाषाओं का सामान्य ज्ञान ही नहीं रखता, बल्कि हर भाषा के लहज़े को भी पकड़ता है। रणसुभे जी साहित्य में रुचि रखने वाले व्यक्ति हैं। भाषा उनके अध्ययन का विषय नहीं है और न ही रुचि का। पर भाषा से वे प्रेम ज़रूर करते हैं। गांधी के विचारों से प्रभावित दक्षिण में चेन्नई और महाराष्ट्र में वर्धा के हिंदी भाषा प्रचार के केंद्र उनके लिए तीर्थक्षेत्र से कम नहीं है। 'वर्धा के वे दिन' में किस तरह वर्धा में अनंतराम त्रिपाठी ने हिंदी भाषा का अलख जगाये रखा, इसे वे विषद करते हैं। किताब के इस बेजोड़ अंश के कारण किताब का मूल्य बढ़ गया है। नए शोधार्थी इससे ज़रूर लाभान्वित होंगे। हिंदीतर प्रदेश, महाराष्ट्र के लातूर जैसे इलाके में उन्हीं की प्रेरणा से लातूर ज़िला हिंदी साहित्य परिषद् की स्थापना, उनके और उनके सहयोगियों, छात्रों की सहायता से भाषा भवन का खड़ा होना और इसे निरंतर कार्यरत रखने का श्रेय भी लेखक को ही जाता है। उनका भाषा प्रेम ही है कि भगवानदास वर्मा द्वारा हिंदी पत्रिका चलाने के असफल प्रयासों का भी वे उल्लेख करते हैं।

इस किताब का सांस्कृतिक, सामाजिक और ऐतिहासिक मूल्य भी कम नहीं है। एक महाराष्ट्रीयन आदमी यूँ किसी के भी आगे नहीं झुकता और न ही बिना श्रद्धा के बार-बार किसी के पैर छूता है। इलाहाबाद में सारे छात्र, जब बारी-बारी रोज़ रामकुमार वर्मा के पैर छूते हैं, तब केवल अपने माँ-बाप के

सिवा किसी के पैर न छूने वाले एकमात्र रणसुभे ही हैं, जो उन्हें केवल प्रणाम करते हैं। डॉ. बाहरी जी इस बात को महाराष्ट्र के शिवाजी की परंपरा से जोड़ते हैं, जो किसी के भी आगे झुके नहीं। इलाहाबाद में जातिवादी मानसिकता किस तरह काम कर रही थी और इससे बचने का काम लोहिया के एक अनुयायी ने कैसे किया, इस छोटे-से अनुभव को भी वे याद रखते हैं। लेखक की जाति को लेकर जब बवाल खड़ा हुआ, तब हैदराबाद के रविरंजन उनकी जाति जाने बिना उनके पक्ष में खड़े होने की यादगार घटना से वे पाठकों को जोड़ते हैं। लेखक की सूक्ष्म ऐतिहासिक दृष्टि भी बड़े-बड़े काम कर जाती है। सुमित्रानंदन पंत अपने पूर्वजों का संबंध महाराष्ट्र के साथ जोड़ते रहे हैं। छात्रप्रिय अध्यापक एवं विद्वद कार्यकर्ता नरसिंहप्रसाद दुबे जी के वंश का संबंध वे ऐतिहासिक तथ्य प्रस्तुत करते हुए राजस्थान से जोड़ते हैं। यह संस्मरण उनकी बहुज्ञता से परिचित कराता है। उन्हें लगता है कि मन्नू भंडारी का 'महाभोज' उपन्यास साठोत्तरी राजनीतिक इतिहास बतलाने की क्षमता रखता है।

यह किताब नयी दिशाओं का संधान करती है। लेखक ने शिवकुमार मिश्र जी के साथ मिलकर 'भारतीय प्रगतिशील साहित्य का इतिहास' लिखने की परियोजना बनाई थी; पर वह पूरी नहीं हुई। यह कार्य भविष्य के शोधार्थी कर सकते हैं। लेखक की दृष्टि नयेपन को ढूँढती रहती है। भाताम्ब्रेकर की पत्नी कमला को वे आत्मकथा लिखने के लिए इसलिए प्रेरित करते हैं; क्योंकि वह एक प्रेम विवाह करने वाली कामकाजी महिला की आत्मकथा होगी। स्त्रियों की स्थिति को लेकर वे चिंतित रहते हैं। महादेवी वर्मा की स्त्री-विषयक चिंता से वे रूबरू कराते हैं। मन्नू जी, राजेन्द्र यादव में जैसे ही पितृसत्ता की गंध महसूस करने लगती है, तो लेखक इसे तीव्रता से सूँघ लेते हैं।

रिश्ते हैं, तो संबंध भी निर्मित होंगे ही। ये संबंध पाठकों को भी बाँधकर रखते हैं। उन्हें लगता है 'अमृतराय : धूप-छाँह के निवासी' यह संस्मरण एक पुत्र द्वारा अपने पिता पर लिखा गया भारत का एकमात्र संस्मरण है। मराठवाड़ा के वैमानिक प्रसाद शेंडगे की हवाई जहाज चलाते समय एक दुर्घटना में मौत हो गई। अपने इस इकलौते बेटे पर माँ द्वारा लिखी पुस्तिका, पुणे के चंद्रकांत बांदिवडेकर जी खरीदकर स्कूल में बाँटते हैं। उनकी यह संवेदनशीलता हिंदी पाठक कभी नहीं भूलेगा। बंदिवडेकर महाराष्ट्र के एकमात्र ऐसे समीक्षक हैं, जिनका नाम अज्ञेय के साथ जुड़ गया है। रिश्तों को अहमियत देने वाला ही रिश्तों के बंधन को जानता है। चंद्रभानु सोनवणे जी के प्रति उनके मन की कृतज्ञता - 'पहले उनकी किताबों का लोकार्पण फिर मेरी पुस्तकों का' – इस वाक्य से व्यक्त होती है। यह उनकी संवेदनशीलता ही है कि सुधा अरोड़ा जैसी लेखिका भी अपनी कहानी पर लिखी उनकी समीक्षा पढ़कर रोने लगती हैं। तब रणसुभे उनके दादा बन जाते हैं। इन्हीं संबंधों ने ही कमलेश्वर जी को, लातूर ज़िला हिंदी साहित्य परिषद् के नाम आखिरी चिट्ठी लिखने के लिए बाध्य किया, जो आज भी लातूर के भाषा भवन की अमूल्य संपत्ति है। निश्चित ही 'शब्द संस्कृति के मेले में' पुस्तक का ऐतिहासिक, साहित्यिक, सांस्कृतिक दृष्टि से निर्विवाद महत्त्व है। यह किताब हिंदी साहित्य की अमूल्य निधि है।

**ramanawle@gmail.com**

# 'मगध' की कविताओं में सत्ता प्रतिरोध का स्वर

**विकास कुमार यादव**
**प्रयागराज, भारत**

यद्यपि कविता और समाज का रिश्ता अप्रत्याशित रूप से तनावपूर्ण रहा है, लेकिन यह संवेदना एवं विचार के स्तर पर एकत्वपूर्ण नरमी का भी द्योतक है। जहाँ 'कविता में समय' और 'समय में कविता' की तलाश करना एक रोमांचित कर देने वाला उत्तेजक अनुभव है। 20वीं सदी के समकालीन दौर से ही महानता एवं क्षुद्रता का द्वंद्व चला आ रहा है। इस बीच सत्ताएँ अधिक क्रूर हुईं। उनका बाज़ार संस्कृति के बीच जो समीकरण बना वह किसी भी गंभीर साहित्यिक, सामाजिक अवदान को धता बताकर हाशिये पर धकेलने से नहीं चूका। स्वतंत्रता-प्राप्ति के बाद राजनीति से आम आदमी का मोहभंग

होने पर आम जनमानस की उम्मीदों पर पानी फिर गया। फलस्वरूप साहित्य में सत्ता प्रतिरोध, आम-जनमानस के सवाल, तात्कालिक भाव-दशाओं में विसंगतियों का सूत्रपात हुआ। चूँकि "जनचेतना की आकृति कवि के संदर्शन की पहचान है। जैसे चित्र चित्रकार के संकल्पित संसार का स्वप्न है, मूर्तियाँ मूर्तिकार के भीतर रचे-बसे मनुष्य की साक्षात्कार हैं। ठीक उसी तरह कविता कवि की चेतना की आकृति है। कवि की चेतना का निर्माण उसका चाक्षुष संसार करता है। कई तरह, कई बार प्रत्यक्ष होता चाक्षुष संसार उसकी मानसिक बुनावट को सघन, महत्त्वपूर्ण, महत्वाकांक्षी और आदर्श बनाता है।" वस्तुतः इन्हीं भावदशाओं को धारण कर स्वातंत्र्योत्तर हिंदी कविता में अपनी उत्कट जिजीविषा और जीवन-संघर्ष को अपने साहित्य का पर्याय बनाने वाले कवि श्रीकांत वर्मा स्वयं के मानसिक उद्वेलन की अभिव्यक्ति करते हैं। उनका 'मगध' कविता-संग्रह उनके कवि जीवन के अंतिम पड़ाव पर रचित अप्रतिम कविताओं का बेजोड़ संकलन है। 'मगध' आम जनमानस के दैनंदिन आत्म-संघर्ष का प्रतिफलन है। जो किसी दिखावटी और लुभावने बड़बोलेपन के बिना कवि के ईमानदार क्रोध का एक शासन सत्ता के प्रति दुस्साहसिक कटाक्ष है -

"सम्भव हो, तो सोचो
हस्तिनापुर के बारे में
जिसके लिए
थोड़े-थोड़े अंतराल में,
लड़ा जा रहा है महाभारत"

यह 'हस्तिनापुर' आखिर यही हमारे महान भारत देश की राजधानी दिल्ली ही तो है। जिसके लिए हर पाँच साल पर चुनावी बंदरबाँट का महाभारत होता है। पक्ष-प्रतिपक्ष की सत्ता की ललक तमाम जनाकांक्षाओं को लाँघकर प्राप्ति का नियोजन मात्र रह जाता है और सत्तासीन होने पर तथाकथित 'लोकतंत्र पद्धति' का वर्तमान स्वरूप यही स्पष्ट होता है -

"मैं फिर कहता हूँ
धर्म नहीं रहेगा, तो कुछ नहीं रहेगा-
मगर मेरी कोई नहीं सुनता !
हस्तिनापुर में सुनने का रिवाज नहीं
जो सुनते हैं, बहरे हैं या
अनसुनी करने के लिए
नियुक्त किये गये हैं"

आज के समय में जन की बातों को सुनने का रिवाज़ नहीं, अपितु कुर्सी की धरपकड़ में ही शामिल होकर प्रतिनिधिजन अपने वास्तविक कर्तव्यों से मुक्त हो गए हैं। इन कविताओं की रचना करने का तात्कालिक सन्दर्भ स्पष्ट है। जिसे कोई भी सक्रिय पाठक आसानी से पकड़ लेगा। कवि के शब्द संयोजन, गति और लय में अद्‌त सम्मोहन शक्ति है, इसके पीछे सुदूर अतीत का 'मगध' साम्राज्य है। जो प्राचीन भारत के 16 महाजनपदों में से एक था। जिनका अपना स्वर्णिम इतिहास रहा है। पुरातन 'मगध' भारत के सबसे बड़े साम्राज्य का नाम था, जिसमें अशोक, चंद्रगुप्त, बिम्बिसार, अजातशत्रु जैसे महान शासक हुए। लेकिन आज का 'मगध' वैभव शक्ति और निरंकुशता का प्रतीक मात्र रह गया है। स्वर्णिम इतिहास के सम्मोहन में अचानक ही यह मगध, मायालोक की तरह नज़र आ रहा है-

"कभी-कभी, मगध को न जाने क्या हो जाता है
सब कुछ सामान्य होने के बावजूद
न कोई बोलता है
न मुँह खोलता है"

ऐसी स्थिति का उपस्थित होना अनायास तो नहीं है। यह मनुष्य, समाज और इतिहास के पारस्परिक संयोजन का संदेहास्पद होना ही है। जो यथार्थ के उपलब्ध ढाँचे में मध्यवर्गीय संकुचन और सामाजिक संघर्ष को भी व्यक्त करता है कि -

"कोई छींकता तक नहीं
इस डर से
कि मगध की शांति
भंग न हो जाए,
मगध को बनाये रखना है, तो
मगध में शांति रहनी ही चाहिए"

स्पष्ट है कि शासन-सत्ता से सवाल करने पर झूठी शांति के दिखावटीपन के उजागर हो जाने का डर है। लेकिन शायद अब किसी में हिम्मत भी नहीं बची है कि वह हस्तक्षेप कर

सके। असल में, कविता का समूचा सन्दर्भ उसके निहितार्थ, सत्ता और समाज के असंयोजित, अपरिचित रिश्तों की बानगी को प्रस्तुत करता है तथा इनके बीच वैयक्तिक, सामूहिक जनाकांक्षाओं की नैसर्गिक संगति, संस्कृति को समवेत देखने की नज़र पैदा करता है। 'मगध' कविता-संग्रह की पहली कविता समूचे-संग्रह का बीज वक्तव्य जान पड़ती है -

"बंधुओं, यह वह मगध नहीं,
जिसे तुमने पढ़ा है, किताबों में
यह वह मगध है
जिसे तुम
मेरी तरह गँवा चुके हो"

गौर करें, तो पाएँगे कि इस तरह सब कुछ गँवाने के बाद का यह दंश 'मगध' की कविताओं की पार्श्वभूमि में आक्रोशित संतप्त स्वर में स्पष्ट सुनाई पड़ रहा है। कवि स्वयं को तथा अपने समकालीन परिदृश्य के अभिशाप को ऐतिहासिक मिथकों, प्रतीकों, पात्रों के ज़रिए तीखी अभिव्यक्ति करने की कोशिश करता है।

इस लिहाज़ से मगध, कौशांबी, कपिलवस्तु, तक्षशिला, पाटलिपुत्र, अम्बपाली, उज्जयिनी, श्रावस्ती, हवन, कोसल में विचारों की कमी है, हस्तिनापुर, हस्तिनापुर का रिवाज़, नियम, सद्गति, तीसरा रास्ता, हस्तक्षेप जैसी कविताएँ समकालीन व्यवस्था और राजनीति पर महज़ टिप्पणी भर नहीं हैं, बल्कि गहन विश्लेषण से युक्त निर्मम चीरफाड़ हैं। शासकीय सत्ता के अंग होने पर भी श्रीकांत वर्मा कोई हमदर्दी नहीं रखते। वह आपातकाल के दौरान इंदिरा गांधी के करीबी सलाहकार रहे थे। बाद में वह राज्यसभा सांसद, कांग्रेस प्रवक्ता भी रहे। यही कारण है कि 'मगध' का प्रकाशन आधुनिक हिंदी कविता में मील का पत्थर माना गया। जिसकी सराहना कृष्णा सोबती जैसी लेखिकाओं ने भी की। इस सन्दर्भ में नामवर सिंह की एक टिप्पणी बहुत सटीक लगती है कि - "बाहर से व्यवस्था का विरोध करना जितना आसान है, उसके भीतर जाकर विरोध कर पाना उतना ही कठिन। श्रीकांत ने व्यवस्था के भीतर जाकर जितने महत्त्वपूर्ण विरोध की अभिव्यक्ति की है वह श्रीकांत के कविकर्म का एक दुर्लभ प्रसंग है।" रोमांचक बात तो है कि कवि जो वर्तमान भारत की शासन सत्ता का प्रवक्ता रहा है, तत्कालीन जीवन के कष्टों, विडंबनाओं का साक्षी हुए बिना अन्याय और संहार का प्रतिवाद कैसे कर सकता है। क्या इसी कारण वह कहता है -

"मित्रों ! दो ही रास्ते हैं :
दुर्नीति पर चलें
नीति पर बहस
बनाये रखें
दुराचरण करें
सदाचार की चर्चा चलाये रखें"

लेकिन असल में कवि सत्ता के सान्निध्य में रहते हुए आसन्न विनाश से बचने का रास्ता तलाश कर रहा है। विचार शून्यता से आगे बढ़कर उसने समाज में व्यक्ति की मुखरता पर बल दिया है, धर्म व्यवस्था, कानून, शासन के अधीन होने के बावजूद।

अरुण कमल कहते हैं, "मगध अपने पूरे संकल्प और संरचना में राजनीतिक कृति है। इसकी मुख्य चिंता और प्रेरणा राजनीतिक है।" यही कारण है कि 'मगध' और अन्य महाजनपद अपने अतीत के माध्यम से समकालीन यथार्थ और द्वंद्व को व्यक्त करने का सक्षम माध्यम बन जाते हैं। कवि जो राजनीति और राजनीतिक दाँव-पेंच से भली प्रकार परिचित है, तो उसकी तल्ख बेचैनी का प्रभावशाली रेखाचित्र 'मगध' के अलावा किसी और माध्यम से व्यक्त हो पाना मुश्किल होता। इस प्रकार 'मगध' के विषयों में वैविध्य है सत्ता की निरर्थकता, जीवन की क्षणभंगुरता और बौद्धिक घुटन, जो जीवन को निरंतर खोखला किये जा रहा है -

"फ़ैसला हमने नहीं लिया-
सिर हिलाने का मतलब फैसला लेना नहीं होता
हमने तो सोच-विचार तक नहीं किया ×××
हर व्यक्ति का फ़ैसला
जन्म के पहले हो चुका है।"

इस तरह से 'मगध' शासन-व्यवस्था की अभिजात औद्योगिकता, राजनीतिक वस्तुसत्ता, सत्ता संस्कृति की पुरोहित परंपरा की उपस्थिति में समकालीन सन्दर्भों से देखने, समझने, तर्क करने की ज़िद पैदा करता है। धर्म, नैतिकता, शासन, प्रेम आदि के सामाजिक ताने-बाने को

रेखांकित करते हुए कवि मनुष्य को ज़िम्मेदार होने की नियति से अवगत कराता है कि तमाम विसंगतियों के बीच से होकर भी हमें गतिशील रहना है।

'मगध' में अपने अतीत के स्पंदनयुक्त कालबोध के साथ ही मृत्युबोध का भी प्रक्षेप दिखाई पड़ता है। आज के सामयिक संदर्भ में देखें तो, "लोकतंत्र का संकट बहुत कुछ जाना-पहचाना है। आज वह लगभग राजतंत्र और तानाशाही के ज्ञात-अज्ञात रूपों में घुलमिल गया है। व्यवस्था वह अमूर्त चट्टान है, जो एक जगह दिखाई नहीं देती। बहुत हद तक सार्वभौम सर्वग्रासी है। एक महत्त्वपूर्ण कवि हत्या के बहाने इस निर्मम क्रूर सच को बताता है।" 'मगध' में यह प्रक्षेप निश्चय ही कवि के निजी जीवन से उत्पन्न हुआ है, जिसमें जीवन की निस्सारता, मृत्यु की सघन अनुभूतियाँ इसकी अनुगूँज सुनाई पड़ती हैं। इनमें मगध के लोग, काशी में शव, हस्तक्षेप, अंत:पुर का विलाप, सद्गति, प्रमाण, रोहिताश्व, दीवार पर नाम जैसी कविताएँ प्रमुख हैं। श्रीकांत वर्मा काशी, मणिकर्णिका का डोम, रोहिताश्व सरीखे प्रतीकों पात्रों के माध्यम से पुराणों में वर्णित पाखण्ड के मोक्षद्वार नहीं जाना चाहते, बल्कि एक रहस्यमय वातावरण का निर्माण करते हैं, जिसका एक स्वर ध्वनित होता है कि - मृत्यु तो जीवन की अवश्यम्भावी परिणति है, यह निश्चित है इसे स्वीकार करो।

"काशी में, शवों का हिसाब हो रहा है
किसी को
जीवितों के लिए फ़ुर्सत नहीं
जिन्हें है
उन्हें जीवित और मृत की पहचान नहीं ! ×××
महाराज ! सभी नश्वर हैं
कोई अमर नहीं।"

भय और विषाद के इस माहौल ने वर्तमान के नष्ट हो जाने की नियति को और मृत्यु को एक कर दिया है। 'दीवार पर नाम' और 'प्रमाण' जैसी कविताएँ जीवन की क्षणभंगुरता अर्थात् काल की निश्चित प्रक्रिया 'मृत्यु' का प्रकटीकरण करती हैं। यही कारण है कि चंद्रकांत पाटील ने 'मगध' को 'भारतीय सभ्यता पर लिखा एक मृत्युलेख' मानते हुए कहा है - "मगध एक अजीब मर्सिया है, एक अजीब सिम्फनी है, जो हर किसी संवेदनशील व्यक्ति की आंतरिक गहराइयों को छूकर उसे विचित्र सन्नाटे में छोड़ जाती है और पता नहीं कि श्रीकांत जी जैसे महत्त्वपूर्ण समकालीन कवि के लिए यह जीत है या पराजय।" निश्चय ही श्रीकांत वर्मा द्वारा रचित मृत्युबोध से अवगत कराती हुई कविताओं में करुणा का एक सोता भी प्रवाहमान है जैसा कि 'रोहिताश्व' कविता के माध्यम से व्यक्त हुआ है -

"जिसका रोहिताश्व
मारा गया हो,
क्या तुम उसे
विश्वास दिला सकते हो
कि तुम रोहिताश्व नहीं ?"

अंततः निष्कर्ष के तौर पर 'मगध' कविता-संग्रह श्रीकांत वर्मा की उत्कट जिजीविषा एवं स्वानुभूत जीवनानुभवों का समकालीन यथार्थ से परिचय कराता हुआ एक महत्त्वपूर्ण दस्तावेज़ नज़र आता है। जो उनकी कविताई का, उनकी रचना-प्रक्रिया का एक उत्कृष्ट शिखर बिंदु है। इसमें कालबोध, विडंबना, मृत्युबोध और प्रमुखता से सत्ता प्रतिरोध के लिए शब्दों, बिम्बों, स्वरों की सृष्टि हुई है। इसमें जीवनानुभवों का मात्र निजी बयान ही नहीं, अपितु जीवनमर्म की उपेक्षा, संत्रास के स्वरों का प्रतिरोधात्मक एकाकीपन है। इसमें राजनीतिक सामाजिक-व्यवस्था के अवमूल्यन पर विस्मृत मानवीय अस्तित्व, उसकी अस्मिता की पहचान के लिए आक्रोश, चिढ़, गुस्से, भय का मिलाजुला आवरण उपस्थित है। समूल भाव निक्षेपण है कि 'मगध' कविता-संग्रह हमारे समय, समाज और राजनीति के ऐतिहासिक सन्दर्भ में एक सजग निर्मम व्याख्या होते हुए, कवि श्रीकांत वर्मा की सामाजिक प्रतिबद्धता का निदर्शन है।

**vikaskumaryadav667@gmail.com**

# बाल मन और स्त्री मन को बाँचती कहानियों का संग्रह 'सीट न. 49'

**नीतू कुमारी**
**बिहार, भारत**

यथार्थ अक्सर देखने वाली आँख पर भी निर्भर करता है और देखने वाले की आँख अगर स्त्री की हो, तो उससे यथार्थ की कुछ ऐसी परतें उद्घाटित होती हैं, जिन्हें शायद पुरुष की आँख देखने से चूक जाए। आज के समय में भी बहुत-सी स्त्री रचनाकार महिलाओं की स्थिति, भावनात्मक संबंध और स्त्री-सशक्तिकरण आदि बातों के इर्द-गिर्द संवेदनशील भाषा में स्त्री-जीवन की सच्चाइयों को बाँच रही हैं। जीवन का संघर्ष जब लेखक के मन को संवेदित करता है, तब संवेदना के स्वर कविता, कहानी, लघुकथा के द्वारा प्रस्फुटित होता है। 'आरती सिम्त' के कहानी-संग्रह 'सीट न. 49' में तेरह कहानियाँ हैं। इन सभी कहानियों में यथार्थवादी जीवन, पारिवारिक जीवन, रिश्तों के बीच का ताना-बाना, स्त्री-मन की पीड़ा, स्त्री-संघर्ष, बच्चों की पीड़ा, बाल-मनोविज्ञान, माँ की कोमल भावनाओं का चित्रण मिलता है।

'सीट न. 49' कहानी में पिता-पुत्री के प्रेम को दिखाया है। यह कहानी फ़्लैशबैक और वर्तमान दोनों में चलती है। अस्सी बरस के पिता बार-बार अपनी स्मृति में खो जाते हैं, बड़े भाई और छोटे भाई को माता-पिता से मिलने वाले प्रेम के बीच खुद को अनचाहा, उपेक्षित और हीन मानते हैं। जिसका दंश इनके मन पर विवाह और बच्चे हो जाने के बाद भी रहता है। बचपन में माता-पिता के प्रेम के अभाव के कारण उनका स्वभाव चिड़चिड़ा रहता है और वे नहीं चाहते कि उनके बच्चे भी अभाव में जिए, इसलिए वे अपने बच्चों के लिए खूब मेंहनत करते हैं। लेकिन इस कारण वे अपनी पत्नी और बच्चों को समय नहीं दे पाते हैं तथा एक छत के नीचे रहते हुए भी आपस में प्रेम नहीं रहता है और बुढ़ापे में उन्हें यह डर सताता रहता है कि उनकी बेटी उनके साथ वैसा ही व्यवहार करेगी। परन्तु उनकी बेटी उन्हें अपने घर बुलाती है और उनका इलाज अच्छे से करवाती है। यह कहानी डायरी लेखन में है। लेखिका ने बचपन से बुढ़ापे तक की कड़ियों को एक साथ जोड़ा है।

आज के समय में इस बात पर ज़ोर दिया जा रहा है कि लड़का-लड़की एक समान हैं। दोनों को संविधान ने समान अधिकार दिए हैं। लेकिन इसके बावजूद आज भी हमारे समाज में महिलाएँ सबसे अधिक भेदभाव का शिकार होती हैं। हालाँकि गाँव की अपेक्षा शहरों में कम भेदभाव होता है, परंतु महिलाएँ शहरों में भी भेदभाव का शिकार होती हैं। इसी भेदभाव को इस संग्रह की एक कहानी 'ऋण मुक्ति' में दिखाया गया है। जब कोई स्त्री अपने आत्मसम्मान के लिए घर छोड़कर जाती है, तब अक्सर परिवार के लोगों एवं समाज में यह धारणा बन जाती है कि "ज्यादा पढ़-लिख लेने से लड़की का दिमाग खराब हो जाता है।" कहानीकार ने कहानी के अंत में यह दिखाया है कि माँ-बाप ने जिस बेटी को कभी बेटे के बराबर नहीं माना और हमेंशा उसके खिलाफ़ रहे तथा बेटी के घर छोड़कर जाने के बाद उसे मरा हुआ कहकर उसका श्राद्ध कर देते हैं, वही बेटी उनका सहारा बनती है।

बेरोज़गारी हमेंशा से एक चुनौती रही है। बेरोज़गारी की समस्या को 'विलगाव' कहानी में दिखाया गया है। छोटे शहर से महानगर में रोज़गार के लिए आए युवाओं के संघर्ष को यह कहानी उजागर करती है। इस कहानी में लेखिका ने बेरोज़गारी के साथ-साथ मध्यवर्गीय परिवार में लड़कियों के साथ होने वाले भेदभाव एवं उच्च शिक्षा के लिए उनके संघर्ष का बखूबी वर्णन किया है।

संग्रह की एक कहानी 'कागज़ का टुकड़ा' में दूसरे बच्चे के जन्म के बाद माँ-बाप का पहले बच्चे के प्रति बदले हुए व्यवहार को दिखाया गया है। माँ-बाप के ऐसे व्यवहार के कारण बच्चा खुद को उपेक्षित महसूस करता है। सामान्यतः ऐसा होता है कि जब दूसरा बच्चा होता है, तब माँ-बाप का सारा ध्यान दूसरे बच्चे पर ही होता है और पहले बच्चे को हर बात में समझदार होने की सीख मिलने लगती है, जिसका बाल- मन पर नकारात्मक असर पड़ता है और बच्चा दिन-प्रतिदिन अपने माँ-बाप से दूर होने लगता है। इस कहानी के अंत में बच्चा गेंद फेंक देता है और कहता है कि "अब मुझे

इसकी ज़रूरत नहीं.... मैं कभी किसी के साथ नहीं खेलूँगा।"

हिन्दू धर्म में कन्यादान की परंपरा है और इसे बहुत ही महत्त्वपूर्ण माना जाता है। हमारे समाज में लड़की पैदा होने के समय से ही उसे पराया धन मान लिया जाता है और विवाह के समय उसका कन्यादान कर दिया जाता है। 'पुन्नू की चिट्ठी' कहानी कन्यादान परम्परा के कारण मानसिकता में आये बदलाव को रेखांकित करती है। इस कहानी की पात्र पुन्नू कन्यादान का विरोध करती है और कहती है - " एक बात बताओ माँ ! जब रिश्ता घर आया, तब बाबा ने दहेज क्यों दिया? दहेज देकर जब वर खरीदा, तो तुम दोनों ने मुझे दान क्यों किया? कन्यादान की रीत निभाते हुए मेरी साँसें ही गिरवी रख दी ? महज़ एक पारंपरिक रस्म के कारण जीती-जागती गुड़िया से खिलौना हो गई, जिसे वर को दान कर दिया और कह भी दिया कि आज से यह आपकी हुई।"

'गुलाबी सपने' और 'फड़फड़ाते पन्ने' ये दोनों कहानियाँ पढ़ते समय यह महसूस होता है कि ये कहानियाँ वास्तविकता से हटकर हैं। 'गुलाबी सपने' कहानी में निम्नवर्गीय घर की छह वर्ष की उमा पढ़ना चाहती है, वह रोज़ सड़क पर खड़े होकर स्कूल जाती हुई बसों को देखती है और एक दिन अनूपा जोकि एक अमीर घर की लड़की होती है, अपने पिता के साथ उस बस्ती में जाती है और उस बस्ती के बच्चों को प्राइवेट स्कूल में पढ़ाने की ज़िम्मेदारी अनूपा के पिताजी ले लेते हैं। यह कहानी यथार्थवाद से दूर आदर्शवाद में है। 'फड़फड़ाते पन्ने' कहानी में सरोज कुमार जानी-मानी नाटककार और एक साधारण स्त्री रमा के बीच के रिश्ते को दिखाया है। अनजान होते हुए भी दोनों में माँ-बेटी जैसे संबंध को इस कहानी में दिखाया गया है।

परिवार के बनते-बिगड़ते रिश्ते को बयाँ करती कहानी 'विडंबना' है। इस कहानी में सास, बहु और बेटे के आपसी संबंध को दिखाया गया है कि कैसे किसी और के द्वारा फैलाई गई गलतफ़हमी के कारण पति-पत्नी के रिश्ते खत्म हो जाते हैं। "हम आए दिन वृद्धाश्रम में रहने वाले बुज़ुर्गों के परिवार को कोसते रहते हैं। समाज की सारी सहानुभूति उनके प्रति होती है। बिना वजह जाने-समझे समाज ऐसे बुज़ुर्गों के बेटे को कृतघ्न, उससे भी अधिक बहुओं को खलनायिका मानने लगता है। मगर हमारे ही समाज में ऐसे बुज़ुर्ग भी हैं, खासकर महिला जो बेटे के घर में रहते हुए भी अपनी हुकूमत बनाये रखने के खातिर बेटे-बहु में दरार पैदा करती हैं।" यह कहानी परिवार के आपसी झगड़ों को दिखाती है, परंतु उपर्युक्त कथन को देखें, तो कहीं-न-कही यह अप्रत्यक्ष रूप से वृद्धाश्रम को सही दिखाती है। जबकि हमारे भारतीय समाज में वृद्धाश्रम की यह सामाजिक कुरीति का संबंध हमारे नैतिक मूल्यों में नहीं है।

'मोम की गुड़िया' और 'दस्तक' कहानी, ये दोनों कहानियाँ प्रेम से संबंधित हैं। दोनों कहानियों में एक सामान्य बात है कि दोनों कहानियों की स्त्री पात्रों को प्रेम में धोखा मिलता है। 'मोम की गुड़िया' एक प्रतीकात्मक कहानी है। जैस्मीन जोकि एक बार डांसर है, राज जो उससे प्रेम का नाटक करता है और उसे अपनी हवस का शिकार बनाता है। जैस्मीन को जब पता चलता है कि राज उससे प्रेम नहीं करता है, तब वह कहती है - "नहीं मैं मोम की गुड़िया नहीं... जिसे मेरे प्रेम की कद्र नहीं उसके लिए मैं क्यों आँसू बहाऊँ? आज मेरे माँ-बाप होते तो...! यह जॉब मेरी मजबूरी थी, मगर प्रेम तो सच्चे दिल से किया था। " लेखिका ने एक लड़की का मजबूरी में बार डांसर बन जाना और झूठे प्रेम के जाल में फँसने का चित्रण बहुत ही मार्मिक ढंग से किया है।

'दस्तक' विवाहित मंगलेश और अविवाहित सुवर्णा की प्रेम कहानी है। मंगलेश अपने परिवार से दूर रहकर बैंक में नौकरी करता है, उसी बैंक में सुवर्णा नाम की महिला अपने काम के लिए आती है। मंगलेश अपने अकेलेपन को दूर करने के लिए सुवर्णा से प्रेम करने लगता है और जब सुवर्णा गर्भवती हो जाती है, तब उसे अपनाने से मना कर देता है और सुवर्णा पागलपन का शिकार हो जाती है। मंगलेश जब आईसीयू में होता है, तब यह सब बातें उसे याद आती है और उसे अपराधबोध होता है।

इस संग्रह की एक कहानी 'वो सात दिन' में मध्यवर्गीय परिवार में बचपन से लेकर बड़े होने तक लड़कियों के ऊपर जो रोक-टोक लगाई जाती है, उसका वर्णन इस कहानी में किया गया है। आद्या और आशु अपनी माँ के साथ उत्तराखंड घूमने के लिए गए होते हैं। वहीं अपने कमरे में लेटी उनकी

माँ अपनी किशोरावस्था के दिन याद करती हैं। "ऐसे मत कर, वैसे मत कर, चोट खा जाएगी, दाग हो जाएगा, शकल-सूरत ठीक नहीं रही, तो लड़का ढूँढने में बाप की चप्पल टूटेगी... सीना ढँक, लइकन के तरफ़ मत देख, कोय टोकटाक करे त जवाब नै दे के चाही, अपनी इज्ज़त बचा के रख, नज़र मत उठा...।" इस कहानी में लेखिका ने महिलाओं के साथ होने वाली हिंसा, शोषण और इसके खिलाफ़ खड़े होने की हिम्मत आदि का वर्णन किया है।

'धरोहर' कहानी में एक छोटी बच्ची श्रेया और मशहूर चित्रकार हिमांशु मुखर्जी के बीच वात्सल्य प्रेम का चित्रण किया गया है। हिमांशु मुखर्जी श्रेया के परिवार का सदस्य बनकर रहते हैं और श्रेया को चित्रकारी सिखाते हैं। यह कहानी पढ़कर ऐसा लगता है कि यह अंग्रेज़ी के लेखक 'ओ हेनरी' की कहानी 'द लास्ट लीफ़' की प्रतिछाया है।

'बलात्कार' यह शब्द हमारे मन पर कितना असर करता है? हम हर रोज़ अखबारों में खबर पढ़ते हैं, अगर हम संवेदनशील हैं, तो ऐसी खबरें हमारे मन पर असर करती हैं, वरना हमें कोई फ़र्क नहीं पड़ता, ऐसी खबरों से और हम अनदेखा करके आगे बढ़ जाते हैं। 'दहशत' कहानी इसी विकृत मानसिकता पर आधारित है। इस कहानी में सोलह वर्षीय स्वाति, जिसका बचपन में उसकी सोसाइटी में रहने वाले खन्ना अंकल ने यौन शोषण किया था, अपने साथ हुए यौन शोषण को स्वाति कहानी के माध्यम से अपने स्कूल के मंच पर सुनाती है। इस कहानी में लेखिका ने घटना का वर्णन इतने मार्मिक और यथार्थपरक ढंग से किया है कि पढ़ते समय रोंगटे खड़े हो जाते हैं और ऐसा महसूस होता है कि ये सब दृश्य आँखों के सामने घटित हो रहे हैं।

संग्रह की समग्र कहानियों के कथ्य एवं प्रस्तुतीकरण पर एक सरसरी निगाह डाली जाए, तो अधिकांश कहानियों के पात्र अपनी स्मृति में खो जाते हैं और कहानी फ़्लैशबैक में चलती है। इन कहानियों में लेखिका ने पात्रों के मनोभावों को विश्लेषित करने का प्रयास किया है, जोकि सराहनीय है। परंतु दूसरी ओर यह महसूस होता है कि लेखिका को कथ्य प्रस्तुत करने की जल्दबाज़ी है, जिससे कि कुछ कहानियाँ लघुकथा से बड़ी और कहानी से छोटी में सिमट कर रह गई हैं। भाषा-शिल्प की बात करें, तो भाषा सरल व सहज है, जोकि आम पाठकों के लिए पठनीय एवं बोधगम्य बनाती है। लेखिका ने कहीं-कहीं भोजपुरी भाषा का पुट डालने की कोशिश की है, लेकिन इसमें अधिक सफल नहीं हो पाई हैं। परन्तु इसके बावजूद इस संग्रह की कहानियाँ रोचक, पठनीय और हर वर्ग के पाठकों को प्रभावित करने के गुणों से भरपूर है।

**neetukumari11993@gmail.com**

# खुश देश का सफ़र

**डॉ. कमला नरवरिया**
**नई दिल्ली, भारत**

बहुत दिनों से यात्रा-साहित्य पर कोई अच्छी पुस्तक पढ़ना चाह रही थी। मगर कौन-सी पुस्तक पढ़ूँ यह सबसे बड़ा सवाल था? सो यात्रा साहित्य की नई-पुरानी पुस्तकों के खोजबीन के क्रम में मेरी नज़र एक पुस्तक पर ठहर गई। पुस्तक थी 'खुश देश का सफ़र'। पुस्तक का नाम ही इतना आकर्षक था कि मैंने बिना ज्यादा सोचे-समझे इसे ऑनलाइन ऑर्डर कर दिया। हालाँकि पल्लवी त्रिवेदी जी के लेखन से मैं भली-भाँति परिचित थी, सो इस पुस्तक को पढ़ने को लेकर कुछ ज्यादा ही उत्साही थी। जैसे ही पुस्तक प्राप्त हुई आदतानुसार पढ़ने बैठ गई। फिर लेखिका के साथ-साथ मैं भी 'खुश देश का सफ़र' यात्रा की सहयात्री बन गई।

यह पुस्तक चार दोस्तों की भोपाल से भूटान रोड ट्रिप की रोमांचक यात्रा को वर्णित करती है। चारों दोस्तों - पल्लवी त्रिवेदी, उनकी बहन मल्लिका, मित्र देवेन और कुश वैष्णव के साथ शुरू हुई यह रोमांचक यात्रा धीरे-धीरे अपने उरुज पर चढ़ती जाती है। पुस्तक पढ़ते हुए ऐसा लगता है कि जैसे इस पूरी यात्रा में पाँचवीं सहयात्री मैं हूँ।

इस यात्रा की शुरुआत होती है भोपाल से, जो सड़क मार्ग से होते हुए उत्तर प्रदेश, बिहार और बंगाल राज्य से गुज़रते हुए भूटान पहुँचती है। यह लेखिका की ज़िंदगी को

नज़दीक से देखने का ही जुनून था, जिसने उसे हवाई यात्रा के सुगम सफ़र को छोड़कर सड़क मार्ग से भूटान जाने के लिए प्रेरित किया। यात्रा की अनिश्चितता, मार्ग की दुश्वारियों ने इस यात्रा के रोमांच को कई गुना बढ़ा दिया।चारों दोस्तों की नोंक-झोंक, उनकी जीवन के प्रति ज़िंदादिली इस यात्रा को खास बनाती है और पल्लवी जी की लेखनी की कूची ने इस यात्रा में जैसे सतरंगी रंग भर दिये हो।

यात्रा की शुरुआत से ही लेखिका को यह जानने की उत्सुकता रहती है कि यह देश सबसे खुश देश कैसे है? इसके पीछे कौन-से कारण हैं? जिसका उत्तर वह वहाँ जाकर प्राप्त करती है।

भोपाल से भूटान तक के सफ़र में ये चारों दोस्त, खराब सड़कों और भीड़ भरे ट्रैफ़िक, सार्वजनिक शौचालयों की बदहाल स्थिति और होटलों में असुविधाओं और कैश की कमी जैसी तमाम समस्याओं से दो-चार होते हुए सफ़र का आनंद उठाते हुए भूटान पहुँचते हैं, जहाँ वे एक अलग ही दुनिया से परिचित होते हैं।

भूटान के घर, सड़क और चौराहों पर टंगी वहाँ के राजा-रानी की होर्डिंग, बुद्ध, फ़ोर फ्रेंड्स और फैलस की तस्वीरें लेखिका के मन में उनके बारे में जानने की जिज्ञासा जगा देती है। इन चित्रों में समाहित भूटान की लोककथाओं को सुनकर लेखिका सोच उठती है कि - "कितनी सारी कहानियों से मिलकर बनती है कोई भी संस्कृति। हज़ारों लोककथाएँ, मान्यताएँ किसी भी संस्कृति और धर्म का अटूट हिस्सा है। कई बार तो ये कहानियाँ जनजीवन का ऐसा हिस्सा बन जाती हैं कि सत्य और मिथक का फ़र्क करना भी कठिन हो जाता है।"

पुस्तक पढ़ते हुए पाठक भी लेखिका के साथ उसके इस गहरे जीवन-दर्शन से जुड़ जाता है।

ऐसी ही न जाने कितनी लोककथाएँ भूटान की धरती पर बिखरी पड़ी हैं, जो उस देश की सांस्कृतिक विरासत को अपने में समेटे हुए हैं। मोचू-पोचू की लोककथा हो या खुसु जांगपो-खुसु जांगपो ला की लोककथाएँ, पाठक के मन में एक विस्मय-सा पैदा कर देती हैं।

भूटान का अपूर्व सौंदर्य और वहाँ के लोगों के खुश रहने की प्रवृत्ति पाठक का मन मोह लेती है। प्रकृति का रोमांच, भूटान की लोककथाएँ, वहाँ के लोगों का सहज, सरल व्यक्तित्व, ईमानदारी और काम करने में किसी भी प्रकार की जल्दबाज़ी न होना, आर्थिक संसाधनों से परिपूर्ण न होने के बावजूद भी उसे विश्व के खुश देश की श्रेणी में अव्वल रखता है। इस देश के खुश रहने के कारण की पड़ताल करने पर लेखिका को पता चलता है कि "जॉय ऑफ़ गिविंग" इस देश के लोगों का खुश रहने का मूलमंत्र है, जो लेखिका को सोचने को विवश करता है कि भूटान जैसे छोटे देश के लोग इतने खुश रह सकते हैं, तो फिर हमारे देश के लोग क्यों नहीं? शायद इसके लिए हमें उन्हें बचपन से ही ऐसी शिक्षा देनी होगी, जो उन्हें खुश रहना सिखाती हो।

इस पुस्तक की भाषा-शैली इतनी प्रवाहमय और रोचक है कि पाठक को अपने साथ बहा ले जाती है। पुस्तक को पढ़ते हुए समय का तनिक भी ध्यान नहीं रहता है।

साधारण में सौंदर्य खोज लेना पल्लवी त्रिवेदी जी की सबसे बड़ी विशेषता है। उन्होंने छोटे-से-छोटे दृश्यों के ऐसे कलात्मक बिंब उकेरे हैं कि वे आँखों के सामने सजीव हो उठते हैं और यही विशेषता पुस्तक को विशिष्ट बनाती है। लेखिका की कल्पनाशीलता इसमें चार चाँद लगा देती है।

किसी भी देश को वहाँ जाए बगैर जानना हो, तो उस देश का साहित्य, विशेषकर यात्रा-साहित्य को पढ़ना चाहिए। भूटान के बारे में जानने को उत्सुक लोगों के लिए यह एक बेहतरीन पुस्तक है। कुल मिलाकर रहस्य और रोमांच से भरपूर अगर हम यात्रा-साहित्य पर कोई एक अच्छी पुस्तक पढ़ना चाह रहे हैं, तो यह पुस्तक आपके लिए ही है।

**skamla830@gmail.com**

# कहावतों के अद्‌भुत संसार में छिपे स्वास्थ्य के सूत्र !

**डॉ. कमलेश गोगिया**
**छत्तीसगढ़, भारत**

कहावतों का अनूठा संसार है। लोक साहित्य की सबसे प्राचीनतम विधा 'कहावतें' मानव-जीवन की सिर्फ़ सहज अभिव्यक्ति ही नहीं रही हैं, अपितु अपने में जीवन के सूक्ष्म अनुभव के सूत्रों को समेटे हुए हैं। हमारे लोक जीवन को प्रतिबिंबित करती कहावतों में जीवन के हर क्षेत्र का सम्यक ज्ञान, अनुभव और प्रेरणाएँ सम्मिलित रहती हैं। सरल शब्दों में कहें, तो भारतीय लोक जीवन में मौखिक परंपरा के आधार पर प्रचलित लोकोक्ति या कथन को ही कहावत कहा जाता है। वास्तव में, कहावतें हमारी अनमोल धरोहर हैं। ये एक दिन में तैयार नहीं होतीं और न तो किसी एक घटना के आधार पर किसी कहावत को बनाया जा सकता है। लम्बी प्रक्रिया से गुज़रकर ही कहावतों का निर्माण होता है। इन्हें समय की कसौटी पर बार-बार कसना पड़ता है और तब जाकर इन्हें लोक जीवन प्रमाणित करता है।

विश्व के सभी देशों और देश के अलग-अलग राज्यों में अलग-अलग बोलियों और भाषाओं में लोक कहावतें प्रचलित रही हैं। अध्ययन और अनुभव के आधार पर यह कहने में कोई अतिशयोक्ति नहीं है कि सदियों से चली आ रही कहावतें आर्टिफ़िशियल इंटेलीजेंस मसलन ए.आई. के इस दौर में भी सटीक बैठती हैं। कहावतों में सिर्फ़ जीवन-दर्शन ही नहीं छिपा है, यदि गंभीरता से अध्ययन कर अमल किया जाए, तो बेहतर स्वास्थ्य के सूत्र भी छिपे हुए हैं।

अल्जीरियाई कहावत है, ''जिसके पास स्वास्थ्य है, उसके पास आशा है और जिसके पास आशा है, उसके पास सब कुछ है।" अच्छा स्वास्थ्य और आशा होने के महत्त्व पर प्रकाश डालती यह कहावत जीवन जीने की कला सिखाती है। देवभूमि भारत के विभिन्न राज्यों में अनेक कहावतें प्रचलित हैं। इनमें स्वास्थ्य से संबंधित कहावतें भी हैं। ''भोजपुरी कहावतें एक सांस्कृतिक अध्ययन" में सत्यदेव ओझा ने स्वास्थ्य संबंधी अनेक कहावतों का उल्लेख किया है। जैसे –

*मोटी दतवन जो करे, नित उठी हर्रे खाय*
*बासी पानी जो पिये, ता घर बैद न जाय*

इसका अर्थ है कि जो मोटी दतवन से मुँह धोता है, नित्य प्रति हर्रे खाता है और बासी पानी पीता है, उसके घर वैद्य कभी नहीं जाता है। ''बानपुर और बुंदेलखंड" पुस्तक में मदन मोहन वैद्य का 'बुन्देली कहावतों में स्वास्थ्य-ज्ञान' नाम से बड़ा ही सुंदर आलेख है। वे लिखते हैं कि भारत के ग्रामीणों में नीति, धर्म, सदाचार, स्वास्थ्य, ज्योतिष, कृषि, वर्षा आदि अनेक विषयों पर लोकोक्तियों अर्थात् कहावतों का अक्षय अनमोल भण्डार कण्ठों में मौखिक साहित्य के रूप में रक्षित चला आ रहा है। उन्होंने अनेक बुंदेली कहावतों में छिपे स्वास्थ्य-विज्ञान को उद्‌घाटित किया है। वे लिखते हैं -

*सावन ब्यारू जब तब कीजै। भादो बाको नाम न लीजै।*
*कुँवार मास के दो पाख। जतन जतन जिय राख।*
*आधे कातिक होय दीवारी। फिर मन मारी करो ब्यारी।*

इसका अर्थ है कि सावन, भादो और कुँवार महीनों में वर्षा खूब होती है। पृथ्वी की उष्णता निकलने और परिश्रम न करने से मंदाग्नि हो जाती है। फलतः भोजन के भली प्रकार न पचने से तमाम रोगों और दोषों का जन्म होता है। इसी सिद्धांत को देखते हुए कहा गया है कि सावन मास में रात्रि में भोजन (ब्यालू) कभी-कभी करें, किन्तु भादो मास में रात्रि-भोजन का नाम ही न लें, अर्थात् रात्रि-भोजन बिल्कुल न करें। कुँवार के महीने को बड़ी सावधानी से बिना रात्रि-भोजन के बिता दें। कार्तिक मास में दिवाली के बाद इच्छापूर्ण रात्रि-भोजन से कोई हानि नहीं होगी। किस महीने में हमें क्या खाना चाहिए और क्या नहीं इस पर भी बुंदेलखंड की प्रसिद्ध कहावत है -

*अधने जीरो, फूसे चना, माओ मिसरी, फागुन धना।*
*चैते गुर बैसाखे तेल, जेठ महुआ, असाड़े बेर।*
*सावन दूध उर भादों दही कुँवार करेला कातिक मई।*
*जो इतनी नहीं माने कही मर है नई तो परहै सई।*

इसका अर्थ है कि साल के 12 माह में कोई-न-कोई वस्तु दोषकारक होती है, जिसका सेवन स्वास्थ्य के लिए हानिकारक है। अगहन (मार्गशीर्ष) में जीरा, पौष में चना, माघ में मिश्री, फाल्गुन में धना, चैत्र में गुड़, ज्येष्ठ में महुआ

(मधुफूल), आषाढ़ में बेर (बद्रीफल), श्रावण में दूध, भाद्रपद में दही, अश्विन (कुँवार) में करेला और कार्तिक मास में मठा (दही) ग्रहण करना स्वास्थ्य के लिए घातक है। यह आर्युवेद के सिद्धांत पर आधारित है। मार्गशीर्ष माह जिसे अगहन कहते हैं, यह नवंबर से दिसंबर के बीच होता है। मार्गशीर्ष और पौष माह में हेमंत ऋतु का प्रभाव रहता है, जिससे वात-पित्त कुपित होता है। जीरा और चना शीतल होने की वजह से वात और पित्त को और भी कुपित कर देते हैं। माघ जनवरी से फ़रवरी और फाल्गुन फ़रवरी से मार्च के बीच रहता है। इस समय शिशिर ऋतु का प्रभाव रहता है, जिससे मिश्री और धना वात को सबल बनाकर शरीर में रोग बढ़ा देते हैं। चैत्र और बैसाख (मार्च से अप्रैल और अप्रैल से मई) में बसंत ऋतु के प्रभाव से कफ़ कुपित होता है, जिसमें गुड़ और तेल निषिद्ध है। श्रावण और भाद्रपद (जुलाई-अगस्त और अगस्त-सितंबर) यानी वर्षा ऋतु में दूध और दही के सेवन से वात बढ़ता है। इसी तरह अश्विन और कार्तिक (सितंबर-अक्टूबर और अक्टूबर-नवंबर) में करेला और मठा का सेवन पित्त कुपित होने की वजह से, हानिकारक माना गया है। इस संबंध में एक और कहावत है -

*कुँवार करेला, चेत गुड़, भादों मूली खाय।*
*पैसा जावे गाँठ का, रोग ग्रस्त पड़ जाय।*

इसका अर्थ है कि कुँवार में करेला, चैत में गुड़ और भाद्रपद में मूली खाने वाले का पैसा तो नष्ट होगा ही, साथ में बीमार पड़ जाएगा। अतः ये वस्तुएँ इन महीनों में नहीं खानी चाहिए।

स्वस्थ रहने का एक और उपाय बुंदेली कहावत में इस प्रकार बताया गया है-

*निन्नें पानी ज पिएं हर्र भूंज नित खाय।*
*दूध ब्यारू जे करें उन घर बैद न जाएँ।।*

यानी जो व्यक्ति प्रातःकाल उठकर बिना कुछ खाए-पिए पानी पीता है, प्रतिदिन दोपहर को भुंजी हुई हर्र का सेवन करता है और रात्रि को सिर्फ़ दूध पीकर रहता है, वह निरोगी रहता है और उसे वैद्य की कभी कोई आवश्यकता नहीं होगी। भोजन के पहले, बाद और बीच में पानी पीने को लेकर कहावत है -

*पहले पीवे जोगी*
*बीच में पीवे भोगी*
*पीछे पीवे रोगी*

इसका अर्थ है कि योगी जन भोजन के पूर्व पानी पी लेते हैं, अर्थात् भोजन पूर्व पानी पीना बुद्धिमानी का कार्य है और स्वास्थ्य के लिए सर्वश्रेष्ठ है। भोगी गृहस्थ जन पानी भोजन के बीच में पीते हैं। यह पानी पूर्ण लाभकारी नहीं है, किंतु मध्यम होने से कुछ ठीक है। जो रोगी हैं या होना चाहते हैं, वे लोग ही पानी भोजन के बाद पीते हैं।

छत्तीसगढ़ में भी स्वास्थ्य से संबंधित अनेक कहावतें हैं। एक कहावत है -

*चैत सुते भोगी, कुँवार सुते रोगी।*

इसका अर्थ है कि चैत माह में भोगी व्यक्ति और क्वाँर माह में रोगी व्यक्ति सोता है। बुंदेली की तरह छत्तीसगढ़ी में भी कहा गया है कि -

*कुँवार करेला, कातिक दही, मरही नहीं त परही सही।*

अर्थात् - कुँवार में करेला और कार्तिक माह में दही खाने वाला व्यक्ति भले न मरे, लेकिन बीमार अवश्य पड़ जाता है। एक अन्य कहावत है-

*खाके मुते सुते बाउ, काहे बैद बसावे गाउ।*

यानी, भोजन करके लघुशंका जाना और फिर बाँयी करवट सोने पर व्यक्ति निरोगी रहता है। महात्मा गांधी कहा करते थे, "जहाँ अलसी का सेवन किया जाएगा, वह समाज स्वस्थ व समृद्ध रहेगा।" अलसी ओमेगा-3 फैटी एसिड का सबसे बड़ा स्रोत है, जो स्वास्थ्य के लिए वरदान माना जाता है। ओमेगा-3 हमारे शरीर के समस्त अंगों, विशेषकर मस्तिष्क, स्नायुतंत्र व आँखों के विकास के लिए महत्त्वपूर्ण माना गया है। कहने का आशय यह है कि कहावतें लोकजीवन का सार होती हैं और ये सिर्फ़ दैनिक समस्याओं को सुलझाने का ही कार्य नहीं करतीं, अपितु निरोगी जीवन के सूत्र भी बतलाती हैं। पूरे विश्व में स्वास्थ्य से संबंधित असंख्य कहावतें प्रचलित हैं, जो दीर्घकालीन अनुभव से गुज़रकर लोगों की ज़ुबान पर आज भी रची-बसी हैं। कहावतों का वैश्विक महत्त्व है और विश्व के लगभग सभी देशों में कहावतें प्रचलित रही हैं।

**kamleshgogia@gmail.com**

# हिंदी अध्ययन-अध्यापन की संवाहक

## लर्न हिंदी एंड हिंदी फ़िल्म सोंग्स

**डॉ. अंजना संधीर**

**गुजरात, भारत**

भारतीय हिंदी सिनेमा के गीत-संगीत की आभा जिस वैश्विक स्वरूप को धारण किए हुए है, उसी के व्यापक प्रभाव के सानिध्य में आज इसकी स्वीकार्यता अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर पहुँचकर लोकप्रियता के नित नूतन प्रतिमान स्थापित कर रही है। संप्रेषण का सर्वाधिक सशक्त माध्यम फ़िल्में हैं और जब हम भारतीय संदर्भ में हिंदी सिनेमा के गीत-संगीत की बात करते हैं, तब कथ्य-तथ्य को सम्प्रेषित करने के कारक के रूप में यह परस्पर तथा सामूहिक संवाद की एक अत्यंत ही महत्त्वपूर्ण कड़ी बनकर, आज हमारे समक्ष उपस्थित है। हिंदी सिनेमा जगत् ने अपनी प्रथम सवाक फ़िल्म 'आलम आरा' (1931) के प्रदर्शन से ही बोलना-बतियाना प्रारंभ कर दिया था और इसी फ़िल्म से वह जीवन्त गीत-संगीत का उपहार भी ले कर आई थी, जो समय के साथ अनेक दिन, महीने और वर्ष को लाँघता हुआ आज एक समृद्ध परंपरा का रूप धारण कर चुका है। किसी सिनेमा के, विशेषकर, उसके गीत-संगीत के संदर्भ में यह एक विशिष्ट उपलब्धि है।

भारत की सीमा के अंदर ही अहिंदी भाषा-भाषियों के मध्य हिंदी सिनेमा के गीतों की लोकप्रियता, जिस व्यापक परिक्षेत्र को समेटे हुए है, वह किसी को भी अचरज में डाल देता है। पर कल्पना कीजिए उस दृश्य-परिदृश्य का जब इसी हिंदी सिनेमा के गीतों ने पहली बार भारत की सीमा लाँघकर विदेशों में अपनी लोकप्रियता का नूतन इतिहास रचा था। राजकपूर की फ़िल्म 'आवारा' (1951) के शीर्षक गीत 'आवारा हूँ या गर्दिश में हूँ आसमान का तारा हूँ' ही वह प्रथम हिंदी सिनेमाई गीत था, जिसने तब सोवियत रूस सहित दक्षिण-पूर्व एशिया के देशों के अहिंदी-भाषियों के मध्य लोकप्रियता का कीर्तिमान स्थापित किया था। शंकर-जयकिशन के संगीत में शैलेन्द्र का लिखा यह गीत गायक मुकेश के स्वर में जिस महानाद को तरंगित कर गया, उसकी गूँज आज भी ध्वनित हो रही है। इस गीत का नाद अभी थमा भी नहीं था कि इसी त्रिवेणी से उपजा दूसरा गीत 'मेरा जूता है जापानी, ये पतलून इंग्लिस्तानी, सर पे लाल टोपी रूसी, फिर भी दिल है हिन्दस्तानी' (फ़िल्म : श्री 420-1955) हिंदी गीतों का एक और रूपक लेकर प्रस्तुत हो गया। मुकेश की वाणी इस गीत में जिस सरगम पर विराजित होकर स्वर सौन्दर्य का लय-सुर-ताल बिखेर रही थी, उसने विश्व जनमानस को हतप्रभ कर दिया था। हिंदी भाषा से पूर्णतया अनभिज्ञ लोगों के मध्य किसी गीत का यूँ लोकप्रिय हो जाना भारतीय सिनेमा के गीत-संगीत की महत्ता को तो इंगित करता ही है, साथ ही यह हिंदी भाषा के आकर्षण, उसके प्रभाव तथा उसके ओज को भी वैश्विक स्तर पर दर्शाता है। यह एक संकेत था, उस अंतर्राष्ट्रीय घटनाक्रम का, जो भविष्य में हिंदी और हिंदी सिनेमा के गीत-संगीत के व्यापक प्रसार तथा इसकी वैश्विक स्वीकार्यता का व्योम रचने वाली थी। भारत के स्वतन्त्रता-संग्राम के दिनों में स्वाधीनता आंदोलन को घर-घर, गाँव-गाँव, नगर-नगर तक पहुँचाने का बहुत बड़ा श्रेय हिंदी सिनेमा के गीतों को ही जाता है। सरस्वती देवी के संगीत में ढला और कवि प्रदीप का लिखा 'चल चल रे नौजवान' (फ़िल्म : बन्धन - 1940) एवं अनिल बिस्वास के संगीत में कवि प्रदीप का ही लिखा 'आज हिमालय की चोटी से फिर हमने ललकारा है दूर हटो ऐ दुनिया वालो, हिन्दस्तान हमारा है' (फ़िल्म : किस्मत-1943) जैसे और भी ढेरों गीतों ने जन क्रांति का जो बिगुल फूँका था, उसकी कथा आज भी लोग बाँचते हैं।

हिंदी सिनेमा के गीत-संगीत के विभिन्न आयामों पर किए गए, अपने ढेरों शोध-प्रबंधों में मैंने जिस एक कारक को समान रूप से प्रत्येक स्थिति-परिस्थिति में उपस्थित पाया, वह है उसका सार्वभौमिक वैश्विक प्रभाव का शाश्वत गुणधर्म। विश्व भर में संचार और सम्प्रेषण के समस्त उपलब्ध एवं सम्भावित स्रोतों में हिंदी सिनेमा के गीत ही एकमात्र ऐसे माध्यम हैं, जो भाषा, भाव, साहित्य और संवाद के प्रखर प्रणेता हैं। भारत को छोड़कर विश्व के किसी भी देश की फ़िल्मों में गीत-संगीत की परंपरा नहीं है। भारतीय फ़िल्मों में गीतों की जो परंपरा है,

वह अनायास ही उत्पन्न नहीं हो गई, अपितु यह इस देश की हज़ारों-लाखों वर्ष पूर्व से चली आ रही संस्कृति के संस्कार का परिणाम है। जिस राष्ट्र की समृद्ध सनातन परंपरा में चार वेदों 'ऋग्वेद', 'सामवेद', यजुर्वेद', 'अथर्वेद' में से 'साम वेद' पूर्ण रूप से राग-रागिनियों, सुर, स्वर, व्यंजन, उच्चारण के आवरण से सुसज्जित संगीत को ही समर्पित हो और जहाँ व्यक्ति के जन्म से लेकर मृत्यु तक के ढेरों अवसरों एवं क्रियाकलापों पर गीत-संगीत द्वारा उसे मुखर किया जाता हो, वहाँ के चलचित्रों में इसका चलन स्वाभाविक ही कहा जाएगा। हाँ, 'अभिनय' का मूल सूत्र 'ऋग्वेद' के 'सम्वाद सूक्त' से अस्तित्व में आया है, जिसका विराट रूप 'नाट्य शास्त्र' में दृश्यमान है। यहाँ मैं यह भी स्पष्ट कर दूँ कि संगीत के निर्धारित सात स्वर 'सा - षडज, रे - ऋषभ, गा - गान्धार, म - मध्यम, प - पंचम, ध - धैवत, नि - निषाद', 'सामवेद' से ही अस्तित्व में आए हैं। 'सामवेद' में संकलित कुल 1875 'मन्त्रों' में से 69 मन्त्रों को छोड़कर शेष सभी मन्त्र 'ऋग्वेद' से ही उद्‌धृत हैं। जिसे सुर-स्वर-उच्चारण-प्रस्तुति के भिन्न-भिन्न संयोजन के संग इसमें समाहित किया गया है। 'सामवेद' के मंत्रों का गान करने वाला 'उद्गाता' कहलाता है, जिसे हमारे शास्त्रों में 'ऋषि-महर्षि' के समतुल्य माना गया है। 'उद्गाता' को हम वर्तमान समय में 'महागायक' कह सकते हैं। भारतीय हिंदी सिनेमा के यदि किसी एक गायक को 'उद्गाता' अर्थात् ऋषि-महर्षि तुल्य 'महागायक' कहा जा सकता है, तो वह निःसन्देह 'मुकेश' हैं। सुर, स्वर, लय, ताल, शब्द, भाव, उच्चारण एवं प्रस्तुति की सहज-स्वाभाविक अनुगूँज मुकेश की वाणी में जिस प्रकार प्रभावी रूप से उनके गाए ढेरों गीतों में निरूपित हुई है, वह अद्‌भुत है। मेरे इस शोधपूर्ण निष्कर्ष को लगभग ढाई दशक पूर्व वयोवृद्ध शायर-गीतकार मजरूह सुल्तानपुरी ने भी मेरे संग विमर्श करते हुए कुछ यूँ उद्‌धत किया था - 'मुकेश सुर के साथ ही भाव और शब्दों के उच्चारण को समान रूप से महत्त्व देते थे। लता मंगेशकर पहले सुर को महत्त्व देती हैं और उसके बाद भाव को, पर मुकेश इन दोनों को समान रूप से महत्त्व देते थे। जिस कारण उनका नाम पहले लिया जाएगा, उसके बाद ही लता और दूसरे गायक-गायिकाओं का नाम आएगा।' वेदों में 'सामवेद' के महत्त्व को 'श्रीमद्भगवद्गीता' में श्रीकृष्ण की इस उक्ति से स्पष्ट रूप से समझा जा सकता है, जिसमें उन्होंने कहा है 'वेदानां सामवेदोऽस्मि' अर्थात् वेदों में मैं 'सामवेद' हूँ। इस कथ्य से सहज ही समझा जा सकता है कि ईश्वर अर्थात् प्रकृति का साहचर्य ही संगीत है। जिस प्रकार भारत में विभिन्न त्योहारों में गीत-संगीत की अद्‌भुत छटा छाई रहती है, उसी प्रकार कुछ अपवादों को छोड़कर हिंदी और अन्य प्रादेशिक भाषाओं की फ़िल्मों की कल्पना गीत-संगीत के बिना असंभव है। होली, रक्षा-बन्धन, नवरात्र, दीपावली जैसे पर्वों के साथ-साथ बालपन, मित्रता, राष्ट्रीयता, मानवता, सौहार्द, शौर्य, प्रेरणा, प्रेम, शृंगार, मिलन, बिछोह जैसे ढेरों भावों को उजागर करते सिनेमा के गीतों की अपनी एक समृद्ध परंपरा एवं विस्तृत शृंखला है, जो अन्यत्र दुर्लभ है। हिंदी सिनेमा के गीत-संगीत का ऐसा बहुआयामी स्वरूप तथा इसकी सहज ग्राह्य प्रकृति का ही यह परिणाम है कि हिंदी आज विश्व भर में सर्वाधिक बोली और समझी जाने वाली भाषाओं में सर्वोपरि है। मूल संस्कृत से विकसित हुई हिंदी भाषा अपने उदारवादी प्रवृत्ति के कारण ही अन्य भाषा-बोली के शब्दों को समय-समय पर अपने में समाहित करती रही है। इन सबके बाद भी हिंदी के मूल रंग-रूप में कोई विशेष बदलाव इसलिए नहीं आया, क्योंकि हिंदी के व्याकरण तथा उसकी शैली के आकर्षक रंग-ढंग में ढेरों आयातित शब्द स्वतः ही इसमें मिलते-घुलते चले गए। भारतीय हिंदी सिनेमा के संगीत में भी यही हुआ। विदेशी और पाश्चात्य वाद्य-यंत्रों की संगत, जब भारतीय शास्त्रीय एवं सुगम संगीत के संग की गई, तब ये सभी वाद्य-यंत्र आश्चर्यजनक रूप से भारतीय संगीत में ढलकर इसी के अटूट अंग बन गए। वाद्य यन्त्रों का इस प्रकार से भारतीयकरण होने का परिदृश्य देख-सुनकर पाश्चात्य संगीत जगत् के वादक और संगीतकार आज भी हतप्रभ हैं। हिंदी सिनेमा के गीत-संगीत में यूँ तो प्रयोगवादी और अनूठा संगीत रचने का उपक्रम ढेरों संगीतकारों ने किया है, पर अपनी प्रथम फ़िल्म 'बरसात' (1949) से ही इस दिशा में अद्‌भुत सुरीला प्रयोग करने वाले प्रथम वैश्विक संगीतकार शंकर-जयकिशन ही थे। इनकी कई-कई कृतियों को सुनकर आज भी संगीत रसिक ठगे से रह जाते हैं। 'आवारा हूँ', 'मेरा जूता है जापानी', 'घर आया मेरा परदेसी', 'सब कुछ सीखा

हमने, न सीखी होशियारी', 'आ अब लौट चलें', 'मेरे मन की गंगा', 'ज़िन्दगी एक सफ़र है सुहाना', 'जाने कहाँ गए वो दिन' जैसे अनेकों गीतों की वैश्विक लोकप्रियता आज भी जस-की-तस बनी हुई है। शास्त्रीयता का शाश्वत रूप लिए शंकर-जयकिशन का संगीत फ़िल्म 'बसंत बहार' के गीतों में ढलकर आज भी संगीत साम्राज्य में एक मील का पत्थर बना अडिग खड़ा है। इसी प्रकार संगीतकार सलिल चौधरी का संगीत विदेशी लोक धुनों को पाश्चात्य वाद्य यन्त्रों के साहचर्य में जिस प्रकार भारतीयता में ढालकर हमारे समक्ष परोस गया है, वह भी असाधारण है। ढेरों नाम हैं, ढेरों कृतित्व हैं और अनेक रचनाओं में ढलकर उपजी असंख्य सृजन सामग्री है, जो ऐसे ही और भी अनगिनत कथा-प्रसंग के साक्षी हैं। सचिन देव बर्मन, चित्रगुप्त, ख़य्याम, कल्याणजी-आनन्दजी, लक्ष्मीकान्त-प्यारेलाल, राहुल देव बर्मन जैसे और भी अनेक संगीतकारों ने समय-समय पर जो अभिनव प्रयोग किए हैं, यह उसी का परिणाम है, जो वर्तमान में भी हिंदी सिनेमा के गीतों की प्रसिद्धि अपने चरम पर है।

भारतीय हिंदी सिनेमा के गीतों की जो नवीनतम उपलब्धि गत दो दशक की अवधि में रेखांकित हुई है, वह है हिंदी के प्रचार-प्रसार के अतिरिक्त हिंदी के पठन-पाठन तथा अध्ययन-अध्यापन में सिनेमा के गीतों का उल्लेखनीय योगदान। अप्रत्यक्ष रूप से तो यह कार्य हिंदी सिनेमा के गीत-संगीत के शैशव काल से ही प्रारंभ हो चुका था, पर विधिवत शिक्षा के क्षेत्र में हिंदी सिनेमा के गीतों का वैश्विक प्रयोग-उपयोग करने का श्रेय हिंदी की प्राध्यापिका डॉ. अंजना संधीर को जाता है। अहमदाबाद, गुजरात की निवासी अंजना संधीर का अतिशय हिंदी सिनेमा के गीतों का प्रेम ही वह विशेष कारक था, जिसने उन्हें हिंदी के अध्यापन में लोकप्रिय फ़िल्मी गीतों की लड़ियाँ पिरोने का प्रयोगवादी मंत्र थमा दिया। सन् 1995 में अमेरिका के न्यूयॉर्क नगर स्थित विद्यालय में भारतीय मूल सहित विदेशी छात्रों को हिंदी पढ़ाते हुए अंजना के मन में पहली बार यह विचार कौंधा कि क्यों न हिंदी सिनेमा के गीतों के द्वारा विद्यार्थियों को हिंदी भाषा, व्याकरण और उच्चारण की शिक्षा दी जाए। इसी के साथ ही देश प्रेम, मानवीय सरोकार, परस्पर संबंधों, मित्रता, हर्ष, विषाद, प्रसन्नता, उत्सव, उत्साह, उमंग, वीरता, शौर्य जैसे अनेक मनोभावों की व्याख्या करने हेतु फ़िल्मी गीतों का उनका चुनाव छात्र-छात्राओं को रोमांचित कर गया। अध्ययन-अध्यापन की भाषा और उसका माध्यम जब आकर्षक और मनोरंजक होता है, तब शिक्षण-प्रशिक्षण के उपक्रम में किसी भी सीख को समझना, उसे आत्मसात करना, उसे व्यवहार में लाना स्वतः ही सहज और सरल हो जाता है। डॉ. अंजना संधीर द्वारा सिनेमा के गीतों को हिंदी पढ़ाने के साथ उपयोग में लेना, पढ़ाए जा रहे विषय-वस्तु की ग्राह्यता को अल्प समय में शीघ्रता के साथ सुनिश्चित कर गया। उनकी हिंदी अध्यापन की यह पद्धति विश्व भर में हिंदी के पठन-पाठन और अध्ययन-अध्यापन को और भी सुगम-सरल बना गया। यहाँ यह बात और भी महत्त्वपूर्ण है कि अंजना ने अपने इस प्रयोग को अपने तक ही सीमित नहीं रखा, बल्कि अपने इस अध्यापन के कौशल को पुस्तक रूप में रचकर उसे प्रकाशित भी करवाया। 'लर्न हिंदी एंड हिंदी फ़िल्म सोंग्स' नाम से प्रकाशित डॉ. अंजना संधीर की पुस्तक में हिंदी फ़िल्मों के सौ गीतों का विषय एवं प्रसंग के अनुरूप चयन किया गया है। ये गीत पुस्तक में हिंदी और रोमन लिपि में दिए गए हैं, साथ ही गीत का अंग्रेज़ी अनुवाद भी इसमें दिया गया है। इस प्रकार हिंदी के किसी विषय-वस्तु विशेष को पढ़ाते हुए संबंधित गीत गाकर या बजाकर सुनाते हुए शब्दों का अर्थ और उसमें प्रयुक्त भावों की विवेचना करके जब गीत को उसकी मूल ध्वनि के संग विद्यार्थी सुनते और गाते हैं, तब समझने और सिखाने की क्रिया सरलता से सम्पन्न हो जाती है। उदाहरण के लिए यदि आधुनिकता और पहनावे के भिन्न-भिन्न प्रतीकों के संग किसी व्यक्ति को अपने राष्ट्र भारत के प्रति अपना प्रेम दर्शाना हो, तो वह 'मेरा जूता है जापानी' गीत को गाते-सुनते हुए तथा इसके अंतरों में प्रयुक्त भावों के साथ अपने मनोभावों को सुचारू रूप से अभिव्यक्त करने में सक्षम हो जाता है। इसी प्रकार प्रेम प्रदर्शन हेतु 'कभी-कभी मेरे दिल में ख्याल आता है', जीवन के मर्म को समझने के लिए 'इक प्यार का नगमा है', भाई-बहन के प्रीत को दर्शाता 'फूलों का तारों का सबका कहना है', प्रकृति का आनन्द लेते हुए यात्रावृत्तान्त का वर्णन 'सुहाना सफ़र और ये मौसम हसीन', आप्रवासी भारतीयों की टीस को उजागर

करता गीत 'आ अब लौट चलें, तुझको पुकारे देश तेरा' तथा भारतीय संस्कार एवं संस्कृति को ध्वनित करता गीत 'होठों पे सच्चाई रहती है, जहाँ दिल में सफ़ाई रहती है, हम उस देश के वासी हैं, जिस देश में गंगा बहती है' जैसे अनेक गीतों को इस पुस्तक में समाहित किया गया है। हिंदी के व्याकरण और काल का ज्ञान देता गीत 'सौ साल पहले मुझे तुमसे प्यार था, आज भी है और कल भी रहेगा', हिंदी के अंकों की गणना करता गीत 'एक दो तीन चार पाँच छः सात आठ नौ दस ग्यारह बारह तेरह, तेरा करूँ दिन गिन-गिन के इन्तज़ार आजा पिया आयी बहार' और 'तू हिन्दू बनेगा न मुसलमान बनेगा', 'इन्साफ़ की डगर पे बच्चों दिखाओ चल के', 'चाँद सी महबूबा हो मेरी कब', 'मेरे मन की गंगा और तेरे मन की यमुना का बोल राधा बोल संगम होगा कि नहीं', 'कहता है जोकर सारा ज़माना आधी हकीकत आधा फ़साना', 'गाता रहे मेरा दिल, तू ही मेरी मंज़िल', 'चलो एक बार फिर से अजनबी बन जाएँ हम दोनों', 'फूलों के रंग से दिल की कलम से', 'जीना यहाँ मरना यहाँ इसके सिवा जाना कहाँ', 'मैं न भूलूँगा', 'पानी रे पानी तेरा रंग कैसा', 'खई के पान बनारस वाला', 'मैंने तेरे लिए ही सात रंग के सपने चुने', 'नानी तेरी मोरनी को मोर ले गए', 'नन्हा-मुन्ना राही हूँ देश का सिपाही हूँ', 'रंग बरसे भीगे चुनर वाली', 'मेरे देश की धरती सोना उगले उगले हीरे मोती', 'है प्रीत जहाँ की रीत सदा' सहित 'ओम् जय जगदीश हरे' और 'जन गण मन अधिनायक जय हे' जैसे और भी कई गीत इसी पुस्तक में उनके भावार्थ के साथ सम्मिलित किए गए हैं। डॉ. अंजना संधीर की इस बात के लिए प्रशंसा करनी होगी कि उन्होंने अपने भीतर आए विचार को व्यावहारिक रूप देकर हिंदी के पठन-पाठन, अध्ययन-अध्यापन तथा इसके प्रचार-प्रसार में अपनी इस पुस्तक के माध्यम से एक अतुलनीय कार्य किया है। एक ऐसा कार्य जिसने इतिहास रचा है और साथ ही वर्तमान के श्रमसाध्य धरातल पर उज्ज्वल भविष्य की जीवन्त छवि उकेरी है।

'लर्न हिंदी एंड हिंदी फ़िल्म सोंग्स' पुस्तक में कुल चौदह अध्याय हैं। भारत के मानचित्र, राज्यों एवं केन्द्र शासित प्रदेशों के नाम के साथ यह पुस्तक हिंदी वर्णमाला का ज्ञान कराती स्वर-व्यंजन और इसके व्याकरण एवं स्वर-विज्ञान को बाँचती भारत के राष्ट्रीय प्रतीक, वंश वृक्ष, हिंदी में वार्तालाप के सामान्य नियम, सप्ताह के दिनों और वर्ष के महीनों के नाम के साथ ही हिंदी वर्ष के माह के नाम बताती हुई रंगों, फलों, सब्ज़ियों के नाम से भी हम सभी को अवगत कराती है। इस पुस्तक में सौ गीतों को उसकी सम्पूर्ण शब्दावली के साथ प्रस्तुत किया गया है तथा प्रत्येक गीत को हिंदी, रोमन में देने के साथ ही इसका अर्थ भी अंग्रेज़ी में दिया गया है। पुस्तक के प्रारंभ में ही डॉ. अंजना संधीर ने इस ग्रंथ हेतु किए गए अपने संकल्प की कथा तथा इसके क्रियान्वयन हेतु किए गए प्रयासों, संघर्ष-यात्रा तथा समय-समय पर लोगों द्वारा मिलने वाले सहयोग, मार्गदर्शन एवं अनेक गणमान्य व्यक्तित्वों द्वारा प्राप्त प्रशस्ति-पत्र को भी साझा किया है। उनका यह कार्य हिंदी के साथ ही भारत और भारतीयों के गौरव में भी अभिवृद्धि करता है। ऐसा कार्य जो सभी के लिए प्रेरणापुंज बनकर उन्हें इसी प्रकार के सकारात्मक कार्यों हेतु प्रेरित करता है। 745 पृष्ठों की इस पुस्तक के साथ 'एच एम वी - सा रे गा मा' द्वारा इसमें दिए गए सिनेमा के गीतों की एक 'सी डी' भी संलग्न है, जिसे सुनते हुए पुस्तक को पढ़ने-पढ़ाने का आकर्षण स्वतः ही द्विगुणित हो जाता है। उपलब्धि तथा पुस्तक के प्रसार एवं वितरण की बात यदि मैं आपको बताऊँ तो अब तक इस पुस्तक की दस हज़ार प्रतियाँ न्यूयॉर्क के मैनहटन क्षेत्र में स्थित 'न्यूयॉर्क लाइफ़ इंश्यूरेंस कम्पनी' ने अकेले ही कई देशों में वितरित की है। वर्ष 2005 में डॉ. अंजना संधीर ने अपनी भारत यात्रा की अवधि में गुजरात के तत्कालीन मुख्यमंत्री नरेन्द्र मोदी से अहमदाबाद में भेंट कर उन्हें यह पुस्तक उपहार स्वरूप प्रदान की थी। उन्हें यह पुस्तक इतनी भाई कि उन्होंने इसकी पाँच सौ प्रतियाँ तत्काल ही मँगवा ली और उसे 'प्रवासी भारतीय दिवस' के अवसर पर गुजरात में पधारे 'गुजरात परिवार महोत्सव' के सभी सदस्यों को भेंट की। इस महोत्सव में विभिन्न देशों से पधारे अतिथिगण ने इस पुस्तक को अपने-अपने देशों में हिंदी के प्रसार तथा इसके अध्यापन हेतु प्रयोग में लिया तथा उन लोगों तक इसकी सूचना भी पहुँचाई, जहाँ लोग इसके संबंध में अभी तक अनभिज्ञ थे। पुस्तक यदि उपयोगी हो और गुणवत्ता के स्तर पर श्रेष्ठ हो, तो उसके प्रचार-प्रसार के मार्ग स्वतः ही

खुल जाते हैं। 'लर्न हिंदी एंड हिंदी फ़िल्म सोंग्स' पुस्तक इसी श्रेणी की एक महत्त्वपूर्ण पुस्तक है, जिसे देश-विदेश में रह रहे हिंदी और हिंदी सिनेमा के गीतों के प्रत्येक प्रेमियों को अपने संग्रह में अवश्य रखना चाहिए। एक संदर्भ-ग्रंथ के रूप में भी यह पुस्तक हिंदी-प्रेमियों के साथ ही संगीत-प्रेमियों के लिए भी समान रूप से उपयोगी एवं संग्रहणीय है।

हिंदी भाषा और इसके साहित्य में जितनी विधाएँ हैं तथा मानवीय संबंधों के जितने प्रकार हैं, साथ ही भावों के सभी रूपों, अलंकार, काव्य के समस्त स्वरूपों यथा छंद, दोहा, चौपाई, सोरठा, गीत, मुक्तक इत्यादि के आधार पर हिंदी सिनेमा के गीतों का वर्गीकरण करके इस पुस्तक के अगले संस्करण में समायोजित कर इसे और भी उपयोगी एवं प्रासंगिक बनाया जा सकता है। गायक मुकेश के स्वर में संत तुलसीदास रचित महाकाव्य 'श्री रामचरितमानस' के आठों काण्डों की कालजयी प्रस्तुति का अंश भी इस पुस्तक में समायोजित किया जा सकता है, जिससे हिंदी के विद्यार्थियों को काव्य के विभिन्न रूपों के साथ ही जीवन के उच्च आदर्श एवं नैतिक-चारित्रिक मूल्यों को समझने-बूझने और उसे अपने जीवन में धारण करने की प्रेरणा भी मिलेगी। कर्म, श्रम, सेवा, त्याग, सहयोग, मित्रता, मूल्य वृद्धि, जल, जीवन, सामाजिक सरोकार, विवाह, उत्सव, धूम्रपान एवं मद्यनिषेध, प्रकृति, प्रदूषण, स्वच्छता सहित अन्य ढेरों दैनिक जीवन के उपक्रमों का प्रतिनिधित्व करते कई-कई हिंदी सिनेमा के गीत हमारे पास उपलब्ध हैं, जो इस पुस्तक के माध्यम से लोगों को हिंदी और समाज के विभिन्न सरोकार से परिचित कराने में अग्रणी भूमिका निभा सकते हैं। हम दशकों से यह जानते और मानते आ रहे हैं कि हिंदी फ़िल्मों के गीत हिंदी के प्रचार-प्रसार में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाते आ रहे हैं, पर योजनाबद्ध किसी प्रारूप के अन्तर्गत किसी व्यक्ति, संस्था या सरकार ने सिनेमा के गीतों की इस विशाल धरोहर का प्रयोग हिंदी के उत्थान, अध्ययन-अध्यापन हेतु पूर्व में क्यों नहीं किया, यह आश्चर्य की बात है। डॉ. अंजना संधीर की इस प्रस्तुति ने हिंदी के लिए जो मार्ग प्रशस्त किया है, वह वर्तमान के प्रयासों द्वारा इस दिशा में भविष्य के और भी रचनात्मक द्वार खोलेगी, ऐसा मेरा विश्वास है। अंजना ने हमें एक सूत्र थमा दिया है, अब उस सूत्र से हम क्या-क्या और किस प्रकार नए प्रयोजन सिद्ध करते हैं, ये हमारे समर्पित सकारात्मक कृत्यों पर निर्भर करता है। हिंदी, हिन्दुस्तान, हिंद को समृद्ध, समग्र एवं संपूर्ण बनाने के लिए जिस आह्वान गीत का मुझे स्मरण अभी हो आया है, उसी के प्रेरक कथ्य को आत्मसात कर, आइए, हम सेवा-समर्पण के अपने ध्येय को सहज ही फलीभूत करते हैं - 'छोड़ो कल की बातें, कल की बात पुरानी, नए दौर में लिखेंगे हम मिलकर नई कहानी, हम हिन्दुस्तानी!'

**anjana_sandhir@yahoo.com**

# व्यंग्य का तटस्थ सर्जक : विषपायी परसाई

**डॉ. किरण झा**
**नई दिल्ली, भारत**

सन् 1924 में भारत के मध्यवर्ती भाग में टिमरनी का सितारा हरिशंकर का अवतरण होता है। कदाचित विधाता अपने बनाए इन्सानी पुतलों के दुख और कष्ट से व्यथित ही रहा होगा, जिसने अपनी ही रूपाकृति को दीन-दुखियों के जीवन में उजास पैदा करने के लिए ऐसे व्यक्तित्व का आह्वान किया, जो जीवनपर्यंत दीन-दुखियों का स्वर बनता रहा। जीवन के अध्याय से शुष्क और बेडौल बवंडरों की तीक्ष्ण शिराओं से दो-चार होते हुए परसाई की जीवन रूपी माला में उलझी हुई गाँठों का ही संबल रहा। जब कभी भी उन अनसुलझी गाँठों की जकड़न कसती हुई-सी प्रतीत होती, तब वह उन पर मारक प्रहार करता।

व्यंग्य का यह पुरोधा अपने लेखन पर स्वयं विचार करता है कि आखिर वे कौन-सी परिस्थितियाँ रहीं, जिन्होंने मुझे व्यंग्य लेखन की ओर प्रेरित किया अथवा वे कौन-से कारण रहे, जिनके कारण मैं व्यंग्य लेखन की ओर मुड़ा। उनके ही शब्दों में ---"17 साल की उम्र से मेरा जीवन घोर दुखों में गुज़रा, अब भी वैसा ही है। मैंने जब लिखना शुरू किया, यह व्यक्तिगत दुख मुझ पर हावी था। मनुष्य अपने दुख को महिमामंडित करता है। इसमें उसे सुख मिलता है। यह स्वपीड़न-प्रमोद (मेसाकिज़्म) है। तो मेरी आरंभिक रचनाएँ

बहुत करुण हैं। ऐसी करुण कि उन्हें बिना रोए पढ़ा नहीं जा सकता है। पर कुछ समय बाद मैं व्यक्तिगत दुख के मोहजाल से बाहर निकल गया। तटस्थ हो गया।" उनका विचार स्पष्ट है कि व्यक्तिगत दुख से ऊपर उठकर मेरी संवेदना का विस्तार हुआ। जीवन की विसंगतियों से चुनौती लेते हुए कातरजन की दीन पुकार से विचलित होने वाला यह सर्जक उन्हें अपने करीब पाता है। उसे दीन-दुखियों के दर्द का भली-भाँति अंदाज़ा है। वह व्यथित जन-समुदाय के दुख-दर्द रूपी विष का पान करता है। वह यह स्पष्ट देख पाता है कि कैसे अपने जैसों के जीवन में उनका हमसाया बन सकता है। काँटों भरी राह की चुभन से वह वाकिफ़ होते हुए भी कंटकाकीर्ण मार्ग पर कदम बढ़ाने से स्वयं को नहीं रोक पाता। समाज में हाशिए पर रहने वाले जन उन्हें अपने करीब लगते हैं और दीनों के हितरक्षक परसाई भी उन्हें अपने जैसा ही लगते हैं। तभी वे अपना दुख और कष्ट सहजता से साझा करते हैं। समाज की उन असहज परिस्थितियों से मिलने वाले विष का पान कर ही तो विषपायी परसाई की निर्मिति होती है और क्षिप्र होती है, व्यंग्य की धार।

साहित्य में बहुत सहज नहीं रहा उनके लिए इस विधा में अपनी बात कहना और अपना स्थान बनाना। साहित्य की स्थापित विधाओं से इतर व्यंग्य को अपनी राह तय करने में उन्हें स्वयं हाशिए की राह मिलती रही। कभी फ़नी थिंग्स लिखने वाला राइटर कहलाया - "मीट हरिशंकर परसाई। द मोस्ट फ़नी राइटर ऑफ़ हिंदी।" तो कभी स्थापित साहित्यिक स्तंभ के मस्तिष्क को झकझोरने का माद्दा रखने वाला बेलौस व्यंग्य का बादशाह। यह अस्वाभाविक नहीं कि नामवर सिंह यह कहने से नहीं रह पाते कि 'परसाई का समुचित मूल्यांकन अभी तक नहीं हो पाया है।" पर किसी उफनती वेग को क्या कभी कोई रोक पाया है। परसाई की लेखनी से उपजी व्यंग्य की पैनी धार कुंद पड़े स्थूल बकवादों की सीवन उधेड़ती ही चलती है।

सारी सुख-सुविधा, धन-वैभव, ऐश्वर्य के प्रति बेपरवाह हरफ़नमौला, सादगी और सरल जीवन के समक्ष सुख-समृद्धि को फीका बताने वाला असाधारण ना हो, पर असाधारण की सीमा अवश्य निर्मित करता चलता है। हिंदी साहित्य में व्यंग्य के बेताज बादशाह को कहाँ पता था कि कुछ ना चाहने वाले पथ पर आगे बढ़ते हुए वह नीलकंठ बनेगा। यही वह सर्जक बना, जिसने विषपान भी किया और विषवमन भी। विष का वमन कहाँ करना है, वह यह बखूबी जानता है। 'विषवमनधर्मी रचनाकार' नामक संस्मरणात्मक लेख में इस बात का उल्लेख है कि किसी संस्था के खिलाफ़ जब उन्होंने लगातार, बारंबार बोला, जिसके परिणामस्वरूप इस स्वतंत्र चेता, निर्भीक और साहसी रचनाकार की पिटाई उनके ही घर पर की गई। इस झकझोर देने वाली घटना का असर यह हुआ कि वह और निर्भीक होकर सृजन करने लगा। लक्ष्यभेदन परसाई के व्यंग्य-लेखन की पहचान रही। बालपन से ही धुन का पक्का परसाई, मास्साब से हथेली पर तीखी बेंत का प्रहार तो सहता है, पर कहता वही है, जो उसे कहना है। जीवन की पाठशाला में ऐसे अनेक पाठ पढ़े जो लीक से हटकर बहुत दूर का मार्ग तय करते हैं। वर्ग संघर्ष की चौड़ी गहरी खाई को पाटने के लिए जिस हथियार का सहारा लिया, वह जीवन के खुरदरे पन्नों को तराशता रहा। मार्क ट्वेन के जीवन से प्रभावित यह रचनाकार साहित्य की मसृणता से दूर, बहुत दूर का सफ़र तय करता है। ऐसे बेज़ुबानों की ज़ुबान बनता है, जिसके बोल सिर्फ़ गूँजते ही नहीं, बल्कि मन-मस्तिष्क को धौंकनी की भाँति गलित कर झकझोरने का माद्दा रखते हैं। हरिशंकर का बालपन, माता-पिता के जीवित रहने तक संघर्षमय ही रहा, पर वही संघर्ष सुरसा बनकर अपने नखदंत के साथ अचानक उसके समक्ष प्रस्तुत होता है। जब सर से माता-पिता का साया उठ जाता है। असमय आई ज़िम्मेदारी और उनके जीवन में उनकी बुआ के रूप में एक ऐसा शिक्षक प्राप्त होता है, जिसने जीवन की विषम और विपरीत परिस्थितियों में भी 'सब हो जाएगा' का पाठ पढ़ाता रहा। जेब में देने को कुछ नहीं होता पर हृदय में ऐसी शक्ति होती, जो सब कुछ कर जाने की हिम्मत देता रहता है। "बुआ में अद्‌भुत जीवटता है। वे बहुत कर्री औरत हैं। कभी हार नहीं मानतीं। कोई भी संकट हो कहतीं - कोई चिंता नहीं - सब ठीक हो जाएगा।" चाहे किसी की सहायता करनी हो या अपनी ज़िम्मेदारियाँ पूरी करनी हो, जाने ऐसी कौन-सी असीम शक्ति और अदम्य साहस संजोता है यह योद्धा, जो जीवनपर्यन्त विपरीत धाराओं

में कश्ती आगे बढ़ाता जाता है। उसे कातरजन के ज़ंजीरों से बंधे हाथ दिखते हैं और वह उन ज़ंजीरों से उन हाथों को मुक्त करने के उद्यम में जुट जाता है। उन्हें बंधे हुए वे हाथ अपने पास बुलाते हैं, जिनके पास खोने को कुछ नहीं होता। होती है मुक्ति की आकांक्षा और उसे प्राप्त करने हेतु किए जाने वाले प्रयास। उन्हें ठेलेवाले, रिक्शेवाले, खोमचेवाले, कुली, मज़दूर, श्रमिक बेहद करीब के लगते। गली-मुहल्लों के बेबस, बेकसजन से बात कर, उनके जीवन के उन स्याह पन्नों को अपनी लेखनी से व्यंग्य की मारक प्रहार से प्रस्तुत करते, जो सीधे मस्तिष्क को बेध कर रख देते। व्यंग्यकार परसाई कहते हैं - "सही व्यंग्य व्यापक जीवन परिवेश को समझने से आता है। व्यापक सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक, परिवेश की विसंगति, मिथ्याचार, असामंजस्य, अन्याय आदि की तह में जाना, कारणों का विश्लेषण करना, उन्हें सही परिप्रेक्ष्य में देखना - इससे सही व्यंग्य बनता है। ज़रूरी नहीं है कि व्यंग्य में हँसी आए। यदि व्यंग्य चेतना को झकझोर देता है, विद्रूप को सामने खड़ा कर देता है, आत्मसाक्षात्कार कराता है, सोचने को बाध्य करता है, व्यवस्था की सड़ांध को इंगित करता है और परिवर्तन की ओर प्रेरित करता है, तो वह सफल व्यंग्य है। जितना व्यापक परिवेश होगा, जितनी गहरी विसंगति होगी और जितनी तिलमिला देने वाली अभिव्यक्ति होगी, व्यंग्य उतना ही सार्थक होगा।"

'एक तृप्त आदमी' में कम आमदनी वाले एक औसत जीवन जीने वाले व्यक्ति के जीवन के यंत्रवत और बेचारगी भरे जीवन की परिस्थितियों का खाका प्रस्तुत किया गया है - "मास्टर ट्यूशन पढ़ाकर घर लौट आए। दाढ़ी बनाई, स्नान किया और बनियान में साबुन लगाया - तीनों काम एक ही साबुन से। भोजन करने बैठे - आसपास बच्चे। दालभात ज्यादा खाते हैं मास्टर। चावल आसानी से पच जाता है। कभी साग भी बन जाता है। मास्टर ने कपड़े पहने। कपड़े कम हैं इसलिए मास्टर इतवार को खुद धोकर इस्त्री कर लेते हैं। कोट आदमी की इज्ज़त भी बचाता है और कमीज़ की भी - फटी कमीज़ कोट के नीचे पहनकर मास्टर स्कूल चल दिए।"

गरीब-गुरबों को वे उनका मसीहा लगते। वह जीवन की पाठशाला से सीख पाए कि दुख मात्र उनका या उन जैसों का नहीं है और नाहीं उनकी या उन जैसे अकेलों की है, बल्कि मुक्ति समवेत ही होती है। उनका दुख तब अपने से पृथक होकर संसार का दुख बन जाता है और परकातरता की यह टीस आजन्म बेधती रहती है। सच के लिए सदैव डटे रहे भले ही इसके लिए पिटे भी। कबीर का प्रभाव भी इन पर पड़ा। कबीर का साँच इनसे छूटता नहीं। मुँह देखी तो यह जानते ही नहीं। सच का साधक पिटने पर कहता है, "मुझे क्या पता था कि यश लिखने से अधिक पिटने से मिलता है, वरना मैं पहले ही पिटने का इंतज़ाम कर लेता।"

साहित्य की इस विधा की भाषा भी तब बदलती चली गई। मसृण और शास्त्रीय जामे से बाहर निकल, भाषा उनकी ही होती, जिनकी व्यथा व्यक्त होती, भाषा में शब्द उन पात्रों के ही होते, जिनकी दुर्दशा पर कुठाराघात होता। दर्जी, नाई, काश्तकार, भिश्ती से संवाद कर व्यथित वेदना उन्हीं के जीवन और घटनाओं को दर्शाते। कुछ भी अवास्तविक नहीं होता, पात्र, घटनाएँ, कथ्य सब वास्तविक होते। हिंदी साहित्य की व्यंग्य विधा के इस बेताज बादशाह को साहित्य और राजनीति के मध्य स्थापित डोर की थाह भली-भाँति थी। इन्होंने इसमें व्याप्त फूहड़पन और भोंडेपन को भी उसी स्केल पर मापा है, जितना समाज में व्याप्त बुराइयों को। सीधी सपाट रूप से व्यंग्य की इस तीखी मार की बानगी 'वे बहादुरी से बिके' कहानी में स्पष्ट दिखती है। एक सीधे सच्चे लेखक के सामने मद, मत्सर्य, लोभ- लिप्सा और आडंबर से भरे चरित्र का जीवंत चित्रण----"मैं प्रार्थना करता हूँ कि आप किताबें सरकार को मत बेचिए। आप मत बिकिए। आप हमारी शान हैं। उन्होंने कहा - हम बेचेंगे, बेचेंगे, बेचेंगे। हम डरते नहीं हैं। आखिर इस गरीब देश की जनता तक पुस्तकें पहुँचाना भी तो हमारा कर्तव्य है।" यह समाज में स्थापित खेमे में व्याप्त फूहड़पन और भोंडेपन की पोल खोलकर वेधक कटाक्ष है। व्यंग्य की यह मार परसाई के जीवन में घटे अनुभवों से कहीं बहुत आगे बढ़ते हुए अनुभवों की किश्ती से पार की गई वैतरणी कथा है। भय और मोह से लेशमात्र भी विचलित हुए बिना कातर और दुखीजन की पुकार को जीवनपर्यंत सुनना और समझना व्यंग्य लेखन का आधार बना। 1947 का साल परसाई के जीवन में 'प्रहरी' पत्रिका से जुड़कर परसाई बनने

का युगांतरकारी वर्ष रहा। व्यंग्य की धारदार नींव को मज़बूत धरातल मिला और परसाई, कलम से जादूई कलाकारी करने लगा। कलम का तिलिस्म आसपास से होकर दूर-दराज़ तक छाने लगा। दीन-दुखियों का मसीहा कबीर की राह पर चलकर उन तक पहुँचने का मार्ग बनाता रहा। "कबिरा खड़ा बजार में, सुनो भाई साधो" जैसे नियमित स्तंभ लेखन से मिली प्रसिद्धि से व्यंग्य की विधा पुख्ता होती गई। बेईमानी की परत में व्यंग्य की बानगी तीखा प्रहार करती है -" मेरे एक दोस्त ने मुझे बताया है कि जिनकी तोंदें इन सत्रह सालों में बढ़ी हैं, जिनके चेहरे सुर्ख हुए हैं, जिनके शरीर पर मांस आया है, जिनकी चर्बी बढ़ी है - उनके भोजन का, प्रयोगशाला में विश्लेषण करने पर पता चला है कि वे अनाज नहीं खाते थे; चंदा, घूस, काला पैसा, दूसरे की मेहनत का पैसा या पराया धन खाते थे।"

अपने परिवेश और परिस्थितियों से साक्षात्कार कर बना कलमकार कालजयी हो-ना-हो, पर उस काल का दस्तावेज़ अवश्य बनाता चलता है, साथ ही यदि उसकी लेखनी की मसि वे सभी पात्र स्वयं बन जाएँ, तो फिर समाज का वह रंगरेज़, स्याह और गहरे रंगों की परतदार इबारतों से अमिट, अभेद्य दुर्ग का निर्माण करता है। व्यंग्य का यह किरीट पुरुष किसी काल्पनिक संसार के व्यामोह में नहीं फँसता और न ही वाग्जाल का भ्रम उत्पन्न करता है। उन लोगों के सत्य को और व्यवस्था की विद्रूपता से मात्र अपनी लेखनी से परत-दर-परत तह हटाता चलता है। परसाई के लेखन का दायरा राजनीति की कटुता और धर्म की नर्म आस्था भी रहा। अकाल उत्सव में इस हलाहल का स्पष्ट अनुभव होता है -" एक रात सपना आया - राष्ट्र ने अकाल-उत्सव मनाना तय कर लिया है। कई क्षेत्रों में हो रहा है। एक क्षेत्र में अकाल उत्सव मैंने सपने में देखा। आसपास के चार-पाँच गाँवों के किसान, स्त्रियाँ, बच्चे इकट्ठे थे। पंडाल सजाया गया था। मंत्री अकाल समारोह का उद्घाटन करने आने वाले थे। पटवारी ने भूखों से चंदा करके गुलाबों की मालाएँ कस्बे से मँगवा ली थीं। स्त्रियाँ खाली मंगल घटों में सूखे नाले के किनारे की घास रखकर कतार में चल रही थीं। वे गा रही थीं - अबके बरस मेघा फिर से न बरसो, मंगल पड़े अकाल रे।"

परसाई को जानना उनकी धरती को जानना होता है। जबलपुर की धरती उनके साथ-साथ ही चलती है। कहते हैं कि दुख मार्जन करता है। परसाई का दुख "सर्वजन हिताय" का मार्जक बना। उन्हें दुख के गहरे अंधे कुएँ में गोते लगाते हुए असंख्य कातरजन की आर्तनाद कहती रही, हमें सुनो! हमारा स्वर बनो। जीवन-पथ पर अनेक टेढ़े- मेढ़े रास्ते और टेढ़ी-मेढ़ी पगडंडियों को पार करते हुए आमजन तक पहुँचने का मार्ग तय होता है, जहाँ सब एक होते हैं। समाज को देखने का नज़रिया आमजन के मध्य उपस्थित रहकर ही मज़बूत होता है और उनके जीवन के इर्द-गिर्द पसरे ताने-तिश्ने, बेईमानी, धोखेबाज़ी, अविश्वास, छल-छद्म, आडंबर और भोंडेपन की क्रूर और नश्तर-सी चुभन को महसूस कर ही उनका अक्स शब्दों में ढलता है। समाज में व्याप्त बेरोज़गारी की समस्या और दिशाहीन युवकों का उपयोग करने वाले एवं राजनीतिक फ़ायदा उठाने वाले लोगों पर व्यंग्य करते हुए कहते हैं-" दिशाहीन, बेकार, हताश, नकारवादी, विध्वंसकारी बेकार युवकों की यह भीड़ खतरनाक होती है। इसका प्रयोग महत्वाकांक्षी खतरनाक विचारधारा वाले व्यक्ति और समूह कर सकते हैं।"

यहाँ व्यंग्य का विस्तार व्यापक है। व्यंग्य के बेताज बादशाह के ही शब्दों में " व्यंग्य विधा नहीं है, जैसे - कहानी, नाटक या उपन्यास। व्यंग्य का कोई निश्चित स्ट्रक्चर नहीं है। वह निबंध, कहानी, नाटक विधाओं में लिखा जाता है। व्यंग्य इस कारण 'स्पिरिट' है। व्यंग्य लेखक को यह शिकायत नहीं होनी चाहिए कि विश्वविद्यालय व्यंग्य को विधा क्यों नहीं मानते। उन्हें संतोष करना चाहिए कि व्यंग्य का दायरा इतना विस्तृत है कि वह सब विधाओं को ओढ़ लेता है।"

व्यक्तिगत दुख की अथाह पीड़ा से संवेदना का विस्तार करते हुए कलम का बाज़ीगर व्यंग्य के व्यापक संसार का निर्माण करता है। जहाँ उनका परिवार समूचा समाज और समाज के बिल्कुल निचले पायदान पर खड़े लोग हैं, जिनके पास खोने को कुछ नहीं और हासिल करने को पूरा संसार है।

**kiranjha150870@gmail.com**

# भारतवर्ष में बैंकिंग का उद्देश्य – समाज-कल्याण बनाम लाभार्जन

**श्री ज्योति रंजन निधि**
**बड़ोदा, भारत**

बैंक उस वित्तीय संस्था को कहते हैं, जो जनता से धनराशि जमा करने तथा जनता को ऋण देने का काम करता है। लोग अपनी-अपनी बचत राशि को सुरक्षा की दृष्टि से अथवा ब्याज कमाने हेतु इन संस्थाओं में जमा करवाते हैं और आवश्यकतानुसार समय-समय पर निकालते रहते हैं।

भारतीय बैंकिग कंपनी अधिनियम, 1949 के अंतर्गत बैंक की परिभाषा निम्न प्रकार से दी गई है :

"ऋण देना और विनियोग के लिए सामान्य जनता से राशि जमा करना तथा चेकों, ड्राफ़्टों तथा आदेशों द्वारा माँगने पर उस राशि का भुगतान करना बैंकिंग व्यवसाय कहलाता है और इस व्यवसाय को करने वाली संस्था बैंक कहलाती है।"

बैंकिंग अपने-आप में एक व्यवस्था है, प्रणाली है, जो सीधे-सीधे आम जनमानस, उनके रोज़मर्रा की ज़िंदगी, जीवनयापन, जीविका, जीविकोपार्जन, खर्च और व्यवसाय इत्यादि से जुड़ी हुई है। यह सब के लिए है।

वर्तमान समय में बैंकिंग व्यवस्था का मूल उद्देश्य समग्र आर्थिक गतिविधियों का संचालन करना और मुनाफ़े को अधिकतम करने के लिए अपने-आपको स्थापित करना है।

राशि जमा रखने तथा ऋण प्रदान करने के अतिरिक्त बैंक अन्य काम भी करते हैं, जैसे - सुरक्षा के लिए लोगों से उनके आभूषण, बहुमूल्य वस्तुएँ जमा रखना, अपने ग्राहकों के लिए उनके चेकों का संग्रहण करना, व्यापारिक बिलों की कटौती करना, एजेंसी का काम करना, गुप्त रीति से ग्राहकों की आर्थिक स्थिति की जानकारी लेना-देना। अत: बैंक केवल मुद्रा का लेन-देन ही नहीं करते वरन् साख का व्यवहार भी करते हैं। इसीलिए बैंक को साख का सृजनकर्ता भी कहा जाता है। बैंक देश की बिखरी और इस्तेमाल में न आ रही संपत्ति को केंद्रित करके देश में उत्पादन के कार्यों में लगाता है, जिससे पूंजी-निर्माण को प्रोत्साहन मिलता है और उत्पादन की प्रगति में सहायता मिलती है।

बैंक किसी भी अर्थव्यवस्था की जीवन-रेखा है तथा आर्थिक विकास को सक्रिय बनाने और उसे कायम रखने में उत्प्रेरक की भूमिका निभाता है, विशेष रूप से विकासशील देशों में और भारत भी इसका अपवाद नहीं है। विकास के लिए सशक्त बैंकिंग प्रणाली एक अत्यावश्यक घटक है।

चूँकि बैंक मूल रूप से व्यवसाय-व्यापार से जुड़ा हुआ है, शुरुआती दिनों में यह व्यापारियों, व्यवसायियों, पूंजीपतियों या बड़े लोगों के काम की ही संस्था हुआ करता था। उन दिनों बैंक निजी ही होता था। इसका एकमात्र उद्देश्य लाभार्जन ही हुआ करता था। आज भी अपने देश में 80 करोड़ लोगों को मुफ़्त राशन आवंटित किया जा रहा है। मतलब इन 80 करोड़ लोगों से कोई उन्हें बैंक से जुड़ने को कह दे, तो यह एक तरह से उनकी आर्थिक परिस्थिति का उपहास करने के बराबर होगा।

दशकों पहले से ही कुछ लोगों के विचार में यह समझ आने लगा था कि देश की अर्थव्यवस्था के विकास में बैंकिंग व्यवस्था महत्त्वपूर्ण भूमिका अदा कर सकती है। यदि पूरी-की-पूरी अर्थव्यवस्था बैंकों के रास्ते प्रवाहित कर सकें, तो अर्थव्यवस्था का आकार बहुत बढ़ सकता है और यदि इस व्यवस्था में देश के हर एक नागरिक, खास तौर से वंचित वर्ग समूह को इस व्यवस्था का अंग बनाया जा सकता है, तो बैंक का विस्तार और विकास तो होगा ही, बल्कि बैंकिंग विकास के क्रम में आम जनमानस का भी उद्धार होगा तथा उनका विकास भी होगा।

अलग-अलग दौर में, तत्कालीन परिस्थितियों के मद्देनज़र, तत्कालीन वैश्विक अर्थव्यवस्था को देखते हुए लोग अलग-अलग राय रखते गए। उन दिनों लोगों को लगा कि यदि बैंकों का सरकारीकरण कर दिया जाए, तो बैंक सामाजिक दायित्व को बेहतर ढंग से निभा सकेगा। सरकार अपने समाज के लिए कल्याणकारी योजनाओं को बैंकों के माध्यम

से जनता तक बेहतर तरीके से पहुँचा पाएगी। सरकारीकरण हो जाने से बैंक सार्वजनिक हो जाएगा। इससे हर वर्ग के लोग बैंकिंग सुविधाओं का लाभ उठा पाएँगे। वर्तमान दौर में यह दलील दी जाती है कि सरकारीकरण ही बैंकों की विफलता का मुख्य कारण हैं। बैंक हमेशा ही निजी हाथों में होता, तो समाज-कल्याण बेहतर ढंग से करता। इसलिए बैंकों का पुनः निजीकरण कर दिया जाए।

बैंक का प्राथमिक कार्य जनता की जमा-राशि को स्वीकार करना और उनका संरक्षण करना है। बैंक उन उपभोक्ताओं के लिए पैसे की सुरक्षा सुनिश्चित करता है, जो अपने खातों में पैसा डालते हैं। बैंक उनकी जमा-राशि पर निश्चित ब्याज देता है। अतएव बैंक यह सुनिश्चित करता है कि जनता के द्वारा जमा किये हुए पैसे किसी भी हालत में नुकसान में न जाएँ। यदि उसका नुकसान होता भी है फिर भी बैंक को अपने ग्राहकों को तय ब्याज दर के हिसाब से मूलधन पर ब्याज सहित पैसे लौटाने होते हैं। साथ ही यह भी सुनिश्चित करना होता है कि किन्हीं असामाजिक तत्त्वों द्वारा जनता के पैसों का कोई नुकसान न हो।

बैंक उपभोक्ताओं को उनकी आवश्यकताओं के आधार पर लघु, मध्यम व लंबी अवधि के लिए ऋण देता है। बैंक उन्हें प्राप्त जमा-राशि से ऋण देता है और उपभोक्ताओं से उधार ली गई राशि पर ब्याज लेता है। आपकी जेब में रखा पैसा या घरों में रखा पैसा कभी भी कुछ कमा कर नहीं दे सकता। उल्टा खर्च हो जाएगा सो अलग। ऊपर से चोरी व खो जाने का डर अलग से। लेकिन बैंक में रखा पैसा सुरक्षित है। बाज़ार में कोई भी उतार-चढ़ाव आता रहे, जो ब्याज दर सुनिश्चित किया गया है, उस दर से आपका पैसा बढ़ेगा-ही-बढ़ेगा और कोई चोरी-चकारी का डर भी नहीं। दशकों से बैंक अपने अथक प्रयासों से लोगों के बीच यह विश्वास जगा पाने में काफ़ी हद तक सफल रहा है। इसके कारण बैंकिंग संस्थान उपभोक्ताओं को बचत करने के लिए प्रोत्साहित करने में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभा रहा है।

बैंकिंग एक देश के भीतर पूंजी-निर्माण की दर को बढ़ाता है। बैंक अपने बढ़ते दायरे व क्रिया- कलापों के कारण अब सिर्फ़ बचत योजनाएँ ही नहीं, बल्कि विभिन्न प्रकार की लाभकारी निवेश योजनाएँ भी लेकर बाज़ार में आ रहा है, जिससे समाज में कई लोगों को लाभ मिल चुका है। इन जमा-राशियों का मोल व मात्रा ही एक बहुत बड़े पूंजी-निर्माण का कार्य करती है। फिर इसी पूंजी से बैंक अर्थव्यवस्था के विविध क्षेत्रों को नियमित आधार पर ऋण देता है, जो सभी विकास-कार्यों को निरंतर जारी रखने में सहायता करता है। विभिन्न उद्योग और उद्यम अपनी वित्तीय माँगों को पूरा करने के लिए बैंकों की तलाश करते हैं।

बैंकिंग कंपनियाँ देश में कानूनी निविदा के रूप में कार्य करने वाली नकदी जारी करने के लिए ज़िम्मेदार हैं। हमारे देश का केंद्रीय बैंक, भारतीय रिज़र्व बैंक सभी करेंसी नोटों को प्रिंट और वितरित करता है।

बैंकिंग क्षेत्र आर्थिक स्थिरता प्राप्त करने के लिए महत्त्वपूर्ण है। बैंक अपस्फीति व मुद्रास्फीति के चरणों को नियंत्रित करने में मदद करता है। मंदी के दौरान, बैंक अर्थव्यवस्था में धन के प्रवाह को बढ़ाने के लिए सस्ते धन का उपयोग करता है। मुद्रास्फीति के समय, यह धन के प्रवाह को कम करने के लिए एक कठोर मौद्रिक नीति का उपयोग करता है और लोगों के खर्च को नियंत्रण में रखने के लिए यह ऋण पर ब्याज दर बढ़ाता है। इस तरह से अर्थव्यवस्था में पर्याप्त तरलता बरकरार रहती है। बैंक प्रभावी मौद्रिक नीति बनाकर मुद्रा-प्रवाह को नियंत्रित करता है। यह आंतरिक और बाह्य व्यापार दोनों के लिए फ़ायदेमंद है। बैंक व्यापारियों को उपयुक्त भुगतान सुविधाएँ प्रदान करके, साख पत्र जारी करके, विनिमय के बिलों में छूट और अन्य आश्वासन दस्तावेज़ प्रदान करके व्यवसाय करने में मदद करता है। यह ग्राहकों को दूर-दराज़ के स्थानों तक भी जल्दी से भुगतान स्थानांतरित करने में मदद करता है। बैंक ने विभिन्न प्रकार के लिखतों जैसे - ड्राफ़्ट, चेक और विनिमय के बिलों की पेशकश करके भुगतान प्रणाली की सहायता की है। नकद भुगतान करने की तुलना में इन उपकरणों से खरीदारी करना अधिक सुरक्षित और सुविधाजनक है।

भारत में समाज-कल्याण बैंकिंग व्यवस्था के महत्त्वपूर्ण उद्देश्यों में से एक है। लेकिन, कोई तंत्र किसी ज़रूरतमंद अथवा कमज़ोर पक्ष की सहायता कैसे कर सकता है, यदि

वह स्वयं नुकसान में चल रहा हो या लगातार नुकसान में हो। मतलब यह कि समाज के कल्याण के लिए पहले खुद को मज़बूत करना होगा। ऐसे में भारतवर्ष में बैंकिंग का उद्देश्य उचित लाभ कमाते हुए समाज का कल्याण करना है। बैंकों के नुकसान का मतलब है, लोगों के पैसों का नुकसान, क्योंकि बैंकों में लोगों के ही पैसे, बचत या पूंजी-निवेश के रूप में रखे हुए हैं और यदि बैंक लगातार नुकसान में रहने के बावजूद भी अपने ग्राहकों को मुनाफ़ा देना चाहता है, तो उसे कर्ज़ लेकर ऐसा करना पड़ेगा। यदि बैंक स्वयं कर्ज़ के बोझ तले दब जाएगा, तो वह समाज-कल्याण कैसे कर पाएगा?

समाज-कल्याण की योजनाओं पर अगर नए सिरे से मंथन किया जाए और इन्हें उचित दिशा में प्रभावी ढंग से क्रियान्वित किया जाए, तो ये समाज के लिए कल्याणकारी निवेश सिद्ध हो सकती हैं। इसके लिए योजनाओं में दो मुख्य बातों का ध्यान रखना होगा। एक तो यह कि इतनी बड़ी जो संख्या है, जिसे हमें मुफ़्त राशन और अनुदान देकर पालना पड़ रहा है, उन्हें समय के साथ थोड़ा मज़बूत बनाते चलें, ताकि थोड़े दिनों में वे मुख्य धारा में जुड़ सकें। यह रफ़्तार उनकी संख्या के बढ़ने से कम-से-कम तीन से चार गुना अधिक होनी चाहिए और दूसरा यह कि पूरी-की-पूरी अर्थव्यवस्था की दिशा कुछ ऐसी हो कि वंचित लोगों के खेमे में वे लोग न जुड़ें, जो वर्तमान में इस हाशिये से ऊपर हैं। ऐसा न हो कि निकले दस और गिरे बीस। यदि योजनाएँ इस तरीके से क्रियान्वित होंगीं, तो तत्काल लागत अधिक आएगी, लेकिन जितनी तेज़ी से ये लोग मुख्य धारा से जुड़ते चले जाएँगे, उतनी ही तेज़ी से उन पर "मुफ़्त" का खर्च कम होता चला जाएगा और मुख्य धारा में जुड़ने से वे अर्थव्यवस्था के क्रम का एक हिस्सा बनते चले जाएँगे। वे सीधे तौर पर आर्थिक गतिविधियों से जुड़ते चले जाएँगे, जो अर्थव्यवस्था को अधिक गति प्रदान करेगी। अर्थव्यवस्था में जितने लोग सक्रिय रहेंगे, उतना अच्छा रहेगा।

आज़ादी के बाद से ही भारतवर्ष में सरकारें अपने यहाँ के मजबूर, आर्थिक व सामाजिक रूप से कमज़ोर और वंचित वर्ग के उत्थान के लिए कई प्रकार की योजनाएँ चलाती आ रही हैं। लेकिन वित्तीय समावेशन जैसी नीतियों के बाद से बैंक सरकार की समाज-कल्याण की योजनाओं को लोगों के बीच प्रभावी तरीके से ले जाने में अधिक कारगर सिद्ध हुआ है। वित्तीय समावेशन के अंतर्गत अब तकरीबन सभी को बैंक से जोड़ दिया गया है। यहाँ तक कि सरकारी अनुदान, सहायता, मुआवज़ा इत्यादि बैंक खातों के माध्यम से ही आवंटित की जा रही हैं। मतलब जिन्हें सरकार "अपने खर्चे पर पाल" रही है, उन्हें भी बैंकिंग तंत्र में जगह दे दी गई है।

भारतवर्ष में गैर-परंपरागत क्षेत्र के उद्योग-धंधे और उनसे जुड़े लोगों की संख्या अधिक है। उनके पास आधिकारिक तौर पर सत्यापित दस्तावेज़ या कागज़ात नहीं होते। ऐसे में ये समूह इन कागज़ी पेंच की वजह से बैंकों से नहीं जुड़ पाते थे। नतीजतन उन्हें सूदखोरों या महाजनों या साहूकारों के चंगुल में मजबूरन फँसना ही पड़ता था। वित्तीय समावेशन की नीतियों के तहत ऐसे वर्ग को विशेष ध्यान में रखकर ही योजनाएँ तैयार की जा रही हैं। इसके कारण अब निचले-से-निचले पायदान पर खड़े लोग भी बेझिझक बैंकों से जुड़ने लगे हैं और सरकार की समाज-कल्याणकारी योजनाओं का लाभ उठाने लगे हैं। इससे देश के भीतर रोज़गार के अवसर भी बहुत तेज़ी से सृजित हो रहे हैं। बैंक के भीतर तो बहुत कम लोग रोज़गार पाते हैं, क्योंकि यहाँ इतनी रोज़गार की गुंजाइश नहीं है, लेकिन विभिन्न ऋण-योजनाओं के माध्यम से बैंक स्वरोज़गार, स्टार्ट अप, मुद्रा ऋण इत्यादि के माध्यम से रोज़गार के बहुत सारे नए अवसर सृजित कर रहा है, जो एक बहुत बड़ी संख्या में लोगों को रोज़गार दिला पाने में सक्षम है।

बैंक के द्वारा दी जाने वाली सहायता के बिना आर्थिक विकास को संभव बना पाना मुश्किल होता। बैंक लगातार देश की अर्थव्यवस्था की धुरी के समान काम कर रहा है और देश की आर्थिक और सामाजिक स्थिति को और विकसित व सशक्त बनाने में भरपूर योगदान दे रहा है।

**ubin0930792@unionbankofindia.bank**
**jrnidhi@live.in**

# पितृसत्ता और स्त्री का संघर्ष

**मंजू कुमारी**
**उत्तर प्रदेश, भारत**

पितृसत्ता अंग्रेज़ी के पैट्रियार्की (Patriarchy) का हिंदी समानार्थी है। पैट्रियार्की का शाब्दिक अर्थ है - पिता का शासन। स्त्री को अपने अधीन बनाए रखने हेतु भी 'पितृसत्ता' शब्द का प्रयोग होता रहा है। यह स्त्री और पुरुष के बीच असमानता दर्शाने का सूचक है। इंग्लैंड के इतिहासकार पीटर लेसलेट ने अपनी किताब 'द वर्ल्ड की लास्ट' में बताया है कि पितृसत्ता औद्योगीकरण से पहले के समाज की एक व्यवस्था रही है। यह व्यवस्था इंग्लैंड में परिवार-व्यवस्था की प्रमुख खासियत रही है। इस परिवार-व्यवस्था को न केवल उत्पादन की इकाई माना जाता है, बल्कि सामाजिक इकाई भी माना गया है। इस सामाजिक इकाई के अधिपति पुरुष होते हैं। संपत्ति और परिवार के सभी सदस्यों पर पुरुष का निरंकुश अधिकार होता है। संपत्ति का उत्तराधिकार पीढ़ी-दर-पीढ़ी पुरुष ही होता है। भारत में इस तरह की परिवार-व्यवस्था (संयुक्त परिवार) आज़ादी प्राप्त होने के बहुत बाद तक बनी रही। एकल परिवार में रूपांतरण होने के बावजूद भी परिवार का पितृसत्तात्मक स्वरूप अभी तक कायम है। पितृसत्तात्मक विचारधारा अनेक सामाजिक संस्थाओं तथा कानून, मीडिया, शिक्षा आदि विविध स्तरों पर पायी जाती है।

पितृसत्ता एक ऐसी सामाजिक-व्यवस्था मानी जा सकती है, जिसके अंतर्गत अधिकतर संसाधनों व निर्णयों पर पुरुषों का आधिपत्य होता है। पितृसत्ता की धारणा से उपजी धार्मिक-सामाजिक रीतियाँ एवं मान्यताएँ स्त्री को घर से बाँधकर रखती हैं। स्त्री के जीवन पर नियंत्रण करती है। केट मिलेट की मान्यता है - "हमारा समाज पितृसत्ता है। यह तथ्य स्पष्ट हो जाता है, यदि कोई ध्यान दे कि सेना, उद्योग, प्रौद्योगिकी, शिक्षा, विज्ञान, राजनीति, कार्यालय, वित्त आदि शक्ति के सभी अंग, पुलिस के दमनकारी बल सहित सब पूर्णत: पुरुषों के हाथ में हैं।"

पितृसत्तात्मक समाज ने धर्म, नैतिकता, परिवार, संस्कृति, सामाजिक मूल्यों, रूढ़िवादी परंपराओं, एथिक्स एवं शक्ति-संरचना के आधार पर मनगढ़ंत कहानियाँ बनाकर स्त्रियों को विवशता की बेड़ियों में जकड़कर रख दिया है। पितृसत्तात्मक सोच रखने वाले पुरुष, समाज के कमज़ोर वर्ग और खूँखार एवं आदमखोर जानवरों से लेकर सृष्टि की सारी चीज़ों पर अपना एकाधिकार जमाने में सफल रहे हैं। इसी हथकंडे से वे स्त्री को भी अपना दास बनाने में सफल रहे हैं। पितृसत्तात्मक-व्यवस्था जैसे विषैले ज़हर को आजकल की दुर्बल स्त्री हो या सफल स्त्री कोई भी नहीं पचा रही है। सोचने की बात यह है कि स्त्री इस पितृसत्तात्मक संरचना की जंज़ीरों से कैसे निकल पाएगी? परिवार, समाज, कार्य-स्थल तथा सार्वजनिक व निजी संस्थानों पर स्त्री के साथ हो रहे दमन, शोषण, उत्पीड़न एवं भेदभाव जगजाहिर है।

पितृसत्ता को एंगेल्स ने कोई ऐतिहासिक घटना न मानकर प्रक्रिया से निर्मित होने वाली सामाजिक संरचनाओं की एक प्रणाली माना है। यह ब्राह्मणवाद और पूंजीवाद से पोषित है। ब्राह्मणवादी पितृसत्ता ब्राह्मण धर्मग्रंथो और मनु-शास्त्र की उपज है तथा पूंजीवादी पितृसत्ता औद्योगीकरण और पूंजीवादी उत्पादन प्रणाली से पैदा हुआ। यह स्त्री पर पुरुष का नियंत्रण स्थापित करता है। यह मूल सामाजिक संरचनाओं और प्राचीन प्रथाओं को स्त्री पर नियंत्रण करने के लिए लागू करता है। 'गर्दा लर्नर' ने पुरुष के प्रभुत्व के संस्थाकरण के रूप में पितृसत्ता को परिभाषित किया है – "अपनी व्यापक परिभाषा में पितृसत्ता का अर्थ है - परिवार में महिलाओं और बच्चों पर पुरुष के प्रभुत्व का प्रकटीकरण और संस्थाकरण तथा सामान्य रूप से समाज में महिलाओं पर पुरुषसत्ता का विस्तार।"

प्रारंभ से पितृसत्ता एक संस्थागत रूप में विद्यमान रहा है। यह परिवार, समाज एवं समाज के विभिन्न अंदरूनी संरचनाओं में अपनी पैठ बना चुका है। इसे संस्थागत रूप प्रदान करने में धर्म ने प्रमुख योगदान दिया है। धर्म ही है, जिसने स्त्री को कमज़ोर बना दिया है। दुनिया के इतिहास में धर्म के साथ स्त्री का संबंध प्राचीनकाल से परोक्ष या अपरोक्ष रूप से जुड़ा हुआ है। हर धर्म में स्त्री की व्याख्या अपने-अपने

ढंग से की गई है। लेकिन यह सत्य है कि कई धर्मों में स्त्री की छवि एक ऐसी कैदी की तरह रही है, जिसे पुरुष के इशारों पर जीने के लिए बाध्य होना पड़ता है। अगर पाश्चात्य देशों पर नज़र डालें, तो नवजागरण के बाद स्त्रियाँ धर्म के बंधन से धीरे-धीरे मुक्त हुई हैं। वे अपना स्वतंत्र व्यक्तित्व गढ़ने में सफल हुई हैं। लेकिन भारत में आज भी स्त्रियाँ स्वतंत्र नहीं हैं। वे पितृसत्तात्मक समाज में आज भी बेड़ियों से जकड़ी हुई हैं। इसका एक कारण धर्म भी है, क्योंकि धर्मों में सामान्यतः स्त्री उपयोग और उपभोग की वस्तु मानी गई है। इन्हीं ग्रंथों में स्त्री का चित्रण निरीह प्राणी के रूप में किया गया है। यह विचार इतना प्रभावी हुआ है कि स्त्री ने भी स्वयं को एक वस्तु मान लिया है। यह विचार स्वीकार करने के पीछे भी पुरुष की प्रबल सोच रही है, जो हज़ारों वर्षों से स्त्री के मन-मस्तिष्क में डाली गयी है। हज़ारों सालों से चले आ रहे इस पुरुष संस्कार के संदर्भ में 'राजेंद्र यादव' ने स्त्री को दो हिस्सों में बाँटने की सोच को व्यक्त किया है - "सच तो यह है कि हमारी परंपरागत सोच में नारी को दो हिस्सों में बाँट दिया गया है। कमर से ऊपर की नारी और कमर से नीचे की औरत। हम पुरुष को उसकी संपूर्णता में देखते हैं, उसकी कमियों और कमज़ोरियों के साथ उसका मूल्यांकन करते हैं। नारी को हम सम्पूर्णता में नहीं देख पाते। कमर से ऊपर की नारी महिमामयी है, करुणा-भरी है, सुंदरता और शील की देवी है, वह कविता है, संगीत है, अध्यात्म है और अमूर्त है। कमर से नीचे वह काम-कन्दरा है, कुत्सित और अश्लील है, ध्वंसकारिणी है, राक्षसी है और सब मिलकर नरक है।"

यह विभाजन स्त्री के अस्तित्व की ओर इंगित करता है। जहाँ परिवार ने स्त्री को मनुष्य की कोटि से बाहर रखा, वहीं धर्म ने भी स्त्री को हमेशा पुरुष की दासी के रूप में चित्रित किया है। इस दासी की पहचान केवल 'घर की इज़्ज़त' के रूप में होती है। वह परिवार के लिए ही नहीं, जाति, जनजाति और कई बार 'राष्ट्र' के लिए भी 'प्रतिष्ठा चिह्न' बना दी जाती है। ऐसे प्रतिष्ठित चिह्न की अवहेलना करने वाली स्त्रियों को 'कुलटा', 'परिवार और जाति की प्रतिष्ठा पर दाग' आदि कहकर अपमानित किया जाता है। समाज में स्त्रियाँ अपना जीवन एक संघर्षात्मक ढंग से जी रही है। कदम-कदम पर शोषण, अत्याचार, हिंसा आदि अनेक ऐसे अत्याचार हैं, जो इन पर हो रहे हैं। समाज में इनका न व्यक्तित्व रहा है, नाहीं जाति। समाज में व्याप्त अत्याचार का न्याय न परिवार करता है और नाहीं कानून। बल्कि इनसे होने वाली बदनामी और परिवार की प्रतिष्ठा बचाने के लिए हिंसा के अधिकांश मामले दबाए जाते हैं। "वर्तमान कानून-व्यवस्था भारतीय नारी को कानूनी सुरक्षा कम देती है, आतंकित, भयभीत और पीड़ित अधिक करती है। जब तक बलात्कार और शोषण के संदर्भ में कानून और समाज का दृष्टिकोण और पितृसात्मक व्यवस्था की मानसिकता नहीं बदलेगी, तब तक बलात्कार से पीड़ित नारी स्वयं समाज के कठघरे में खड़ी रहेगी। स्त्रियाँ आखिर कब तक गूँगी, बहरी और अँधी बनी रहेंगी।"

इस संदर्भ में निर्भया कांड (दिल्ली) को हम देख सकते हैं। ऐसे कांड देश की विभिन्न जगहों पर हो रहे हैं। कुछ समाचार-पत्रों में प्रकाशित हो जाते हैं और कितने कांड दबा दिए जाते हैं।

पितृसत्तात्मक समाज स्त्री को हर स्वरूप में पाना चाहता है। उसे स्त्री के अस्तित्व से कुछ लगाव नहीं। सामंती समाज में स्त्री सिर्फ़ भोग्या रही, बुर्जुआ समाज की व्यक्ति-चेतना ने उसे पहेली बनाकर रहस्यमयी नाम दिए। जब स्त्री शिक्षित और जागरूक हुई, तब मुक्ति-चेतना एवं घरों की बंद दीवारों से बाहर निकालने के लिए सामंती मानसिकता से ग्रस्त पुरुष के द्वंद ने भिन्न प्रकार की जटिलताएँ पैदा कर दी हैं। स्त्रियों को जागृत करने, उनका आत्मविश्वास जगाने और अपने अस्तित्व की पहचान कराने में विभिन्न विचारकों एवं लेखिकाओं ने महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाई। 'सीमोन द बोउवार' अपनी पुस्तक 'द सेकेंड सेक्स' में लिखती है कि स्त्री पैदा नहीं होती बनाई जाती है। आरंभिक अवस्था से ही उसमें नारी होने की भावना गढ़ी जाती है। पितृसत्तात्मक समाज स्वयं की सत्ता को कायम रखने के लिए स्त्री को जन्म से ही अनेक नियमों एवं बंधनों में बाँध देता है। "औरत जन्म से ही औरत नहीं होती, बल्कि बढ़कर औरत बनती है। कोई भी जैविक, मनोवैज्ञानिक या आर्थिक नियति आधुनिक स्त्री के भाग्य की अकेली नियंता नहीं होती। पूरी सभ्यता ही इस अजीबोगरीब जीव का निर्माण करती है।"

आधी आबादी के लिए यह हास्यास्पद विडंबना ही है कि हज़ारों सालों से पुरुष ने स्त्री को देह से अधिक कुछ भी नहीं माना। शस्त्रों और शास्त्रों से उसे यही समझाया जाता रहा है कि वह देह मात्र है। आज की कुछ बुद्धिजीवी स्त्रियों ने सर उठाकर यह कहना शुरू कर दिया है कि हाँ वह सबसे पहले देह है और अपनी देह की मालिक वह स्वयं है। लेकिन यह आत्म-विचार कुछ ही स्त्रियों तक सीमित है। अभी गाँव की स्त्री उसी पीड़ा की भोगी है।

पितृसत्तात्मक समाज में भारतीय स्त्रियों का जीवन बड़ा भयावह है। पितृसत्ता की चुनौतियों से जूझती, संघर्ष करती, टूटती-खरती, परिवार और समाज के विरोधाभासों और द्वन्द्वों को तनाव के साथ जीती स्त्री समूह में रहती हुई भी अकेली है। स्त्री-जीवन के अकेलेपन को प्रभा खेतान ने अपने उपन्यास 'आओ पेपे घर चलें' में आइलिन के पात्र से अभिव्यक्त किया है। "औरत कहाँ नहीं रोती और कब नहीं रोती? वह जितना भी रोती है, उतना ही औरत होती है।"

वर्तमान समय में स्त्रियाँ अपनी ऐसी पहचान बनाने की इच्छुक है, जो उसकी अपनी हो, उसके अपने प्रयत्नों का परिणाम हो। आधुनिक नारी विद्रोही बनकर पुरुष के प्रत्येक अत्याचार को चुनौती देती है। उनकी सभी मान्यताओं को अस्वीकार करती है। स्त्री लेखिकाओं ने अपनी लेखनी के माध्यम से स्त्री की दशा-दिशा का चित्रण किया है। स्त्री की अस्मिता, स्वतंत्रता, जागरूकता एवं चेतना को जगाने का प्रयास किया है।

**manjubhu50@gmail.com**

विश्व हिंदी सचिवालय
इंडिपेंडेंस स्ट्रीट, फ़ेनिक्स 73423, मॉरीशस
World Hindi Secretariat
Independence Street, Phoenix 73423, Mauritius
फ़ोन / Phone : +230-6600800
ई-मल / E-mail : info@vishwahindi.com
वेबसाइट / Website : www.vishwahindi.com
डेटाबेस / Database : www.vishwahindidb.com

मुद्रक : Star Publications PVT LTD, Hindi Book Centre, New Delhi – 110002
info@starpublic.com & info@hindibook.com

कवर डिज़ाइनर : DR PRAKASH JHUGAROO